प्रकाशक :
नागरीप्रचारिणी सभा,
वाराणसी

प्रथम संस्करण :
सं० २०२६ वि०
११०० प्रतियाँ

मूल्य : १५-००

मुद्रक :
मधुकर प्रेस
मध्यमेश्वर, वाराणसी—१

माला का परिचय

जोधपुर के स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद जी मुंसिफ इतिहास और विशेषतः मुसलिम काल के भारतीय इतिहास के बहुत बड़े ज्ञाता और प्रेमी थे तथा राजकीय सेवा के कामों से वे जितना समय बचाते थे, वह सब वे इतिहास का अध्ययन और खोज करने अथवा ऐतिहासिक ग्रंथ लिखने में ही लगाते थे। हिंदी में उन्होंने अनेक उपयोगी ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं जिनका हिंदी संसार ने अच्छा आदर किया है।

श्रीयुक्त मुंशी देवीप्रसाद की बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि हिंदी में ऐतिहासिक पुस्तकों के प्रकाशन की विशेष रूप से व्यवस्था की जाय। इस कार्य के लिये उन्होंने ता० २१ जून, १९१८ को ३५०० रु० अंकित मूल्य और १०५०० रु० मूल्य के बंबई बंक लि० के सात हिस्से सभा को प्रदान किये थे और आदेश किया था कि इनकी आय से उनके नाम से सभा एक ऐतिहासिक पुस्तकमाला प्रकाशित करे। उसी के अनुसार सभा यह देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' प्रकाशित कर रही है। पीछे से जब बंबई बंक अन्यान्य दोनों प्रेसीडेंसी बंकों के साथ संमिलित होकर इंपीरियल बंक के रूप में परिणत हो गया, तब सभा ने बंबई बंक के हिस्सों के बदले में इंपीरियल बंक के चौदह हिस्से, जिनके मूल्य का एक निश्चित अंश चुका दिया गया है, और खरीद लिए और अब यह पुस्तकमाला उन्हीं से होनेवाली तथा स्वयं अपनी पुस्तकों की बिक्री से होनेवाली आय से चल रही है। मुंशी देवीप्रसाद का यह दानपत्र काशी नागरीप्रचारिणी सभा के २६ वें वार्षिक विवरण में प्रकाशित हुआ है।

प्रकाशकीय

जोधपुर निवासी स्वर्गीय श्री देवीप्रसाद जी मुंसिफ बड़े ही विद्यानुरागी विद्वान् थे। इतिहास उन्हें विशेष प्रिय था और उसके विभिन्न पक्षों पर उन्होंने अनेक शोधपूर्ण निबंधों और ग्रंथों की रचना की थी। सुयोग्य विद्वानों द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक ग्रंथों के प्रकाशनार्थ ही उन्होंने संवत् १६५७ वि० में सभा में इस ग्रंथमाला की स्थापना कराई थी जिसमें अब तक २२ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके थे। श्री हरिभाऊ जोशी द्वारा लिखित और श्री पुंडलिक कातगड़े (बेलगाँव) द्वारा अनूदित 'बादशाह खान' इस माला का तेईसवाँ पुष्प है।

बादशाह खान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की जीती जागती मूर्ति हैं। इनका समग्र जीवन ही अन्याय और अत्याचार से पीड़ित परतंत्र मानवता की स्वतंत्रता के लिये युद्ध करने में लगा रहा है और वह आज भी उसी में लगा हुआ है। सत्य और अहिंसा ही इनके दो महान् अस्त्र हैं। ऐसे महान् ऐतिहासिक वीर सेनानी के जीवन से वर्तमान तथा भावी पीढ़ी के निर्भीक और दृढ़ चरित्रनिर्माण में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। इसीलिये सभा ने इस ग्रंथ का प्रकाशन किया है।

आशा है इस पुस्तक के द्वारा मानवीय मूल्यों के समझने और परखने तथा तदनुसार जीवननिर्माण करने में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

करुणापति त्रिपाठी
प्रकाशन मंत्री

लेखक का वक्तव्य

मराठी में प्रकाशित पुस्तक 'बादशाह खान' को हिंदी में प्रकाशित होते देखकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। भारत में हिंदी पाठकों की संख्या ३० प्रतिशत होगी। इस दृष्टि से हिंदी का प्रकाशन अधिक महत्वपूर्ण है। गफ्फार खान साहब के अखंड सत्याग्रही जीवन का दर्शन किया जाय और देखा जाय कि उनके बारे में हमारा कर्तव्य क्या है, और यहाँ आने के बाद वह जो पैगाम हमें दे रहे हैं, उसे सोचने की प्रेरणा जनता को मिले, चरित्रलेखन का यह उद्देश्य, इसके प्रकाशन से सफल हो रहा है। केवल मराठी प्रकाशन से यह नहीं हो सकता था, इसलिये हिंदी और उर्दू में भी यह चरित्र प्रकाशित किया जाय, मेरी ऐसी इच्छा शुरू से ही थी। लेकिन भाषांतरकार और प्रकाशक का मिलना आसान नहीं था।

मराठी किताब देखते ही, महाराष्ट्र के एक पुराने देशसेवक एवं कार्यकर्ता बेलगाँव के श्री पुंडलीक जी कातगडे ने भी यह विचार उठाया था। आप महात्मा गांधी के साथ चंपारन सत्याग्रह में १९१६-१७ में रहे थे और उन्हीं के आदेश से वहाँ हिंदी के प्रचार एवं शिक्षण में कई साल व्यतीत किया था। महाराष्ट्र कर्नाटक में उन्होंने हिंदी प्रचार के कार्य में कई साल बिताए। गफ्फार खान साहब के साथ उनका संपर्क भी गांधी सेवा संघ के संमेलन (बेलगाँव, १९३७) और रामगढ़ कांग्रेस के समय हुआ था। उनके प्रति उनके हृदय में गांधी जी के समान ही भक्ति और श्रद्धा की भावना होने से उन्होंने दो ही महीने में हिंदी भाषांतर का कार्य पूर्ण किया। इतना ही नहीं, इसको टंकलिखित नकल अच्छी तरह बाँध करके मुझे दी। यह देखकर मुझे बहुत ही खुशी और उनके प्रति कृतज्ञता भी हुई। यह भाषांतर बंबई और दिल्ली के कई मित्रों एवं प्रकाशकों के पास कई महीने रहा। यह जीवनचरित्र तो सबको पसंद था, फिर भी प्रकाशन की जिम्मेदारी लेनेवाला कोई नहीं था। इतने में ही नागरीप्रचारिणी सभा के संचालकों ने इसका प्रकाशन करना स्वीकार किया। आज कल ऐसे प्रकाशन की जिम्मेदारी लेने का अर्थ क्या हो सकता है, यह प्रकाशक ही ठीक जान सकते हैं। नागरीप्रचारिणी सभा के समान सुविख्यात संस्था के द्वारा

प्रकाशन होना एक सौभाग्य की बात है, इसलिये श्री पुंडलीक जी और नागरीप्रचारिणी सभा के संचालकों के प्रति मेरी कृतज्ञता हमेशा रहेगी।

गफ्फार खान साहब और उनके साथी खुदाई खिदमतगार के प्रति भारत की ओर से बहुत अन्याय हुआ है। देश का बँटवारा करने का निर्णय लेते समय उनसे सलाह भी न ली गई थी। गांधी जी ने उन्हें जैसा आश्वासन दिया था, उनको वैसी सहायता एवं सहानुभूति पहुँचाने का विचार भी हमारे नेता बीस साल में न कर सके। स्व० जवाहरलाल जी को इस बात से बहुत कष्ट होता था। लेकिन वह कुछ रास्ता नहीं निकाल पा रहे थे। पू० विनोबा जी ने जो खत गफ्फार खान को काबुल पहुँचने के बाद लिखा है, उसमें हमारी लज्जा एवं दुःख की राष्ट्रीय भावना व्यक्त हुई है। लेकिन इसमें से भी कोई मार्ग नहीं निकला। अंतरराष्ट्रीय नीति की कुछ मर्यादा और जिम्मेदारी राज्यशासकों के सिर पर जरूर रहती है। लेकिन अंतरराष्ट्रीय नीति नियम जब हमारे साथी सहकारी नेताओं का नाश या हत्या करानेवाले को सहायक हों, या हमारे जीवन सिद्धांत को खतरे में डालने में सहायक हों, तो इस नीति को तो आत्मनाशकारी नीति ही कहना पड़ेगा। दूसरे देशों के अंतर्गत शासन में हस्तक्षेप करने का सिद्धांत केवल उचित ही नहीं, सबके लिये कल्याणकारक भी है; लेकिन इस तत्व का पालन बड़े छोटे सब देशों के लिये करना आवश्यक है। पाकिस्तान भारत पर आक्रमण और युद्ध करता है। पाकिस्तान की परराष्ट्र नीति पर दूसरे बड़े बड़े देशों की कितनी सत्ता चलती है, कितने हस्तक्षेप होते हैं, यह कोई छिपी बात नहीं है। पाकिस्तान तो नागा फिजो को शस्त्र देकर भारत की पूर्व सीमा पर हमेशा अशांति पैदा करता है। इस हालत में भारत के स्वातंत्र्य के लिये और वह बँटवारे से बच जाए इसलिये जिन पठानों ने आखिर तक मुस्लिम लीग के धोखेबाज जातीयतावाद का सामना किया और अपनी पूरी बरबादी स्वीकार की, ऐसे अपने सत्याग्रही नेता और साथी की याद भी हम बीस साल तक न कर सके, यह तो हमारे राजकीय जीवन की एक दारुण विडंबना थी।

इस समस्या को हल करने के लिये ही दिल्ली में एक सर्वपक्षीय समिति अप्रैल, १९६७ में स्थापित हुई। इस समिति का जन्म 'बादशाह खान'

मराठी चरित्र प्रकाशन समारोह के समय बंबई में ही हुआ था, इसे अब कहने में हर्ज नहीं। समिति संगठित होने के बाद भी लगभग अधिकांश नेताओं का और वैसे ही सरकार का भी उन्हें यहाँ बुलाने का विचार स्थिर नहीं हो पाया।

गफ्फार खान साहब आज करीब दो महीने से भारत में आकर रह रहे हैं। उन्हीं के साफ लफ्जों ने भारत की सुप्त आत्मा को जागृति प्रदान की है। उनके वक्तव्य में काफी स्पष्ट बातें आती हैं। वह सबको शायद पसंद न हो। लेकिन वे खुद यह साफ कहते हैं कि 'भारत की भलाई के लिये, यहाँ के गरीबों की भलाई के लिये जो मुझे ठीक लगता है, वह कहता हूँ। आप ठीक न समझते हों तो छोड़ दें। 'नफरत' और 'तशद्दुद' से किसी का भला नहीं होगा। महात्मा जी का रास्ता छोड़कर आप इस देश का भला न कर सकेंगे। हमें पख्तूनिस्तान दिलाने के लिये आप कुछ कर सकेंगे, ऐसा लगता नहीं। आपके दिल में हो, तो भी अपनी मुसीबतों से ही आप बाहर नहीं हैं। हम लोगों ने पख्तूनिस्तान का अपना मसला हल कर दिया है। हम उसे जरूर हासिल करेंगे।' इसी मकसद से यह जीवनचरित्र लिखा गया और इसीलिये गफ्फार खान साहब को यहाँ बुलाया गया; इसका परिणाम, लाभ और आनंद आज हम देख रहे हैं।

लेकिन गफ्फार खान साहब ने अपनी तकरीरों में जो असली सवाल पेश किए हैं और हमारे समाज की जो दुर्बलताएँ बताई हैं उनपर हम समय पर गौर न करें तो इस उम्र में यहाँ आकर और इतना कष्ट उठाकर पूरे देश का भ्रमण कर उन्होंने फिर दूसरा जो महान् ऋण हमारे ऊपर किया है, उसके लायक हम लोग नहीं हैं, ऐसा सिद्ध होगा।

'तुम बातें बहुत करते, काम करते नहीं। ताली बजाना, तस्वीरें खींचना, तकरीरें देना, इसी को आप काम मानते होंगे, ऐसा दिखाई देता है। आजादी के बीस साल बाद आप गल्ले के लिये छोटे छोटे देशों के पास भीख माँगते हैं, घर के गरीब लोगों की देखभाल ठीक नहीं रखते। धर्म या मजहबी फिसाद, लीडर लोग अपने स्वार्थ के लिये कराते या बढ़ाते हैं। यहाँ के मुसलमान अनपढ़ और गरीब हैं। उनके बीच में जाकर, रहकर उनकी खिदमतगारी करने से ही उनका विश्वास और मुहब्बत आप हासिल कर सकते हैं। हम लोगों ने सीमा प्रांत में हिंदू सिख

भाई बहनों की मुहब्बत कैसे हासिल की थी ? वही रास्ता है। आप खिदमत के रास्ते से यहाँ के मुसलमानों को आसानी से अपना बना सकेंगे, चालबाज लीडरों से उनको बचा सकेंगे और देश को भी बचाएँगे'।

गफ्फार खान साहब को अभी तक हम लोगों ने कोई सहायता नहीं पहुँचाई बल्कि उन्होंने यहाँ फिर आकर हमारे देश की सेवा की है। भारत के लिये उनको इतना नुकसान पहुँचा था फिर भी उन्होंने यहाँ आकर मुहब्बत से हमें नया रास्ता बताया है।

अहमदाबाद के पीड़ित मुसलमानों को और वहाँ के हमारे कार्यकर्ताओं को भी नई दृष्टि और नया विश्वास दिया है। आपका यह ऋण हम कैसे चुका सकते हैं ? उन्होंने गरीबों की खिदमतगारी करने का जो रास्ता बताया है, यहाँ के गरीब मुसलमानों को सिखाने के लिये जो अर्ज किया है, उसपर काम शुरू करने से, सभी धर्मों के लोगों को भाई मानकर उनकी खिदमत करने से ही यह सवाल हल हो पाएगा।

यह उनका पैगाम है, संदेश है। उसपर चलना नौजवानों का फर्ज है। इससे उनका ऋण हम थोड़ा कम कर सकते हैं। यह हिंदी किताब यह भावना पैदा करने में सहायक होगी, ऐसी आशा है।

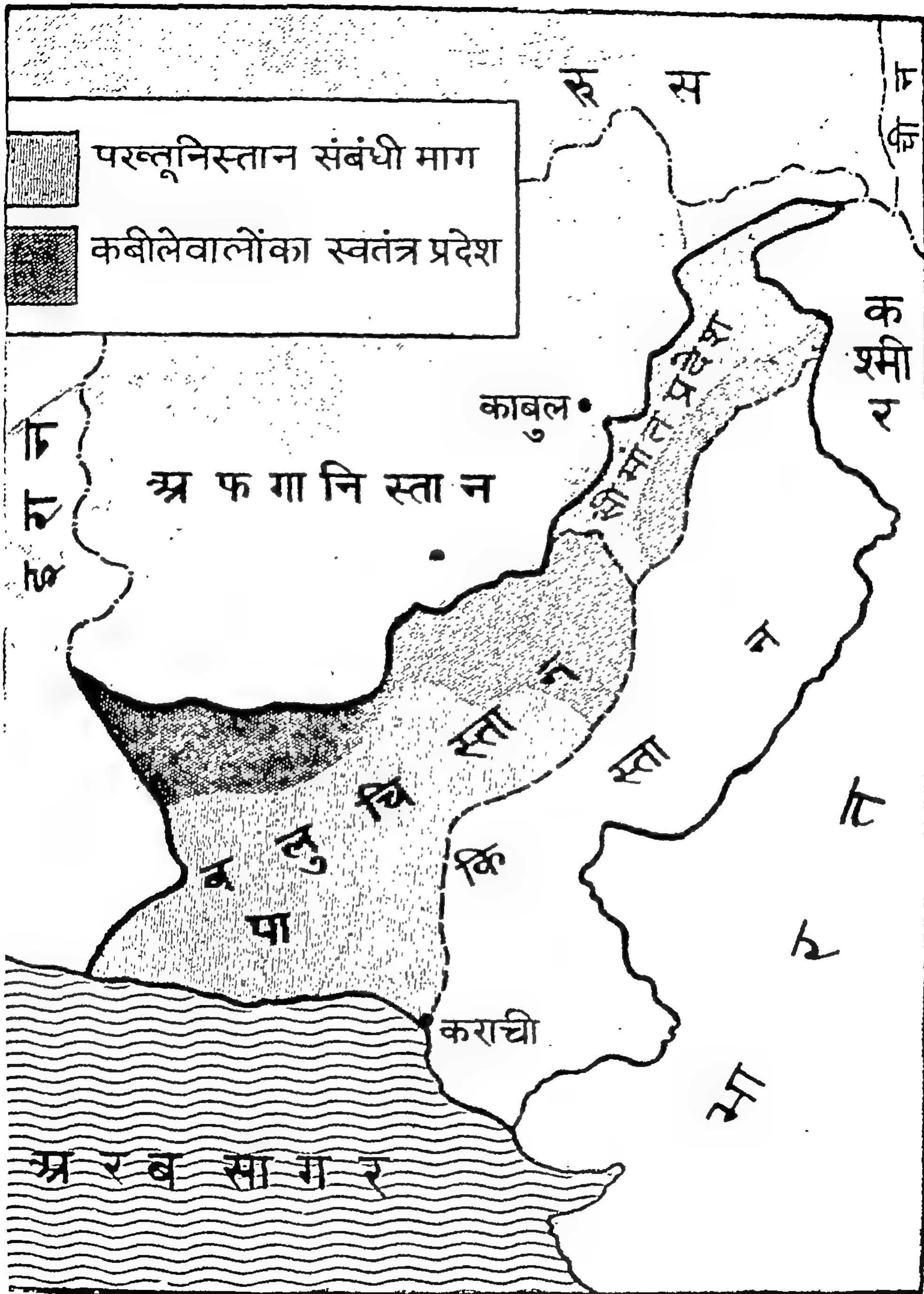
भाषांतरकार श्री पुंडलीक जी और उनके सहायक, वैसे ही मराठी के प्रकाशक नीलकंठ प्रकाशन के श्री रानडे आदि का मैं आभारी हूँ। समय पर इस प्रकाशन को सफल करने का पूर्ण श्रेय तो पं० सुधाकर पांडे जी को दिया जाता है। काफी कठिनाई होते हुए कितने परिश्रम से उन्होंने यह काम पूरा किया, यह मैंने स्वयं देखा है। अठारह अठारह घंटे वे खुद खड़े रहकर मुद्रण या ब्लाक वगैरह का काम भी खुद करवाते थे। गफ्फार खान साहब के वाराणसी में आने के शुभ दिन पर इसे प्रकाशित करने के लिये बड़े प्रेम से पं० सुधाकर जी ने जो कष्ट उठाया है उस ऋण को हम भूल नहीं सकेंगे।

ग्रंथ छापने का काम बड़ी शीघ्रता में होने के कारण इसमें दोष और त्रुटियाँ रह गई हैं। मुझे इसका दुःख है। मराठी संस्करण की ऐसी त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान दिलाने का कार्य महाराष्ट्र राज्य के भूतपूर्व सेवक और

राज्यशास्त्र के अभ्यासी श्री स० चिं० तथा अण्णा साहब दामले (वाराणसी) ने कृपया किया है और इसलिये मैं उनका आभारी हूँ।

वाराणसी
२८ नवंबर,' ६६
(४७९ शनवार, पूना ३०)

हरिभाऊ जोशी



रूस
चीन
पख्तूनिस्तान संबंधी भाग
कबीलेवालोंका स्वतंत्र प्रदेश
काबुल
अफगानिस्तान
सीमान्त प्रदेश
कश्मीर
ईरान
बलुचिस्तान
पाकिस्तान
भारत
कराची
अरब सागर

भाव-दर्शन



समस्त सृष्टि में प्रेम और मंगल है ही। बीज बोने पर अंकुरित होने में कुछ समय लगता ही है। खुदा के ऊपर भरोसा रख कर हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए



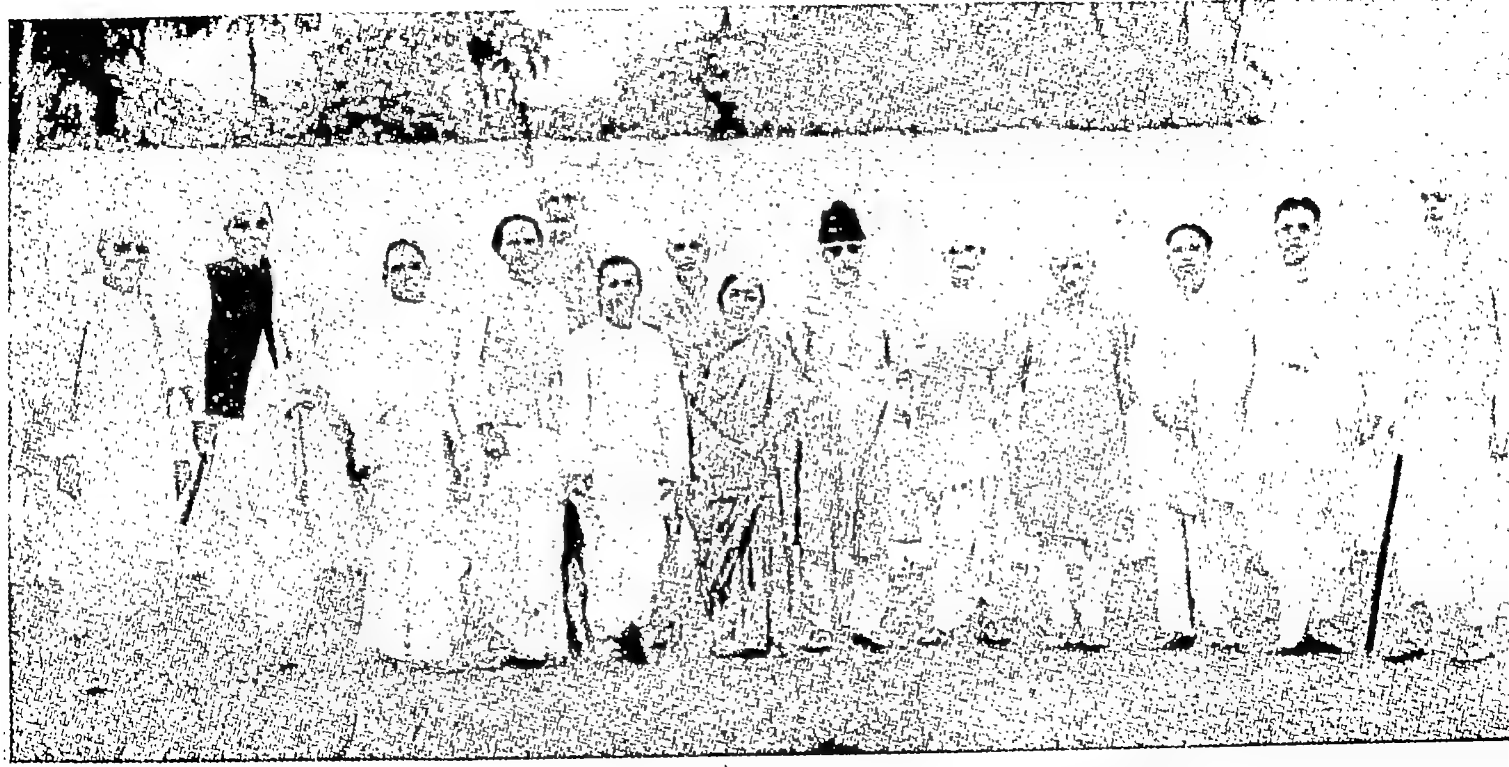
बाजौर के पठानों पर अनेक बार बम फेके गए, उन्होंने क्या पाप किया था? स्त्रियों और बच्चों के ऊपर बम फेंकना? यही इस्लाम की सेवा है?



भारत में क्या आऊँ? मुसाफिरी या जुलूस के लिये? आप हमें भूल गए? क्या आप पठानों के लिये कुछ करने वाले हैं?



ताली बजाना, तकरीरें करना और तस्वीरें खींचना इसी में ही आप सब मशगूल रहते हैं। इससे काम नहीं चल पायेगा। गरीबी की खिदमत करके ही देश के सवाल हल होंगे।



कांग्रेस कार्यकारिणी (पूना) १९४५ ई० बादशाह खान (पिछली पंक्ति में)



बलूच गांधी अब्दुस्समद और सरहदी गांधी

बाएँ से स्व० श्री नारंग (१) और श्री रामशरण नगीना (२) के साथ

सरहदी गांधी के साथ लेखक

सरहदी गांधी अपने परिवार के साथ



[बादशाह खान का बाबतपुर हवाई अड्डे पर स्वागत; 'बादशाह खान' पुस्तक के लेखक श्री हरिभाऊ जोशी और सभा के प्रधान मंत्री श्री सुधाकर पांडेय उनकी दाहिनी ओर]



वैठे हुए—हरिभाऊ जोशी, बादशाह खान, मोहकमचंद मेहरा (किताब दे रहे हैं)
सुधाकर पांडेय, गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

लेखक का मनोगत

एक धर्मऋण की दृष्टि से यह चरित्र लिखने का निर्णय लिया और उसी भावना से यह कार्यकर्ताओं एवम् पाठकों को प्रस्तुत किया जा रहा है। 'भारत हमें भूल गया है, पठानों के पास जो कुछ भी था, वह सब उन्होंने भारत की आजादी के लिये समर्पित किया और इसी वजह से अब वे संकट की खाई में ढकेले गये हैं, भारत हमारी सहायता कर सकता है, लेकिन अब वह हमें भूल गया है, हम अब पराये हो गये हैं, गांधी जी होते तो ऐसा न होता।' बादशाह खान के व्यथित अंतःकरण से उमड़े हुए ये शब्द उनके काबुल पहुँचने के बाद भारत को सुनाई पड़े। उनके इस आह्वान से हजारों देशभक्तों और कार्यकर्ताओं के अंतःकरण निश्चित ही व्यथित हुए होंगे। उनके लिए हम क्या कर सकते हैं, इस चिंतन में एक रास्ता सूझा। 'भारत न तुम्हें भूला है, न भूलेगा।' यह सैकड़ों कार्यकर्ताओं की मनोभावना दिखाई दी। उसे व्यक्त करने का एक मार्ग यह है।

निःशस्त्र प्रतिकार का प्रश्न :

बादशाह खान सत्याग्रही प्रतिकारमूलक साधनों का सोच समझकर और ज्वलंत निष्ठा से प्रयोग करनेवाले महान नेता हैं। यद्यपि गांधी जी के युग के भारतीय नेताओं में सत्याग्रह आंदोलन के लड़ाकू संघटक के रूप में उनका स्थान बहुत ऊँचा है, तो भी उनका चरित्र भारत को पूर्णतया अवगत नहीं था। विभाजन के पश्चात् उनके समूचे काम पर लौह आवरण के पीछे अंधकार छा गया था। पाकिस्तान में छिड़े आंदोलन में उनकी परम तत्वनिष्ठा, असाधारण निर्भीकता और जनप्रेम की सब तरह से कसौटी हुई। प्रतिकूल परिस्थिति में उन्होंने सत्याग्रह के शस्त्र का प्रयोग किया, उसको जंग नहीं लगने दिया। आजादी के बाद अपने देश के स्वशासकों के विरुद्ध जिस साधन का आस्थापूर्वक प्रयोग करते हुए उन्होंने इस शास्त्र और शस्त्र का विस्तार किया है। पूज्य विनोबा जी ने इस शास्त्र का अलग क्षेत्र में, अलग ढंग से भारतवर्ष में विस्तार किया। डॉ० मार्टिन ल्यूथर किंग भी अपने क्षेत्र में सत्याग्रही साधन का विकास कर रहे थे। ब्रिटिश तत्वज्ञ. बर्ट्रांड रसेल का इससे संबंधित कार्य भी विचार करने के लिये प्रवृत्त करनेवाला ही हुआ है।

बादशाह खान के अठारह वर्षों के इस निरंतर आंदोलन ने संसार के सामने और विशेषतः गांधी जी का नाम लेनेवाले भारत के सामने नई समस्यायें और नये आह्वान पेश किये हैं। यह विश्वास और अनुभव लोगों में प्रस्तुत करना भारत के लिये अत्यंत आवश्यक हो गया है कि सब तरह के सामाजिक अन्याय का समयोचित प्रतिकार करके पीड़ित समाज के लोगों को न्याय दिलाने का यह प्रभावशाली साधन है। बादशाह खान ने इस दृष्टि से सत्याग्रही परंपरा और सही अर्थ में गांधीजी की भी महान सेवा की है। उन्होंने सत्याग्रह के शास्त्र और शस्त्र को प्रकाशन के सुनहरे आवरण में या परिसंवाद के पिंजड़े में बंद करके नहीं रखा। यह उनका आदर्श भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मार्गनिर्देशक है। उनका ऋण आज दुगुना हो गया है।

ऐसी अवस्था में वे किसी आकांक्षा से भारत को पुकार रहे हैं, गत दो सालों से उनका यह आवाहन हमारे सामने है। हम उन्हें कुछ आश्वासन या जवाब न दे सकें, यह एक खेदजनक घटना होगी। सत्याग्रही विचार और आचार का प्रसार संसार में जगह जगह किया जा रहा है। उनमें परस्पर सहकार और संबंध स्थापित करना बहुत ही आवश्यक है। यह विचार डॉ० किंग के विवेचन द्वारा भी हाल में व्यक्त किया गया है। यह जिम्मेदारी निभाना भारत के लिये संभव होना चाहिये। हिंसा के साधनों की अमर्यादित वृद्धि के कारण इस आह्वान का विचार विवेकी मानव की बुद्धि के लिये अधिक त्वरा से करना अनिवार्य हो गया है। उस विवेकी मानव के प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी पैदा हुए। वे भारत में पैदा हुए। इसका कारण भारत की पूर्वपरंपरा और पुण्य ही है। इस शास्त्र का क्रियात्मक शिक्षण उन्होंने भारत को दिया, यह हमारा अहोभाग्य है। उनके एक श्रेष्ठ सहकारी इसी साधन का लगातार प्रयोग करते हुए अकेले पड़ गये हैं और विपदा में हैं। वे आज सहकार्य के लिये पुकार रहे हैं, यह एक दुःखद स्थिति है कि इस अवस्था में उन्हें सहायता पहुँचाने का तो नहीं, लेकिन उन्हें किस तरह से जवाब दें, इसका मार्ग ही हमें दिखाई नहीं देता है। बादशाह खान की असफलता समूचे सत्याग्रही विचार को अंगीकार करनेवालों की असफलता है। सत्याग्रह के रास्ते की ओर आस्था से देखनेवाले संसार का भरोसा क्षीण होता चला तो उससे होनेवाली क्षति बहुत बड़ी मानी जायगी।

'स्वकीयों के पशुतुल्य शासन के कारण पठानों की सत्याग्रह के प्रति श्रद्धा नष्ट हो रही है' यह दयनीय कथन बादशाह खान ने विनोबा जी से

किया है। 'अंग्रेज उस दृष्टि से कहीं अधिक सुसंस्कृत और लोकशाही मनोवृत्ति के थे और इसीलिये उनके सामने अहिंसाशस्त्र का कुछ प्रभाव पड़ सका, लेकिन पाकिस्तान के शासकों के लिए इन मूल्यों की कोई कदर नहीं। वहाँ अहिंसा मार्ग का कोई उपयोग नहीं।' पठानों के मन में निःशस्त्र प्रतिकार के संबंध में ऊहापोह शुरू हो गया है। क्या उनके इस आपत्काल में उनको सलाह मशवरा देने की और सहायता पहुँचाने की भारत की जिम्मेदारी नहीं है?

बादशाह खान ने पाकिस्तान के संबंध में अपनी निष्ठा स्पष्ट शब्दों में कई बार घोषित की है। 'अपने पिछड़े पख्तून बांधवों को अंदरूनी शासन की पूरी आजादी दो और उनका आत्मविकास का रास्ता प्रशस्त कर दिया जाय, इस तरह शक्तिशाली बना हुआ पख्तून पाकिस्तान का सामर्थ्य बढ़ायेगा' पख्तूनिस्तान का यह स्वरूप उन्होंने पाकिस्तान के नेताओं और दुनिया के सामने स्पष्ट रूप से रखा है, लेकिन पाकिस्तान में चलनेवाली नेतृत्वस्पर्धा और अंतरराष्ट्रीय पैंतरेबाजी या कारणों की वजह से संत प्रवृत्ति के इस नेता को, उनके हजारों सहकारियों को और उनकी न्याययुक्त माँग को कारागार में ठूँस कर नष्ट करने का प्रयास अठारह साल से चल रहा है। यह सवाल भारत के सत्याग्रही और विचारवान् नेताओं के सामने उपस्थित है कि हमारे इस सत्याग्रही नेता को कुछ सलाह मशविरा, सहयोग भारत दे सकता है या नहीं?

सरकार की जिम्मेदारियाँ और दिक्कतें काफी रहती हैं। अंतरराष्ट्रीय नीतिनिबंधों के बंधनों में उसे कसरत करनी पड़ती है। यह देखने की जिम्मेवारी संसार के विचारवान और तत्वज्ञ नेताओं की ही है कि ये बंधन अंत में मानवी स्वातंत्र्य और कल्याण के पोषक हों। 'भारत की आजादी, एशिया की सही आजादी का उषःकाल सिद्ध होगा' यह गाँधी नेहरू का आश्वासन कौन निभायेगा? यह उनका आश्वासन है, केवल इसीलिये नहीं, हमारे कल्याण की दृष्टि से भी भारत को इस प्रश्न का हल निकालना चाहिये। हमने तिब्बत की आजादी का अधूरा पुरस्कार दिया, बारीकी से प्रश्न की छानबीन बिना किये ही हमने ईजिप्त की दोस्ती का अमर्यादित समर्थन किया, चीन के हक के लिये आधे से अधिक संसार के खिलाफ जाकर संयुक्त राष्ट्रसंघ में हमने अपनी आवाज बुलंद रखी, और हम अपने ही बूढ़े सहकारी के लिये, एक सत्याग्रही संत नेता के

लिये, अपनी आवाज संसार के सामने बुलंद नहीं कर सकते हैं। यह कहने की जरूरत नहीं कि जिसके लिये खुद जवाहरलाल जी व्यथित थे, पाकिस्तान से हमारे नाजुक संबंध बिगड़ने न पाएँ, इस कमजोर नीति के ये बुरे परिणाम हैं, फिर भी खुद पंडित जी ने ही हैदराबाद कांग्रेस (१६५३) में 'हमारे पुराने साथियों की परेशानी के खिलाफ खुलकर बोलने का समय अब आया है' ऐसा प्रकट किया था। यह बातचीत पूर्णतः कब और कौन करेगा? शास्त्री जी के सामने कुछ योजनायें रही होंगी, ऐसा बादशाह खान को आभासित होता है। लेकिन शास्त्री जी के निधन से उन योजनाओं का भी अंत हो गया होगा। पाकिस्तानी जनता का भला हो, इस बारे में भारत के अंतःकरण में पूरा सद्भाव है, उन्हें जैसा अनुकूल हो, वैसा राजकाज चलायें, यह भारत की इच्छा है और दोनों राष्ट्रों की सहकारिता द्वारा अपना और एशिया का उत्कर्ष हो, यही सही रास्ता है। ऐसा होते हुए भी यदि वहाँ अन्याय अनाचार बढ़ता गया, वहाँ संत पुरुषों पर, पीर फकीरों पर अत्याचार होने लगे, हमारे पुराने सत्याग्रही साथियों पर जुल्म अत्याचार हुए, मानवी मूल्य पैरों तले कुचले गये, स्नेहभावना पर अपरिमित तनाव पड़ने लगा, तो भी उसके खिलाफ आवाज उठाने का अधिकार न हो, यह जागतिक शांति और हमारे स्वाभाविक हक के साथ मेल खानेवाली नीति नहीं होगी। यदि जनता की यह न्यायोचित राय उचित जगह पर और उचित समय से प्रभावपूर्ण रीति से व्यक्त की गयी तो पाकिस्तान की भलाई का दावा करनेवाले अध्यक्ष अयूब खान भी लोगों की इस राय की कदर करेंगे। इस संबंध में भारत को अपना कर्तव्य पहचान लेना चाहिये।

अल्पसंख्यकों का दुःख :

आजादी प्राप्त करने के बाद बीस साल तक हम अल्पसंख्यकों की समस्या ठीक तरह से सुलझा नहीं सके; इतना ही नहीं, आज भी वह एक चिंता का विषय बना हुआ है, सिर्फ अल्पसंख्यक या बहुसंख्यकों की भावना या भलाई तक ही वह सीमित नहीं है, एशियाई लोकतंत्र का भविष्य इसपर अवलंबित है, इस दृष्टि से तत्परता से और ठीक ढंग से उसे सुलझाना आवश्यक है।

बादशाह खान के चरित्र ने इस क्षेत्र में भी कुछ आदर्श हमारे सामने रखे हैं, 'आपसी सहयोग और भरोसे से इकट्ठे काम करने से यह सवाल हल हो सकता है, हमने इसे सुलझाया है।' इस आशय के उनके उद्‌गार इस

चरित्र में अनेक जगह दिखाई देंगे, लेकिन उन्होंने सुलझाया हुआ यह प्रश्न कितनी सहजता से बाद में उध्वस्त किया गया, यह भी हमने देखा है। यह सारा विक्षेप धर्म और जाति के भेदभाव के नाम से किया जाता है, इसलिये मूलतः धर्म या जातिभेद का ही यह प्रश्न है, यह हम मानते चले आ रहे हैं। धर्म या जाति का नाम इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन मुख्यतः सत्ता हथियाने के एक साधन के रूप में ही इस भावना का उपयोग किया जाता है। वैसे ही अल्पसंख्यक माने केवल मुस्लिम नहीं या सिर्फ भिन्नधर्मीय माने अल्पसंख्यक नहीं। मुसलमानों की तरह सिख, बौद्ध, पारसी, क्रिश्चियन भी भिन्नधर्मीय हैं, वैसे ही हरिजन गिरिजन या अन्य अल्पसंख्यक वर्ग भी हैं, उनके प्रश्न कम महत्व के नहीं हैं, भाषा भेद या प्रांतीय भावना के भेद भी आज कितने प्रखर हुए हैं, यह हम देखते हैं, लेकिन केवल स्वभाषा या जाति भावना या धर्मद्वेष इन मतभेदों के सही कारण नहीं हैं। आपसी आचार विचारों के संबंध में अंदरूनी भावना अनादर की रहती है, लेकिन सत्ता संभाले रखने के लिये उसका उपयोग किया जाता है और इससे ये झगड़े बढ़ते हैं। ये झगड़े या इसमें से उत्पन्न होनेवाले आंदोलन को टालना अब अत्यंत आवश्यक और अपरिहार्य हो गया है, इसलिये विवेक से इन समस्याओं को सुलझाना चाहिये और वैसे ही उनका निराकरण किया भी जा सकता है। हिंदू मुसलमानों के प्रश्न भी जिन प्रांतों में मुसलमान अल्पसंख्यक थे, वहीं तीव्रता से दिखाई दिये। जहाँ काफी तादाद में मुसलमान थे उस पंजाब, बंगाल या सीमाप्रांत जैसे प्रांतों में अपना नेतृत्व कायम रखने के लिये मुसलमान नेताओं को कम तादादवाले हिंदुओं के साथ मिल जुलकर व्यवहार करना पड़ता था। वैसा स्वरूप लाने के लिये वे तैयार नहीं थे, जैसे पंजाब के नेता सर फजली हुसेन या सिकंदर हयात खान और बंगाल के फजलुल हक आदि नेता। मुस्लिम लीग ने कौमीवाद को इस तरह का स्वरूप दिया। जिन प्रांतों में मुसलमान अधिक तादाद में थे, उन सब प्रांतों में १९४६ के चुनाव के बाद लीग के हाथ में शासन नहीं आया था। केवल आगजनी के साधनों से और शांति स्थापना प्रशासन का बंदोबस्त ठीक तरह से न करने की ब्रिटिश नीति से पाकिस्तान का निर्माण हुआ है, उसका यह मुख्य स्वरूप नजरअंदाज करने पर उसके कल्याण करने के उपाय में सफलता पाना उतना ही कठिन है।

आज भी अल्पसंख्यकों का प्रश्न याने मुसलमानों का प्रश्न इसी दृष्टि से हम देखते हैं, यह उतना ठीक नहीं है। पाकिस्तान की निर्मिति के कारण

और पाकिस्तान द्वारा चालू रखे गए रोजमर्रा के वैचारिक और व्यावहारिक झगड़ों के कारण यह समस्या और बदतर होती जा रही है। इस झगड़े में धर्म का केवल नाम है। यह ठीक ही है कि यह प्रश्न हाल में आत्मीयता से सोचा विचारा जा रहा है और इसपर चर्चा की जा रही है। लेकिन ऐसा करते हुए पहले की गलतियाँ कायम रहीं तो यह समस्या सुलझनी कठिन होगी। मुसलमान समाज की आज की सही भावना और आकांक्षा क्या हैं, इनकी ठीक तरह से जानकारी न होते हुए भी यदि इस विषय की चर्चा होती रही तो उसमें धोखा होगा। पाकिस्तान का निर्माण करने में सहायक सिद्ध हुई एक पीढ़ी अभी जिंदा है। उनका विफल नेतृत्व भी अभी तक कायम है और पुराने नेता, पाकिस्तान की हाल की नीति और अन्य प्रमुख देशों की अंतरराष्ट्रीय नीति के कारनामों से यह समस्या और भी उलझती जा रही है। लेकिन इसके बावजूद इनपर सफलता पाना समझदार भारतीय नेतृत्व के लिए संभव होना चाहिये। 'पूरा मुसलमान समाज असाधारण धर्मनिष्ठ और धर्म के पीछे पागल है। उसे उसकी धर्मपरंपरा के अनुसार इस देश में फिर से इस्लामी सत्ता प्रस्थापित करने की इच्छा है। इस्लाम का अर्थ पुराने कट्टर वृत्ति के धर्मनेताओं द्वारा जैसा कहा जाता है वही मुसलमान समाज को ठीक लगता है और उसके अनुसार वर्ताव करने के लिये वे तैयार रहते हैं। हम में से कई लेखकों की ऐसी विचारधारा अतिरंजित और अतिव्यापक स्वरूप की लगती है। इतना ही नहीं, वह मानवी स्वभाव से मेल नहीं खाती। ऐसे प्रचार से अधिक नुकसान होने का धोखा है। साम्राज्यवादी या पूँजीवादी देशों में लड़ाई के साधनों की वृद्धि करके उसके मुनाफे पर जिंदा रहनेवाले कुछ उद्योगपति और उनका साथ देनेवाले राजकीय नेता होते हैं, उनके अतिरिक्त वहाँ की सर्वसाधारण जनता युद्धप्रिय है, ऐसा निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं है। अमरीका वियतनाम की लड़ाई कई सालों से जारी रख रहा है, इसलिये वह लड़ाई अमरीकी जनता को भी प्रिय है, ऐसा मानना या चीन की आक्रमण की वर्तमान नीति वहाँ की जनता की नीति है, ऐसा मानना स्वाभाविक दीखते हुए भी सही नहीं होगा। जिन्हें इन समस्याओं का हल निकालना है, उन्हें इससे भी अधिक गहराई में जाना चाहिए। इतना ही नहीं, ऐसी दुःखद द्वेषभावना जहाँ हो, उसे दूर करने की दृष्टि से इस प्रश्न पर सोच विचार करना चाहिए।

कई मुस्लिम नेता 'इस देश में फिर से मुस्लिम सत्ता प्रस्थापित की जाय, यह देश 'दार उल् हरब' याने इस्लामी धर्म का रणक्षेत्र है या 'दार उल्

सुलह' याने इस्लाम के प्रभुत्व के सिलसिले में कुछ समय के लिये सुलह किया हुआ देश है, ऐसा मानते हैं' यह तात्पर्य निकालना ठीक नहीं है। कुछ पागलों के दिमाग में ऐसे विचार भी होते हैं, लेकिन वे उस समाज के प्रतिनिधि नहीं होते हैं। एक से अधिक स्त्रियों से शादी करने की आजादी या परिवारनियोजन जैसे समाज के प्रश्न सुलझाने का वे मुसलमान विरोध करते हैं। ये सब राजकीय उलझनों के सवाल हैं और ये निग्रह से सुलझाये जा सकते हैं। विचार करने से हम इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि उसके लिये योग्य और पर्याप्त प्रयत्न नहीं हुए हैं। ऐसी धारणा रखनेवाले अंध हिंदुओं में भी हैं कि छूआछूत मिटाना वैदिक धर्म के लिये लांछन है और मंदिरप्रवेश के कारण भूचाल आते हैं। किंतु हिंदू समाज में समाजसुधारक और शास्त्रीय दृष्टि अपनानेवाले नेता पहले जमाने में हुए। वही रास्ता इस्लाम समाज को भी अपनाना चाहिए। इन नये विचारों का नेतृत्व मुसलमानों में पैदा करने के लिये हमारी नीति पूरक सिद्ध होनी चाहिए। यह हमारे लोकतंत्र के लिये बड़ा धोखा है कि इसके विपरीत झूठी धर्मभावना स्थिर रखकर लोकप्रियता सँभालनेवालों का नेतृत्व अपने अपने दलों के लिये इस्तेमाल करने का पाप यहाँ के सब राजकीय दल कर रहे हैं। समान नागरिकता पर आधारित सब की समानता, सहजता स्वीकार करनेवाला और किसी की भी उच्चता नीचता की फिक्र न करनेवाला विचार निडरता से सिखाना लोकतंत्र का आधार है। उसका प्रचार करना किसी धर्म में हस्तक्षेप करने जैसा नहीं है और यदि हस्तक्षेप होता है तो वह करना भी लोकतांत्रिक अधिकार है और वैसा करना आज की आवश्यकता भी है। इस दृष्टि से हमारे काम की दिशा होनी चाहिये और उसके लिये जनता की राय से ही नहीं, जनता की भावनाओं से भी हमें ठीक ठीक संपर्क रखना होगा।

इस्लाम की शुरुआत से खुद हजरत पैगंबर ने आरंभिक लड़ाई के अलावा अन्य बहुत ही थोड़ी लड़ाइयाँ, धर्मयुद्ध याने स्वसंरक्षणार्थ की थीं। इस्लाम को धर्मविस्तार के लिये आक्रामक युद्ध मान्य नहीं। इस्लाम का मतलब ही शांति है, सब प्रकृति के संबंध में प्रेम है। ऐसा उपदेश बादशाह खान ने पठानों के गले उतारने की कोशिश की। इस्लाम के आक्रामक संघर्ष से इस्लाम की एक एक खिलाफत के टुकड़े-टुकड़े होते गये। इसमें से अरब, तुर्क, पठान, मोगल राज्य और साम्राज्य बने। यह इस्लाम के अंतर्गत युद्ध का इतिहास है। वह इस धर्म का इतिहास नहीं, यह सत्तास्पर्धा शुरू होने के बाद, अधिक धन

और साधन वाले साम्राज्यवादियों ने अरबों को तुर्कों के विरुद्ध, पठानों को आपस में, इतना ही नहीं, मक्का के शरीफ को इस्लामी धर्मसुधारक के नाते बाहर निकले हुए वहाबी राजा के विरुद्ध लड़ने के लिये मजबूर किया। और इन सारी लड़ाइयों में इस्लामी समाज के नेता मुल्ला मौलवी, किसी न किसी धर्मत्रातक सत्ता के पीछे ही रहे, तुर्कों की जीत के विरुद्ध कारनामे करनेवाले मुल्ला मौलवियों का विनाश कमालपाशा को करना पड़ा। अमानुल्ला के विरुद्ध करतूतें इन मुल्ला मौलवियों ने ही कीं और पाकिस्तानी लोकतंत्र भ्रष्ट और नष्ट करनेवाले भी ये धर्मनेता ही हैं। केवल पाँच साल में पाकिस्तान निर्माण करनेवाली मुस्लिम लीग इन्होंने ही गठित की। लियाकत अली खान और डा० खान साहब जैसे नेताओं के खून हुए, कायदे आजम जिना साहब के यह घोषित करते ही कि पाकिस्तान की संघटना सेक्यूलर ही रहेगी, उनके विरुद्ध पत्थरबाजी करते हुये प्रदर्शन किये गये। यह करनेवाले और करानेवाले कौन हैं ? झूठे और दंभी धर्मप्रसार से होनेवाले आत्मनाश का नमूना विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान में ही इतने भयानक ढंग से अंकित किया गया है कि इस ओर विचार करनेवाला मनुष्य उसे अलक्षित नहीं करेगा। खुद अध्यक्ष अयूब खान के बागडोर हाथ में लेते समय स्वार्थी नेताओं ने देश का विनाश कैसे किया और इस वजह से राज्य संघटन को कैसे रद्द करना पड़ा, इसका वर्णन उन्होंने किया है (१९५८)। ये स्वार्थी नेता याने धर्म के नाम पर आंदोलन करनेवाले मुसलमान नेता हैं। इन्होंने ही लाहौर के (१९५३) अहमदिया पंथ के खिलाफ याने मुसलमानों के ही एक संघटित संबंध और सत्ताधीश तंत्र के खिलाफ अत्याचारपूर्ण आंदोलन किया। अहमदिया पंथ को अब तलवार के सहारे धर्मप्रचार करना (जिहाद बसैफ) नामंजूर है। क्या अहमदिया पंथ के खिलाफ हुए भीषण अत्याचार को ही पाकिस्तान की धर्मनिष्ठा मानी जाय ? यही चालबाजी भारत में सुहरावर्दी ने भी चलाई थी। यह चालबाजी केवल सत्ता पाने के लिये रहती है और वह चालबाजी करनेवालों पर ही भयानक ढंग से उलटती है। लेकिन यह अनुभव पाकिस्तान को हुआ है कि निराश हुए धार्मिक नेता आज भी अयूब खान की सत्ता उखाड़ फेंकने के लिये वही पैतरेबाजी कर रहे हैं। उन्हें अब वहां सफलता मिलनी संभव नहीं दीखती, फिर भारत को वैसा डर क्यों होना चाहिये ? धर्म के पीछे पागल लोगों की सफलता मौके का फायदा उठानेवाले उनके मददगार लोगों में रहती है और ऐसे मौके का

फायदा उठाने वाले सब धर्मों के अनुयाइयों में और राजकीय दलों में रहते हैं, उनका प्रतिकार उचित ढंग से करना चाहिये।

बादशाह खान को यह समस्या सुलझाने में वहाँ के अल्पसंख्यकों का याने हिंदू सिखों का उपद्रव नहीं सहना पड़ा। ऐसा नहीं है कि वहां के हिंदू सिख भी मौके का फायदा उठानेवाले मुस्लिम नेताओं के समान ब्रिटिश पोलिटिकल महकमे के हाथों के खिलौने नहीं बने। बादशाह खान और कांग्रेस वालों को जेलों में ठूसने की नीति का समर्थन इन हिंदू जमीदार नेताओं ने हमेशा किया था, तो भी उन हिंदू-सिख नेताओं को डा० खान साहब के मंत्रिमंडल में काफी प्रतिनिधित्व दिया गया था। इस हार्दिक सहायता और विशेषतः खुदाई खिदमतगारों की निष्ठावान सेवा के कारण वहाँ अल्पसंख्यकों का सवाल हल हुआ था। अलबत्ता यह सही है कि वहाँ की समस्याओं का स्वरूप और वर्तमान भारतीय मुसलमानों के प्रश्न का स्वरूप बहुत ही भिन्न है।

मुख्यतया यहां के मुसलमानों की भावना और आकांक्षा के बारे में आज हमारी जो राय बन गई है, उसका ठीक से अध्ययन करना जरूरी है। मुसलमान जनता में शुद्ध नागरिक भावनाओं का प्रचार करना, उनके हित में कैसे होगा, यह समझाने के लिये सही दिशा में वैसी समाजसेवा करनी चाहिये। मुसलमानों के प्रगतिशील, तत्वनिष्ठ और राष्ट्रनिष्ठ नेतृत्व से सहयोग करना चाहिये। उनपर राज्य शासन द्वारा कहीं अन्याय या अविचार होता हो तो उसे दूर करने के लिये सहायक होना चाहिये। दंभी और मौके का फायदा उठानेवाले मुसलमान नेताओं को सब राजकीय दलों से दूर रखना चाहिये। इस मार्ग से और निरंतर प्रयत्न से यह सवाल निश्चय ही हल हो सकता है। यह विश्वास इस चरित्र ने दिया है कि आजादी के बाद भारत सेक्यूलर राज्य पद्धति के मार्ग पर तेजी से प्रगति कर रहा है। इसके प्रतीक हाल के राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन साहब थे। पाकिस्तान के अलावा किसी भी अन्य मुस्लिम देश में धर्म पर आधारित राज्यसंघटन नहीं है। यह वस्तुस्थिति भारत में बसनेवाले मुसलमानों के सामने है ही। राजकाज में धर्म को घुसेड़ने से उसका भीषण पर्यवसान होता है। इस चरित्र ने हमें यही दिखाया है। इसी अपेक्षा से इसे पाठकों के हाथों में दिया जा रहा है।

सहायकों को आभार :

यह चरित्र पूरा करने के काम में बहुत से परिचित, अपरिचित मित्रों एवं कार्यकर्ताओं की सहायता मिली है। खुद बादशाह खान से हुई मुलाकात और

उनके संपर्क से मिली हुई स्फूर्ति और जानकारी का मूल्यांकन करना मुश्किल है। उनसे मुलाकात करने की सलाह से लेकर प्रत्यक्ष मुलाकात करवाने तक सब प्रकार की मदद और सहयोग श्री कमलनयन बजाज जी ने दिया। उनका और मेरा विशेष परिचय न होते हुये भी केवल कार्यनिष्ठा से उन्होंने सहयोग दिया, मुख्यतः उनकी वजह से ही मैं उनसे मिल सका और इसी कारण इस चरित्रलेखन का निर्णय हो सका। खासदार श्री उपाध्यायजी—जवाहरलाल जी के भूतपूर्व मंत्री, खा० श्री उमाशंकर दीक्षित, खा० एस० एम० घोष का भी साहाय्य काबुल की मुलाकात के लिये मिला। बादशाह खान के प्रायः बहुतेरे अंग्रेजी और हिंदी चरित्रग्रंथों का उपयोग इसमें किया गया है। विशेषतः डॅ० महंमद यूनुस, श्री प्यारेलाल और श्री बुखारी की जानकारी का काफी उपयोग किया गया है, लेकिन बादशाह खान की ओर से मिली टिप्पणी पर उनके दिल्ली निवासी एक कार्यकर्ता श्री नारंग जी द्वारा कष्ट उठाकर किया गया साहाय्य अनमोल रहा। श्री प्यारेलाल जी ने भी अनेक प्रकार की मदद की है। पेशावर के एक वृद्ध क्रांतिकारी कार्यकर्ता और 'फ्रांटियर मेल' (देहरादून) साप्ताहिक के संपादक श्री अमीरचंद बंबवाल ने सीमाप्रदेशों के गांधी जी के पहले के जमाने की राजकीय जागृति की पृष्ठभूमि की चर्चा विस्तार से की। इतना ही नहीं, उसके लिये अपने अखबार के पुराने अंक और अन्य साहित्य भी दिया। जिस सरकारी कार्यालय में मैं काम करता हूँ, वहाँ के दफ्तरी कागजातों की जानकारी का स्वाभाविक ही उपयोग हुआ है। मेरे सहकारी श्री ब० न० फाटक द्वारा भी मदद हुई है।

'मुंबई क्रानिकल', 'फ्रीप्रेस', 'फ्रांटियर मेल', 'दैनिक लोकशक्ति', 'चित्रमय जगत्', 'स्वराज्य साप्ताहिक', इन साधनों का उपयोग भी किया है।

अंत में दिये गये उद्धरणों में से डा० गंगासिंह कंभोज का १९३० में पेशावर के गोली कांड से संबंधित पत्र नयी जानकारी देनेवाला है। वृद्धावस्था और रुग्णावस्था में होते हुए भी उन्होंने यह पत्र लिखा है। उनके पत्र की कीमत आँकना कठिन है। बादशाह खान—मदालसा बहन का यह पत्र श्री कमलनयन बजाज जी ने दिया और पू० विनोबा जी—बादशाह खान के पत्र-व्यवहार की अधिकृत प्रतियाँ सर्वसेवा संघ के सहायक मंत्री श्री दत्तोबा दास्ताने जी ने भेजी।

हस्तलिखित तैयार करते समय और उसके तैयार होने के बाद आचार्य भागवत, श्री मामासाहेब देवगिरीकर, श्री सेतुमाधवराव पगडी, श्री धनंजय कीर, श्री पी० वी० (आप्पासाहेब) कुलकर्णी, श्री दा० न० शिखरे,

श्री श्रीपाद केलकर, प्रा० ग० प्र० प्रधान, श्रीमती कुसुम नारगोलकर ने उपयुक्त सुझाव दिये। इन मित्रों ने आंशिक ग्रंथ ही पढ़ा है या सुना है, इसलिये चरित्र में अन्य दोष या गलतियाँ रही हों तो वे प्रस्तुत लेखक की हैं। और ऐसे दोष काफी रहे हैं, जिनकी जानकारी प्रस्तुत लेखक को है। इस्लामी धर्मवचन, विशेषनाम और अन्य उर्दू शब्द लिखने में दोष रहना संभव है। ये दोष बचाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। उस भाषा का और परंपरा का परिचय न होने से ऐसे दोष रहना स्वाभाविक है। प्रार्थना है कि इसके बारे में कोई भी गलतफहमी न रखें। पश्तो उद्धरण का विस्तृत अनुवाद, शब्दोच्चारण आदि सुधारने के संबंध में सेंट्रल पख्तून जिर्गाए हिंद की महाराष्ट्र शाखा के अध्यक्ष भाई अब्दुल रज्जाक स्वाती द्वारा की गई मदद भी बेशकीमती रही। फोटो उपलब्ध करने के संबंध में भी श्री नारंग और उर्दू साहित्यिक श्री रामशरण नगीना, काबुल स्थित यू० नो० के शिक्षाशास्त्री श्री आठल्ये, आकाशवाणी के प्रकाशन विभाग, श्री मामा साहेब देवगिरीकर और श्री प्यारेलाल जी का भी साहाय्य हुआ है। इन सबका मैं बहुत ऋणी हूँ, सूची तैयार करने में प्रा० चिं० वें० ल० जोशी और मेरे पोते चि० श्रीप्रकाश जोशी, चि० शिरीष गुलवणी और चि० विजय जोशी के परिश्रम महत्त्व के हैं।

ग्रंथ लेखन का विचार चल रहा था, तब नीलकंठ प्रकाशन के श्री दामुअण्णा रानडे जी की सलाह ली। प्रकाशन की जिम्मेवारी लेने का आश्वासन उन्होंने दिया, इससे यह चरित्र लिखने का अपना निर्णय निश्चित करने में मदद हुई। उन्होंने यह आश्वासन उस समय दिया, जब मैंने लिखना शुरू भी नहीं किया था, फिर भी मेरा काबुल जाने का विचार निश्चित होते ही और उन्हें जानकारी देने पर जितना काफी बन पड़ा, उन्होंने सहायता की। ग्रंथ प्रकाशन का किसको क्या अनुभव है, यह मैं नहीं जानता, लेकिन श्री रानडे जी के सहयोग का अनुभव मेरा उत्साह बढ़ाने में सहायक ही हुआ। मेरी ओर से लेखन कार्य समय पर पूरा न होने पर भी समय समय पर परिश्रम लेकर उन्होंने प्रकाशन पूरा किया है। कल्पना मुद्रणालय के संचालकों द्वारा लगन से यह काम पूरा करने की सहायता बहुत बड़ी है।

दि० २ जनवरी १९६८,
४९६, शनिवार पेठ, पुणे २
और मैजेस्टिक होटेल, मुंबई १

—हरिभाऊ जोशी

विषयसूची

: १ :

विषयप्रवेश

सरहदी गांधी नाम से भारत में विख्यात खान अब्दुल गफार खान, पठानी इलाके में बादशाह खान नाम से मशहूर हैं। बादशाह खान पठानों द्वारा दी हुई उपाधि है। बादशाह खान का व्यक्तित्व और बड़प्पन आँकना सहज नहीं है।

भारत के स्वातंत्र्य संग्राम में उनका स्थान अमर है। अहिंसा के आंदोलन के वे एक अनन्य साधारण सैनिक हैं। तो भी उनका सार्वजनिक जीवन १९११ से याने गांधी जी के भारत में वापस लौटने के पहले शुरू हुआ। अहिंसा के रास्ते ही से दुबले और दलित मानव का उद्धार हो सकेगा, इस सिद्धांत पर गांधी जी की तरह उनकी भी नितांत श्रद्धा है।

पठान कहते ही क्रूर, साहसी और हिंसाचारों में निष्णात आदमी का चित्र आँखों के सामने खड़ा होता है। अपने हाथ पांव जितना ही खुद की बंदूक से भी मोहब्बत करनेवाला और उस बंदूक बर्ची के बल पर अपनी आजादी सँभालने वाला, यह पठान है। हमें उसका सही परिचय बादशाह खान ने पहले पहल दिया।

वायव्य सीमा प्रांत और उसके बाद अधूरा आजाद पहाड़ी पठान मुल्क यागिस्तान, इन दोनों विभागों में बसनेवाले करीब ५० लाख पठानों के बादशाह खान आराध्य देवता बने हैं। अफगान लोग भी बादशाह खान को विशेष मानते हैं।

वायव्य सीमा प्रांत के पठान करीब १०० साल तक ब्रिटिश हिंदुस्तान के नागरिक के रूप में रहे, लेकिन हथियारों पर उनकी श्रद्धा कभी भी कम नहीं हुई थी। वायव्य सीमा के उस ओर यागिस्तान के लोगों पर कोई भी शासक शासन नहीं चला सका। ब्रिटिशों जैसे साम्राज्य सत्ताधीश तक पठानों को कभी भी नहीं झुका सके। ३०–४० करोड़ की आबादी वाले भारत जैसे संस्कृति संपन्न और विशाल देश पर अंग्रेज बेखटके शासन चला सके, लेकिन मुट्ठी भर यागिस्तानी लोगों पर वे स्वामित्व स्थापित नहीं

कर सके। इन लड़ाकू पठानों को झुकाने परेशान करने का ही एकाकी काम अंग्रेजों की फौज के बड़े बड़े अधिकारियों को सौंपा गया था, जवान ब्रिटिश सैनिक अधिकारियों को तैयार करने के लिये 'मृगया स्थान' की दृष्टि से यागिस्तान का उपयोग किया जाता था, वह उल्लेख कई विदेशी सैनिक अधिकारियों ने बड़ी शर्म से किया है।

सौ साल तक ब्रिटिशों के लिये समस्या बना हुआ यह प्रश्न बादशाह खान के महान कार्य और बड़प्पन का निकष है।

पठान निर्दय, शस्त्रप्रिय और लुटेरे हैं ऐसा ही हम उनके बारे में सुनते आये थे; लेकिन वे दरअसल अत्यन्त स्वातंत्र्यप्रिय हैं। अपने मुल्क पर पठानों के अलावा वह अन्य किसी का प्रभुत्व नहीं होने देंगे। खुद की पुश्तू भाषा पर उनका नितांत प्रेम है। उसका वाङ्मय सुंदर है और वह रसमय है। उसके ये गुणविशेष हमें मालूम नहीं थे।

पठानों के कुछ स्वभावदोष भी उतने ही बड़े हैं, उनमें अनेक जातियाँ और जमातें हैं, इन जमातों का आपसी वैमनस्य पीढ़ियों से चलता आता है। बदला लिये बगैर पितृऋण से मुक्ति नहीं मिलती, यह विचार उसके दिमाग में जिंदगी भर चलता रहता है। इसलिये इन जमातों में हमेशा झगड़ा फिसाद चालू रहता है। इन टोलियों में हमेशा आपस में लड़ाइयां भी हुआ करती हैं। ये आपसी झगड़ों के कारण सदा से दुखी रहे हैं।

खुद की ताकत के बल पर सफल न होनेवाले अंग्रेजों ने इनके आपसी वैमनस्य का लाभ उठाकर इन्हें अधूरी गुलामी में ठूँस दिया है। इनकी आपसी फूट ही पीढ़ियों से इनके विनाश और दरिद्रता का कारण है।

शस्त्रनिष्ठ और हिंसक कृत्यों में निष्णात पठानों को अहिंसाव्रत का अनुयायी बनाना एक चमत्कार था। सीना तानकर बंदूक की गोलियाँ झेलने के लिये होड़ लगाने वाले हजारों अहिंसानिष्ठ सैनिकों का इनमें निर्माण हुआ। फूटी हुई कांच के टुकड़ों जैसे एक दूसरे से अलग निकलने वाले लोगों की इन जमातों को एक झंडे के नीचे, एक ध्येय के लिये—अन्याय का सामना करने के लिये—बादशाह खान ने संगठित किया। जिस भारत भूमि को वे दार उल अरब यानी जिस राष्ट्र में मुसलमान रह नहीं सकते, ऐसा पराया राष्ट्र) मानते थे, उसी भारत भूमि की आजादी के आंदोलन में इन्हें अग्रदूत बनाया गया। सैकड़ों पठानों ने भारत की आजादी के लिये बलिदान दिये। हजारों लोगों ने कारावास सहन किया, हजारों स्त्री पुरुषों ने निरंतर

अत्याचार सहे। इन पठानों के वीरोचित निःशस्त्र प्रतिकार का तेज देखकर गढ़वाल पल्टन की टुकड़ी ने अपने शस्त्र नीचे रख दिये और पूरी साम्राज्य सत्ता को धक्का दिया। इन पठानों की ऐसी नवजागृति के और उनकी अहिंसानिष्ठा के बादशाह खान जनक हैं। भारतीय मुक्ति आंदोलन में उनकी यह सेना अमर है।

पठानों में सिख, हिंदू आदि अल्पसंख्यकों के संबंध में पड़ोसी धर्म की अनुभूति का निर्माण हुआ, वह भी ऐसी ही असामान्य बात है। इस देश के नेताओं ने भली भाँति पहचान लिया है कि भिन्नधर्मीय और भिन्न जाति की जमातों में हार्दिक सहकार्य और स्नेहभाव रहे, यही लोकतंत्र का आधार है। कांग्रेस के जन्म से इस एकता की भावना पर राष्ट्रीय नेताओं ने जोर दिया है। १८८७ की तीसरी राष्ट्रीय सभा की बैठक से राज्यकर्ताओं ने इस राष्ट्रीय ऐक्य में रोड़े अटकाने का भरसक प्रयत्न शुरू किया। उस समय राष्ट्रीय सभा के सर्वधर्मीय नेताओं ने, ह्यूम (अंग्रेज), बॅनर्जी (बंगाली ईसाई), तय्यबजी (मुसलमान), दादाभाई (पारसी) आदि ने उसको असफल बनाने की चेष्टा शुरू की। किसी राष्ट्रीय एकता की नींव डालने की दृष्टि से लोकमान्य तिलक और बॅ० जिना ने १९१६ में लखनऊ करार करवाया। 'हिंदू और मुसलमान ये भारत की दो आँखें हैं, एक आँख ने काम नहीं किया तो अधूरा अंधत्व ही सिद्ध होगा।' इकबाल कवि की इस काव्यपंक्ति का उल्लेख करते हुए गांधी जी ने अपने राजकीय प्रचार का आरंभ किया (१९१६)। देश में जब स्वातंत्र्य का जन्म हुआ, तब इसी राष्ट्रीय एकता के टुकड़े टुकड़े होते गांधी जी को देखना पड़ा। 'मेरे जीवित कार्य का अंत इस तरह से हो रहा है, अब अधिक दिन जिंदा रहने की इच्छा नहीं रही है' ये उद्गार उन्हें निकालने पड़े।

बादशाह खान ने जातीय ऐक्य अपने मुल्क में मूर्तित किया था। मुसलमानों की बहुसंख्यक आबादीवाले इलाकों में और मुख्यतः पंजाब की सीमा पर आगजनी और हत्या शुरू हुई, तब ९० फी सदी पठानों की आबादी वाले वायव्य सीमा प्रदेश में हिंदू सिख माँ बहनें खुदाई खिदमतगार भाइयों की छत्रछाया में सुरक्षित रह सकीं, आबाद हो सकीं। यह असाधारण सफलता सिर्फ बादशाह खान को ही नसीब हो सकी। यही उनका चमत्कार था कि शक्तिशाली अंग्रेजों के शस्त्रों के सामने जो पठान नत हुआ करते थे, उन्हीं निःशस्त्र पठानों के सामने अंग्रेजी शस्त्र निष्प्रभ हुए

यह संसार के विचारकों को स्तंभित करनेवाला प्रश्न है। खुद बादशाह खान अहिंसा की ओर कैसे आकर्षित हुए और उन्होंने हजारों पठानों को अहिंसानिष्ठ कैसे बनाया ?

इस लोकजागृति का महान साधन, बादशाह खान का खुदाई खिदमतगार संघटन था। उनका खुद का संत जैसा चरित्र उनकी ताकत थी, इस्लाम धर्म पर उनकी नितांत और विवेकपूर्ण निष्ठा थी, जो उनके जीवन का आधार है। दीन दुखियों को समान समझकर उनकी निरपेक्ष बुद्धि से सेवा करना खुदा की सेवा है, यही इस्लाम धर्म की आज्ञा है, यही उनकी दृष्टि है और यही उनकी सफलता की नींव भी है।

ऐसा महान् श्रद्धा और कर्तव्यपरायण मुस्लिम नेता और लाखों की तादात में उसके खुदाई खिदमतगार स्वयंसेवकों को नष्ट करने का दुष्ट कार्य अंग्रेज सत्ताधीशों ने १७ साल तक निरंतर किया और यही दुष्ट कर्म इस्लाम की सुरक्षा के लिये उत्पन्न हुए पाकिस्तान में १७ साल से अनवरत चलता रहा, इससे अधिक दैवदुर्विलास का चित्र कौन सा हो सकेगा ? विधर्मी अंग्रेज सत्ताधीशों की अपेक्षा स्वधर्म के सत्तालोलुप और स्वार्थी मुसलमानों का उनपर ज्यादा जुल्म करना और उसे उनके सारे धर्मबांधवों का खुली आँखों से देखना, इसकी अपेक्षा और लज्जास्पद दृश्य दूसरा कौन सा हो सकेगा ?

लेकिन स्वबांधव और स्वधर्मियों द्वारा किये हुए इन अत्याचारों का सामना वही बादशाह खान और उनके सैनिकों ने गत १७ साल से किया। 'पाकिस्तान की ही भलाई के लिये, पाकिस्तान के ही संरक्षण में पठानों को स्वेच्छा से और इज्जत से जीने दो' ऐसा बादशाह खान ने पाकिस्तानी पार्लमेंट में अपने पहले ही वक्तव्य में कहा था। पाकिस्तान का शासन पहले के ब्रिटिश शासन की तुलना में अधिक अन्यायपूर्ण और खर्चीला है, ऐसा उन्होंने जता दिया। पूरे पाकिस्तान में अपने खुदाई खिदमतगार संघटन का विस्तार करने के बारे में बादशाह खान द्वारा मंतव्य व्यक्त करते ही खानबंधुओं और दस हजार से ऊपर कार्यकर्ताओं को जेलों में ठूंस दिया गया। १९४८ से १९६५ तक के सत्रह सालों में करीब पंद्रह साल तक उन्हें केवल जेल में बंद करके ही नहीं रखा गया, अपितु उन्हें तरह तरह के शारीरिक और मानसिक जुल्म और तकलीफों में तड़पाते हुए रखा गया। आश्चर्य की और खेद की बात तो यह है कि जिन्होंने १९४५ तक खानबंधुओं की भूरि भूरि प्रशंसा की, 'इस्लाम खतरे में है' इस तरह की घोषणा करनेवाले कौमी नेताओं से सावधान रहने के लिये

जिन्होंने अपने बांधवों को संकेत दिया, उस कय्युमखान ने ही आजाद वायव्य सीमाप्रांत का पहला मुख्यमंत्री बनकर खानबंधुओं का शिकार करना प्रारंभ किया। सत्ता का जादू और मादकता इतनी प्रतारणा कर सकती है।

अब बादशाह खान के ७८ साल पूरे हुए हैं। अपनी जिंदगी के एक तिहाई याने करीब पचीस साल उन्होंने जेल में गुजारे हैं। इनमें से १२-१३ साल अंग्रेजों के कारागार में तो करीब १६ साल पाकिस्तानी जेल में उनको अपमान और उपमर्द सहन करते हुए काटने पड़े।

इतनी यातनाओं के बावजूद, जिंदगी भर जिस निष्ठा का उन्होंने परिचय दिया, वह यत्किञ्चित् भी कम नहीं हुई या जिन्होंने उनपर अत्याचार किये, उनके बारे में द्वेष या कटुता उनके दिल में कायम नहीं रही। अपने अनपढ़ फिर भी आजादप्रिय अंधश्रद्ध और गरीब पठानों को आजादी और सुख दिलाने के लिये वे आज भी तत्पर हैं। उनकी अहिंसा के प्रति श्रद्धा आज भी उतनी ही निश्चल है। 'अन्याय का प्रतिकार करने के लिये हमेशा सतर्क रहने से आजादी टिक सकती है' यह शासनतंत्रज्ञों का सिद्धांत बादशाह खान अपने जीवन से सिद्ध कर रहे हैं। उनके जैसे मानवता के पुजारी को इतनी यातनाओं में अपना जीवन बसर करना पड़े, यह दुनिया के विचारकों के लिये खेदजनक है। उनका चरित्र एवम् चारित्र्य भारतीय मुक्ति आंदोलन के इतिहास का स्फूर्तिदायक अंश तो है ही, वह इस्लाम की महान परंपरा का अनूठा दर्शन करानेवाला भी है।



: २ :

जीवनप्रवाह

बादशाह खान, पक्के अफगान, सरहदी गांधी आदि उपाधियों से भारत के लिये सुपरिचित अब्दुलगफार खान की जन्मतिथि उन्हें खुद मालूम नहीं है। ऐसा उनके प्रथम चरित्रकार महादेव भाई देसाई ने कहा है[1]। 'मैं जेठ महीने में पैदा हुआ, इतना ही मुझे मालूम है' ऐसा उत्तर खान साहब ने महादेव भाई को दिया था। 'जेठ महीना ?' ऐसा महादेव भाई ने अचरज से पूछा लेकिन इस उत्तर के साथ ही महादेव भाई की आँखों के सामने पठानों की वायव्य सीमा का भारतीय स्वरूप खड़ा हुआ होगा। चार हजार साल पहले वायव्य सीमा प्रदेश भारतीय संस्कृति का केंद्र था। कनिष्क का स्तूप खान साहब के जन्मस्थान से २०-२५ मील दूरी पर होगा। बुद्धकालीन मूर्तियों के भग्नावशेष के खिलौनों के साथ खान साहब बचपन में खेले होंगे। इस सीमाप्रांत में और उसके उत्तर में सैकड़ों मील के प्रदेश में बुद्ध संस्कृति के अवशेष काफी परिमाण में उपलब्ध हुए हैं। वेदों के जन्मस्थान, बौद्धों के धर्मकेंद्र और कनिष्क तथा गुप्तों के सत्ताक्षेत्र सदृश स्थान पर खानसाहब के पूर्वजों का जन्म हुआ और पालन पोषण हुआ।

गफ्फार खान का जन्म १८९० में हुआ। १८९० का जेठ महीना, १९ मई से १७ जून के दरमियान आता है। अभी अभी बादशाह खान द्वारा दी हुई जानकारी में दिसंबर जनवरी का महीना बताया गया, महादेव भाई को दी हुई जानकारी ३५ साल पहले उन्होंने खुद ही दी थी, तो १९४२ में प्रसिद्ध हुए उनके चरित्र में (फ्रांटिअर स्पीक्स्, ले० महंमद यूनुस) जन्ममास जनवरी दिया है। इस चरित्र की प्रस्तावना खुद बादशाह खान ने लिखी है। प्रस्तुत लेखक से हुई चर्चा में उन्होंने दिसंबर जनवरी का समय ही बताया है। इसलिये १८९० के दिसंबर या १८९१ के जनवरी के दरमियान उनका जन्मकाल मानना होगा।

---

१. (टु दि सर्वेंटस् ऑफ् गॉड्—लेखक महादेव भाई हरिभाई देसाई। गांधी जी के सुविख्यात मंत्री, यंग इंडिया के संपादक—जन्म १ जनवरी, १८९२, मृत्यु १६ अगस्त, १९४२, मराठी रूपांतर प्रेमा कंटक)

यागिस्तान के दीर बाजौर नामक स्वतंत्र विभाग में मोहंमद[1] नाम की एक जमात है और गफ्फार खान का घराना उधर से पेशावर इलाके में आया है। १८४८ में सिख राज्य का पंजाब प्रांत बनाया गया, लेकिन यह सीमा प्रदेश सैनिक शासन में रखने की दृष्टि से १९०१ से कमिश्नर के मातहत अलग प्रांत बनाया गया।

पेशावर के नजदीक के उतमंजई देहात का यह खान घराना है। इन खानों की जमींदारी है। आज भी खान साहब के पुत्र उसमें कुछ खेती करते हैं।

ऐसा दीखता है कि सब पठान लड़ाकू परंपरा के होते हैं। तत्व के लिये झगड़ने की परंपरा इस घराने को प्राप्त होती आई। बादशाह खान के परदादा ओबेदुल्ला खान भी सत्वशील और लड़ाकू स्वभाव के थे। दुर्रानी के हमले के विरुद्ध याने पठानी टोलियों की आजादी के लिये वे लड़े और उसमें फाँसी पर चढ़ाये गये। उनकी जमात के वे नेता थे। जैसे वे बलशाली थे, वैसे ही समझदार और चतुर भी थे। उनके परदादा के दादा सैफुल्ला खान भी लड़ाकू थे। उन्होंने सारी जिंदगी अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने में बिताई। वायव्य सीमा के उस पार पाकिस्तान के प्रदेश में राज्य विस्तार करने का ब्रिटिशों ने कई मर्तबा प्रयत्न किया। १८५७ के बाद भी इसके लिये कुछ प्रयत्न हुए। इस संबंध में ब्रिटिशों की नीति हमेशा बदलती रही। सैफुल्ला खान के जमाने में बुनेर हिस्से पर कब्जा करने का अंग्रेजों ने प्रयास किया। १८५७ के बाद अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ा। इसलिये बहुत से खान अंग्रेजों की सहायता करने के लिये तैयार हुए। उसके बदले में उन्हें बड़ी बड़ी जमींदारियाँ और जागीरें मिलीं. लेकिन सैफुल्ला खान ने बुनेर की रक्षा के लिये अंग्रेजों से मुकाबला किया। जहाँ जहाँ पठानों पर अंग्रेजों ने हमला किया वहाँ वहाँ सैफुल्लाखान पठानों की मदद करने के लिये जाते थे। ऐसा दीखता है कि आजादी की रक्षा का और अंग्रेजों का विरोध करने का उत्तराधिकार दादा की ओर से गफार खान को मिला है।

---

१. 'मोहंमद' जमात ऋग्वेद का मधुमंत वंश ही है। 'मधुमंत याने काबुल नदी के उत्तर में रहनेवाले मोहमंद, यह स्पष्ट है।' (अफगानिस्तान गजेटियर) 'मधुमंत' लोकवाचक नाम का महाभारत में (भीष्मपर्वः १०-५३) उल्लेख है। पाणिनि ने देशवाचक गांधार विभाग का एक प्रदेश (४=१३३) ऐसा उल्लेख किया है (इंडिया ऐज़ नोन टु पाणिनि, पृष्ठ ४५५)।

उनके पिता जी वैरामखान का स्वभाव इससे भिन्न था। वे वृत्ति से ही शांत, गंभीर और निरंतर ईश्वर के चिंतन में मगन रहते थे। वे विशेष धर्मनिष्ठ थे, फिर भी उन्हें आधुनिक दुनिया की कल्पना नहीं थी। शिक्षा का महत्व उन्होंने समझा था, इसलिये मुल्ला मौलवियों के दबाव की फिक्र न करते हुए उन्होंने अपने लड़के को शिक्षा के लिये पादरी की अंग्रेजी पाठशाला में दाखिल किया। खुद सदाचारी थे, इसलिये गाँव के अगुवा थे। उनपर लोगों का पूरा भरोसा रहता था। अपनी धनदौलत गरीब लोग उनके पास निर्भय छोड़ जाते थे। किसी को कभी रसीद देनी नहीं पड़ती थी। सबको उनका आश्रय मिलता था, वे लोगों को आधारभूत और आश्रयस्थान लगते थे।

पिता जी की धर्मनिष्ठा और सेवाभाव बादशाह खान को मिला, लेकिन उनपर उनकी माँ के सही अर्थ में संस्कार पड़े। माँ द्वारा निर्मल और उत्कट प्रेम की ही शिक्षा उन्हें मिली। सब दीन दुखियों पर समान रूप से प्रेम करना उस साध्वी का धर्म था। पुराने ढंग से धनवानों के डेरे के आसपास दीन दुखी मंडराया करते हैं, उनकी माँ उन्हें बुलाकर रोजाना साग रोटी दिया करती थी।

उनके पिता जी खुद ही इन गरीबों को परोसा करते थे। समाज के प्रति उनकी यह हमदर्दी ही उनकी सही बपौती है। 'धार्मिक प्रवृत्ति का उत्तराधिकार माँ की तरफ से और अहिंसा के संबंध में आकर्षण पिता जी की तरफ से मिला', ऐसा गफार खान खुद कहते हैं। माँ बाप का ईश्वरचिंतन, उपवास, रोजे और गरीबों को अन्नदान से यह कार्यक्रम कभी भी खंडित नहीं हुआ। स्वाभाविक ही उनके बारे में गाँववालों को आदर रहता था। इतना ही नहीं, बाहर से आनेवाले बड़े बड़े अंग्रेज अधिकारी भी वैरामखान को 'ओल्ड अंकल', 'बड़े चाचा' कहकर आदर से पुकारते थे। ऐसे धर्मनिष्ठ सेवापरायण और प्रतिष्ठित खानदान में गफार खान का जन्म हुआ।

यह संभव नहीं दीखता कि गफार खान के बचपन का वर्णन या जानकारी कोई अब दे सकेगा। उनके सब चरित्र सीख देनेवाले और तत्वप्रचार के लिये लिखे गये हैं। उनमें चरित्र के संबंध में बहुत ही थोड़ा हिस्सा है। उन्होंने खुद कारागार में आत्मचरित्र लिखा है। वह जब कभी प्रकाशित होगा तो उसमें चरित्र से संबंधित हिस्सा क्वचित् ही होगा। आज भी इस दृष्टि से उन्हें पूछा जाय तो भी बहुत थोड़ी जानकारी उसमें से मिल सकेगी। खुद वे

संबंध में कुछ कहने को वे टालते हैं। 'मुझे शिक्षा में कभी भी रुचि नहीं थी और कुछ समझ में भी नहीं आता था'। इतना ही कहते हुए वे प्रसन्न हुए थे। लेकिन यह उतना सच नहीं है। क्योंकि गणित (भूमिति) उनका विषय था और उसमें उन्हें अच्छे अंक मिला करते थे।

उनका बचपन याने करीब दस वर्ष की अवधि उतमंजई में व्यतीत हुई। घर का गोधन, खेतीबाड़ी, दरवाजे के पास हमेशा जीन कसी हुई घोड़ी ऐसा उनके खानदान का वर्णन किया जा सकता है। फिर भी गफार खान बचपन में स्वभाव से गरीब और मितभाषी थे, ऐसा दिखायी देता है। 'मैं बहुत शरारती था, लेकिन पिता जी मुझे गुस्से में कुछ सुनाते नहीं थे। कुछ सजा भुगतनी पड़ी हो ऐसा नहीं है। वे एक मर्तबा कहते थे—'माँ से बहुत लगाव था। घर के नौकर गोद में उठाकर या चलने लगे तो उँगली पकड़ कर गाँव में कहीं भी घुमाते रहते'। ऐसा क्रम चलता था। लेकिन इस बाल्यावस्था से निकलते ही उन्हें घोड़े की सवारी और तैरने का काफी शौक लगा। उनके गाँव से सटकर स्वाती नदी बहती है। जैसे उतमंजई गाँव का दर्शन करने के लिये ही यह स्वाती (सुवास्तु) नदी इस गाँव की ओर मुड़ी हो। लेकिन श्रीमान होने की वजह से उनपर कुछ बंधन भी थे। गाँव के पास प्रसन्न प्रवाह के घाट होते हुए भी खान को उस तरफ जाने की मुमानियत थी। गरीबों को ऐसी दिक्कतें नहीं रहती हैं। घर में पीने का पानी संग्रह करने के लिये बर्तन न होने के कारण जहाँ पानी हो, वहाँ गाय बैलों की तरह उनके बच्चों को भी दौड़ना पड़ता है। पानी पीते पीते बच्चे उन्मुक्त होकर खेल कूद सकते हैं। कभी कभी गफार छिपकर ऐसे लड़कों की संगत में नदी के तरफ जाया करते थे। गहरे पानी में उतरने के लिये तैरने की कला से परिचित न होने के कारण वे एक बार मरते मरते बचे। लेकिन उस छोटी सी घटना के कारण वे स्वाती नदी पर नाराज हुए होंगे, ऐसा लगता है। वह नाराजी अभी तक कायम है, क्योंकि स्वाती की अपेक्षा गौरी (पंजकोर) नदी ही उनकी दृष्टि में अच्छी है, ऐसा पक्षपातपूर्ण वर्णन वे करते हैं। गौरी का पानी स्वाती से अधिक पाच्य और रोचक है, वे आज भी इस तरह से स्वाती के प्रति तिरस्कार की भावना व्यक्त करते हैं। बचपन में स्वाती ने इनको दो चार मर्तबा धोखा दिया था। इस पक्षपात के पीछे इसके संबंध में उनका गुस्सा नहीं होगा, ऐसी बात नहीं। 'उतमंजई की स्वाती में गौरी

का संगम हुआ है' मेरे यह कहते ही, उन्होंने कहा 'स्वाती की वजह से गौरी के गुण नष्ट हुये, संगम के पहले गौरी का पानी बहुत मीठा है'।

गाँव के इर्दगिर्द के जलाशयों में गफार खूब तैरे हैं। बाद में वे निष्णात तैराक हुए और डूबनेवालों को बचाने के लिये उद्धत स्वभाव के कारण वे खुद मौत के घाट में निश्चित उतरने वाले थे। जिसे बचाने के लिये गये थे, वह इन्हीं के गले में इस तरह के लिपटा कि वें दोनों सिंध नदी को मिलने के प्रवास पर निकले थे, लेकिन लोगों ने समय के पहले पानी में छलांग लगाकर उन्हें किनारे पर लगाया। तैरने के अनुसार घोड़े की सवारी में भी वें प्रवीण हुए। देहातों में रहनेवाले श्रीमानों के लड़कों को यह लाभ स्वतः ही मिलता था।

गफार खान को श्रीमान के पुत्र होते हुये भी गांव के गरीब लड़कों के साथ उठने बैठने या खेलने में कठिनाई नहीं रहती थी। लड़के लड़कियाँ एक जगह खेला करती थीं और मैं भी उसमें शरीक हुआ करता था, ऐसा भी उन्होंने कहा। १०—११ की उमर का, पूरी ऊँचाई का, चिट्टा गोरा, सुहावना, फिर भी बचपन से ही चेहरे के सौजन्य एवं सात्विकता के आभूषणों से विभूषित यह खान उस वक्त सारे लड़कों में कैसा दीखता होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है।

गफार खान की दस साल की उमर स्वाती के किनारे खुद की खेतीवारी पर और माँ की गोद में खेलते खेलते व्यतीत हुई। इस अवधि में उनपर जो संस्कार हुए, वें सही माने में संस्कार हैं। माँ बाप से पाये हुए अशब्द संस्कार ही उनकी शिक्षा थी। अन्यथा वहाँ कुछ खास शिक्षा उन्हें नहीं मिली। पुरानी परंपरा की शिक्षा मौलवी के जरिये मसजिद में या दर्जे में मिला करती थी, लेकिन इस धर्मशिक्षा की ओर पठानों का स्वाभाविक आकर्षण कम ही था। प्रारंभ के ५० साल वायव्य सीमाप्रांत पंजाब में बीता। पठानों के बारे में अंग्रेजों और पंजाबियों को सहानुभूति नहीं थी। इसलिये उनकी शिक्षा आदि की परवाह किसी ने नहीं की। पुश्तू भाषा के संबंध में किसी को आस्था नहीं थी। जिन मुल्ला मौलवियों के हाथ में शिक्षा की जिम्मेदारी थी, उन्हें नव-शिक्षा के बारे में :

सवकदे मद्रसेवाई
परांदे वैसेवाई
जन्नत के वे यजाय। नई दोजख के वाई घसेवाही।

(जो पाठशाला में पढ़ने के लिये जाते हैं, वे पैसे के लिये। पाटशाला में जाने वालों के लिये स्वर्ग में स्थान नहीं और नरक में भी उनके लिये कठिन जीवन ही नसीब होता है।)

मुल्लाओं की इस प्रकार की कट्टर अंधवृत्ति होते हुए भी खान के पिता जी नव शिक्षा का महत्व जानते थे। वे मुल्लाओं के अंधेपन की परवाह नहीं करते थे, लेकिन गांव में अन्य कुछ व्यवस्था न होने के कारण गफार को पुराने ढांचे में कुछ समय तक मजबूरी से रखना पड़ा। वे मुल्ला के पास मसजिद में कुरान पढ़ते थे। पुरानी वैदिक परंपरा के अनुसार वेदपठन जैसी कुरान की आयतें याद करवायी जाती थीं। अरबी लिपि या भाषा किसी को परिचित नहीं थी, इसलिये रटने के अलावा शिक्षा के लिये दूसरा चारा ही नहीं था।

गफार की कुरान पढ़ने की शुरूआत बहुत जल्द याने उमर के पांचवें छठे साल में हुई। उनको सिखाने के लिये आनेवाले मुल्ला को खुद कुरान ठीक तरह से याद नहीं था। उल्टे घर के संस्कारों के कारण गफार को अधिक याद था। इसलिये गुरु शिष्यों में झगड़े के प्रसंग आया करते थे और अनाड़ी गुरु मिला तो शिष्य की और डंडे की जान पहचान होने की नौबत आती है। कुछ वैसा ही हुआ। मारपीट करने के अलावा उस गुरु के लिये अन्य कुछ करना संभव नहीं था, इसलिये गफार खान ने खुद ही स्वतंत्रता से कुरान का अभ्यास पूरा किया। उस समय माता पिता को कितना आनंद हुआ, यह कहते समय गफार खान का चेहरा खिल उठा था। कुरान की अध्ययनसमाप्ति पर गांव में सबको मिठाई बांटी गयी। उस मिठाई के साथ साथ उसको कुरान पढ़ाने का श्रेय, कुरान न आनेवाले मुल्ला ने ही लिया होगा, यह तो मानी हुई बात है।

स्वाभाविक तौर पर पठानों का झुकाव व्यावहारिक शिक्षा की ओर रहता है। वे बहुत व्यवहारी होते हैं, लेकिन उन पर अंधश्रद्धा की शिक्षा लादी जाती है। परिणामस्वरूप पठानों ने ऐसी धर्मशिक्षा अपने आप कभी भी स्वीकारी नहीं और अन्य नवशिक्षा उन्हें प्राप्त नहीं हुई। इसलिये इस तेजस्वी जमात का काफी नुकसान हुआ। उनकी आपसी फूट को इन धर्मगुरुओं ने बढ़ाया। कर्तृत्व के लिये मौका न मिलने के कारण आपस में खून-खच्चर करने के अलावा कोई काम नहीं था। मुल्लाओं का विरोध और राज्यकर्ताओं की सहेतुक उदासीनता, इसी तरह विशिष्ट जातियाँ ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। इस तरह की पड़ोस के हिंदुओं की परंपरा के कारण

पठान शिक्षा से वंचित रहे होंगे, ऐसे उद्गार गफार खान ने निकाले। इस्लाम के आने के पहले पठान बुद्ध या उसके पहले आर्य थे। इस पूर्वपरंपरा ने विशिष्ट जमात के पास सीखने की मक्तेदारी थी। उन्होंने कहा कि उस परंपरा से भी पठान पछाड़े गये होंगे।

मुल्ला मौलवियों की अनाड़ी पठानों पर कितनी जबर्दस्त पकड़ है, इसका अनुभव आज भी यागिस्तान की जमातों को है। जमात जमात में ये मुल्ला झगड़े पैदा करते हैं। अफगानिस्तान की अनेक राज्यक्रांतियों और राज्यकर्ताओं का खून इन धर्मगुरुओं की प्रेरणा से हुआ है। अमानुल्ला जैसे पराक्रमी और पुरोगामी अमीर का कांटा निकालने के लिये अंग्रेजों ने इसी धर्मशक्ति का प्रयोग किया। ऐसी धर्मसत्ता की पकड़ से छुटकारा पाना बहुत कठिन है। लेकिन धर्मनिष्ठ और सदाचारसंपन्न लोग खुद ऐसे परंपरागत धर्ममार्तण्डों को ताक पर रख सकते हैं। बैरामखान ने वैसा ही किया। उनके खिलाफ मुल्लाओं ने हलचल की, लेकिन उनका प्रत्यक्ष विरोध करने की ताकत जिन्हें कुरान का ही परिचय नहीं, ऐसे लोगों में कैसे हो सकती है? बैरामखान के बड़े पुत्र पेशावर के मिशन स्कूल में पहले ही दाखिल हुए थे। हस्तनगर[1] विभाग से शहरी शिक्षा के लिये बाहर जानेवाले 'खान' प्रथम शिक्षार्थी थे। पेशावर के इस मिशन स्कूल के कॅनान विग्रॅम नामक धर्मोपदेशक मुखयाध्यापक थे। उनके चरित्र की खयाति बैरामखान ने अपने बड़े लड़के के मुँह से सुनी थी। इसलिये छोटे लड़के को भी पेशावर भेजा गया। १९०१-२ के करीब गफार पेशावर गये। उनके कथनानुसार आठ वर्ष के ही थे, तभी पेशावर गये।

खुद बादशाह खान मानते हैं कि मेरा चरित्र काफी मात्रा में फादर विग्रम के महान संस्कारों का ऋण है। मिशनरियों के शिक्षा प्रसार का और सेवाभाव का ऋण उनके हर लफ्ज में अभी भी व्यक्त होता है। बड़ी कृतज्ञता से वे कहते हैं कि शिक्षा कार्य की ओर और समाज सेवा की ओर मुड़ने की इच्छा आचार्य विग्रम की वजह से हुई। कई प्रकाशित व्याख्यानों में ईसाई गुरु के इस ऋण के बारे में उन्होंने कहा है।

---

१. हस्तनगर यह अष्टनगर शब्द का अपभ्रंश है। उतमंजई, उमरजई, परांग, बाबरा, चारसद्दा आदि पुराणकालीन ये आठ स्थान अष्टनगर होंगे। इनमें से चारसद्दा नगर पुष्कलावती नाम से पाणिनि के जमाने में राजधानी था।

ऐसा भी वे कहते हैं कि इस्लामी धर्मशिक्षा में इस तरह की सेवा की शिक्षा कभी नहीं मिली या उसमें से कभी समाजसेवक भी उत्पन्न नहीं हुए हैं। पेशावर के एडवर्डस् कॉलेज के प्रांगण में एक छोटा सा बंगला खान बंधुओं के लिये दिया गया। वहाँ बड़े भाई खान साहब रहते थे। गफार वहाँ गये तो साथ में कुछ नौकर चाकर ले गये। उनकी खास मर्जी का नौकर बरानी चाचा उनके साथ था। इन दोनों को एक दूसरे के बिना अच्छा नहीं लगता था। बरानी चाचा को अपने छोटे खान पर नितांत प्रेम था। ऐसे सपने बरानी चाचा गफार के बचपन से ही देखते थे कि 'अपने छोटे खान कोई बड़े पुरुष हैं, वे बड़े अमलदार होंगे, फौजी पोशाक पहनने पर वे कैसे दीखेंगे, किस रोब से चलेंगे, उनका मिजाज बढ़ेगा'। पेशावर जैसे पराये शहर में बड़े भाई थे, फिर भी बरानी चाचा का लगाव गफार को अधिक था और बरानी चाचा सारी देखभाल भी माँ की ममता के समान ही करते थे।

पेशावर में उनकी शिक्षा की शुरूआत म्युनिसिपल बोर्ड स्कूल में हुई। वहाँ की शिक्षा पूरी होते ही उन्हें मिशन हाई स्कूल में प्रवेश मिला। उनकी शिक्षा कहीं भी हुई हो, उन पर विग्रम साहब की ही मुख्य निगरानी थी।

कुछ लेखकों ने लिख रखा है कि पेशावर के शिक्षा काल में वे सामुदायिक खेल में विशेष रस नहीं लेते थे। गफार के स्वभाव में स्वभावतः जो मर्यादा या मितभाषित्व है, वह इसी अवधि में उनमें आयी होगी। माँ बाप के प्यार से बिछुड़कर दूर भेजे गये कोमल भावनावाले बच्चे कभी कभी हमेशा के लिये कुम्हलाए से रहते हैं। गफार खान कोमल मन और मितभाषी वृत्ति के हैं। १६–१७ वर्ष की आयु में उनके बड़े भाई खान साहब आगे की शिक्षा के लिये बंबई गये, उसके बाद उनका अकेलापन और भी बढ़ा।

१६–१७ साल की उमर में गफार खान ने वरिष्ठ सैनिक शिक्षा में प्रवेश लेने के लिये प्रयत्न किया। बरानी चाचा जैसे उनके घर के नौकरों ने उनके मन में इसका आकर्षण पैदा किया था। फौज में भरती हुए छोटे बड़े अधिकारी लोगों की शानदार लिबास और कवायद देखी। आखिर में कमीशन के लिये अर्जी भी दी। उनकी खानदानी परंपरा के कारण उन्हें प्रवेश मिलना सुलभ भी हुआ, वरिष्ठों ने उनको चुना, लेकिन भाग्य में कुछ और ही था। अपनी ही जमात पर गोली चलाने में निष्णात होने के बजाय गोली चलानेवालों के सामने सीना तान कर खड़े रहने की हिम्मत देनेवाले

अहिंसा युद्ध के सेनानी बनने का लेखा उनके ललाट पर लिखा हुआ था। पेशावर में फौज में नौकरी करनेवाले किसी एक मित्र से मिलने के लिये वे गये थे, तब अपने मित्र के मातहत काम करनेवाले गोरे अधिकारी द्वारा अपने मित्र की भर्त्सना होते गफार ने देखी थी। उस गोरे नौकर के उद्दंड बर्ताव को देख कर उन्होंने निश्चय किया कि फौज की यह नौकरी, याने स्वमान को आंच पहुँचाने वाली ऐसी नौकरी नहीं करूँगा।

गफार खान मैट्रिक का अभ्यास करते थे, तभी पेशावर छोड़कर सीधे कँवेलपुर जाने का उन्होंने निश्चय किया। कँबेलपुर की आबोहवा अधिक शांत और अध्ययन के लिये उपादेय समझ कर वे वहाँ गये थे। मैट्रिक का इम्तहान उन्हें देना था। इसी समय शालेय विषयों के अलावा अरबी भाषा आदि के अध्ययन की ओर उनका ध्यान गया, लेकिन कँवेलपुर में भी वे ऊब गये। वहाँ उन्हें गरमी से तकलीफ हुई और वे बीमार पड़े। उनकी शारीरिक के साथ साथ वैचारिक ताकत भी इसी अवधि में तेजी से बढ़ी। मुख्यतः भाई के जाने के बाद उनका मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ा। यह उनके मानसिक और वैचारिक अस्वास्थ्य का समय था।

अरबी के अध्ययन के लिये कादिन के मौलवी नूरुद्दीन साहब का उस समय काफी बोलबाला था। इसलिये गफार ने अपने प्रांत के बाहर कादिन जाने का तय किया। एक मित्र को साथ लेकर वे कादिन पहुँचे, लेकिन वहाँ भी उनके मानसिक अस्वास्थ्य ने रोड़ा अटकाया। ऐसा लगता है कि उन्हें कुछ आंतरिक मार्गदर्शन भी होता रहा। कादिन पहुँचने पर और वहाँ की पाठशाला में अनुमति आदि मिलने के पहले एक रात उन्होंने एक स्वप्न देखा। 'चलते चलते एक बावडी के किनारे के पास मैं आ पहुँचा हूँ और बावडी में गिरने वाला ही था, इतने में एक बूढ़े शख्स ने उन्हें रोक कर धोखे का संकेत किया'। नींद खुलते ही उन्होंने उस स्वप्न का अर्थ लगाया और तुरंत वे कादिन से निकले। मौलवी नूरुद्दीन का शिष्यत्व या उनके पास अरबी भाषा का अध्ययन उनके नसीब में नहीं लिखा था। अरबी की आगामी शिक्षा की पाठशाला कारागृह ही थी।

कँवेलपुर, कादिन से वे क्यों और किस उद्देश्य से निकले, यह गुत्थी ठीक से सुलझती नहीं है। पर यह साफ बात है कि उन्हें जो शिक्षा मिलती थी उससे वे संतुष्ट नहीं थे। उनका स्वमान जाग्रत हुआ था, इसलिए मिलने वाली आकर्षक नौकरी उन्होंने ठुकरा दी थी, इससे स्पष्ट होता है कि इस

समय उनकी आयु १७-१८ साल की रही होगी। राजकीय विचारों की हवा उन्हें लग रही थी। ऐसी स्थिति में वे अलीगढ़ आये। उस समय अलीगढ़ का छात्रालय भरा हुआ था। इसलिये गांव के होटल में रहना पड़ा। वहीं अध्ययन की अपेक्षा अखबार पढ़ने का शौक लगा। मौलाना जफरअली खान के 'जमींदार' अखबार का प्रभाव उस समय के मुसलमान विद्यार्थियों पर काफी मात्रा में पड़ा था। १९०० से १९०८ के जमाने में महाराष्ट्र में 'केसरी, काल, माला, राष्ट्रमत, हिंदू पंच' आदि अखबारों ने लोकजागृति का जो काम किया, वही काम उत्तर की ओर मुस्लिम समाज की जागृति के लिये 'जमींदार', 'अल हिलाल', 'हमदर्द' आदि अखबारों ने १९०६ से १९१४ के बीच किया। उस समय अलीगढ़ के विद्यार्थी बड़े विचार में पड़े हुए थे। गफार जैसे संवेदनाशील अंतःकरण के विद्यार्थी की मनोदशा उस समय क्या हुई होगी, इसकी कल्पना करना मुश्किल नहीं है। लेकिन अलीगढ़ में भी उन्हें अधिक समय टिके रहने की इच्छा नहीं थी। गफार किसी तरसते हुए पक्षी की तरह विद्यार्जन के लिये एक जगह से दूसरी जगह, एक गुरु से दूसरे गुरु की ओर दौड़ते थे, लेकिन उनकी तकदीर उन्हें दूसरी ही ओर खींचे जा रही थी। उन्हें जिस तरह की शिक्षा चाहिये थी, वह उन पाठशालाओं में नहीं मिलती थी। इस वजह से उनका मन अस्थिर, अस्वस्थ होता रहा। इस खींचातानी को 'विधिविद्या' के अलावा दूसरा क्या कहा जा सकता है? अलीगढ़ में डेढ़ साल पूरा होने के पहले ही उन्हें पिता जी का तार मिला। बड़ा लड़का इंगलैंड में था। वहीं उसके छोटे भाई को भी भेजने की उनकी इच्छा हुई। लेकिन पिता जी की इस योजना से माता जी के मन की सहमति नहीं थी, पर हुआ विपरीत ही। गफार खान ने फौजी नौकरी से इंकार किया यह ठीक ही हुआ, यह लिखकर बड़े भाई ने गफार को लंदन बुलाया। तदनुसार बैराम खान ने गफार को अलीगढ़ से वापस बुला लिया।

पिता जी के आदेश के अनुसार गफ्फार अलीगढ़ से अलविदा लेकर उतमंजई पहुँचे। बच्चे को विदेश भेजें, न भेजें, इस मसले में परिवार के लोगों का थोड़ा समय और गया। मौलवियों की तीव्र भावनाओं के कारण थोड़ा विरोध हुआ ही, लेकिन बैरामखान के निश्चय के सामने मौलवियों का कुछ भी चलने वाला नहीं था। उल्टे इस वक्त माँ के आँसुओं की बाढ़ ने समुद्र का रास्ता रोक रखा और खुद गफार ही उसमें उलझ गये, इसलिये इस वक्त भी 'दैवमन्यत्र चिंतयेत्' इस उक्ति की यथार्थता का अनुभव हुआ।

बैरामखान ने सोच रखा था कि गफार वास्तु शास्त्र का अध्ययन करें, इस दृष्टि से नौजवान गफार के विदेश जाने की सब तैयारी हुई, पी० एँड ओ० कंपनी के जहाज से टिकट लिया गया। चलते समय माँ के चरण छूकर उसका आशीर्वाद लेने के लिये पुत्र उसके सामने खड़ा हुआ, तब स्वाभाविक रूप से उनके आँसुओं का बांध फूटा। 'एक भाई उधर जाकर इल्म सीख रहा है। तू भी इतनी दूर जायगा तो मेरे लिये यहाँ कौन रहेगा? उधर जानेवाले लड़के वापस नहीं आते हैं' ऐसा सवाल करके उसकी माँ फूट फूटकर रोने लगी और माँ की यह व्यथा देखकर गफार उलझन में पड़ा। 'अपने देश का अज्ञान मिटाना चाहिये, अंग्रेजों के अत्याचारों का मुकाबला करने के लिये होशियार होना चाहिये' आदि बातें उसने कहकर देखा, लेकिन खुद ही उससे माँ का दुख देखा न गया। उसका मातृप्रेम जागृत हुआ। उसने विदेश जाने का विचार छोड़ दिया। इसके बाद इंगलैंड का दर्शन लेना उनके नसीब में तब आया, जब १९६४ में स्वधर्मियों के अत्याचारों से रोगजर्जर होकर दवादारू के लिये उन्हें जाना पड़ा। माँ की ममता सब को ही रहती है, लेकिन उससे भी अधिक आकर्षण परदेश जाने का होता है। माँ की मनोदशा का ख्याल करते हुए अपना सारा भविष्य बदलने का निर्णय तुरंत करनेवाले विद्यार्थी इने गिने ही होते हैं। भव्य चारित्र्य खड़ा करनेवाले ये तेजस्वी बीज रहते हैं। कोमल मनोदशा के जवान गफार खान विग्रम गुरु की पाठशाला से निकलने के बाद इस तरह कंबेलपुर, कादिन, अलीगढ़ होते हुये फिर उतमंजई की स्वाती नदी के किनारे लगे। वहाँ की रमणीय टेकड़ियों की आबोहवा में कुछ समय रहना उनके भाग्य में और बदा था।

और दरअसल केवल शालेय शिक्षा से मानसिक विकास किस हद तक हो सकता है? पहाड़ी दरों से स्वच्छंद बहनेवाला पानी और हवा, उसमें मस्त रहनेवाले पशु पक्षी, समृद्ध गोधन का समूह, निर्मल मनोवृत्ति की अपने मार्ग से चलनेवाली ग्रामीण जनता और पारिवारिक जीवन में से मिलनेवाला वात्सल्य इनमें सिर्फ संस्कार ही नहीं मिलते हैं, अपितु उसमें से संयमी, स्नेहशील, त्यागी जीवन साकार हो सकता है, जिसकी स्पष्ट मिसाल गफार खान हैं। इंगलैंड का प्रवास खारिज होने का तात्कालिक कारण माँ की व्यथा थी। उसी दरमियान घर में एक दो मौत हुई और उसका जो परिणाम मन पर हुआ, वह भी अन्य कारण होगा। परिणामतः बीस साल की उमर में नौजवान गफार खुद की शिक्षा के सब रास्ते रुक जाने के कारण अपने घर में आ पड़े लेकिन उनका अंतःकरण इतना छोटा नहीं था कि केवल

माँ के प्यार में या गाय के दूध में उलझा रहे। अपनी शिक्षा इस तरह अधूरी छोड़नी पड़ी, फिर भी इस दो तीन साल की अवधि में बादशाह खान को नवशिक्षा की महत्ता प्रतीत हुई। पिताजी की शिक्षा के विषय में आस्था और विग्रम साहब की लोगों को शिक्षा और धर्म संस्कार देने की लगन; इनका प्रभाव उनके मन पर हुआ था। अपने इर्दगिर्द की ग्रामीण जनता कितने भीषण अज्ञान में है और उसके फल कितने भयानक होते हैं, इसे वे रोजाना देखते थे। सिर्फ विदेश में जाने की ही नहीं, सभी आधुनिक शिक्षा से मौलवियों का विरोध था। इसलिये सरकारी पाठशालायें खुलने पर भी वहाँ बच्चों को भेजने के लिये वे विरोध करते थे और इधर मसजिद में मिलने वाले अपर्याप्त धर्म संस्कार से लोगों का, विशेषतः पठानों का, समाधान नहीं होता था। भरण पोषण के लिये आवश्यक व्यवहारी शिक्षा की ओर उनका झुकाव रहता है, और उसी बाबत उनके धर्मगुरु का विरोध रहता था। पुरानी पद्धति से मिली धार्मिक शिक्षा से आज की दुनिया का और अपने समाज की स्थिति का ज्ञान होता नहीं था और इसलिये विभिन्न पठान जमातों में सदियों से झगड़े, लड़ाइयाँ चली आ रही हैं, इसीलिए अपने समाज का अधःपात हुआ है, इसकी अनुभूति गफार खान को उस समय हुई थी। विग्रम जैसे पादरी अपना खुद का खर्च करके हजारों मील से यहाँ आकर लोगों को शिक्षित करते हैं। इस शिक्षा से हमें सिर्फ बुद्धिमत्ता ही नहीं, मानवता का सम्यक् कल्पना आई और ऐसी उदात्त अनुभूति हमें अपने समाज तक पहुँचानी चाहिये, यह निर्णय बादशाह खान ने उसी समय लिया, जब इनकी इंगलैंड यात्रा रद्द हुई।



: ३ :

ग्रामीण शिक्षा के संघटक

समाज सेवा की दृष्टि से बादशाह खान ने पाठशाला शुरू करने का तय किया। सद्भाग्य से उन्हें उपलब्ध शिक्षकों का समूह भी अच्छा मिला था। वायव्य सीमाप्रांत पुराने जमाने से विद्रोही मुसलमान परंपरा का एक केंद्र बन गया था। शहीद सय्यद अहमद का अंत बलाकोट की प्रखर लड़ाई में हुआ (१८३०)। उस समय शेख मनमूद से सहन (शेख उल् हिंद) ने १९१४ में किये सशस्त्र प्रतिकार के आंदोलन तक यह परंपरा लगातार सितना नौशेर राजद्वार आदि जगह चलती रही। इस परंपरा का भारतस्थित केंद्र देवबंद (जिला सहारनपुर, युक्त प्रदेश) की शिक्षा संस्था है, जो १८६३ में स्थापित की गई थी। मुसलमानों के स्वराज्य-निष्ठा संगठन की बहुत थोड़ी जानकारी उपलब्ध है। इस्लामी साम्राज्य के प्रयास (पैनइस्लामिज्म) का वह एक भाग है, ऐसी मान्यता होने के कारण और वैसा ही प्रचार भी साम्राज्यवादी लेखकों ने किया, इसलिये इन प्रयत्नों की योग्य यानी पूर्ण जानकारी नहीं ली गयी। इन प्रयत्नों का आवश्यक परिचय भारत को होना जरूरी है। गफार खान की शुरू शुरू की समाजसेवा के प्रयत्न इस देवबंद परंपरा से संलग्न रहे, अतः उनका जिक्र यहाँ किया गया है।

इस देवबंद की सशस्त्र जिहादी परंपरा में एक जमाने में गफार खान थे। वे सिर्फ देवबंद की ही नहीं, व्यापक धर्मनिष्ठा से ओतप्रोत लोकशाहीवादी और आजादप्रिय परंपरा से भी ओतप्रोत हैं। उनकी ईश्वरनिष्ठा अनन्य साधारण स्वरूप की है। यह बात ठीक से ध्यान में न रखी गयी तो उनका चरित्र और उनकी समाजसेवा की प्रेरणा और प्रकार, उनकी गांधीवाद के प्रति दृढ़ आस्था आदि विशेषताओं का आकलन नहीं हो पायेगा। सही माने में वे समझ में नहीं आयेंगे। अपनी जन्मभूमि (पठान प्रदेश), अपने समाज-बांधव और अपनी भाषा के प्रति उनके दिल में गहरा प्रेम है। पठानों का अज्ञान और उनकी आपसी वैमनस्य के कारण होनेवाली हानि के कारण खान का अंतःकरण शतशः विदीर्ण होता रहता है। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए उनके चरित्र की ओर देखना होगा।

बादशाह खान ने अपने सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश शिक्षा प्रसार के कार्य से किया। शुरू शुरू में उनके मार्गदर्शक थे तुरंगजई के हाजी साहब। इनका उल्लेख बहुत से चरित्रकारों ने किया है, जो अंशतः सच है। उनके बहुत से सरकारी शिक्षक देवबंद में तैयार हुए थे। उनमें मौलाना ताज महंमद साहब याने प्रमुख के बतौर काम देखते थे। अन्य शिक्षकों में फजले महमूद मक्फी, फजले रबी, अब्दुल अजीज आदि थे। खुद गफार खान भी शिक्षा का काम करते थे। यह पहली राष्ट्रीय धार्मिक स्वरूप की पाठशाला उतमंजई में ही करीब १६११ में शुरू हुई। यह पाठशाला मध्यवर्त्ती थी और साल डेढ़ साल में इर्दगिर्द के गांव में उसकी शाखाएँ फैल गईं। उस प्रदेश के बहुजन समाज की जागृति का वह समय था।

इन पाठशालाओं की स्थापना या संघटन से तुरंगजायी के हाजी साहब का विशेष संबंध नहीं दिखता है। जिंदगी भर वे सशस्त्र क्रांति का प्रबोधन करनेवाले और संगठनकर्ता ही रहे, लेकिन नई शिक्षा संस्थाओं से कट्टर मुल्लाओं का विरोध था। इसलिये इन नौजवान लोगों ने धार्मिक क्षेत्र पर भी रोब रखने वाले हाजीसाहब को अपना मुखिया बनाया। हाजी साहब के देवबंद वाले जवान उनके पीछे तो रहना ही चाहेंगे। इसी तरह का उनका संपर्क और ताल्लुक था।

यह राष्ट्रीय शाला या शालेय शिक्षा की अपेक्षा लोकजागृति का केन्द्र था। इस दृष्टि से उनका अधिक महत्त्व था। सरकार भी इसी दृष्टि से शालाओं के संबंध में सशंक थी। ईजिप्त, तुर्किस्तान, ईरान इन मुस्लिम देशों के राष्ट्रीय जागरण की आंच या रंग अन्य अरब और इस्लामी मुल्कों को न लगे, इसके लिये ब्रिटिश शासक बहुत सावधान थे।

उतमंजई की राष्ट्रीय शाला में अल्हिलाल, अलबलाग, मदीना, जमींदार कामरेड अखबार लिये जाते थे और भुखमरों जैसा उनका अध्ययन होता था। इन अखबारों ने उस जमाने की नौजवान पीढ़ी का राजकीय पिंड तैयार किया था। इन पत्रों के लेखक नेताओं में मौलाना हसरत मोहानी, मौलाना आजाद, मौलाना महमदअली और जफरअली थे। ये अखबार किसके नाम पर आते हैं और उन्हें कौन कौन पढ़ता है, इसपर पुलिस की निगरानी रहती थी और ऐसे लोग सरकारी शासन के झपेटे में जल्द ही आते थे।

इस तरह गफार खान ने राष्ट्रीय शिक्षा संघटन तेजी से खड़ा किया और उसका विस्तार भी सिर्फ २–३ साल में काफी हुआ। ऊपर जिक्र किये सह-

कारियों में विभिन्न प्रवृत्ति के नौजवान कार्यकर्ता उन्हें उपलब्ध हुये थे। एक ओर गफार खान के दिमाग पर विग्रम गुरु जी के सेवाभाव और कारुण्य की जीवंत छाया थी, दूसरी ओर संस्था के मुखिया हाजी साहब भी पुरजोर धर्म नेता थे, साथ ही वे "जिहाद" पंथ के लड़ाकू थे। ऐसा नहीं माना जा सकता कि इस समय भी गफार खान के अंतःकरण में विदेशी शासन के संबंध में विरोध भाव कम मात्रा में था, लेकिन इस उदारमतवादी विचारों का गफार खान पर अधिक प्रभाव था। किसी न किसी के दबाव में रहने के सामाजिक दोष के कारण या आपस में खून खच्चर करने की प्रवृत्ति के कारण उनका अपने समाज दोष का दुख दूर किये बिना विकास सही माने में न हो सकेगा।

१९१४ में पहले महायुद्ध की हवा शुरू होते ही इस शाला का अध्ययन हाजी साहब ने क्रांति की दिशा में बढ़ाना शुरू किया। आजाद पठान मुल्कों में जाकर पेशावर पर हमला करने के लिये पठानों को उन्होंने प्रेरित किया। उनके इन हमलों की खास जानकारी उपलब्ध नहीं है, लेकिन कौंस कमेटी और अन्य कुछ सरकारी हवालों में हाजी साहब द्वारा सीमाप्रांत पर किये हमलों के बारे में जिक्र किया गया है।

इन हाजीसाहब का ऐसा वर्णन जेम्स स्पैन ने किया है—

'१९३० के अप्रैल महीने में पेशावर इलाके में सत्याग्रह आंदोलन शुरू होते ही हाजी साहब के चार हजार लोगों ने मई के महीने में पेशावर पर हमला किया। वैसे ही चार हजार पठान गद्दा खेल और खिजर खेल टोची इलाके में पहुँचे' आदि सशस्त्र आंदोलन की जानकारी दी है। बहुतेरे अंग्रेज लेखकों का ऐसा खयाल था कि गफार खान के सत्याग्रह आंदोलन और पठानों के इस सशस्त्र हमले में मेलजोल था, यह बात सही है कि गफार खान और हाजी साहब तुरंगजई के एक जमाने के निकट सहकारी थे, लेकिन खुदाई खिदमतगार संघटन की १९२९ में स्थापना करते समय गफार खान ने पहले के तजुर्बे के बाद अहिंसा की जो नीति स्वीकृत की थी, वह शुद्ध स्वरूप की और असली निष्ठा से उत्पन्न हुई थी। इन सशस्त्र हमलों में अब्दुल गफूर खान नाम के एक सैनिक थे, लेकिन वे ये गफार खान नहीं थे। इससे कुछ गलतफहमी हुई।

१९१४–१५ में इन शिक्षकों को क्रमशः पकड़ा गया। उनमें गफार खान नहीं रहे होंगे, क्योंकि उन्हें रौलेट कानून आंदोलन के वक्त पहले पहल सजा

हुई है (अप्रैल १९१९)। सभी शिक्षकों को मामले दायर किये बगैर बंद करके रखा गया और कुछ अरसे बाद छोड़ दिया गया। फ्रांटियर रेग्युलेशन ऐक्ट के अंतर्गत किसी की भी सुनवाई न कर फाँसी तक की भी सजा दी जा सकती थी। अतः इन शिक्षकों की पिटाई करने में और वह भी महायुद्ध शुरू होने के बाद क्या दिक्कत आ सकती थी?

१९१४-१५ में ये पाठशालाएँ बंद हो जाने के कारण गफार खान को कुछ काम न रहा, इसलिये देश सेवा के दूसरे किसी काम की खोज उन्हें करनी पड़ी। इसी समय देवबंद के कुछ नेता और कुलगुरु शेख महमूद सहन की ओर से उन्हें बुलावा आया। उनकी मुलाकात के बाद गफार खान सशस्त्र प्रतिकार के आंदोलन में शरीक हुए। राष्ट्रीय शालाओं पर सरकार ने ताले लगाये, इसलिये गफार खान देवबंद की ओर गये, यह वस्तुस्थिति ध्यान में रखना जरूरी है।

दुखभरा वैवाहिक जीवन

१६१२ में जब वे राष्ट्रीय शाला के काम में व्यस्त थे तब बाईस वर्ष की उमर में गफार खान की शादी हुई। उतमंजई के पास बसे रज्जर गाँव के हाजी महंमद साहब उनके ससुर थे। गफार खान की पत्नी का नाम मेहरखना था। हाजी महंमद खान शासनयंत्र में जिम्मेदार पद पर थे, इसलिये इस स्वतंत्रचेता परिवार का उनसे खास संबंध न बढ़ सका हो या बीस साल की उमर में ही अपने समाज को अप्रिय लगनेवाले समाज सुधार के काम में किसी न किसी रूप में गफार खान हिस्सा लेने लगे थे, इसलिए संभवतः आप्त स्वकीयों से उनका संबंध टूट गया होगा।

शादी के पहले से ही देशभक्ति में घुल मिल जाने के कारण, पारिवारिक जीवन में रस लेने से लिये गफार खान को कभी भी खास अवकाश नहीं मिला। पहला लड़का पैदा हुआ, तब राष्ट्रीय शाला के काम में थे इसलिये संभवतः वे उतमंजई के इर्दगिर्द उस समय रहते हों, लेकिन १६१५ के बाद उनकी शासकों से जो मुठभेड़ शुरू हुई, वह आज तक खत्म नहीं हुई। इस मुठ-भेड़ में वे कभी जेल में या कभी जेल के रास्ते पर लड़ाइयों में अपनी जीवन ज्योति जलाते हुए औरों को प्रकाश देते रहे। यह सही है उनका यह जीवन औरों को प्रकाश देता रहा, लेकिन वह प्रकाश नंदादीप जैसा शांत नहीं हुआ। आसमान में बिजली टूटती हो, या पहाड़ी इलाके के मुसाफिरों को प्रकाश के साथ साथ धक्के देते देते सफर करने जैसा उनका जीवन क्रम रहा। इसलिये उनका वैवाहिक जीवन जंगलों में लगी हुई आग के बीच में महल का मजा चखने जैसा रहा। १६१२ से १५ तक का समय पुरानी परंपराओं से झगड़ने में गया, फिर भी वही काल कुछ स्वस्थता का रहा होगा। वैसे गफार खान परिवार पर प्रेम करनेवाले, बालबच्चों से मोहब्बत करनेवाले और उनमें रस लेनेवाले हैं, लेकिन कर्तव्यजागृति की भावना और हुकूमत की तानाशाही से संघर्ष शुरू होने पर उनकी ये भावनाएँ सूख जाती हैं।

गफार खान की जिंदगी में यही हुआ। यद्यपि लोकशिक्षा, लोकजागृति और समाज सुधार ऐसी विधायक सेवा की ओर उनका आकर्षण था तो भी चारों ओर से उनका रास्ता रोका जाता था।

शादी के बाद पहले ही वर्ष १९१३ में गफार खान को मेहरखना से पुत्र रत्न हुआ। गनी वही हैं। उनके दूसरे लड़के वली का जन्म १९१५ में हुआ। उसके बाद वे भटकनेवाली जमात के लोगों की तरह खुले आम या छिप कर संगठन में उलझ गये। इसी दौरान १९१७-१८ में भारत में आए विनाशकारी इंफ्लुएंजा के दौर ने राजकीय जागृति के समान ही लुक छिपकर इस प्रदेश में प्रवेश किया। उतमंजयी को भी उसकी आँच लगी। सिवा गफार खान के, घर के अन्य लोगों ने बिस्तर पकड़े। सारा घर अस्पताल बन गया था और गफार खान नर्स का काम करते थे। मेहरखना कुछ स्वस्थ हुई तो गनी के बुखार ने जोर किया। माँ बाप ने लड़कों की देख भाल की। काफी दिन गुजरे, लेकिन बुखार कम नहीं हुआ, इसलिये बच्चे बेहद कमजोर हो गये, तब मां का दिल बैठ गया। उसकी उपवास आराधना चालू ही थी। उस वक्त अल्लाह की उसने करुण वाणी से प्रार्थना की—'यह बच्चा बचाओ, हमारी जान ले जाओ'। खुदा ने यह दर्द भरी वाणी सुन ली। प्रत्यक्ष में गनी की जान बची और मां स्वर्ग सिधारी। कहते हैं कि बाबर ने अपने कमज़ोर बेटे हुमायूँ को बचाने के लिए इसी तरह मौत की प्रार्थना की थी। मेहरखना ने अपने लड़के की जिन्दगी के लिये बलिदान देकर अपने पति के सामने एक उदात्त उदाहरण प्रस्तुत किया। उसके भी कुछ कठोर परिणाम उनके अंतःकरण पर हुए ही होंगे। उनपर प्रेम करनेवाले उनके मां बाप घर में थे ही, अन्य परिवार के लोग भी थे, इसलिये गफार खान को अपने लड़कों की चिंता नहीं थी; लेकिन पत्नी का कुछ बंधन था। वह भी नष्ट हो जाने के कारण वे समाज कार्य के लिये मुक्त हो गये।

आगे साल भर में रौलेट कानून का तूफान भारत में शुरू हुआ। तिनके से तिनका सुलगता है। इस तरह सारे मुल्क में आग फैल गयी। महात्मा जी का अहिंसात्मक प्रतिकार कुछ मूर्त स्वरूप लेने लगा। उस वक्त बाहशाह खान की पहली जेल यात्रा हुई। इतना ही नहीं, सरकारी तंत्र का निषेध करने की अपेक्षा पुत्र प्रेम की ममता से बैरामखान ने भी वही राह पकड़ी। इस सज़ा के तुरंत बाद खिलाफत का आंदोलन और उसमें हिजरात याने धर्म के लिये देश त्याग का आंदोलन शुरू हुआ। इस काम में वे अगुवा बने। इसलिये किसी न किसी रूप में उन्हें अपने समाज से अलग रखना जरूरी था। इसलिये शासकों ने १९२१ में उन्हें साढ़े तीन साल के लिये जेल में डाल दिया।

उनके वैवाहिक और कौटुंबिक जीवन के बारे में बहुत अधूरी जानकारी उपलब्ध है। सहूलियत की दृष्टि से उसका परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

देश त्याग के तूफान के समय ही १९२० में गफार खान ने दूसरी शादी की। शादी होते ही वे करीब एक साल तक हिजरात यात्रा में शरीक हुए। वापस आने पर कुछ समय तक फिर से शिक्षा कार्य में लगे। इस कारण उन्हें दूसरा कारावास हुआ। साढ़े तीन साल तक जेल काटने के बाद १९२६ में हज यात्रा के माध्यम से अरब देशों का परिचय पाने के लिये वे बाहर निकले। इस यात्रा प्रवास में उनकी दूसरी बीबी भी चल बसी। इस छः साल के वैवाहिक काल में साढ़े तीन साल जेल में और करीब एक साल अफगान यात्रा में व्यतीत हुआ। इस प्रकार के वैवाहिक जीवन को भड़काने वाली आग की लपटों में सहल जैसा न कहा जाय तो क्या कहा जाय ? दूसरी बीबी से उन्हें मेहरताज नाम की लड़की और लाली नाम का लड़का, दो बच्चे हुए।

पहली पत्नी का अंत लड़के को बचाने के लिये हुआ तो दूसरी पत्नी का देहांत यात्रा के समय रात्रिया में ऊँची पेढ़ियों से गिरने की वजह से हुआ। इन दोनों बीबियों की मौत का उनके दिल पर काफी सदमा पहुँचा, लेकिन वे उस वक्त कर्मयोगी पुरुष की भाँति शोभाशाली, धीरज और संयम से रहे, काम नहीं छोड़ा। उस समय उनकी आयु ३६ वर्ष की थी, उसके बाद उन पर कई बार दबाव डाले गये, लेकिन उन्होंने फिर शादी करने से सर्वथा इनकार किया।

उनकी दूसरी शादी के पहले की एक मजेदार घटना कहने में हर्ज नहीं है। किस्सा सुनने लायक है। शादी तय होने के बाद एक दिन गफार खान एक दोस्त को साथ लेकर शादी का कपड़ा आदि चीजें खरीदने पेशावर की ओर गये। रास्ते में सरदारसाब में उन्हें पुलिस ने गिरफ्तार किया और अपने महकमे के इंसपेक्टर शार्ट के सामने पेशावर में पेश किया। पेशावर में दूकान पर पहुँचने के बदले ये कोतवाली पहुँचे, इतना ही फर्क रहा। यह शॉर्ट नाम का शार्ट टेंपर्ड अधिकारी उस समय के कई कार्यकर्ताओं की परेशानी का कारण बना हुआ था। सख्त ठंड का मौसम था। गफार खान और उनके दोस्त को रास्ते में ही छोड़ कर हवलदार शार्ट के पास गया। काफी समय के बाद गफार खान को उसके सामने खड़ा किया गया। गफार

खान ने कुछ जवाब दिया ही था, तभी 'इतना धीरे से क्यों बोल रहा है, आवाज निकलती नहीं है क्या ?' आदि बेतुकी बातें उसने कीं। वे जरा जोर से बोलने लगे तो 'इतनी जोर से क्यों चिल्ला रहा है' ऐसा दूसरा तमाचा जड़ दिया और नीचे ले जाकर खड़ा रखने के लिए कहा। उनसे कोई जवाब तलब न करते हुए भी उन्हें हफ्ते भर कोतवाली में अपराधियों के साथ बंद कर रखा। इधर घर में 'वरराजा' कहाँ गये यह लेकर हो हल्ला हुआ ही होगा, लेकिन ब्रिटिश सल्तनत में पठानों का ऐसा ही जीवन था। हमारे तरफ राजा महाराजाओं के जमाने में ऐसी ही घटनाएँ हुआ करती थीं। यह बहुत थोड़े लोगों को मालूम होगा। एक हफ्ते के बाद इन्स्पेक्टर शॉर्ट ने उन्हें रिहा किया। तब गफार खान ने पूछा कि "हमें गिरफ्तार किसलिये किया ?" उसपर उसने जवाब दिया, "जवाबतलब के लिये" लेकिन "जवाबतलब किसका, किसलिये यह हमसे कुछ भी पूछा नहीं गया ? समाज में इंसान की कुछ प्रतिष्ठा इज्जत आदि है या नहीं ?" उसपर शॉर्ट ने उत्तर दिया--"हम प्रतिष्ठा आदि कुछ नहीं जानते।" बाद में पता चला कि नौशेरा इलाके में कोई बम फूटा था या मिला था।

एक शादी के लिये उन्हें दो मर्तबा 'चतुर्भुज' होने का मौका मिला था। उसके बाद उनकी शादी हुई। इस शादी के बाद कुछ ही दिन बीतने पर खिलाफत आंदोलन में से ही हिजरात आंदोलन शुरू हुआ। इस आंदोलन में हजारों लोग शामिल हुए। घर, मकान, खेतीबाड़ी बेचकर हजारों धर्म-निष्ठ मोहाजरीनों ने देशत्याग किया। हिजरात को निकले हुए लोगों के जत्थे पेशावर होते हुए काबुल जाते थे। यह देखकर एक दिन गफार खान भी उसमें शामिल हो गए।



: ५ :

सशस्त्र प्रतिकार के संघटन में

यद्यपि पहला जागतिक युद्ध सितंबर १६१४ में शुरू हुआ, तो भी यूरोप के साम्राज्यवादी देशों ने इस्लामी शासन को उखाड़ फेंकने का प्रयास पहले से ही शुरू कर दिया था, इससे भारतीय मुसलमानों में १६१२ से ही बेचैनी फैल रही थी। देवबंद के महमूद हसन का कड़ा खत मिलने पर बादशाह खान महायुद्ध शुरू होने के पहले ही देवबंद गये और वहाँ ब्रिटिशों के खिलाफ लड़ाई की योजना तय करके वापस आये। १६१२ से १६१६ के जमाने में बादशाह खान के सामाजिक विचारों में स्वरूप और स्थैर्य आने लगा था। उनके पुरुषार्थ और स्वमान की वृत्ति कर्तव्य के नये क्षेत्र ढूँढ रही थी। इस वक्त उनकी उमर बीस साल की हो चुकी थी। जवानी के लिये अनुकूल स्थितियों का मजमा उनके इर्दगिर्द में जमा था। माँ बाप की ममता भरी छत्रछाया के साथ साथ घर समृद्धि से आबाद था; जवान पत्नी और एक सुपुत्र के प्रभावशाली बंधन का भी निर्माण हुआ था, लेकिन उनका मन इतना विशाल था कि इनमें से किसी भी मोह में या स्वस्थता में उलझे रहने को तैयार नहीं था। अंडे में से बाहर निकलने के लिये पक्षी जिस तरह अंडे का कवच तोड़ने के लिये तड़फड़ाता है, उसी तरह उनकी जाग्रत आत्मा गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिये साधन ढूँढ़ रही थी।

वह साधन देवबंद का था। तुरंगजई के हाजी साहब ने यह राह पहले ही पकड़ ली थी। इसकी ठीक जानकारी नहीं मिलती है कि वे आजाद शिक्षा संस्था के सदर थे, फिर भी बादशाह खान पर सियासी या कौमी जैसे कुछ संस्कार उन्होंने डाले थे। कुछ चरित्रकारों के उल्लेख से ऐसा आभास होता है, लेकिन हाजी साहब के धर्म विचारों में अध्यात्मनिष्ठा में प्राप्त होनेवाली उदारता या व्यापकता थी। ऐसा भी नहीं दीखता है कि उनकी क्रांतिनिष्ठा को राष्ट्रीयता का आधार था। 'फ्लेम' नाम का एक पत्र वे चलाते थे (ए० एस० ब्राइट—फ्रांटिअर एंड इट्स गांधी)। लेकिन "वह

क्लेम थी उसमें सिर्फ राष्ट्रीयता का अभाव था।" ब्राइट ने जिक्र किया है कि गफार खान भी हाजी साहब को अपना नेता या मार्गदर्शक नहीं मानते हैं। अपितु महमूद साहब देवबंदी देशप्रेम से प्रेरित, धर्मनिष्ठ, आचारसंपन्न और बड़े विद्वान थे, ऐसा वर्णन बादशाह खान आदरभाव से ही करते हैं।

१९१४-१५ में महमूद साहब से मिलने के लिये देवबंद जाने के पहले आगरा में हुई मुस्लिम लीग के सालाना जलसे में गफार खान शरीक हुए थे। वहाँ से वापस आते हुए वे दिल्ली में मौलाना फजलुर्रहमान के घर ठहरे थे। उस समय उनका ओबेदुल्ला खान सिंधी से संपर्क हुआ। ओबेदुल्ला के जरिये देवबंदी महमूद साहब से उनका परिचय हुआ। गफार खान देवबंद से फिर पेशावर गये और तुरंत ही आगामी कार्यक्रम के लिये तैयार हुए। यह सारी अपर्याप्त जानकारी अनेक जगह के उल्लेखों में पायी जाती है।

आजाद शाला शुरू थी तभी बादशाह खान स्वतंत्र पठानों के इलाके में कुछ समय के लिए घूमते फिरते रहे। कुछ चरित्रकारों ने अस्पष्ट जिक्र किया है कि उस इलाके में कार्य शुरू करने, अन्य कार्यकर्ताओं को मदद पहुँचाने आदि की दृष्टि से उन्होंने यह निरीक्षण किया था। वैसे ही कुछ चरित्रकारों ने ऐसा लिख रखा है कि उनके प्रयत्नों के बावजूद उन्हें कुछ रास्ता न दिखायी देने से उन्होंने ईश्वर से दया याचना की, रोजे उपवास किये और फिर वापस अपने गाँव आकर शिक्षा कार्य में ही व्यस्त रहने का निर्णय उन्होंने लिया। वस्तुतः बादशाह खान का यह सारा प्रवास, ये सारे प्रयत्न सशस्त्र आंदोलन के लिये सहूलियत भरा कार्यक्षेत्र और केंद्र खोजने के लिये ही था।

वायव्य सीमा प्रदेश में शहीद सय्यद अहमद द्वारा १८३० के आसपास शुरू की गयी जिहादी परंपरा के कुछ कार्यकर्ता अभी भी निष्ठा से कालक्रमण करते थे। वे इधर उधर कैसे फैल गये थे और उनमें ही जासूसी महकमें के लोग मिलकर बिना रोकटोक किस तरह घूम रहे थे, इसकी जानकारी गफार खान को थी। बनेर के आजाद हिस्से में पुराना केंद्र था, इसलिये उससे बिलकुल उल्टी दिशा में बाजोर के आजाद हिस्से में अपना नया केंद्र खड़ा करने का जिहादियों ने निश्चय किया था। खुद गफार खान इस दिक्कत भरे प्रवास का बहारदार वर्णन करते हैं। उन प्रयत्नों की स्मृति उन्हें अब भी मजा देती है।

अपने क्रांति केंद्र के लिये नया स्थान खोजने के लिये निकलते वक्त उन्होंने अपनी शाला के एक सहकारी शिक्षक फजले महमूद साहब को अपने साथ लिया था। नये केंद्र के लिये स्थान ढूँढ़ने की जिम्मेदारी इन दो नौजवानों को सौंपी गयी थी। इससे भी उनकी योग्यता का ख्याल किया जा सकता है। बादशाह खान और फजले महमूद रेलगाड़ी से तखाबई स्टेशन से चले और दर्गाई में उतरे। पूरब के मालकंद रास्ते से उन्हें जाना था। दर्गाई उतरने पर उन्होंने किराये का एक टांगा लिया, लेकिन उस रास्ते पर एजेंसी सरकार की देखरेख थी। आगे चौकी आने पर फजले मदमूद और दूसरे राह बतानेवाले टाँगे से उतरे और पहरेदारों से बात करते रहे। बादशाह खान ने खुद को बड़ी भारी चद्दर में लपेट लिया, बुरके का उपयोग किया। बुरके में वे सहीसलामत बच निकले। अँधेरे का समय था। टांगेवाले ने फुरती से टांगा आगे बढ़ाया, पुलिस ने भी महिलाओं की इज्जत की। उसने टांगे की ओर देखा और टांगा जाने दिया। इस तरह से वे इस पहले क्रांति कार्य के शिकंजे से बच निकले। इसके बाद खेल विभाग से आगे जाना था। रात के अँधेरे के सहारे वे सफर करते थे। खेल पीछे छोड़ने पर सुबह दुनिया में मशहूर चकदरा (चक्रद्वार) पुल पार करना था। उसके पहले टांगा छोड़ दिया गया था। रास्ता बतानेवाला भी वापस लौट चुका था। थोड़े ही फासले पर फजले महमूद के गाँव पहुँचना था। 'चकदरा' के पहरेदारों को चकमा देकर हम रास्ते पर लगे। उस दिन का सारा प्रवास पैदल ही करना था। भूख लगी थी और खूब थकान भी आई थी। दिन भर चलते चलते शाम को गाँव के नजदीक नदी तक आए। बेहद ठंड थी। उसी अवस्था में नदी पार करना था। सब दिक्कतों का मुकाबला करते करते रात में फजले महमूद के गाँव पहुँचे। सफर के बाद पहले पहल आराम से नींद ली। हाथ पाँव ने तो पहले ही जवाब दे दिया था। इसलिये उन्हें कब नींद लगी इसका पता भी नहीं चला। सशस्त्र प्रतिकार संघटन के काम में की हुई इस पहली सफर का वर्णन उन्होंने ही किया है।

फजले महमूद के गांव में उनके नेता मौलाना ओबेदुल्ला आकर मिलने वाले थे। उनकी राह गफार खान ने कुछ दिन तक देखी। उनके न आने से फजले महमूद को पीछे छोड़कर खुद बादशाह खान अगला रास्ता खोजने के लिए निकले। वे पूरब के बाजोरबाबरा इलाके के चमरकंद के पासवाले अड्डे के मुल्ला के पास पहुँचे। मुल्ला पैगंबरवासी हुये थे, लेकिन उनके उत्तराधिकारी शेख साहब वहाँ थे। उनका खलवतखाना उस पहाड़ में था। सदर खलवत-

खाने की जगह और लंगरखाना उन्होंने देखा। यह जगह पसंद होने लायक थी। अर्थात् किसी को उस जगह का ख्याल न आए ऐसी वह जगह थी। शेख साहब वहाँ अकेले ही रहते थे। शहद के छत्ते का उद्योग चलाकर वे अपना योगक्षेम चलाते थे। उस जगह का निरीक्षण करके आगे कोटकी का रास्ता पकड़ा। कोटकी के खानबंधु जिग्रावर खान और जावर खान अंग्रेजों से मोर्चा लेते आये थे। वे इन खान बंधुओं से मिले और वहाँ से आगे सलारअली की तरफ गये। वहाँ से जानकारी लेकर आगे जगई का रास्ता पकड़ा। इस इलाके में मामुद जमात थी। ये लोग असल में पख्तून थे। अन्य पठानों की तरह गुलामी तासीर के नहीं थे। इसलिये उस इलाके में शिगगनुल गन्ने, किटकोट आदि गाँवों का घूमकर निरीक्षण किया और इस हिस्से में बादशाह खान ने जगई गाँव को अपने काम का केंद्र चुना। वहाँ ओबेदुल्ला साहब आने वाले थे। उनकी राह देखना जरूरी था। राह देखते समय लोगों को आशंका न हो और जगई के वाशिंदों की निगाह टालने के लिये उन्होंने अपना मुकाम वहाँ की एक मसजिद में रखा। रोजे नमाज आदि ईश्वर प्रार्थना के कार्यक्रमों की धूम मचाई। ईश्वरोपासना का यह समय पूर्व चरित्र-कारों ने बादशाह खान द्वारा मार्गदर्शन के लिये तपश्चर्या के काल के रूप में वर्णित किया है। गफार खान पूर्ण श्रद्धावान् और नमाज रोजे के नियमों का पालन करने वाले थे, यह सही है, लेकिन वहाँ रोजा अपने नेताओं की राह देखने में समय काटने के लिये था। उस अवधि का उपयोग अंतर्मुख होकर अपने कार्य और कार्यपद्धति के परीक्षण करने में भी हुआ ही होगा। पठानों को संघटित करके उन्हें प्रतिकारक्षम कैसे बनाया जा सकता है. इस लगन में वे थे, इस आत्मसंशोधन की अवधि में यह उन्होंने ठीक से पहचान लिया कि पठानों के आपसी झगड़े, एक दूसरे के प्रति द्वेष भावना और मजहब के बारे में अज्ञान का अंत हुए बगैर पठानों के भाग्य में लिखी परेशानी खत्म नहीं होने वाली है। यह भी सही है कि ऐसी परिस्थिति विशेष में लुकछिप कर काम करना और निश्चित रहना कठिन है। ऐसा काम करनेवाले कार्यकर्ता असाधारण निष्ठावान्, किसी भी अवस्था में बेकाबू न होने वाला और अबोल होना चाहिये। पूर्व परंपरा का बुनेर का क्रांतिकेंद्र ७५ साल तक अनवरत चालू था। उसकी स्थिति कितनी लज्जास्पद हुई थी जिसका ख्याल उन्हें था। गुप्त संघटन कार्य में सल्तनत के खुफिया या हस्तकत घुस सकते हैं, इस अनुभव ने उन्हें इस उपोषण की अवधि में सचेत किया था। यद्यपि चिल्ला काटने का समय गुजर गया तो भी ओबेदुल्ला

साहब नहीं आये। यह भी अनहोनी बात सिद्ध हुई और वहाँ गुप्त केंद्र की स्थापना करने की बात छोड़कर गफार खान को वापस आना पड़ा। हर जगह उनकी तकदीर उन्हें अंगीकृत काम को छोड़ने के लिए मजबूर करती थी। फौजी नौकरी, इंगलैंड का सफर या कादिन के मौलवी का मार्गदर्शन, इन तीनों कार्यक्रमों से वे किसी न किसी वजह और अंतःप्रेरणा से बच निकले। इन घटनाओं को भी वे ईश्वरी प्रेरणा ही मानें या इन घटनाओं के कारण ईश्वरी हस्तक्षेप के संबंध में उनकी श्रद्धा पक्की हो तो उसमें अचरज की बात नहीं है।

जगई क्रांति केंद्र योजना का विचार वैसा ही छोड़ कर वे घर लौटे। जाते समय पार की हुई नाकेबंदी उन्हें फिर से पार करनी पड़ी। लेकिन जाते समय गुप्त संघटन का जो बोझ उनके सिर पर था, वह बहुत बड़ी मात्रा में कम होने के कारण वे कुछ खुले मन से और तेजी से वापस आये होंगे। मालकंद एजेंसी के इलाके में ब्रिटिश सल्तनत का रोब अधिक था। गोरा अधिकारी दिखते ही उसको सलाम न करने पर सजा मिलती थी। इस इलाके में दरगाई स्टेशन तक उन्होंने पैदल यात्रा की। दरगाई से रेल पकड़ी और तखवाई पहुँचे। तखवाई स्टेशन से मामंदनाड सीमास्थित स्थान नजदीक ही है। वहाँ बादशाह खान की खुद की खेती है और यहाँ से उतमंजई ७-८ मील के फासले पर है।

मामंदनाड पहुँचते ही उतमंजई के लोगों को गफार खान के वापस आने की खबर मिली। लगभग ३ महीने वे घर के बाहर रहे होंगे। सफर के लिये बाहर निकलते समय अजमेर के उरूस की यात्रा का बहाना उन्होंने गाँववालों से किया था, इसलिये लोग उनसे मिलने और उनके दर्शन के लिये उत्सुक थे।

सशस्त्र आंदोलन के लिये नये कार्यकेंद्र की खोज का काम करके बादशाह खान घर लौटे थे। उसी समय उनकी शिक्षा संस्था के सदर तुरंगजई के हाजीसाहब ने दूसरी ओर जिहाद प्रारभ किया था। बनेर के आजाद मुल्क में जाकर उन्होंने प्रत्यक्ष लड़ाई की तैयारी शुरू की थी। विश्वयुद्ध का प्रारभ होते ही यह कार्यक्रम शुरू किया गया था। देवबंद के महमूद सहन साहब मक्का की ओर और मौलाना ओबेदुल्ला अफगानिस्तान की ओर रवाना हुए। यह खबर बादशाह खान को मिली थी। बादशाह खान के साथ जगई केंद्र ढूँढ़ने के लिये गये हुए फजले महमूद वापस आये और

हाजी साहब को ढूँढ़ने के लिये और जिहाद के काम में हिस्सा लेने के लिये उधर रवाना हुए। आजाद शालाओं के कुछ शिक्षक भी इस आंदोलन में शामिल हुए। इन प्रयत्नों की जानकारी होते ही या इन शालाओं के संचालक नेता कौन और किस प्रवृत्ति के हैं यह पूरी तरह से मालूम होने के कारण सरकार ने इन शालाओं पर धावा बोल दिया होगा, यह मानी हुई बात है। इसकी ठीक ठीक जानकारी नहीं मिलती है कि पहले शालायें बंद की गयीं और बाद में शिक्षक युद्धप्रयत्न के काम में लगे या शिक्षक पहले फौजी शिक्षा लेने के उद्योग में लगे इसलिए शालाएँ बंद हुईं।

तुरंगजई के हाजी साहब और आजाद पाठशाला के शिक्षक जिहाद पर बुनेर की तरफ गये। इसलिये बादशाह खान भी छिप छिपकर उसी रास्ते पर लगे। बादशाह खान की हलचल पर जिस तरह पुलिस की नजर थी, वैसे ही उनके पिता जी की भी नजर थी और घर के पहरे से भाग निकलना उनके लिए कठिन होता था।

हाजी साहब बुनेर हिस्से में पुराने क्रांतिकेन्द्र की ओर गये। कई रास्तों से वहाँ पहुँच सकते हैं। उन रास्तों की जानकारी केवल पठानों को ही थी और उन रास्तों का उपयोग भी जानकार ही कर सकते थे।

जिस भाग में हाजी साहब ने अपना डेरा जमाया था, उस क्षेत्र के मुल्ला मौलवियों ने झंझटों से अपना निजी स्वार्थ न बिगड़े और हाजी साहब के पीछे लोग न जायँ, ऐसे प्रचार की शुरुआत की। ये धर्मप्रचारक बड़ी संख्या में अंग्रेजों के मददगार भी थे। हाजी साहब ने खड़ी की हुई इमारतों, कोट की ओर निर्देश करते हुए "हाजी को यहाँ धर्मप्रचार करना है या यहाँ इमले खड़े करने हैं" ऐसा प्रचार करने लगे। इसलिये वहाँ आपस में ही झगड़े पैदा हुए। पठानों की शस्त्रक्रिया आपसी झगड़ों में ही अधिक तेजी से हुआ करती थी। इसलिये मानसिक दृष्टि से सच्चे रूप में धैर्यवान और तत्वनिष्ठ बनने में पठानों को देर लगती थी। लेकिन पठान मौत से खेल खेलने के लिये हमेशा तैयार रहता है। उसे सही रास्ता बताया जाय तो वह मौत को गले लगाने के लिये तैयार रहता है। हाजी साहब को जिहाद (होली वॉर) करना था। उनके साथ उनका लड़का बादशाह गुलखान भी था। इन बाप बेटों को स्थानिक मौलवियों द्वारा दी हुई तकलीफ से वे असमंजस में पड़े। अपने जिहाद का प्रारंभ इन स्वकीय दुश्मनों को खतम करके किया जाय, ऐसा विचार हाजी साहब का था, लेकिन इस झगड़े से अपने

ही काम की हानि होगी, अतः उसे रोकना होगा ऐसी सलाह गफार खान ने हाजी साहब को दी। विशेष रूप से बनुरवाले मौलवी खतरनाक और विश्वासघात करनेवाले हैं, ऐसा भी उन्होंने हाजी साहब से कहा। लेकिन हाजी साहब को उनकी सलाह जँची नहीं। उन्होंने अपना काम चालू रखा।

गफार खान ने इस मामले का नतीजा पहचानकर घर का रास्ता लिया। थोड़े ही दिनों में हाजी साहब प्रत्यक्ष लड़ाई छेड़ने की तैयारी में थे, तब बुनेरी मौलवियों ने उन्हें गिरफ्तार करके अंग्रेजों की कड़ाई में देने का कांड रचा। इसका सुराग समय पर ही मिला, इसलिये हाजी साहब वहाँ से भाग निकले। उनके जिहाद के प्रयत्नों का इस तरह से अंत हुआ। ये दोनों प्रयत्न, १—जगई केंद्र की स्थापना करने का और २—हाजी साहब के साथ जिहाद खड़ा करने का, गफार खान ने देखे। निष्ठावान कार्यकर्ता उसके पीछे गये और आफत में फँसे। उनकी और काम की हानि किस तरह हुई इसका भी उन्होंने अनुभव किया।

हाजी साहब के जिहाद का अंत शासकों के प्रतिकार की अपेक्षा अंदरूनी झगड़े से हुआ और इस निमित्त शासकों ने इस भाग में जनता को दबाने की जोरदार कार्यवाही शुरू की। उसमें आजाद शालाओं की और शिक्षकों की आहुति भी दी गयी। जो कुछ थोड़ा सा विधायक कार्य शुरू किया गया था, वह कुछ समय के लिये बंद हो गया। इस मनस्ताप में से उतमंजई की बंद शालाओं से गफार खान सबक लेने की चेष्टा करते थे।

इन घटनाओं से उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि जिन आंदोलनों से बहुजन समाज की जाग्रति नहीं होती और उनकी प्रतिकारशक्ति नहीं बढ़ती, वे रास्ते आखिर में भलाई की दृष्टि से उपयुक्त नहीं रहते।

सत्याग्रह के मार्ग पर

१६१४ से १६१७ तक का समय गफार खान ने सशस्त्र प्रतिकार के माध्यम से देशसेवा में व्यतीत किया। इस रास्ते से जाने में स्वाभाविक मर्यादाओं का ज्ञान उन्हें हुआ। विशेष रूप से सिर्फ शासनकर्ताओं के कारण ही नहीं, अपने लोगों की संकुचित वृत्ति के कारण पैदा होनेवाले धोखे और कार्यकर्ताओं के दिलों में हमेशा रहनेवाले डर से उन्हें दुःख हुआ। इस डर के कारण कार्यकर्ताओं के पुरुषार्थ को ठेस पहुँचती है। इसका अनुभव होने पर कार्यकर्ता निर्भय और खुले रास्ते की प्रतीक्षा करते थे। ऐसी ही अवस्था में रौलेट कानून के खिलाफ गांधी जी ने जो आंदोलन खड़ा किया था, उसकी हवा तेजी से पेशावर तक पहुँची और फैल गयी।

भारतीयों का यह खयाल बहुत कुछ गलत था कि वायव्य सीमा प्रांत राजनीतिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ और जंगली लोगों का प्रदेश है। अपने राजकाज की सहूलियत की दृष्टि से शासकों ने वैसी गलतफहमी उत्पन्न कर दी थी। लेकिन इन पहाड़ी पठानों ने अपनी आजादी का खयाल कभी भी नहीं छोड़ा। आजादी की भावना के प्रति श्रद्धा सुसंस्कारिता की पहली सीढ़ी है। आजादी के लिये उनकी लड़ाइयाँ केवल अंग्रेजों के खिलाफ ही थीं, ऐसी बात नहीं है। पश्चिम से अफगानों के हमले हों, या पूरब के मुगल-सिखों द्वारा उनकी आजादी छीनने का प्रयत्न हो, उन सबके खिलाफ पठान लगातार झगड़ते आये हैं। उनका यह प्रतिकार युद्ध सदियों से चला आ रहा है।

अंग्रेजी हुकूमत में भी लोकजागृति के क्षेत्र में वे भारत के अन्य सुधरे प्रांतों की अपेक्षा अधिक पिछड़े हुए नहीं थे। यदि पंजाब को छोड़ भी दिया जाय तो सारा उत्तर भारत शिक्षा की दृष्टि से या राजकीय दृष्टि से बहुत देर में जाग्रत हुआ है और एक सीमा तक वायव्य सीमा प्रदेश का इतिहास ही पंजाब का इतिहास है। यह सीमा प्रदेश की निर्मिति भी ब्रिटिशों की कुटिल राजनीति का ही परिपाक है। मराठों की तरह सिखों को अपने राज्य की विस्मृति कभी भी नहीं हुई थी। पंजाब में वैचारिक और सियासी जागरण से पठानों

को अलग रखने की दृष्टि से आज़ाद पठानों के प्रदेश से सटे हुए बहुसंख्यक मुस्लिम आबादी के इस सीमा प्रदेश में फौजी स्वरूप की व्यवस्था जारी करने के लिये १९०१ के पहले पंजाब का विभाजन किया गया और पंजाब से इन पांच जिलों को अलग किया गया। इसलिये १९०१ के पहले की पठानों की लोकजागृति पंजाब की जागृति ही है। ऐसा होते हुए भी पंजाब का हिस्सा और सीमा प्रांत के पांच जिलों में मुस्लिम आबादी अधिक मात्रा में होने के कारण वहाँ हिंदू मुसलमानों में राष्ट्रीयता की एकात्मक भावना का निर्माण होना महत्वपूर्ण था और इस दृष्टि से जागरण का यह इतिहास उद्बोधक है।

इस विशेष परिस्थिति के कारण ही पंजाब में आर्यसमाज का प्रभाव और विस्तार अन्य प्रांतों की अपेक्षा अधिक हुआ। पंजाब में खानगी शिक्षा संस्थाएँ बहुतायत में आर्यसमाज द्वारा शुरू की गयी हैं। १८९० में लाहौर की दयानंद शिक्षा संस्था की शाखा पेशावर में शुरू हुई। इस शिक्षा संस्था ने ही सीमा प्रांत में राजनीतिक विचारों का बीज बोया। पेशावर की इस शिक्षा संस्था के विद्यार्थियों में बीसवीं सदी के प्रारंभ में तैयार हुई पीढ़ी क्रांतिकारी भावना से कार्यरत हुई। सियासी विचारों से समाज को अलग रखने के लिये शासक तानाशाही चलाते थे और उसके प्रतिकार के लिये अखबार और वक्ता प्रचार करके सजा भुगतते थे। इन आघातों प्रत्याघातों से भारतीय लोक-जागरण और राष्ट्रवाद विकसित होता गया। वही अवस्था पेशावर की शिक्षा संस्था की हुई। अन्य स्थानों की तरह पहले मध्यमवर्गीय हिंदू समाज में शिक्षा का प्रसार हुआ। उस विभाग में बढ़ने वाले इस्लामी धर्मप्रचार का प्रतिकार करना भी आर्यसमाज के काम का एक महत्वपूर्ण अंग था। ऐसा होते हुए भी यह कौमी मनोवृत्ति सियासी विचारधारा के आगे नहीं आ सकी। हाथ में शासन आने का समय आया, तब कौमी फिसाद शुरू हुए और फिर शासन सौंपने में आनाकानी करने की दृष्टि से शासकों ने उसको बढ़ावा दिया।

गफार खान ने सार्वजनिक जीवन में लगभग १९१२ में प्रवेश किया। वह भी ग्रामीण विभाग में शिक्षा शुरू करने के लिये ही, यह ध्यान रखने योग्य है। सन् १९०५ में पेशावर में 'फ्रांटियर ऐडवोकेट' श्री अमीरचंद बंबवाल का अखबार शुरू होकर १९१० में प्रेस ऐक्ट की तानाशाही में बंद हुआ। अमीरचंद के ज्येष्ठ साथी सहकारी पंडित रामचंद्र भारद्वाज गदर पक्ष के प्रमुख

नेताओं में और हरदयाल जी की जगह नियुक्त हुए क्रांतिकारी भी पेशावर की दयानंद शाला के विद्यार्थी थे। १६१४–१५ में गदर के मामले में पेशावर में जो मामले कोर्ट में दायर किये गये, उनमें कई युवकों को मंडाले के कारागार में बहुत समय तक देहदंड भुगतना पड़ा। बाद के गांधीयुग के प्रारंभ में भी (अप्रैल १६१६) पेशावर के कई हिंदू मुस्लिम जवानों ने सत्याग्रह आंदोलन में निडर होकर नेतृत्व किया। उनमें डा० चारुचंद्र घोष, श्री वंत्रवाल, अब्दुल जलील नदवी, मिलाप सिंह आजाद, असलाम खान सांजरी आदि युवक नेता थे। ६ अप्रैल को पेशावर में यकायक बड़ी भारी सभा हुई और कड़ी हड़-ताल भी हुई। इस अनपेक्षित या अद्भुत जागृति के दर्शन से कमिश्नर सर हमिल्टन ग्रैंट और फौजी अधिकारी बिगड़े तथा उन्होंने तत्काल कई नौजवानों पर मामले दायर करके उन्हें सीमापार ब्रह्म देश में भेज दिया। इतना करके ही सरकार रुकी नहीं। जहाँ जहाँ नवजागरण की हवा पहुँची थी और जलसे हुए, उन उन गाँवों पर सामुदायिक जुर्माना किया गया। यह जुर्माना देहातों में खेती और पानी पर लगान के रूप में लगाया गया। पेशावर शहर पर साढ़े चार लाख रुपये जुर्माना किया गया। इस इलाके का गांधीयुग के पहले का यह चित्र है। इसमें हिंदू मुसलमान युवकों ने एक होकर काम किया और कारागार में एक साथ जीवन बसर किया। उनमें से कुछ बूढ़े हिंदू मुसलमान मित्रों के संबंध आज भी मित्रता के और मेलजोल के हैं, ऐसा उनमें से एक प्रमुख सज्जन श्री वंत्रवाल ने ही कहा है।

गफारखान का गांधीयुग का काम इसी समय शुरू हुआ। असहयोग युग की हवा उतमंजई पहुँचने में देर नहीं लगी। गफार खान के स्वातंत्र्य प्रेमी तीव्र आंदोलन का थोड़ा सा परिचय पाठकों को हुआ है। इन प्रयत्नों की त्रुटि और धोखा ही नहीं, उस मार्ग की मर्यादाओं का मूल्य भी बादशाह खान को तत्काल ज्ञात हुआ था।

अप्रैल १६१६ में उतमंजई में भी जलसे हुए। वहाँ भी ७० मुसलमान और ४० हिंदू इस तरह ११० कार्यकर्ता पकड़े गये। ३० हजार रुपये सामु-दायिक जुर्माना हुआ और उसके बदले एक लाख रुपये वसूल किये गये। फिर भी कार्यकर्ता जेलों में ही थे। लेकिन कमिश्नर रूसकेपल ने उन्हें रिहा किया। वह पठानों को ठीक तरह से पहचानता था और सीधा भी था। ऐसा दिखता है कि कार्यकर्ताओं को दी हुई यह सजा नाममात्र की थी, ६ अप्रैल से २४ अप्रैल तक केवल अठारह दिन की। पेशावर जैसे फौजी

व्यवस्था के जिले में शांति के आंदोलन की यह आग जंगल की आग सी सुलगती गई या कोमल उपमा देनी हो तो कहा जायगा कि टूटे हुए बाँध से प्रवाहित जल की तरह फैलती गई। बादशाह खान का भूमिगत काम अधिक प्रमाण में अज्ञात स्वरूप का था। लेकिन वे स्वयं जल्द ही सब पर प्रकट हो गये। पेशावर की सभा और बैठकों में वे उपस्थित रहने लगे। अन्य प्रांतों के बड़े बड़े मुस्लिम नेताओं से संबंध पहले से ही था।

इन नौजवान कार्यकर्ताओं में रामचंद्र सूद को जेल में इतना पीटा गया कि उनकी जान का खतरा पैदा हो गया। ऐसा मालूम होते ही अधिकारियों ने उनसे जुर्माना वसूल होने के पहले ही उन्हें रिहा कर दिया। रिहाई के बाद तुरंत ही उनकी मृत्यु हुई। उतमंजई का यह पहला शहीद था। बादशाह खान का जुर्माना जल्द ही वसूल हुआ। उसके बाद ही उनके सभा प्रचार का जोर बढ़ा। पंजाब के कई स्थानों की तरह पेशावर के हिस्से में भी फौजी कानून (मार्शल ला) लागू किया गया। इससे और अफगान के अमीर अमानुल्ला के हमलों की लगातार खबरों के कारण गफार खान के कुछ साथी आजाद मुल्क में भाग खड़े हुए। गफार खान के मन में भी वैसा विचार एक मर्तबा आया, लेकिन उनको उस रास्ते से बैराम खान पृथक् करके वापस लाये। पेशावर और उसके इर्दगिर्द के प्रदेश में प्रचार के कारण पुलिस की नजर बादशाह खान पर थी ही। लेकिन खानों की खेती जिस आजाद मुल्क में थी, उस मामंदनाड में उनके वालिद ने उन्हें स्थानबद्ध करके रखा। वहाँ से वे रात में आया जाया करते थे। लेकिन उनकी मामंदनाड की स्थानबद्धता (पिता जी की आज्ञा) अधिक समय तक टिक नहीं सकी। वे जल्द ही पकड़े गये और मर्दान पहुँचाये गये। उनका मामला पेशावर के फौजी न्यायालय में चलाया गया और उन्हें छः महीने की सजा हुई। इस मामले में कोई भी साक्षी नहीं था। खुद गफार खान ने पूछा था कि "हमने केवल सभाओं में शांति के प्रस्ताव पास किये, इसमें क्या अपराध है?" दूसरे एक मामले में मुजरिम को गफार खान के खिलाफ गवाही देने के लिये कहा गया कि "गफार के कहने से मैंने तार तोड़े, ऐसी गवाही दो तो तुम्हें हम रिहा करेंगे"। लेकिन वह वैसी गवाही देने के लिये राजी नहीं हुआ। अर्थात् न्यायासन के सामने गवाह या सबूत पेश करने की उस समय आवश्यकता भी नहीं थी। बाद में वह मुजरिम कैदखाने में मिला, तब उसने यह वाक्य गफार खान को सुनाया। उन्हें उस वक्त छः महीने की सजा हुई थी। उनके पैरों में जो बेड़ियाँ मर्दान जेल में डाली गयीं, वे उनके पैर से छोटी थीं फिर भी वे वैसी ही ठोंककर बंद की

गईं जिससे उनके पैर के माँसल भाग में वे घुस गईं और वे खून से लथपथ हो गये। वहाँ के गोरे अधिकारी ने उपहास से उनसे कहा—"जल्द ही इसका तुम्हें अभ्यास हो जायगा।" गफारखान ने इन सारे अत्याचारों को और अधिकारियों की अपमानजनक बातों को संयम से सह लिया।

उनके बाद उनके पिता जी को भी उसी जेल में लाया गया। लड़के को जिंदा देखकर उन्हें खूब आनंद हुआ, क्योंकि ऐसी अफवाह थी कि उनके लड़के को गोली का शिकार बनाया गया है। इस पहली जेलयात्रा के प्रारंभ के छः महीनों में उनका वजन ५० पौंड गिर कर २५० पौंड से २०० पौंड पर आया, लेकिन इस शारीरिक वजन की जोड़ बाकी की तुलना में जनता में उनकी जो प्रतिष्ठा बढ़ी थी, वह हजारगुना बड़ी थी। इसका फल उन्हें तुरंत मिला। उनकी रिहाई के बाद उतमंजई के सब कार्यकर्ताओं की सभा हुई। उस सभा में एक बड़ा जिर्गा भरकर 'बादशाह खान' याने पठानों के बादशाह का खिताब उन्हें दिया गया। इसमें खास बात तो यह थी कि इस सजा में उनके बूढ़े पिता को भी हिस्सेदार बनाया गया। मोतीलाल जी जिस तरह जवाहरलाल जी की वजह से जेलयात्री हुए, वैसा ही इनके बूढ़े पिता बैराम खान के बारे में हुआ था। उन्होंने भी तीन महीने की सजा शांति से अपने लड़के के साथ व्यतीत की।

१९२० में भारत में सत्याग्रह प्रक्षोभ की लहर बढ़ रही थी। ब्रिटिशों के साम्राज्यवादी रवैये के कारण तुर्की साम्राज्य और अन्य मुसलमान राज्यों के टुकड़े टुकड़े किये गये, इससे खिलाफत आंदोलन का जोर बढ़ा। मुसलमान धर्म की रक्षा के लिये खड़े किये गये आंदोलन का नेतृत्व एक हिंदू को दिया जाता है और मौलवियों के साथ साथ स्वामी और पंडित मसजिद में व्याख्यान देते हैं, यह अजनबी चित्र देखकर शासक असमंजस में पड़ गये। खिलाफत का यह आंदोलन तेजी पर था, फिर भी हजारों मुसलमानों ने इस ख्याल से कि भविष्य में इस देश में मुस्लिम धर्म की इज्जत नहीं होगी, मुसलिम देशों में बसने का विचार किया। 'हिजरात' नाम से यह आंदोलन जाना जाता है। जहाँ इस्लाम का राज नहीं, जहाँ इस्लाम इज्जत से रह नहीं सकता और इस समय धर्म-युद्ध करना ताकत के बाहर है, ऐसे राज्य में धर्मनिष्ठ मुसलमान न रहें, ऐसी धर्माज्ञा है। उस आज्ञा के अनुसार सिंध, पंजाब इलाके के करीब १० हजार मुसलमान काबुल के रास्ते लग गये थे। अपना मकान, जायदाद और सैकड़ों साल से पड़ोसी के नाते जो संबंध बने थे, वे तोड़ कर देशांतर के

लिये प्रोत्साहित करनेवाले इस कड़े निश्चय की कल्पना आसानी से नहीं की जा सकती। सैंकड़ों लोगों के काफिले पेशावर की ओर जाते हुए मैंने बचपन में देखे हैं और वह नजारा अभी भी भूला नहीं जाता है, ऐसा वर्णन बादशाह खान के एक चरित्रकार ब्राइट ने किया है। अफगान के अमीर अमानुल्ला हाल ही में गद्दी पर बैठे थे। उन्होंने भी घोषणा की थी कि अंग्रेजों के चंगुल से अफगान राज्य को आजाद करना पहला कर्तव्य है। हिंदी नेताओं से इकरारनामे करने के संबंधी कागजात दिल्ली के अफगान वकील मंडल में पाये गये थे, ऐसा इल्जाम भारत सरकार की ओर से अमानुल्ला पर लगाया गया। इसी से १६१६ में अफगान और भारत के बीच में प्रत्यक्ष युद्ध की गोलियाँ चलीं थीं। भारत सरकार ने उस समय की हिंदुस्तान की हालत को ध्यान में रखते हुए अमानुल्ला के सामने झुककर सुलह की बातें कीं। ऐसा नहीं है कि अफगान और अंग्रेजों की आपसी तंग वातावरण की हकीकत हिजरात करनेवाले धर्मभक्तों तक पहुँची नहीं होगी।

बादशाह खान के लिए ऐसी प्रलोभक घटनाओं से अलग रहना संभव नहीं था, उन्होंने अपने पिता जी को उसमें हिस्सा लेने से परावृत्त किया!

शुरू शुरू में अंग्रेजों ने इस मोहाजरीन आंदोलन का काफी विरोध किया, लेकिन बाद में यह नीति बदलकर उसको प्रोत्साहित किया गया। इन आजादप्रिय यात्रियों में कुछ खुफिया सरकारी हस्तक भी घुसेड़ दिये गये। इन यात्रियों को रास्ते में और काबुल पहुँचने पर काफी दिक्कतें उठानी पड़ीं। लेकिन अमानुल्ला ने उनका स्वागत किया और उन्हें मदद भी पहुँचायी। ये यात्री वहीं स्थायी रूप से बसने की सोचने लगे, तब अमानुल्ला ने उन्हें सलाह दी, 'स्वतंत्र बस्ती बसाओ और इस केंद्र से अंग्रेजों से लड़ो। तुम यहाँ जमीन जायदाद खड़ी करने के लिये आये हो या तुम्हारा विचार जिहाद करने का भी है' ऐसा सवाल मीर अमानुल्ला ने किया। इस मुकाम में बादशाह खान और अमीर की मुलाकात हुई, अमानुल्ला को पश्तू भाषा का ज्ञान नहीं था। राज्य में पश्तू भाषा की पढ़ाई नहीं होती थी। इस सिलसिले में बादशाह खान ने उन्हें छेड़ा। 'स्वदेश जाकर लोगों को संघटित करना उचित होगा। अमीर की यह सलाह बादशाह खान को भी जँची। 'अंग्रेजों ने भारत पर अपनी भाषा थोपी। उसके भयानक परिणाम हुए हैं, लोगों को अपनी भाषा में सारा कामकाज चलाना चाहिये। बादशाह खान के ऐसे कथन का अमानुल्ला के दिल पर असर हुआ। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने

खुद बाद में पश्तू का अभ्यास किया। उस भाषा में अखबार चलाये। वहाँ के मुकाम में बादशाह खान हबीबिया विद्यालय गये। वहाँ के विद्यार्थियों से सवाल किया कि, 'तुम्हारी भाषा कौन सी है?' जवाब आया अफगानी'। पश्तू भाषा सामान्य लोगों की भाषा है, उसका प्रचार होना जरूरी है ऐसा उन्होंने उस भेंट में कहा। 'हिजरात' से वापस लौटने पर बादशाह खान ने बाजौर के आजाद मुल्क में कुछ समय तक मुकाम किया। वहाँ रह कर शिक्षण संस्था शुरू करने का उनका विचार था। इस संकल्प के अनुसार उन्होंने खालों में शाला शुरू की। फिर से अंतर्मुख होकर विचार-मंथन करने में उनका यह समय व्यतीत हुआ। खालों में शुरू की हुई शाला भी बहुत दिनों तक नहीं चल सकी, क्योंकि मालकंड के ब्रिटिश एजेंट ने दीर के नवाब पर दबाव डाल कर शाला बंद करवा दी। यह शाला बंद होने के बाद लोगों की स्थिति का निरीक्षण करने के लिये उन्होंने फिर बाजोर दीर हिस्से में भ्रमण किया। इस हिस्से में दिन काटने के पीछे हिजरात से वापस आने का असर ग्रामजनों पर क्या होता है, इसकी खोज करना था। उसके अनुसार उन्होंने अपने एक सहकारी महंमद अब्बास खाँ को उतमंजई भेजा। मोहाजरीन से वापस आने के बारे में लोगों की प्रतिकूल मरजी हुई है ऐसा उन्हें मालूम हुआ। लेकिन बहुत बड़ी तादात में लोग वापस आये इस कारण से अधिक तकरार नहीं हुआ होगा। 'इस आंदोलन से पठानों को आर्थिक और शारीरिक नुकसान पहुँचा' बादशाह खान ने ऐसा मन्तव्य प्रकट किया था। प्रतिकार के हर आंदोलन में सहायता पहुँचाना, आंदोलन की सफलता असफलता को निडरता से आँकना, असफलता का खेद न करना और भविष्य में नियमित शिक्षा का कार्य चलाना यह बादशाह खान का सामान्य कार्यक्रम था। यह सिलसिला गाँधी जी के सत्याग्रह आंदोलन और उसकी तैयारी के लिये विधायक काम से मिलता जुलता था। हिजरात के इन अनुभवों और बाजौर दीर विभाग के निरीक्षण में १९२० ई० का साल निकल गया।

सन् १९२१ के आरंभ में बादशाह खान ने फिर अपनी शिक्षा संस्थाओं के दरवाजे खोलने का निश्चय किया। लेकिन इस मर्तबा सिर्फ लड़कों के शालेय शिक्षण पर संतोष न मानते हुए सामाजिक सुधार और उसके प्रचार की तरफ भी ध्यान देने का उन्होंने सोचा। १९१७ से १९२० के दौरान किये गए भूमिगत काम और छोटे बड़े सशस्त्र प्रतिकार के संघटन का अनुभव उन्होंने कर लिया था। उसपर से उन्होंने अपने निजी सिद्धांत बना लिये थे

और उसके अनुसार आगे की नीति तय की थी। इन सिद्धांतों में पहला और महत्व का शासकों के खिलाफ जो आंदोलन करना है, वह खुल्लमखुल्ला हो, विदेशी सत्ताधारी हमें नहीं चाहिये और लोगों को यह निर्भय रूप से कहने के लिये तैयार रहना चाहिये। इस नई नीति की उन्होंने अपने सहकारियों से चर्चा की और अंजुमने ई इहलात अल अफगान' संस्था स्थापित की।

बादशाह खान की इस संस्था का उद्देश्य देहाती लोगों में संघटन करना था, यह फर्क भी ध्यान में रखना जरूरी है। भारत और वायव्य सीमा प्रदेश में पूर्ववर्ती कार्य पहले मध्यमवर्ग के लोगों की जागृति का माध्यम था। जागृति का मसला लोगों के आखरी स्तर तक पहुँचे बगैर विदेशी सत्ता की जड़ नहीं उखाड़ी जा सकती, यह काम लोगों को निडर करने से ही होगा, इसे गाँधी जी द्वारा निर्माण किये गए प्रचंड जागृति और खुद के अनुभव से बादशाह खान ने ठीक-ठीक पहचान लिया था।

इस दृष्टि से उतमंजई और इर्द गिर्द के देहातों के लिये १९२१ में उन्होंने आजाद शाला शुरू की। पहले के विद्यार्थियों में से कुछ अब बड़े हो गए थे; वे बतौर शिक्षक के उन्हें मिले। लेकिन संस्था के पास धन नहीं था। कम मुआवजे पर काम करनेवाले त्यागी कार्यकर्ताओं के अभाव में भी नई शालाओं का कार्य प्रारंभ हुआ। खुद बादशाह खान भी शिक्षक का काम करते थे। लेकिन उनका अधिक समय बाहर के संघटन में जाता था। उस समय उनको साथी मिले थे काजी अताउल्ला खाँ जो आगे जाकर उस प्रांत के पहले मंत्रिमंडल में मशहूर हुए। काजी साहब जैसे बुद्धिमान थे, वैसे ही विवेकी और भरोसे के थे। उन्हीं जैसे मिया अहमदशाह हाजी, अब्दुल गफूर खाँ (चचेरे भाई) अबदुल अकबर खान, महंमद अब्बास खान, ताज महंमद खान आदि नौजवान मददगार के रूप में इकट्ठे हुए थे। उनके परिश्रम से शिक्षा संस्था का जाल थोड़े ही समय में फैल गया। लेकिन शासकों को उस काम पर तुरंत रोक लगाना जरूरी लगा। और इसलिये एक साल पूरा होने से भी पहले ही इन सब शिक्षण संस्थाओं पर ताले लग गये। बार बार संस्था खड़ी करना और उनका शासकों की ओर से कुचला जाना उसी प्रकार था, जैसे लड़कों का ताली लगाने का खेल। शिक्षा के साथ साथ जन जागरण के काम का गफार खान ख्याल रखते थे और इसीलिये उनका काम लोगों में जड़ न जमा पाये इसलिये शासकों की ओर से सदा दौड़ धूप चलती थी।

इस मर्तबा उनका प्रयास था कि शिक्षा और समाज सुधार की ही तरह लोगों को व्यापार, उद्योग धंधों में भी रस लेना चाहिये। पठानों का प्रश्न

मूलतः आर्थिक स्वरूप का है, खेती के लिये उनके पास जमीन कम है, अन्य उद्योग धंधे नहीं हैं, पानी का सब जगह अभाव है, ऐसी परिस्थिति में पहाड़ों, दर्रों में रहकर पड़ोसियों का माल चुराने का एक मात्र व्यवसाय बाकी बच रहा है। लेकिन गांवों में बस्ती बनाकर रहनेवाले पठानों में कुछ भी उद्योग न करने का संस्कार है। उनमें भी सूद पर पैसे का लेन देन करने, धर्मबाह्य कार्य और व्यापार करना भी उन्हें मान्य नहीं था। इसलिये सारी पठान बस्ती में साहूकारी और व्यापार करने वाले केवल हिंदू हैं और वे पीढ़ियों से वहाँ चैन से रहते हैं।

पठानों के विचार बदलें और उनकी माली हालत सुधरे, इसके लिये बादशाह खान ने उतमंजई में एक छोटी व्यापारी पेढ़ी निकाली। एक दुकान भी चलायी। उनके इन प्रयत्नों के फलस्वरूप विरोधियों ने हिंदू व्यापारियों में गलतफहमी फैलाने की कोशिश की। लेकिन ये सब प्रयत्न एक साल में ही बंद करने पड़े।

ऐसा दीखता है कि १९२० के आखिरी में हिजरात से वापस आते ही बादशाह खान अलीगढ़ के खिलाफत जलसे में हाजिर हुए थे, लेकिन वे बैठकों में हाजिर नहीं रहे। वहाँ इकट्ठे हुए पठानों के अन्य मुखियों से उन्होंने अपने संघटन के विषय में विचार विमर्श जरूर किया। खिलाफत आंदोलन को देखने की उनकी एक विशेष दृष्टि थी। केवल धर्म के नाम पर आस पास के अपने समाज के दुखों को नजर अंदाज करने की नीति उन्हें मंजूर नहीं थी। ऐसा वे कहते थे कि जैसे अपने घरेलू प्रश्नों की अपेक्षा दुनिया भर के प्रश्नों के पीछे लगने की आदत हिंदुओं की है, वैसा न करते हुए अपने निजी सवालों का ठीक से ख्याल किया जाय तो आजादी नजदीक आएगी। इसीलिये पेशावर हिस्से में खिलाफत की शाखा थी, फिर भी उसमें वे विशेष रस नहीं लेते थे। १९२१ में लाहौर की खिलाफत बैठक में वे उपस्थित थे, लेकिन वहाँ वे प्रमुख मुसलमान नेताओं की तकरीरें उन्हें अच्छी नहीं लगीं। लाहौर में उन्होंने अपनी शालाओं के लिये मात्र दो शिक्षक प्राप्त किए। विधायक काम का आकर्षण उनमें विशेष रूप से था। लाहौर से लौटने पर पेशावर के कार्यकर्ताओं में फूट टालने के लिये ही दोनों गुटों की प्रार्थना पर उन्होंने वहाँ की खिलाफत कमेटी का सदर बनने का प्रस्ताव मान लिया। संस्था का पैसा शिक्षा के लिये इस्तेमाल करने की शर्त पर उन्होंने सदर का पद ग्रहण किया। खिलाफत में धनवान लोग थे, इसलिये बादशाह खान की शिक्षण संस्थाओं की आर्थिक चिंता कुछ दूर हुई। शालाओं की आर्थिक

चिंता से कुछ मुक्त होने और खिलाफत की हवा तेज होने के कारण उसका फायदा उठा उन्होंने देहातों में घूम फिर कर काफी प्रचार किया। उनका यह काम भी जल्द ही सरकार के पास दर्ज हुआ और ये उसकी आँखों पर चढ़े। अधिकारियों ने निश्चयानुसार बूढ़े बैराम खान पर दबाव डालने का प्रयत्न किया। लेकिन उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। अब गफार खान इतने छोटे नहीं रहे कि किसी के दबाव में आ सकें। पिता जी और माता जी के प्यार के आगे वे मोम हो जाते थे, लेकिन देश प्रेम और अन्यायी शासकों के बारे में उनके मन में चिढ़ थी, इसलिये उनका वह कोमल भाव भी दिनोत्तर बड़ा बनता चला गया। वे किसी का कहना नहीं मानेंगे, यह सोचकर कमिश्नर मेफी ने उनपर स्वयं दबाव डालने का प्रयत्न किया, लेकिन आखिर में अदालत में मामला दर्ज किया गया और बादशाह खान को तीन साल की लंबी सजा सुनायी गयी।

इस तरह उन्होंने १९२१ में जैसे तैसे आजादी का अनुभव किया। इस स्वतंत्रता का उन्होंने लोगों को संघटित करने में पूरा पूरा उपयोग किया। बाजौर हिस्से से उतमंजई पहुँचने के बाद उन्होंने काम शुरू किया। उन्होंने जेल जाने के दिन तक सही माने में रात दिन काम किया। अपने जिले के हर देहात में जाने की उन्होंने चेष्टा की। दूसरी शादी तय हुई उस वक्त भी उन्हें, कुछ समय के लिये ही सही, पुलिस चौकी देखनी ही पड़ी थी। ऐसा दीखता है कि शादी होते ही काबुल के रास्ते पर ही सप्तपदी की रस्म अदा की और वापस आने पर रात दिन सफर और संघटन का प्रचार किया, साल पूरा होने के पहले तीन साल की सजा। उनकी यह जीवन यात्रा याने जंगल में लगी आग में अनुभव की गयी सेहेल का जो ऊपर जिक्र किया है, वह सार्थक नहीं है, ऐसा कौन कहेगा? इनके माता पिता के लिये यह रोजमर्रा की चीज हुई होगी, लेकिन उनकी दूसरी पत्नी की भावनाओं की क्या स्थिति हुई होगी! असली देशसेवा असिधाराव्रत ही है। यह उक्ति ऐसे महापुरुषों के बारे में ही सच होती है और उनके परिवार का अदृश्य त्याग भी उतना ही महत्व का तत्व होता है।

बादशाह खान की यह सजा 'जेलबर्ड' कहलाने के लिये काफी है। 'जेलबर्ड' शब्द बार बार जेल में जानेवाले कैदी के लिये इस्तेमाल किया जाता है। बार बार अपराध करके जेल में खुशी से रहनेवाले पक्षी की तरह वह 'जेलबर्ड' नहीं हैं, यद्यपि राजबंदियों को कानून के अनुसार सजा दी जाती है, पर सीमाप्रांत में तो अंग्रेजों ने एक सर्वसामान्य कानून बना रखा था।

उसमें चाहे जितनी सजा दी जा सकती थी। खान की यह तीसरी सजा कही जा सकती है, क्योंकि सामूहिक जुर्माने के लिये भी उन्हें जेल हुई थी (१६१८)। लेकिन उस वक्त वे कितने दिन के लिये जेल में थे. उसका ठीक से पता नहीं लगता। रौलेट ऐक्ट (१६१६) आंदोलन के समय ६ महीने और इस समय (१६२१) तीन साल की सजा हुई। पहली बार की जेल की सजा के बारे में ठीक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

खुद बादशाह खान ने ही जेल के अपने अनुभव, जेलों में सुधार करने की दृष्टि से अपने 'पख़्तून' पत्र में (१६२८) में प्रकाशित किये थे।

१६२१ के दिसंबर महीने में उन्हें यह सजा मिली; ऐसा दीखता है कि वे पहले मियाँवाली जेल में थे (यूनुस) लेकिन उनके साथ जेल भुगतनेवाले पंजाब के पुराने नेता लाला दुनीचंद द्वारा लिखी यादगारों में (फ्रंटियर मेल, नेहरू अंक, देहरादून १६६१) डेरा गाजी खान जेल में हम इकट्ठे थे; ऐसा वर्णित है। खुद बादशाह खान द्वारा लिखे गये वर्णन में डेरा गाजी खान जेल का उल्लेख है, साथ ही यह वर्णन भी है कि रात दिन हाथ पाँव में मोटी बेड़ी और गले में लोहे का कड़ा पहने अपने छोटे लड़के को देखकर उन्हें रुलाई आई, लेकिन लाला दुनीचंद के वर्णन में यह हिस्सा नहीं है। इसलिये मियाँवाली का यह वर्णन हो सकता है, जो सजा के पहले २-३ महीने का हो। अलग एक कमरे में बंद रहने की सजा, रोजाना १५-२० सेर पिसाई आदि का वर्णन उनके लेखों में भी है। इन सब शारीरिक तकलीफों के बारे में उनके मुँह से कुछ भी न निकला। इतना ही नहीं, जिन अधिकारियों को उनकी तकलीफों के बारे में दुख होता था, उन्हें समझाने का भी वे प्रयत्न करते थे। अनुशासन के सब नियमों का वे कड़ाई से पालन करते थे, यद्यपि जेल के काले कारनामे के बारे में आवश्यक प्रचार भी वे करते थे, ऐसी हालत में कैदियों की बदली इधर से उधर करते रहना ही जेल के अधिकारियों के हाथ में था। इसीलिये उन्हें मियाँवाली, डेरा गाजीखान और गुजरात (पंजाब) की जेलों में घुमाया गया।

दुलीचंद ने अपने संस्मरण में लिखा है कि '१६२२ से लेकर विभाजन के समय तक जेल में और जेल के बाहर मेरा उनसे लगातार संबंध रहा, उनके बारे में आदर और श्रद्धा लगातार बढ़ती गयी'। जेल में किसी भी लालच में न आकर और कोई भी सहूलियत न लेते हुए उन्होंने दिन काटे। उल्टे कई अपराधियों को, रिश्वत लेनेवाले अधिकारियों को और गरीब मुलाजिमों को उन्होंने सही रास्ते पर चलाया। वे सामान्य जीवन के समान ही बंदी जीवन

को भी आदर्श रखनेवाले धीरोदात्त पुरुषों में से हैं। इस बंदी जीवन के दौरान उन्होंने जेल के नियमों का उल्लंघन कभी भी नहीं किया या खुद के लिये किसी से सहूलियत की याचना नहीं की।' 'जिसे सिद्धांतों का पालन करना है, उससे कभी भी समझौता नहीं करना चाहिये। छोटी छोटी बातों में समझौता करने लगें तो उसका अंत स्वाभिमान गँवाने में होता है।' छोटी छोटी सहूलियतें प्राप्त करने के लिये सियासी कैदी भी कैसी कैसी लाचारी बताते हैं, पुलिस से पैसे के बल पर कैसे काम करवा लेते हैं, इसके अनुभव बहुतेरे राजबंदियों को होते हैं, लेकिन पुलिस को किसी भी सूरत में भ्रष्ट नहीं होना चाहिए, ऐसा खान साहब उपदेश दिया करते थे। उन्होंने अधिकारियों की रिश्वतखोरी के विरोध में उपदेश दिये थे। उनके उपदेश के फलस्वरूप और मिलनेवाले वेतन में गुजारा न होने के कारण जेल के एक सिपाही ने इस्तीफा दे दिया। इन सारी बातों के कारण बादशाह खान जेल अधिकारियों के लिये भी एक समस्या बन गये थे। उनके ही कुछ राजबंदियों को यह चारित्रिक अनुशासन नहीं रुचता था। आखिर में उन्हें उस जेल से निकाल कर गुजरात (पंजाब) जिले के जेलखाने में भेजा गया।

बदल कर गुजरात जेल में आने के पश्चात् उनका संपर्क पंजाब के अन्य राजबंदियों से हुआ। वहाँ उन्होंने गीता और ग्रंथ साहब इन दो ग्रंथों का अध्ययन करने का निश्चय किया। आपस में धर्मग्रंथ और धर्म भावनाओं की सही कल्पना होगी तो परस्पर स्नेहभाव बढ़ने में मदद होती है। इस भावना से हिंदू, मुसलमान और सिख कैदियों ने गीता, कुरान, ग्रंथसाहब और बाइबिल का अध्ययन एक दूसरे की सहायता से करने का निश्चय बादशाह खान के सुझाव पर किया। धर्मग्रंथों के अध्ययन का कार्यक्रम कुछ दिन चलता रहा, लेकिन अभ्यासियों के अभाव से वह जल्द ही बंद करना पड़ा। खुद उन्होंने इन धर्मग्रंथों का अध्ययन चालू रखा। अपने अन्य धर्मावलंबी मित्रों के प्रेम के लिये तो हरेक को इतना करना ही चाहिये, ऐसी उनकी मान्यता थी। 'बार बार पढ़ने पर भी मैं गीता नहीं समझ सका। मैं अपरिपक्व था, लेकिन बाद में सन् १९३० में अंदमान से वापस आये हुए प० जगतराम ने मुझे उसे अच्छी तरह से समझा दिया, ऐसा वे कहते थे। खुद उन्होंने अन्य बंदी बांधवों को इस्लाम धर्म के महान् तत्व समझाये। कुछ मुसलमान बंदियों के लिए भी यह जानकारी नई थी। उनके इस व्यापक दृष्टिकोण के कारण कार्यकर्ताओं को परस्पर आदरपूर्वक समीप लाने में वास्तविक मदद मिली।

वे कहते हैं—'धर्मनिष्ठा यदि मानव के आचरण में प्रकट नहीं हुई तो वह निष्ठा कैसी ? आदमियों के सिर गिनकर या मतों की संख्या पर धर्म का सामर्थ्य मैं नहीं आंकता । इस्लाम याने कार्य, श्रद्धा और प्रेम। एक ही परमेश्वर पर श्रद्धा रखकर अच्छे काम करने से मुक्ति मिल सकती है, ऐसा कुरान शरीफ में स्पष्ट लिखा है।' वे कहते हैं—'हर धर्म में उस धर्म के अनुयायियों को स्फूर्ति या मुक्ति देने की खूब ताकत है। इसकी ठीक अनुभूति न होने से ये झगड़े खड़े होते हैं। सब लोगों के लिये और सब देशों के लिये परमेश्वर अपने प्रतिनिधि भेजा करता है और वे उस देश के धर्मनेता (प्रॉफिट्स्) होते हैं। वे सब अधिकारी पुरुष होते हैं (अहल-इ-किताब)। ऐसा पवित्र कुरान में स्पष्ट कहा गया है। इससे भी आगे जाकर मैं यह भी कहता हूँ कि सब महजब के मूलभूत तत्त्व एक ही हैं। तफसील में तफावत होती है। जिस प्रदेश में जो धर्म उदित होता है, वहाँ की परिस्थिति का उस पर प्रभाव पड़ा रहता है। इसलिये यह फर्क होता है। इस सजा के दौरान में गीता का अध्ययन मुझसे ठीक ढंग से नहीं हो सका। यह विषय दिमाग में बैठता ही नहीं है।' ऐसा वे कहते थे। ग्रंथसाहब और बाइबिल का भी उन्होंने आदर से अध्ययन किया। केवल वहाँ जेंदअवेस्ता नहीं मिल सका या उसकी जानकारी देने वाला कोई नहीं मिला, अतः वह विषय छूट गया।

निरंतर लोकसेवा बादशाह खान का स्थायीभाव और निर्भयता उनकी शक्ति है। दीन दुखी लोगों के बारे में प्रेम उन्हें शांत नहीं बैठने देता। इसलिये कोई भी दिक्कत उन्हें उनके धर्म कार्य से या लोकसेवा से अलग नहीं रख सकी। तीन साल की लंबी अवधि के कारावास से मुक्त होते ही उन्होंने फिर अपना कार्य दुगने जोश से शुरू किया। बंदी जीवन में उन्होंने तकलीफों का मुकाबला किया और उस जमाने में भी जेल में देशसेवा की। पठानों के कानों तक और वहाँ से उनके हृदय तक उनकी सेवा का संदेश पहुँचना अपरिहार्य ही था। इसलिये वहाँ लोकप्रेम की लहर का ज्वार आया हो तो इसमें अचरज की क्या बात है? उनके छूटकर आते ही उतमंजई में एक बड़ा भारी जिरगा जमा। इस जिरगे में करीब करीब सब विचारधारा के पठानों के प्रमुख एकत्र हुए। उसी तरह बादशाह खान के अब तक के समाज सेवा से आकर्षित नौजवान कार्यकर्ता भी हजारों की तादात में इकट्ठे हुए। इस महासभा में बड़े प्रेम से उनका सम्मान किया गया और उस वक्त उन्हें 'फख्रे अफगान' का खिताब दिया गया। पहली सजा के बाद उन्हें नया खिताब देकर भविष्य की दिक्कतों का श्रीगणेश किया गया। उनका सारा जीवन सिर्फ दिक्कत भरा ही

नहीं, जुल्मों अत्याचारों से व्याप्त और कई बार तो मौत के घाट से उतरा हुआ भी है।

सन् १९२४ भारत के लिए कौमी दंगों की दृष्टि से भयंकर सिद्ध हुआ। उसके साफ कारण भी हैं। १९२० में खिलाफत आंदोलन से एकता परमोच्च चोटी तक पहुँच गयी तो उतनी ही तीव्रता से उस एकता को छिन्न भिन्न करने वाली घटनाएं केवल तीन साल में ही प्रारंभ हो गईं। इन दंगों और अत्याचारों के पीछे शासकों का हाथ कितना और कैसा था, यह अब दुनिया में जाहिर हो गया है। इन झगड़ों में ही अपना स्थैर्य जानकर उसको बढ़ावा देने वाली केवल अंग्रेजों की नौकरशाही ही नहीं थी, अपितु इंगलैंड के सुविख्यात माने जानेवाले उस समय के भारत के वाइसराय महान कायदेआजम लॉर्ड रीडिंग भी थे। सियासी मामले अदालत में दायर करते समय भी मुसलमान नेताओं पर पहले मामले दायर न किये जायँ, 'हिंदू नेताओं पर मामले दाखिल करने के बाद मुसलमान नेताओं पर मामले दायर करने में हर्ज नहीं है न?' ऐसा सवाल इस न्याय निष्ठुर गवर्नर जनरल ने गांधी जी और हसरत मोहानी पर जो मामले दायर किये गये, उसके संदर्भ में किया था। अन्य प्रांतों में असहयोग आंदोलन कुचलने के लिये जो रवैया अख्तियार किया गया वही वायव्य सीमा प्रांत में भी हुआ। सीमा प्रांत के भावी गांधी, महात्मा गांधी से थोड़े दिन पहले जेल में ठूँसे गये। (गफार खान शिक्षा ३ वर्ष, दिसंबर १९२१, गांधी जी शिक्षा ६ साल, मार्च १९२२)। जन-विश्वास-पात्र इन नेताओं को जेलों में भेज कर देश की एकता को आग लगाने के प्रयत्न बाकायदा शुरू हुए। गांधी जी के जेल जाने के बाद खुद कांग्रेस में फेर ना फेर की चर्चा कायदे मंडल के बहिष्कार के सिलसिले में शुरू हुई और खुद कमालपाशा जैसे क्रांतिकारी तुर्क नेता द्वारा खिलाफत को बरबाद करने के कारण खिलाफती नेताओं में बेहद विफलता का वातावरण फैल गया। मुसलमान समाज की इस उभड़ी हुई भावना का उपयोग उनमें फूट डालने में किया गया। १९२४ में दोनों गांधी जेल से बाहर आये और १९२० में देश में हिंदू मुस्लिम एकता की जहाँ धुन और मस्ती पैदा की गई थी, वहीं इसी भारत के मन में परस्पर शंका पैदा हो गयी। ऐसा लज्जास्पद वातावरण १९२३–२४ में सब जगह फैल रहा था। मलाबार, मुलतान, सहारानपुर, गुलबर्गा के कौमी फसादों और भीषण अत्याचारों के कारण पहले से ही छाये हुए वातावरण में सीमाप्रांत के कोहाट के दंगे छिड़ गये (१० सितंबर १९२४)। बादशाह खान के इस प्रांत में ९५ फीसदी मुसलमान होते हुए भी वहाँ कौमी फिसाद

ज्यादा मात्रा में नहीं होते थे या अधिक टिकते नहीं थे। जो चोरियाँ या डाकाजनी हुआ करती थी. वह पठान बनाम अंग्रेजी राज या पठान बनाम हिंदू मुसलमान साहूकारों के स्वरूप की थीं। अंग्रेजी मुल्क पर किये गये पठानों के हमलों के समान ही पठानों के हिंदुओं पर किये गये हमले का नजारा खड़ा कर अंग्रेज शासक प्रचार करते थे। कोहाट के दंगों का भारत पर क्या असर हुआ था, इसकी कल्पना उस वक्त के अखबार खोल कर देखने से की जा सकती है।

गांधी जी और अलीबंधु के मतभेद और उसके बाद खिलाफत के नेताओं की राय विपरीत दिशा में बदल जाने के कारण कोहाट का नाम भारत के इतिहास में लाल स्याही से लिखा रहेगा। कोहाट का वातावरण तंग होता देख कर पेशावर के अगुवा हाजी जानमहंमद और पंडित अमीरचंद बंबवाल वहाँ गये और दोनों दलों के नेताओं में सुलह हुई। लेकिन फिर वहाँ झगड़े बढ़े। वह असिस्टेंट कमिश्नर एडवर्ड्स के चालबाज कारनामों का फल था। कमिश्नर द्वारा श्री बंबवाल के लेख को लेकर "डेली मिलाप" पर दायर किये मुकदमें से यह भेद खुल गया। कोहाट के हजारों हिंदू नागरिक अपनी जायदाद व्यापार छोड़कर पंजाब में रावलपिंडी आकर रहे और उन्हें वहाँ एक साल काटना पड़ा। हिंदी व्यापारी ही उस इलाके में साहूकार थे, इसलिये लेनदार और देनदार जैसा स्वरूप उसको दिया गया था। खुद गांधी जी वहाँ की परिस्थिति का अवलोकन करने के लिये जानेवाले थे, लेकिन सरकार ने उनपर रोक लगाई। इसलिये मालवीय जी, कुंजरू, शिवप्रसाद गुप्त आदि नेता रावलपिंडी गये और वहाँ के निर्वासितों की परिस्थिति देखी। मालवीय जी तो रातोरात कोहाट गये, वहाँ के मुसलमानों ने उनका स्वागत किया। गांधी जी के उपवास के बाद सीमाप्रांत में जगह जगह एकता दिवस मनाया गया। इससे शासक ज्यादा बेचैन हुए।

कांग्रेस की आपसी फूट को कैसे मिटाया जाय, इस चिंता में और चिंतन में गांधी जी थे, तभी कोहाट के अत्याचारों से वे और दुखी हुए और तभी उन्होंने अपना २१ दिन का उपवास आरंभ किया (१८ सितंबर)। ऐसी परिस्थिति में बादशाह खान अपनी विधायक वृत्ति के अनुसार जनता में निरंतर घूमकर धर्म संबंधी गलतफहमी दूर कर रहे थे। हिंदू मुसलमानों में धर्म संबंधी इन गलतफहमियों के कारण झगड़े होते हैं और जनता को उभाड़ा जाता है। इसलिये समाज के अंतःकरण पर संस्कार भरने के काम में वे लगे।

उन्होंने करीब साल डेढ साल (१९२४–२५) अपने इलाके में शब्दशः गाँव गाँव की पदयात्रा की। धर्म के नाम पर झगड़े और अत्याचार करना अपने धर्म पर कलंक है, सियासी दृष्टि से उसमें कौन कौन से खतरे हैं, यह वे अपनी सरल और उत्कट भाषा में लोगों से कहते थे। वजीरिस्तान के अलावा अन्यत्र दंगों की लहर उतनी न फैलने का श्रेय उनके प्रभावी प्रचार को ही था। वजीरिस्तान से जो हिंदू बाशिंदे हमेशा के लिये स्थलांतर कर गये थे, उन्हें ग्रामस्थ पठानों ने बाद में वापस बुला लिया। कौमी सुलह और अहिंसा तत्व से काम करने की जरूरत पर इन दो सालों में उन्होंने जोर दिया।

शासकों की फूट डालने की नीति को हमारे ही नेता किस तरह सहायता पहुँचाते हैं, यह भी लोग जानने लगे थे। खुद तुर्की नेताओं ने खिलाफत को तिलांजलि दी। उसके विरुद्ध तुर्कों को सलाह देनेवाले भारतीय मुसलमान नेताओं को तुर्कों ने मुँहतोड़ जवाब दिया था। जिन तुर्कों की सत्ता अंग्रेजों ने धीरे धीरे नष्ट की, उन्होंने अंग्रेजों के मददगार के रूप में पूरी हयात करने का काम किया। वे हमें पाठ न पढ़ायें, ऐसा आगाखान और अमीरअली जैसे बड़े मुसलमान नेताओं को तुर्की अखबारों ने बता दिया था। आगाखान तुर्किस्तान में आये तो उन्हें गिरफ्तार किया जाय, ऐसा हुक्म भी तुर्क सरकार ने दे रखा था। वैसे ही जिस इब्न सौद ने मक्का मदीना के दरगाह साफ किये, उस सौद को सलाह देनेवाले मुसलमान नेताओं को भी अच्छा सबक सिखाया गया था। इस तरह भारत के खिलाफत वाले मुसलमान नेताओं या सय्यद अहमद की परंपरा के ब्रिटिश सत्ता के पाले पोसे नेताओं की दुनिया के आजाद देशों के मुसलमान नेताओं ने निंदा की थी। अंग्रेज शासकों की कुटिल नीति के शिकार होकर उनका साम्राज्य संसार भर में फैलाने के लिये मददगार सिद्ध हुए हिंदी मुसलमानों की ईजिप्त के नेता निंदा करते थे।

कोहाट के दंगों से अलीबंधु महात्मा गांधी से जुदा हुए। कोहाट दंगे का हिंदू मुसलमान नेताओं ने एक राय से जो वृत्तांत दिया, वही गांधी जी ने माना। लेकिन शौकतअली ने उस पर अपना मतभेद व्यक्त किया। तब से अलीबंधु गांधी जी से अलग होते गये और उसका अंत देश में कौमी फूट फैलाने में हुआ। भारत का यह कौमी वातावरण देखकर ही अन्य अरब देशों की परिस्थिति देखने के लिये स्वयं बादशाह खान १९२६ में हज यात्रा के लिये गये।

मक्का की जागतिक धर्मपरिषद् में

शाह इब्न सौद ने मक्का के अधिपति हसन शरीफ को रास्ता बताया। अंग्रेजों की मदद से तुर्की साम्राज्य पर छोटे छोटे हमले करने का हसन शरीफ ने प्रयास किया, लेकिन युद्धोत्तर काल में इब्न सौद ने मक्का से होनेवाले अपने सीमा संबंधी झगड़े को लड़ाई करके खत्म किया। उसी समय अंग्रेजों ने हसन शरीफ को मदद देने से इनकार किया। इस लड़ाई में मक्का का यह सत्ताधाश धर्मगुरु हार गया और अंग्रेजों की छत्रछाया में मक्का छोड़कर भाग निकला और पेंशन के बल जीवनयापन और स्वधर्म की रक्षा करने का काम वह करता रहा। इस तरह सर्वोच्च इस्लामी धर्मसत्ता का लोप होने से सारी इस्लामी दुनिया व्यथित हुई। विचारक मुस्लिम नेताओं ने यह पहचाना कि अपनी धर्मसत्ता साम्राज्यवादी यूरोप की सत्ताओं के हाथों में किस तरह कठपुतली बन जाती है। कमालपाशा, अमानुल्ला, ईजिप्त के नेता नाहसपाशा आदि इस धर्मसत्ता को गाड़ने की तैयारी में लगे हुए थे। खुद इंगलैंड में इसी तरह धर्मसत्ता की समाप्ति पर लोकतंत्र का विस्तार हुआ है। मानवी विकास को ही नहीं, मानव के सद्गुणों का लोप करनेवाली इन धर्म कल्पनाओं का विरोध करनेवाली विचार परंपरा भारत में भी निर्मित हुई थी। उस परंपरा के नेतागण खुद की धर्म की निष्ठा के बारे में कट्टर थे और किसी तरह राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता तैयार होते थे। गुलामी के साथ साथ अंध धर्मश्रद्धा का भी अंत होना चाहिये, असली तत्वनिष्ठा का, उदार वृत्ति का इस्लाम बचाना चाहिये, इस विचार के जो मुसलमान नेता थे, उनमें मौलाना आजाद, बादशाह खान, शेख महमूद हसन देवबंदी या उनके अनुयायी महमद हुसेन मदनी आदि थे।

इब्न सौद ने या उनकी फौज ने या उनके वहाबी पंथ के कट्टर धर्मनिष्ठ लोगों ने मक्का मदीना के बहुत से दर्गों द्वारा तोड़फोड़ की। खुद महम्मद साहब की मसजिद की गुम्मज पर गोलियाँ बरसायी गयीं। ऐसी बातें सुनकर संसार के भावुक मुसलमान सहम गये। इन बेकाबू लोगों को मनाने के लिये जून १९२६ में इब्न सौद ने मक्का में जागतिक धर्मपरिषद् का आयोजन

किया। बादशाह खान उस समय यात्रा के निमित्त वहाँ गये थे। फिर भी वे इस परिषद् के लिये और विशेषतः आजाद इस्लामी राष्ट्र के नेताओं से परिचय कर लेने के लिये वहाँ गये थे। इस परिषद् के लिये भारत खिलाफत की ओर से मौलाना सय्यद सुलेमान नदवी के नेतृत्व में और जमियत उल् उलेमा के मुफ्ती किफायतउल्ला के नेतृत्व में दो शिष्टमंडल भेजे गये थे। अलीबंधु खिलाफती शिष्टमंडल में थे। इब्न सौद के मक्का मदीने के हमले से भारत के मुसलमानों में दो दल हो गये थे। हसन शरीफ अंग्रेजों का मददगार बना। उसने भी तुर्की साम्राज्य तोड़ने में मदद की थी। यह सब सत्ता हथियाने का खेल था। फिर भी सौद ने जो ज्यादती की, वह नहीं करनी चाहिये थी। इस पर भारतीय नेता आह भरते थे। देवबंदवाले भी कड़े और कट्टर धर्मनिष्ठ थे, लेकिन वहाबी नेतृत्व या वहाबी परंपरा के अनुसार धर्म सुधार की ताईद वे नहीं करते थे। उस समय के उनके नेता (१९२०) शेख उल हिंद महमूद हसन खुद सूफी पंथ के निष्ठावंत पुरस्कर्त्ता थे। भारतीय मुसलमानों पर सूफी पंथ के जो संस्कार थे, वे कभी भी नष्ट नहीं हो सके और इसीलिये हिंदू और मुसलमान इकट्ठे गुजर-बसर कर सके, यह समन्वय की मनोवृत्ति वहाबी नेता त्याज्य मानते हैं।

लेकिन इब्न सौद की धर्मसत्ता के ऊपर जो दृष्टि थी, वह धर्म सुधार के लिये थी, यह विचार भी राजनीतिक अज्ञान का द्योतक है। उन्होंने हसन शरीफ को जो उखाड़ा, वह साम्राज्यवादियों की अरबी मुल्क की बाधा निकाल फेंकने के लिये उस शासन की बागडोर अपने हाथ में न ली होती तो अचरज की बात होती। धर्मसुधार आक्रमण का ऊपरी कारण था। मक्का की जागतिक धर्मपरिषद् में जानेवाले हिंदी शिष्ट मंडल की भिकभिक इब्न सौद को मालूम थी। इस जागतिक धर्म स्थान पर सब इस्लामी राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की सत्ता हो, ऐसा प्रयत्न हिंदी मुसलमानों ने किया था. इसमें महंमदअली ही प्रमुख थे। मौलाना महंमदअली की इस नीति के पीछे ब्रिटिशों का हाथ है यह प्रचार भी हुआ था। यह प्रचार स्वार्थप्रेरित था। महंमदअली का खिलाफत से संबंधित प्रेम और उनका ब्रिटिशों के प्रति द्वेष दोनों ही प्रामाणिक थे। बाल्कन की लड़ाई में तुर्कों की पराजय पर कान्स्टेंटिनोपल के पतन की खबर पढ़ते ही उन्होंने खुदकशी करके मर जाने की इच्छा की। इसका उनके द्वारा किया गया वर्णन उनके असली स्वभाव का परिचय देता है। धर्म सत्ता आबाद रहे, यह उनकी प्रमाणिक इच्छा थी, लेकिन इब्न सौद ने परिषद के एक दिन पहले अन्य

राष्ट्रों के प्रतिनिधियों से विचार विमर्श कर सब अरबों का स्वामित्व अपनी ओर लेकर वैसा ही प्रकट भी कर दिया। उनमें ये धर्मकेंद्र भी शामिल थे। वहाँ की राजसत्ता के सवाल को इस तरह ताक पर रखने के कारण हिंदी प्रतिनिधि निराश हुए। इस तरह स्वामित्व घोषित करना भी इस्लाम धर्म के तत्वों के खिलाफ ही है, आदि तर्क उपस्थित करने का प्रयत्न हिंदी प्रतिनिधियों ने किया ऐसा दीखता है, लेकिन परिषद के विचारार्थ यह विषय नहीं आ सका, यह भी स्पष्ट है।

बादशाह खान इस परिषद् में प्रेक्षक के रूप में उपस्थित थे, 'हिज्जाज की यह सत्ता और व्यवस्था चुने हुए खलीफा को सौंपने पर इन धर्मस्थानों की रक्षा भारतीय प्रतिनिधि करनेवाले हैं क्या?' ऐसा कड़ा सवाल सौद ने भारतीयों से पूछा था, यह बादशाह खान को याद है।

जागतिक परिषद् के ५६ प्रतिनिधियों में भारत के १२ नुमाइंदे हाजिर थे। उपाध्यक्षों में मौलाना नदवी का चुनाव हुआ। उनकी ख्याति और विद्वत्ता इस्लामी दुनिया को मान्य हुई थी। इब्न सौद ने इन धर्मकेंद्रों की रक्षा के लिये सब इस्लामी मुल्कों में से हरेक पर ३०० पौंड के खर्च का बोझ लादा। इसे मंजूर करके हिंदी नेता वापस लौटे।

इस यात्रा के माध्यम से बादशाह खान मक्का में इकट्ठे भिन्न भिन्न देशों के प्रतिनिधियों से मिले। भारत की परिस्थिति के बारे में चर्चा की। इस दौरान भारतीय मुस्लिम नेताओं के बारे में आजाद इस्लामी देशों के नेताओं में कितनी इज्जत और बेइज्जत है यह महसूस किया। इस परिषद के बाद बादशाह खान तैन यानी जद्दा, मदीना, ईजिप्त, पैलेस्टाइन, बेरुत, सिरिया, बसरा, ईरान, कराची के रास्ते से लौटे और इन देशों का भ्रमण किया। हिंदी मुसलमानों के बारे में ईजिप्त में, कम से कम वहाँ के आजादप्रिय लोगों में भारतीय मुसलमानों के प्रति क्या भावना उस समय थी, इसका अनुभव उन्हें कैरो में हुआ। कैरो, अलेक्जंड्रिया आदि स्थान उन्हें देखने थे, लेकिन बंदरगाह में पाँव रखते ही वहाँ का अधिकारी चिल्लाया,—'तुम जलील कौम है, तुम्हें पैर रखने नहीं देगा, तुम गुलाम होकर अपने हाथों से जंजीर बनाते और दूसरों को गुलाम बनाते हो'। कैरो बंदरगाह में यह बेइज्जती सुनकर उनको कैसा लगा होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। यह बेइज्जती हिंदुस्तान के सारे मुसलमानों की थी, उनकी निजी नहीं थी। इसलिये उन्हें विशेष दुख हुआ होगा। इसलिये उन्हें कैरो, अलेक्जांड्रा देखे बिना लौटना पड़ा। इस

दुख की अपेक्षा अपने देश के कुछ नेताओं की नीति के कारण सारे भारतीय मुसलमानों की कितनी बेइज्जती हुई है, यह देखकर उन्हें विशेष दुख हुआ था।' भारत आजाद होने से अनेक गुलाम देशों को आजादी मिलेगी। भारत की फौज केवल तुर्कों के खिलाफ ही नहीं, आफ्रिका, चीन, मध्यएशिया, ईरान, अफगानिस्तान, ब्रह्मदेश, इंडोनेशिया जैसे कितने देशों में काम में लायी जाती है। हम खुद ही केवल गुलाम नहीं बने, अन्यों को भी गुलामी में रखने में मददगार होते हैं—यह सूत्र उन्होंने बहुतेरे इस्लामी देशों को सुनाया। इससे मुनासिब सबक उन्होंने लिया ही होगा। बचपन से ही स्वातंत्र्यप्रेम उन में उत्पन्न हुआ था। ईजिप्त तुर्क के राष्ट्रवाद का यह दर्शन उनके लिये बिल्कुल नया था।

: ८ :

'खुदाई खिदमतगार' संगठन की स्थापना

सन् १९२४ की रिहाई के बाद उन्होंने दो वर्ष वायव्य सीमा प्रांत, स्वतंत्र पठान मुल्क और आजाद अरबी देशों की परिस्थिति का अध्ययन करने में बिताया। करीब १२ साल की समाज सेवा और राजकीय तपस्या के कारण नेतापद उनकी ओर दौड़ता आता था, उनके प्रांत में या पठान मुल्क में अन्य नेता नहीं थे यद्यपि ऐसी स्थिति भी नहीं थी। लेकिन सीमा प्रांत पर प्रभाव था राजकर्ताओं के मददगारों का। ये नेता लोग ब्रिटिश के साम्राज्यशकट में जुते हुए थे। धन और प्रतिष्ठा की सीढ़ियाँ उनके पैरों तले थीं। उनके खिलाफ बादशाह खान को सिर्फ लोक सेवा के बल पर नया नेतृत्व और नयी शक्ति खड़ी करनी थी। ईजिप्त और तुर्किस्तान के सफर से वापस लौटने के बाद उन्होंने फिर से इस संघटन कार्य को जोर से शुरू किया।

'पख्तून जिर्गा' या 'तरुण अफगान' नामक नया संघटन उन्होंने खड़ा किया। इस संघटन के प्रचार साधन के रूप में 'पख्तून' मासिक शुरू किया। तत्कालीन राजकीय कार्यपद्धति की पहचान उन्हें हो चुकी थी, इसका यह निदर्शक है। उनकी शिक्षण संस्थाओं में तैयार हुए नौजवान पख्तून जिर्गा में शामिल हुए। 'पख्तून' मासिक में ज्यादातर वे ही लिखते थे लेकिन लोकजागृति के लिए जोश पैदा करनेवाला काव्य, साहित्य और नाट्य आदि विषय भी लिए जाने लगे थे। उनकी निर्मिति करनेवाला नये साहित्यिकों का एक वर्ग भी कार्यकर्ताओं के रूप में इकट्ठा हुआ। उनके प्रचार में उन्होंने नाटकों, और रस से परिपूर्ण कविताओं का खूब प्रयोग किया।

इस प्रचार के कारण इन दो वर्षों में सीमाप्रांत और उसके इर्दगिर्द के प्रदेशों में एक जोश पैदा हो गया था। उनके कार्य में सिर्फ धर्मप्रचार की दृष्टि कभी भी नहीं थी। शिक्षण और सामाजिक सुधार पर उनका पहले से जोर था। अब उसकी जगह राष्ट्रवादी विचारों की शिक्षा देने का काम उन्होंने शुरू किया। पहले इस्लामी धर्मसत्ता की रक्षा का उद्देश्य मुसलमानों

के सामने था तो अब साम्राज्यवादी भेड़ियों के चंगुल से अपने देश को मुक्त कराने और बचाने का राष्ट्रवादी विचार संसार में फैल रहा था। इस विचार का प्रभाव बादशाह खान पर भी हुआ। ईजिप्त, तुर्किस्तान, अरब और ईरान इन चार देशों में जगलूल पाशा, इब्न सौद और रजाशाह के नये राष्ट्रवादी नेतृत्व का निर्माण हुआ था और उन्हें साम्राज्यवादी यूरोप के सत्तालोलुपों की पकड़ से खुद को छुड़ाना था। कमाल पाशा ने खिलाफत का नाश किया। धर्म की अंध श्रद्धा का फायदा उठाकर राजकारण के विचार की जड़ ही काट डाली थी। इन कारनामों से नौजवान अफगान राजा अमानुल्ला को मारे मारे घूमने की नौबत आयी। इन सब राजकीय विचारों का संदेश बादशाह खान ने पठानों के पहाड़ी मुल्क को दिया। जात जमातों के आपसी झगडे और क्षुद्र मत्सर के खिलाफ उन्होंने पहला हमला किया। पुराने खानदानी जिर्गाओं की जगह नौजवानों के नये संगठन खड़े किये। यह पठानी मुल्क की पहली क्रांति थी, इन्कलाब था। मुल्ला मौलवियों का प्रभाग और टोली के मुखियों का रोब विस्तार पर था। वह बिल्कुल ढीला नहीं हुआ था। लेकिन राष्ट्रवादी नये विचारों की लहर से ज्यों ज्यों वायव्य सीमाप्रांत सुगंधित होने लगा वैसे वैसे इस विचार का विस्तार अन्य पठानी मुल्कों पर भी होने लगा। इस दृष्टि से असली विचारक्रांति होने लगी थी। बादशाह खान के त्यागी, सेवाभावी और तपस्वी जीवन का वह प्रभाव था। उनके इस उज्ज्वल धर्मनिष्ठ जीवन के सामने अंधा और दुराग्रही नेतृत्व गिरता गया। टोलीवाले मुल्ला मौलवियों की अपेक्षा ब्रिटिशों को इस खतरे की अनुभूति अधिक हुई।

'पखतून जिर्गा' और 'पखतून' मासिक के बल पर बादशाह खान ने दो साल में अपने प्रांत और इर्दगिर्द में काफी जागृति की। इस नये विचार पर अनुशासनपूर्ण अमल जगह जगह किया जाय इसके लिये खुद की अनुशासन-बद्ध स्वयंसेना की स्थापना उन्हें जरूरी लगी। इस विचार से उन्होंने १९२९ में खुदाई खिदमतगार की स्थापना की। यह पठानों का पूरा चित्र बदल देनेवाला संघटन था। संघटन के सैनिकों की अहिंसानिष्ठा का अपूर्व दर्शन भारत को और उससे भी अधिक ब्रिटिश शासकों को मिला और सन् १९३० के स्वातंत्र्य आंदोलन में भारत में एक की जगह दो गाँधी पनप रहे हैं, यह दुनियाँ के ध्यान में आया। यह दूसरा गाँधी खुदाई खिदमदगार की देन थी।

खुदाई खिदमतगार संघटन बादशाह खान के विचारविकास और कार्य-विस्तार का एक महत्वपूर्ण स्थित्यंतर था। सामाजिक आंदोलन और लोक-जाग्रत का बहुत कुछ फासला उन्होंने तय किया था। उनके पास नौजवान कार्यकर्ताओं का समूह भी अच्छी तादाद में था। इसलिये उन कार्यकर्ताओं को आवश्यक अनुशासन सिखाने के लिये ही यह स्वयंसेवक शाखा रची गयी थी। संघटन के नाम में ही उनकी ध्येयनिष्ठा सुस्पष्ट रीति से समायी है। वे ईश्वर के, अल्लाह के सेवक हैं और खुदा की सेवा भी उसकी सृष्टि की सेवा से ही करनी चाहिये, यह सीख कार्यकर्ताओं के दिलों में ठीक तरह से बैठ गयी थी। इसलिये सिर्फ दो साल में उन्होंने अपनी श्रद्धा का और पराक्रम का प्रदर्शन पेशावर में लोगों के सामने किया।

इस संघटन के नियम और उद्देश्य देखने से, ये पठान गाँधी भी गुजरात गाँधी की तरह स्वतंत्रतापूर्वक बढ़ रहे हैं यह लोगों के ध्यान में आये बिना नहीं रहा। उनकी प्रतिज्ञा में निम्नानुसार बंधन हैं—

(१) मैं जिम्मेदारी के साथ और सत्यनिष्ठा से अपना नाम दर्ज कर रहा हूँ।

(२) मातृभूमि की सेवा के लिये मैं अपना सुखचैन और प्राण भी कुरबान करूँगा।

(३) आपसी झगड़े, ईर्षा और झगड़ालूपन आदि से मैं दूर रहूँगा। कहीं जुल्म अत्याचार होते हों तो जुल्म करने वाले के विरुद्ध और जिसपर जुल्म होता हो उसके पक्ष में खड़ा रहूँगा।

(४) दूसरे किसी भी दल में शामिल नहीं होऊँगा। मेरे संघटन ने विदेशी हुकूमत के खिलाफ आंदोलन छेड़ा तो माफी नहीं माँगूँगा।

(५) मैं हमेशा अहिंसा के रास्ते से ही जाऊँगा।

(६) पूरी मानव जाति की सेवा समान भावना से करूँगा। अपने देश के लिये और धर्म के लिये आजादी प्राप्त करना मेरा ध्येय रहेगा।

(७) खुदा को खुश करने और उसे संतोष देने के लिये मैं हर तरह से कोशिश करूँगा, वैसा करते समय वैयक्तिक स्वार्थ या हेतु या भेदभाव का विचार नहीं करूँगा।

यह संघटन पंद्रह साल के आंदोलन के बाद बादशाह खान ने खड़ा किया था। गांधीजी के प्रत्यक्ष संपर्क में आने से पहले की उनकी यह नीति है, इसे ध्यान में रखना चाहिये। अर्थात् इस समय तक वे (१९२९) तीन मर्तबा

जेल हो आए थे और कॉंग्रेस की केवल एक बैठक में भी उपस्थित रहे (१९२५ कानपुर)। लेकिन गांधी जी का सत्याग्रही तत्वज्ञान तब तक पेशावर की सीमा तोड़कर उधर नहीं पहुँचा था फिर भी सशस्त्र आंदोलन से हम शक्ति शाली ब्रिटिश हुकूमत के सामने टिक नहीं सकेंगे और तत्वनिष्ठा से हुकूमत के हथियारों की धार मुड़ जायगी यह बात उन्होंने ठीक ठीक जान ली थी। अपने शस्त्र त्याग के संबंध में कार्यकर्ताओं से बोलते हुए वे एक जगह कहते हैं :—

'अपने प्रांत में जब काम पर मैं लगा, उस वक्त हमारे लोग आपस में एक दूसरे की कितनी क्रूरता से हत्या करते थे उसकी कई मिसालें मैंने देखीं। उनका मेरे मन पर असर हुआ। यदि ऐसा ही चलता रहा तो हमारा सर्वनाश हो जायेगा, यह डर भी लगा। उन्हें इस हिंसाचरण से परावृत्त करके दूसरे रास्ते पर ले जाना चाहिए, ऐसा मैंने अनुभव किया। यह दूसरा रास्ता याने सत्य का, शांति का और दूसरे के जीवन के बारे में आदर करने का है। अपने लोगों का पठानों का इतिहास मैं पढ़ चुका था और हमारे पूर्वजों के बारे में मुझे गर्व भी है लेकिन उसके साथ साथ उनकी खामियों की भी मुझे कल्पना थी। पठान एक दूसरे से प्रेम करना सीखेगा तो कोई भी हुकूमत उसे कुचल नहीं सकती।'

बादशाह खान को अहिंसा का दर्शन इस तरह हुआ था। पठान इसके सिवा अन्य रास्ते से अच्छी तरह गुजर बसर नहीं कर सकेंगे। आपसी झगड़े में ही उनका खून बहता है, यह उनकी वैचारिक क्रांति की जड़ थी। महात्मा जी का तत्वज्ञान उनकी इस निष्ठा को जाग्रत और पक्का करने के लिये और उसकी आवश्यकता का साक्षात्कार करा देने के लिए निश्चय ही उपयुक्त हुआ। उन्होंने बाद में गांधी जी से संपर्क होने पर उनका यह प्रभाव कई जगह व्यक्त किया है। खुदाई खिदमतगारों की प्रतिज्ञा जैसी अर्थपूर्ण और उनका उद्देश्य और दिशा स्पष्ट करने वाली है उसी तरह उनका ध्वजगीत या समूह गीत भी स्पष्ट और अर्थ से परिपूर्ण है।

(१)

हम खुदा के बंदे हैं।
दौलत या मौत की हमें कदर नहीं
हम और हमारे नेता, हम बढ़ते चले हैं।
मौत को गले लगाने के लिये हम तैयार हैं।

(२)

खुदा का नाम लेकर हम आगे कदम बढ़ा रहे हैं।
और उसके ही नाम के लिये हम शहीद हो रहे हैं।
उसके ही नाम पर हम सेवा करते हैं,
उसके ही हम बंदे हैं।

(३)

खुदा ही हमारा बादशाह है
वही सबसे श्रेष्ठ है।
हम अपने मालिक की सेवा करते हैं।
उसी के हम नौकर हैं।

(४)

हमारे देश की सेवा,
हम सांस लेते समय भी करते हैं,
उस महान देश सेवा के लिये,
मौत आये तो अहोभाग्य।

(५)

हमारे लोग और उनका काम
उनपर हमारा प्रेम है और वही हम करते हैं।
आज़ादी हमारा ध्येय है,
हमारी गर्दन उसकी कीमत है।

(६)

हमारे देश पर हमारा प्रेम है
हमारे दिल में उसके प्रति श्रद्धा है
डटकर उसकी रक्षा करेंगे,
खुदा की सेवा उससे ही होगी।

(७)

बंदूक और तोप का डर किसको ?
सैनिक आयें या घुड़सवार आयें,
हमारे कार्य और कर्तव्य,
इसमें कोई रोड़ा नहीं हो सकेंगे।

इन शब्दों में कैसी शक्ति प्रतीत होती है। इससे स्वाती नदी के शांत शीतल वेदगंगा में बड़ी बड़ी लहरें फूटी और आसपास के पहाड़ों में दरारें पैदा हुई यह सारा काव्य बादशाह खान के इर्दगिर्द इकट्ठा हुए नौजवान पठानों का था। उनके मन किस फौलादी निष्ठा से और किस तेज से परिप्लुत थे उसका संकेत इन समूह गीतों में दिखाई देता है। उनके बैग पाइप के साथ जब अनुशासन से यह समूह गीत गाते हुए हजारों सैनिक कूच करते रहे होंगे, उस समय ब्रिटिश सेनाधिपतियों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई हो तो इसमें अचरज की कौन सी बात है। उनको कुचलने के लिये स्वाभाविक ही तानाशाही के कदम तेजी से बढ़ने लगे और उसके साथ ही ब्रिटिश शासन का जीवन भी तेजी से क्षीण होता गया।

पठान स्वभाव से रसिक होता है। वह कविहृदय का है और तुरंत भावना के वश में होने वाला है। शब्द शब्द से राष्ट्र प्रेम का सिंचन करने वाला खुशहाल खान उनका स्फूर्तिदाता था। बादशाह खान ने अपने प्रचार तंत्र में इन काव्य गुणों का काफी हद तक उपयोग किया। ये नौजवान नये नये नाटक खेलते थे। इस कारण नव विचारों के प्रचार के साथ स्वाभिमान भी तेजी से जाग्रत होता था। खुदाई खिदमतगारों की संख्या १९२९ में पूरी पांच सौ भी न रही होगी। सरकारी तानाशाही और निर्भय बलिदान के कारण १९३१-३२ में वह एक लाख के ऊपर पहुँच गयी यद्यपि इस संघटन के लिये कहीं से बाहर से पैसा या अन्य सहायता नहीं आई। सहायता न लेने की और स्वावलंबनपूर्वक गरीबी का जीवन निर्वाह करने की उनकी निष्ठा थी। उलटे वे अपनी संख्या के बल पर अन्नी, दुअन्नी चंदा जमा करके बड़े बड़े शिविर सभा और बैठकों का आयोजन करते थे। थोड़े समय में इस संघटन ने अपनी ताकत पैदा की और उसी तरह जनता का विश्वास भी संपादित किया। शब्दों के तकरीरों के बदले अपने जीवन से और रोजमर्रा के आचरण से बादशाह खान ने इन हजारों नौजवानों का जीवन निर्माण किया और उनका स्वप्न साकार किया था। इसलिये वे खुद ही उनके अनन्य देवता बन गये थे।

तानाशाही के कारण लोक जागरण का काम कैसे फैलता है इसका अनुभव जगह जगह होता है। अहिंसात्मक आंदोलन में वह काफी मात्रा में आया है। अहिंसा ने जनता को निर्भय बनाया, यह उसकी सबसे बड़ी ताकत थी। जालियानवाला बाग के पाशवी अत्याचारों से सारा देश सहम गया

था। उससे भी अधिक फायदा यह हुआ कि गांधी जी का साम्राज्य सत्ता की ओर देखने का दृष्टिकोण पूर्णतया बदल गया। अमृतसर कांग्रेस (दिसंबर १९१९) में साम्राज्य सत्ता की मदद करने के लिये प्रेम से मनाने वाले महात्मा जी केवल छः महीनों में उस साम्राज्य सत्ता को शैतानी कहकर उसके विनाश की तैयारी में लग गये। यह करतूत डायरशाही का ही था ऐसा मानना अवास्तव नहीं है! जनता की भावना स्वार्थी शासक ठीक तरह से पहचान नहीं सकते थे, वे तानाशाही के शस्त्र पर अधिक भरोसा रखते हैं और उसका परिणाम उलटा ही होता है।

गफार खान को सरहद्दी गांधी बनाने वाला जलियानवाला बाग याने पेशावर का ता० २३ अप्रैल १९३० का हत्याकांड है। वास्तव में वहाँ की उस दिन की घटना से बादशाह खान का वैसा संबंध नहीं था लेकिन वायव्य सीमा प्रदेश की नव जागृति के वे जनक थे इसलिये और पेशावर के गोली-कांड के बाद के दमन द्वारा समस्त खुदाई खिदमतगारों को कुचल डालने की कोशिश की गई इसलिये उसकी सफलता का श्रेय बादशाह के ही पल्ले है।

२३ अप्रैल के जलियानवाला बाग की यादगार नष्ट करने का काफी प्रयास सरकार ने किया। वहाँ हुए खूनखच्चर का दर्शन संसार को न हो इसलिये पेशावर के चारों ओर पत्थर की दीवाल खड़ी की गयी। लेकिन खून की बदबू छिपाई नहीं जा सकती। साथ ही निहत्थी जनता के शांतिपूर्ण बर्ताव को देखकर गढ़वाली पलटन की दो टुकड़ियों के सैनिकों ने अपने अधिकारियों का हुक्म मानने से इन्कार कर दिया। लोगों पर गोली बरसाने के बदले खुद गोलियाँ खाने की हिम्मत दिखाई। इस अपूर्व घटना से ब्रिटिश सेनाधिकारी हक्का बक्का हो गये। इसकी खबर सुनते ही संसार के सारे संवाददाता इस पुण्यभू का अवलोकन करने के लिये दौड़े और सरकारी दांवपेंच को मात देकर उस परिस्थिति में भी कांग्रेस जाँच समिति का काम करके आने वाली पटेल समिति के हवाले से यह फतही बलिदान अमर बन गया। नेताओं का यह राष्ट्रीय ऋण इतिहास के अनुसंधायकों को मान्य करना होगा।



: ९ :

सत्याग्रही संस्कृति की अनुभूति

२३ अप्रैल के हत्याकांड का निचोड़ इस तरह है—१९२९ की लाहौर कांग्रेस की बैठक में सैकड़ों पठान उपस्थित थे। रावी के किनारे उठे हुए जयघोष की प्रतिध्वनि स्वाती (काबुल की नदियों) के किनारे गुंजित हुई। खुदाई खिदमतगार प्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस के झंडे के नीचे पेशावर हत्याकांड के बाद आए यह सही होते हुए भी साम्राज्य सत्ता को ललकारने वाली गांधी जी की आक्रमणात्मक राजनीति की रवानी स्वाभिमानी पठानों को प्रफुल्लित करती जा रही थी। वे कांग्रेस में न रहे हों फिर भी उनके दिल कांग्रेसमय थे। इसलिए दांडी मोर्चा शुरू होते ही पठानों के पहाड़ी इलाके में भी आंदोलन की हवा नहीं, तूफान उगने लगा था। पेशावर में ही दस दस साल तक कांग्रेस का काम करने वाले और गांधी जी के अहिंसात्मक प्रतिकार की ओर आकृष्ट कार्यकर्ता थे। डा० घोष, अमीरचंद बम्वाल, असलाम खान सांबरी, अब्दुल जलील नदवी, मिलाप सिंह आजाद आदि उनमें प्रमुख थे। वहाँ के कांग्रेस संघटन ने और खुदाई खिदमतगार के स्वयंसेवकों ने लाहौर कांग्रेस का आजादी का प्रस्ताव देहात देहात में घर घर तक पहुँचाया। वहाँ के फौजी अधिकारियों के लिए यह आफततलब बात थी। उन्होंने इसलिए जगह जगह कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी जारी की। इस दमन के विरोध में स्थानिक कार्यकर्ताओं ने शराब की दुकानों के सामने निरोधक आंदोलन शुरू किया। दिनांक ५ अप्रैल को उसकी शुरुआत हुई। लेकिन शराब के ठेकेदारों द्वारा कुछ समय मांग लेने के कारण कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने ५ अप्रैल के एवज में २१ अप्रैल नक्की की। इस आंदोलन का अति सूत्रबद्ध संचालन शुरू हुआ था।

दिनांक २२ अप्रैल को ही अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा लाहोर बैठक के समय नियुक्त की हुई जाँच समिति पेशावर की ओर चली। वायव्य सीमा प्रांत में चल रहे दमनचक्र का निरीक्षण करने के लिए वह

समिति (डॉ० सय्यद महंमद, लाला दुनीचंद और मौलाना कासरी) नियुक्त की गयी थी। यह समिति अटक में ही रोक दी गयी और उन्हें वापस लौटाया गया। यह खबर मिलते ही पेशावर और अन्य प्रमुख स्थानों में निषेध व्यक्त करने के लिए सभाएँ हुई और जुलूस निकले। उस वक्त पेशावर में नौ प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया गया। दिनांक २३ की गिरफ्तारी के खिलाफ फिर सभा जुलूस निकलने लगे। जिन दो नेताओं को पुलिस गिरफ्तार किया चाहती थी वे खुद अपने से पुलिस के आधीन हुए, उसके बाद के प्रत्यक्ष अत्याचार का शुरू से आखिर तक का वृत्तांत सबूत के साथ पटेल जाँच समिति के विवरण में आया है। विठ्ठलभाई पटेल और बैरिस्टर रणधीर पंडित (विजयालक्ष्मी के पति) ने यह जाँच पूरी की। चित्रों के साथ यह विवरण प्रकाशित कर इस समिति ने कितनी महान देश सेवा की है यह संबंधित विवरण पढ़ने से ज्ञात होता है। इसके अलावा कई छोटी बड़ी पुस्तिकायें स्थानिक कार्यकर्ताओं ने भी प्रकाशित की हैं। इस आंदोलन के एक नेता मिलापसिंह आजाद द्वारा लिखे हुए एक लेख (डान आफ दी गांधीयन एरा इन दी नार्थ वेस्ट फ्रंटियर प्राविंस) में दिया हुआ वर्णन आगे दिया जा रहा है :—

'२१ मार्च के आसपास पेशावर से निष्कासित अमीरचंद बंबवाल २-३ दिन पहले, एक रात चोरी से पेशावर पहुँचे। दिनांक ६ अप्रैल को हड़ताल करने की भारतीय नेताओं की प्रार्थना उन्होंने निवेदित की लेकिन उस परिस्थिति में यह सब असंभव लगता था। नागरिकों को किसी भी तरह की आजादी नहीं थी लेकिन २-३ दिन में ही सब जगह दीवालों पर पोस्टर चिपकाये गये।

'तारीख ६ अप्रैल को हकीम महंमद अस्लाम खान साजरी सुबह आये और बड़े दुख से बोले, 'कुछ नहीं किया जा सकता क्या ?' हम दोनों अपनी दुकानें बंद करके डा० घोष के दवाखाने में गये। हकीम नदवी साथ थे। इसके बाद चारों जन शहर भर घूमते रहे। अचरज की बात यह कि शाम तक सब जगह कड़ी हड़ताल हुई और ऐसी विराट आम सभा शाहीबाग में डा० दत्त की सदारत में हुई जैसी कभी नहीं हुई थी। उसके बाद रोज इस तरह की सभा जुलूस निकलने लगे और उनका फैलाव शहर की सीमा तोड़कर देहात देहात में गया।'

खुदाई खिदमतगार संघटन विशेषतः देहातों में बढ़ा। उनके देशप्रेम के गीतों और अहिंसा की निष्ठा ने दो साल में असली मानसिक क्रांति की। उसके साथ जैसे हवा के झोंके से सूखी घास के पहाड़ सुलगते जायँ ऐसा शांति के आंदोलन का जंगल सुलगता गया।

२३ अप्रैल को शराब की दुकानों पर पिकेटिंग शुरू हुई। वह सुनियोजित और शांति से चल रही थी। मिलापसिंह अपने लेख में कहते हैं, "वे यादें अभी भी (१९६१) मेरे दिल में असाधारण कटुता और बौखलाहट मचाती हैं। कार्यकर्ताओं की बेपरवाही से गिरफ्तारियाँ शुरू हुईं। हजारों लोगों के शांतिपूर्ण जमघट पर गोलियाँ चलायी गयीं। तोपें दागी गयीं और लोगों को अक्षरशः रौंद डाला गया। थोड़े ही देर में सेवा समिति के स्वयंसेवकों ने कांग्रेस कार्यालय के सामने तीन शव लाकर रखे। जनता का क्षोभ बहुत बढ़ रहा था। लेकिन ऐसी व्यवस्था में भी कांग्रेस कार्यालय पर लहराने वाला राष्ट्रध्वज अधिकारियों में अधिक घबराहट पैदा कर रहा था। कार्यालय के बरामदे में बंबवाल चीखे। उन्हें देख कर "झंडा नीचे उतारो" ऐसा हुक्म पुलिस अधिकारियों ने दिया। उसकी तामील न करते हुये बंबवाल नीचे उतर आये फिर भी असिस्टंट कमिश्नर कॉब ने झंडा उतार कर उनको सौंपने की आज्ञा दी। ११ वीं सिख पल्टन के कर्नल गार्डन ने भी वैसी ही आज्ञा बंबवाल को दी लेकिन बंबवाल के अनसुनी करने के कारण उनपर मुक्कों की बरसात शुरू हुई। खुद कर्नल गार्डन ने नीचे गिरने पर ठोकरें मारना शुरू किया। लेकिन क० काब ने उन्हें रोका।

इतने में गोरे सैनिकों ने राष्ट्रध्वज उतार फेंका और क० गॉर्डन ने उसे पैरों तले कुचल दिया। हजारों लोगों के जमघट के सामने यह नंगा नाच शुरू था। खुद बंबवाल पुराने क्रांतिकारी और लंबे चौड़े कद के आदमी थे। आज भी ८० साल की ऊमर में उनका शरीर एक दो गॉर्डन को चितपट करने की ताकत का है, लेकिन शस्त्रशक्ति के सामने केवल शांति ही लोगों का धीरज टिका सकी। उसी तरह फिर सारवानी बजार के पास हजारों के समूह पर गोलियाँ बरसायी जाती रहीं फिर भी स्त्री पुरुष अपनी जगह न छोड़ते हुये शव पकड़े बैठे थे। वह वर्णन पटेल रिपोर्ट में है। सरदार मंगलसिंह जी अपने बीबी बच्चों को लेकर टाँगे से जा रहे थे। टाँगे में बैठी औरत और उसके बच्चों पर गोलियाँ चलाई गईं और उनके शव लोग अपने कब्जे में न ले लें इसके लिये उनपर फिर से गोलियाँ चलाई गयी। केवल ऐसी अमानुषिकता

ही नहीं, इतिहास के किसी भी अत्याचार को शरमानेवाली वारदातें वहाँ हुईं। उसकी तुलना पंडित नेहरू ने १८५७ के कुछ अत्याचारों से की थी और इतनी प्राणाहुतियाँ जिन पठानों ने दीं उन्होंने उसके खिलाफ कुछ भी बौखलाहट नहीं दिखाई, यह सुन कर पंडितजी की आँखों में से जल बहने लगा। इस अत्याचार की कुछ जानकारी "यंग इंडिया" में दी हुई है।

इस अनाचार के बावजूद भी इन शूरवीरों की निष्ठा स्पष्ट थी। सामने की पंक्ति के बच्चे, स्त्री-पुरुषों के घायल हो जाने पर पीछेवाले लोग सीना तान कर आगे आने लगे। कुछ लोगों के बदन पर गोलियों के बीस बीस निशान दिखाई दिये और इतना होहल्ला होनेपर भी लोग अपनी जगह से टस से मस नहीं हुए। एक सिख नवयुवक ने आगे आकर गोली दागने के लिये एक सोल्जर को आह्वान दिया और उस सोल्जर ने तुरंत गोली चलायी। वह लड़का उसी जगह ढेर हो गया। एक वृद्धा अपने सगे संबंधियों की घायल अवस्था देखकर आगे आयी। उसपर गोलियाँ बरसायी गयीं। वह जख्मी होकर गिरी। एक शख्स के कंधे पर चार पाँच साल का बच्चा था। उससे यह हत्या देखी न गयी और जोश में आगे आकर उसने कहा कि 'चलाओ तो मुझपर गोली'। उसपर बंदूक चलायी गयी और वह घायल होकर गिरा। इस तरह लोग एक के बाद एक गोलियों का सामना करते आगे बढ़ते रहे, सामने पड़े हुए मुर्दे एक हाथ से पीछे हटाये जाते थे और नये लोग सामने आते थे।' गांधी जी की भेजी हुई यह जानकारी एक जिम्मेदार पंजाबी मुस्लिम नेता की थी।

लेकिन खुद एक फौजी अधिकारी के 'इंडियन डेली मेल' नामक ब्रिटिश अखबार में बड़े गर्व से प्रकाशित हुए वृत्तांत से सिपाहियों की उन्मत्तता किस कोटि की थी, यह स्पष्ट हो जाता है। वह अहवाल झूठा या अवास्तव मानने का कोई कारण नहीं। वह कहता है—

'अखबारों में जैसा प्रकाशित हुआ है उससे कई गुने अधिक समय तक गोलियाँ चलती थीं यह मैं कह सकता हूँ। उन मूर्खों को हमने अच्छा सबक सिखाया। वे अब कभी नहीं भूल सकेंगे। हमारे लोग (गैरसैनिक) नेताओं और आंदोलनकारियों को चुन चुन कर गोलियों के निशाना बनाते थे। पुलिस इन लोगों को उन्हें बताती थी, गोलियों के कुछ फायरों या धमाके की बात नहीं थी। वह अखंड चलाई हुई गोलाबारी थी।'

इस पाशविक स्वाभिमान के भाष्य की जरूरत नहीं। गोलीचालन का

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समर्थन करनेवालों को यह पुरजोर उत्तर था। जनता पूर्ण शांति से घूमती फिरती थी। सरकारी सबूत के अनुसार किसी के भी पास लाठी नहीं थी। यह सबूत भी कई सरकारी अधिकारियों की गवाही से पटेल कमेटी ने दर्ज किया था।

क्रोध से आगबबूला होकर अपनी बंदूक उठानेवाला पठान इस तरह से अत्याचारों में शहीद होने के लिये तैयार हुआ यह अद्भुत दृश्य बतानेवाली कहानी साकार हुई। पेशावर के इस जालियानवाले बाग ने दूसरे पठान गांधी का नाम दुनिया भर में मशहूर कर दिया और यह वीरोचित अहिंसा-निष्ठा एक दो बार नहीं दस मर्तबा उन्होंने प्रत्यक्ष कर दिखाया। यह निष्ठा भारत में अन्यत्र कहीं भी कसौटी पर खरी नहीं उतरी थी। इस भीषण हत्याकांड के बाद ता० २४ से २८ तक तीन चार दिन वहाँ के अधिकारियों ने वहाँ का शासन जनता को सौंप दिया था। पुलिस घबराकर चली गयी, ऐसी अफवाह उड़ायी गयी। वहाँ चार दिन तक ब्रिटिशों का शासन नहीं था यह सही है, लेकिन उसका कारण अलग है। इन पाशवी अत्याचारों को शोभा देनेवाली ही यह नीति थी। यह इसलिए थी कि आजाद पहाड़ी जमातों की टोलियो को पेशावर पर हमला करने का मौका मिले। लेकिन वे हमले भी बादशाह खान की सेवा के कारण नाकामयाब सिद्ध हुए। टोलीवालों में भी गोरे सिपाहियों की तरह पेट के लिये काम करनेवाले और गलत रास्तेपर गये हुए लोग होंगे ही। उन्होंने पेशावर पर लूटपाट के लिये हमले किये लेकिन उसके पहले ही खुदाई खिदमतगारों की चौकियाँ और पहरे वहाँ लगे हुए थे। उनके आगे इन हमलों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसमें शासकों की हिंदू मुसलमानों में झगड़े पैदा करने की दुष्ट चाल भी। लेकिन हिंदू परिवार को स्त्रियों और बच्चों का संरक्षण न सिर्फ खुदाई खिदमतगारों ने बल्कि अन्य पठानों ने भी अपने भाई बहनों की तरह किया। बादशाह खान के विधायक काम का यह प्रभाव था। पेशावर या अन्य शहरों में राजनैतिक जागृति कांग्रेस संघटन की ओर से कांग्रेस नेताओं ने की थी। लेकिन उन कांग्रेस कार्यकर्ताओं और विशेषतः जनता और देहातों में और उसी तरह आसपास के आजाद टोलीवालों के जगत में इंसानियत जाग गई थी। निर्भय तत्वनिष्ठा का जो उदय हो रहा था वह बादशाह खान की अखंड सेवा का ही परिणाम था। शस्त्रों का इस्तेमाल करने के बाद निःशस्त्र रास्ते पर मुड़े हुए खुदाई खिदमतगारों की सेवा का यह प्रभाव था। इस पेशावर के फिसाद के निमित्त और आगे १९३२ में सीमाप्रदेश में अपना रोब जमाने के

लिये फौज, टैंक्स, हवाई जहाज का अनिर्बंध इस्तेमाल किया गया और जून महीने में ५०० टन बम पठानों की बस्ती पर फेंके गये।'

१६३० में डॉ० खान साहब पहले गिरफ्तार नहीं किये गये थे। उन्होंने उस समय के खुदाई खिदमतगारों के जोश का वर्णन किया है। ता० २४ को पेशावर के अत्याचार और बादशाह खान की गिरफ्तारी के कारण उतमंजई में गड़बड़ होगी ऐसा सोचकर वे तुरंत वहाँ पहुँचे। वहाँ घुड़सवार पहुँचे थे। डॉ० खानसाहब के लोगों के पास जो बंदूकें थीं वे ले ली गईं। सभा में हजारों लोग इकट्ठा हुए थे। महिलायें बच्चे भी थे। 'वहाँ कुछ कम ज्यादा हुआ तो वह सहन करने की जिनकी ताकत नहीं है उन्हें सभा छोड़कर चले जाना चाहिए।' ऐसी प्रार्थना उन्होंने की। लेकिन सभा में से कोई हिला तक नहीं। महिलाओं ने अपनी जगह नहीं छोड़ी (गांधी गौरव ग्रंथ, अक्तूबर १६४४)।

ये सब कांग्रेस जन या उनके पक्षपाती लोगों के साथ पक्षपात है ऐसा कोई कह सकता है, लेकिन सर फजली हुसेन द्वारा पठानों की इस अहिंसा निष्ठा और वहाँ के शासनतंत्र की निरंकुशता की सचाई के बारे में दिये हुये मत को अमान्य नहीं किया जा सकता। वे उस समय (१६३०—३५) वाइसराय की कार्यकारी समिति के सदस्य थे। उनकी दैनंदिनी के उद्धरण कई महत्व की घटनाओं को स्पष्ट करनेवाले हैं। वे कहते हैं :

'वायव्य सीमाप्रांत की उस समय की व्यवस्था बहुत अप्रिय थी। लोगों की बेचैनी बढ़ गई थी। पढ़े लिखे नौजवानों को अपना पुरुषार्थ दिखाने के लिये कोई मौका नहीं मिलता था। उनके मन में खलल थी। अन्य प्रांतों को प्राप्त राजकीय अधिकार उनके प्रांत को प्राप्त नहीं हुए थे इसलिए वे असंतुष्ट थे। शासनतंत्र से वे ऊब गये (डिसगस्टेड) थे।'

'स्थानिक अधिकारी बताते हैं कि यह आंदोलन (खुदाई खिदमतगार) इन्कलाबी लोगों का नहीं है। इसे जिम्मेदार नेताओं ने खड़ा किया है उसके तत्व भी उदार परंपरा के हैं।'

खुदाई खिदमतगारों की ५०—१० हजार की सभायें शांति से सम्पन्न होती हैं···ता० २४ अप्रैल को फौज हटा लेने के बाद (पेशावर से) वहाँ तुरंत ही शांति की स्थापना हुई। ता० ४ मई को फिर से फौज आने पर वहाँ फिर से बेचैनी पैदा हुई। गिरफ्तारियाँ शुरू हुईं।

फजली हुसेन पंजाब के एक जिम्मेदारी महसूस करनेवाले प्रमुख नेता थे। वे सरकार के विश्वासभाजन थे फिर भी स्वाधीन मनोवृत्ति के थे।

उन्होंने पंजाब के सियासी मामले में मुस्लिम लीग का प्रवेश नहीं होने दिया। वे असमय पैगंबरवासी न होते तो भारत में कौमी आंदोलन ने जो मोड़ लिया वह न ले पाता, ऐसा उनके चरित्र की प्रस्तावना में श्री राजगोपालाचारी ने लिखा है।

सीमा प्रांत में फौजी कानून लागू करने के खिलाफ उन्होंने यह राय दी थी—'मेरे सामने आई हुई (सरकारी) जानकारी असमाधानकारक और शक पैदा करने वाली है। वस्तुस्थिति जान लेने के पहले हुक्म जारी करना ठीक नहीं होगा। केवल दमन नीति के आधार पर अधिक समय शांति नहीं रखी जा सकती'। (फजली हुसेन दैनंदिनी, तारीख २६, २७, २९ मई १९३०)।

२४ अप्रैल के पेशावर अत्याचारों में मरे हुए और पीड़ित लोगों को मदद करने के लिये पं० मालवीय जी ने इजाजत माँगी थी। उसको सरकार ने ठुकरा दिया था। उस संबंध में फजली साहब कहते हैं 'मरे हुए लोगों के बारे में नुकसान भरपाई करने की जिम्मेदारी सरकार ने नहीं उठाई, इस अवस्था में अन्यों पर या मालवीय जी पर रोक लगाना ठीक नहीं होगा'।

फजली साहब के अन्य उद्धरणों से सीमाप्रांत की तानाशाही राज्य व्यवस्था पर थोड़ी रोशनी पड़ती है। फौजी कानून का विरोध करते हुए वे कहते हैं—

'बाहर के प्रांतों से जनता के आवागमन पर रोक है। देहात देहात में आने जानेवालों पर अंकुश हैं। वहाँ से बाहर जानेवाली खबरों पर नियंत्रण है। फिर मार्शल लॉ की जरूरत ही क्या?' (डायरी, १७ दिसंबर १९३०)

'दुश्मन के मुल्क पर भी बमवर्षा करने के पहले उसका इशारा दिया जाता है। इस रिवाज का अमल क्यों नहीं किया गया?' ऐसा सवाल उन्होंने उठाया था। इससे १९३०-३१ में बम भी इस्तेमाल किये गये, यह स्पष्ट होता है। जलियानवाला बाग के अत्याचारों के अनुसार पेशावर के किस्साखानी बजार के अत्याचारों से संसार भर में हलचल पैदा हो गयी थी। उसपर रोशनी डालने वाले सबूत यहाँ विस्तार से दिए गये हैं।

२४ अप्रैल को ही बादशाह खान और उनके सैकड़ों खुदाई खिदमतगारों की गिरफ्तारी हुई और उन्हें जगह जगह की जेलों में बंद करके रखा गया। खुद खान साहब प्रचार के दौरे पर थे तब रिसालपुर जैसे आमरास्ते से बिल्कुल दूर छावनी के गाँव में उन पर 'रेग्युलेशन ऐक्ट' जैसे निर्मम कानून के मातहत मुकदमा चलाया गया। उन्हें वहाँ अधिक समय न रख कर पंजाब

के गुजरात जेल में भेजा गया। सीमाप्रांत में १९३० के शांति से चले हुए आंदोलन का पहला पर्व यहाँ शुरू हुआ। खुदाई खिदमतगारों की अब कुछ कुछ पहचान शासकों को हुई। वे अभी भी हजारों की तादाद में अंदर थे। लेकिन अपनी कवायदों, राष्ट्रप्रेम के गीत और समाजसेवा के कारण जनता के हृदय में उन्होंने स्थान प्राप्त कर लिया। कपड़े मैले न दीखें इसलिये सस्ते या मुफ्त मिलने वाले गेरुए रंग या ईंट के चूरे में अपने कपड़े रँगते थे। इस कारण रूस की लाल क्रांति का बहाना लगाकर उनके खिलाफ जनता को उभाड़ने के लिये अंग्रेजों ने उन्हें 'रेड शर्ट' नाम दिया था। लेकिन अपने हाथ में वे लकड़ी भी नहीं रखते थे। १९३० के अहिंसात्मक जागरण का वर्णन करते हुए जवाहरलाल जी कहते हैं, 'भारत के हाल की संस्मरणीय घटनाओं में अब्दुल गफार खान पठानों जैसे लड़ाकू लोगों को सियासी आंदोलन में शांति के पथ पर ले लाए, इससे अधिक आश्चर्य की दूसरी बात नहीं है। उनके द्वारा सहे हुए क्लेश भयानक हैं। ऐसा होते हुए भी पठानों ने अनुशासन और संयम रखा, अत्याचारी नहीं हुए। सीमाप्रांत खान अब्दुल गफार खान के नेतृत्व में निडरता से कांग्रेस के पक्ष में आकर खड़ा रहा।' (डिस्कवरी आव् इंडिया।)

बादशाह खान की सजा होने पर उन्हें जेल में ले जाने वाली पुलिस गाड़ी के सामने कुछ कार्यकर्ता सोये और गाड़ी को रोकने का प्रयत्न किया लेकिन बादशाह खान के कहते ही वे दूर हट गए। नेताओं को गिरफ्तार करने पर जनता में कुछ क्षोभ होना स्वाभाविक है। लेकिन सीमाप्रांत के अधिकारियों ने खुद जो अत्याचार किये (२४ अप्रैल उन अत्याचारों के औचित्य के लिए, इसके सिवा दूसरा कोई चारा ही नहीं था। यह सिद्ध करने के लिए, खुदाई खिदमतगारों पर आरोप लगाना शुरू किया। लेकिन उन्होंने वास्तव में अत्याचार तो दूर की बात, छेड़ भी नहीं की थी, इसलिये शासक कोई सबूत नहीं पेश कर सके। पेशावर के हत्याकांड की न्यायालयी जाँच न्यायमूर्ति सुलेमान की समिति ने की थी। उस समिति के सामने आये हुए गवाही एवं सबूतों के आधार पर खुदाई खिदमतगारों पर इस तरह अत्याचारों का आरोप सिद्ध नहीं हो सका। ऐसा आरोप तक कोई नहीं कर सका। विट्ठलभाई पटेल की (पेशावर जाँच) समिति ने जो जानकारी दी है, उसमें सुलेमान समिति के सामने आये हुए कुछ अधिकारियों की गवाही, जनता को निर्दोष सिद्ध करने के लिये किस तरह मददगार हुई, यह बताया गया है।

इसके विपरीत सजा देकर जेलों में भेजे गये नेताओं और कार्यकर्ताओं को भी जेलों में किस तरह परेशान किया गया इसके प्रमाण भी रोज जेलों की दीवालें लाँघकर बाहर आते थे। खुद बादशाह खान को २० मार्च को गांधी इरविन समझौता होने के बाद रिहा किया गया। उनपर भी जेल में जुल्म ढाये गये। हरिपुर जेल (हजारा जिला) में हजारों बंदी ठूसे गये। वहाँ खाना कपड़ा ठीक से नहीं दिया जाता था। लेकिन कोड़े की सजा सरे-आम दी जाती थी। बंदियों को कतार में सुलाकर उनके बदन पर से गुनहगार वार्डर को रौंदते हुए जाने के लिये कहा जाता था। इस तरह पशु-तुल्य और घृणास्पद प्रकार के जुल्म जेलों में होते थे। इनमें खुदाई खिदमत-गारों ने कहीं भी इसके विरुद्ध कोई अत्याचार या फसाद किये, ऐसे आरोप सरकारी अधिकारियों द्वारा बाहर नहीं आये। गुनहगार बंदियों को बताया जाता था कि पठान बंदी जेल के अधिकारियों को परेशान करनेवाली जमात है। हाथकड़ियाँ बाहों में, पैरों में बेड़ियाँ होते हुए भी अधिकारी उन पर हमला करवाते थे। ये राजकीय बंदी सिर्फ डर के मारे यह तकलीफ सहन करते हों ऐसी बात नहीं, अपितु उन्होंने वैसा व्रत लिया था और वे उसे निभा रहे थे। यह सचाई है।

बादशाह खान और अन्य कार्यकर्ताओं की सजा होने पर पेशावर और अन्य इलाके में आंदोलन पूरी शांति और जोश से कुछ अरसे तक चलता रहा। हजारा जिले में शांति और अनुशासनपूर्वक यह आंदोलन बहुत अरसे तक चला। इसलिये वहाँ पेशावर की ही तरह शासन की ओर से रोब जमाने के लिये सब तरह के अत्याचार किये गए और पाँच पाँच हजार की जमानतें ली गईं। हकीम अब्दुल सलाम, पं० पुरुषोत्तमदास, मौलाना गुलाम-रब्बानी, सरदार कृपाल सिंह आदि को एक साल की सजा दी और नेताओं को जेलों में बंद करने के बाद जनता पर अंधाधुंध गोलियाँ चलायी जाती थीं, इसके विवरण बहुत दिनों के बाद प्रकट हुये। पं० पुरुषोत्तमदास ने यह लेखमाला आधार सहित, विभाजन के पश्चात् देहरादून के 'फ्रांटियर मेल' अखबार के जरिये प्रसिद्ध की। पं० पुरुषोत्तमदास १६२० में डाकखाने की नौकरी से त्यागपत्र देकर सत्याग्रही बने थे। वे भी फौजी जुल्म को देखकर ही ऐसा करने को तैयार हुए थे।

बन्नू और कोहाट जिलों में भी सत्याग्रह की लहर दौड़ी। बाद में पाकिस्तान के अध्यक्ष (प्रेसिडेंट) होनेवाले इस्कंदर मिर्जा उस वक्त बन्नू में

असिस्टेंट कमिश्नर थे। उन्हीं की देख रेख में हार्थीखेल देहात में मुल्ला फजल कादिर को सभा में तकरीर करते समय गोली का निशाना बनाया गया। (पं० पुरुषोत्तमदास के लेख—फ्रांटियर मेल, १ सितंबर १९५८)। उनकी कारकिर्द में सैकड़ों लोगों पर जुल्म किये गये। पाशविक अत्याचारों के संबंध में सीमा प्रदेश के अधिकारियों द्वारा भारत में किए गए अत्याचारों की तुलना में मात देना स्वाभाविक ही था क्योंकि वहाँ के अधिकारी अपने को फौजी सत्ता के प्रतिनिधि मानते थे।

पेशावर सेंट्रल जेल में भी शहर में हुए गोलीकांड और अत्याचार की खबरें पहुँच गई थीं। ता० २५ को ही गुनाहगार बंदियों ने कम से कम जेल स्वतंत्र करने का निश्चय किया होगा। करीब दो हजार बंदियों ने जेल का बैरक के दरवाजे तोड़े, सब बंदियों को मुक्त किया। कांग्रेस कैदियों को भी मुक्त किया। इतना ही नहीं, वे नेता हैं, उन्हें यह ख्याल दिला देने पर उन्हें कंधों पर लेकर जेल के बाहर उनका जुलूस निकाला। लेकिन जल्द ही फौजी सहायता आयी और सबको जिसकी जो कोठरी थी उसमें पहुँचाया गया। शहर पर आफीदी टोलीवालों ने हमले किये। उस समय शहर के लोगों ने उनका स्वागत करके उन्हें सब तरह की मदद पहुँचाई। (बाच्चा खान ले० बुखारी, पृष्ठ १२०) अंततोगत्वा कांग्रेस की स्वतंत्रता और गांधी जी की अहिंसा का जिसे जैसा मतलब समझ में आया वैसा अमल में लाने का प्रयत्न किया। उसका फायदा शासकों ने उठाया। अहिंसानिष्ठा से आचरण करनेवाले देशभक्तों पर अमानुषिक अत्याचार किये गए।

बादशाह खान से गुजरात (पंजाब) जेल परिचित था। लेकिन इस मर्तबा वहाँ नये नये नेता मिले, मित्र मिले, विशेषतः उन्हें गीता का अर्थ विषद करके बतानेवाले गुरु मित्र पं० जगतराम उन्हें वहीं मिले। उन्हें डॉ० अन्सारी, मौ० अताउल्लाशाह बुखारी, किफायतउल्ला आदि का सान्निध्य मिला। बायबल, ग्रंथसाहब और गीता का इनका उन्होंने खुद अध्ययन किया था। 'भिन्न भिन्न धर्म के मित्रों की भावना और विचार समझ लेने के लिये कम से कम इतना तो जानना ही चाहिये' ऐसा वे मानते थे। अन्य निरामिष भोजन करनेवाले मित्रों के लिए उन्होंने मांसाहार का त्याग किया था। गांधी जी के आचारों में से साप्ताहिक उपवास और मौन का उन्होंने इस मर्तबा अवलंबन किया। जेल जीवन के वे अब अभ्यस्त हो गये थे। उनके साथ सौ से ऊपर राजबंदी थे। फिर भी बड़ी बड़ी चर्चाओं में उन्होंने कभी

रस नहीं लिया। कोई विषय आता तो अपनी राय वे अच्छी तरह से स्प करते थे। उनके आचार विचारों में समन्वय, व्यापकता और परम सहिष्णुता आदि सबका अस्तित्व होने से हिंदू और मुसलमान दोनों कार्यकर्ताओं में उनकी राय पर टिप्पणी करनेवाले निकलते थे लेकिन इस तरह की टीका-टिप्पणी के प्रति वे उदारता से आनाकानी किया करते थे।

खुदाई खिदमतगार संघटन अभीतक कांग्रेस से उठी हुई नहीं थी। यह राजनीतिक संघटन भी नहीं था। लेकिन सीमाप्रांत ही नहीं, उसके उसपार के स्वतंत्र पठानी मुल्क में भी उनकी सेवा और त्याग का प्रभाव हुआ था। इसलिये सीमाप्रांत के अधिकारियों ने इन नौजवान स्वयंसेवक–लालकुर्तीवाले–और उनके नेता बादशाह खान के विरुद्ध सब प्रकार का असत्य प्रचार निरंतर चालू रखा। इसलिये गांधी इरविन करार के समय बादशाह खान और खुदाई खिदमतगारों को उस करार में शामिल करने में काफी अड़ंगे लगाए गए।

वे और उनके संघटन कांग्रेस की ओर कैसे ढकेले गये, मुस्लिम लीग ने पठानों के संकट में उनको कैसे अस्वीकार किया और उस समय केवल कांग्रेस ने ही सहायता का हाथ बढ़ाया इसलिये उन्हें कांग्रेस में प्रवेश करने के सिवा कोई दूसरा चारा न रहा, आदि जानकारी खुद बादशाह खान ने कई मर्तबा दी है। 'बाहर के अत्याचार और अस्तव्यस्त परिस्थिति से दुखी हुए एक-दो सहकारी यहाँ (गुजरात जेल) आ मिले। उनकी आपबीती को सुनकर मुझे भी बहुत दुख हुआ। हमने अपने में ही विचार करके मिलने के लिये आये हुए मित्रों से कहा कि लाहौर, दिल्ली, शिमला जाकर मुस्लिम लीग और अन्य मुस्लिम संस्थाओं के नेताओं से मिलो। उनको हम अपना भाई ही मानते थे और इस भयानक संकट काल में वे हमें मदद करेंगे ऐसी हमें आशा थी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।' कुछ रोज बाद हमारे ये कार्यकर्ता वापस आकर हमसे जेल में मिले। उन्होंने कहा, 'मुस्लिम लीग के नेताओं को अंग्रेजों के खिलाफ झगड़ा नहीं करना है। आप अंग्रेजों के खिलाफ लड़ते हैं इसलिये वे हमारी सहायता करने के लिये तैयार नहीं हैं।' बादशाह खान ने सर्वप्रथम सहायता के लिये मुसलमानों की ओर अपने कार्यकर्ता भेजे इसलिये उनकी नीति के संबंध में गलतफहमी कर लेनेवाले कुछ लोग यहाँ के कांग्रेस-जनों में भी थे। बादशाह खान की दिक्कतें इन टीकाकारों के ध्यान में आना आसान नहीं था। बिल्कुल धर्मांध और जातिनिष्ठ सज्जनों के मार्फत उन्हें

काम करवा लेना था। हिंदुओं के परम मित्र, इस्लाम धर्म को न माननेवाले आदि के रूप में उनकी टीका की जाती थी। अपने अनुयायियों और समाज की गलतफहमी न बढ़ाते हुये उन्हें अपना संघटन मजबूत करना था। जैसे लोकमान्य तिलक लोकसंग्रह की नीति के कारण सनातनी लोगों की मर्जी के प्रतिकूल काम नहीं होने देते थे, सामान्यतः उसी विचार से बादशाह खान प्रारंभिक अवस्था में कदम बढ़ा रहे थे, लेकिन उन्होंने कभी भी प्रतिगामी विचारों का समर्थन नहीं किया।

बादशाह खान ने अपने कार्यकर्ताओं का अधिक प्रभावी संघटन किया या उनके नेताओं की शक्ति खड़ी हो इसलिये कांग्रेस के साथ या संभव हुआ तो मुस्लिम लीग के साथ संबंध प्रस्थापित करने की कोशिश की या उसके पीछे कोई अन्य कारण था, इस संबंध में तरह तरह के प्रवाद हैं। सीमाप्रांत में दमन की हद हुई इसलिये खुदायी खिदमतगारों के कुछ कार्यकर्ता सर फजली हुसेन से मिले। सर फजली हुसेन उस समय वायसराय की कार्यकारी समिति के सदस्य थे। मुसलमान समाज में उनके नेतृत्व के बारे में काफी आदर था। सर फजली हुसेन ने भी कांग्रेस की ओर आने की सलाह दी जैसा एक वृत्तांत है, क्योंकि भारत सरकार ने 'सीमाप्रांत के फौजी अधिकारियों को पूरी छूट दी है और वे अधिकारी इस संघटन को नेस्तनाबूद करनेवाले हैं।' इस नीति का आभास होने पर उस प्रांत के बड़े बड़े जमीनदार और सरकार के पक्षपाती मुस्लिम नेता सर अब्दुल कयूम ने ही खुदायी खिदमतगार जैसा प्रभावशाली संघटन और उसके कार्यकर्ता सर्वत्र कुचले न जायँ इस दृष्टि से कार्यकर्ताओं को वैसी सलाह दी थी ऐसा कहा जाता है (बुखारी पृ० १०३)। सर अब्दुल कय्यूम की सलाह के अनुसार कार्यकर्ता मुस्लिम लीग के नेताओं से मिले लेकिन उन्होंने इन्कार किया ऐसा दूसरा प्रवाद है (यूनुस, पृ० १२१)।

मुख्यतः यह घटना गांधी इरविन सुलह के व्यस्त समय में हुई है, अन्य नेता मुक्त हुए थे फिर भी बादशाह खान को रिहा नहीं किया गया था। खुदाई खिदमतगारों पर से नियंत्रण ढीले करने के लिये सीमाप्रांत के शासक तैयार नहीं थे। इसलिए यह संघटन कॉंग्रेस को जोड़ने का निर्णय लेने से संघटन पर से नियंत्रण हटवाना गाँधी जी के लिए सरल हो, इस हेतु वह निर्णय लिया गया होगा। इस संबंध मे चर्चा करने के लिये सीमा प्रांत के पुराने कांग्रेस नेता अलिगुल खान और मियाँ जाफर बादशाह खान से जेल में मिले। वे गांधी जी का संदेश लेकर गये थे ऐसा दीखता है। बादशाह खान ने अपने अन्य सहकारियों की सलाह लेकर अपना संघटन कांग्रेस में शामिल

होने और कांग्रेस की अहिंसा की नीति का समर्थक संदेश भेजा। उसके बाद ही इरविन ने उनकी रिहाई का हुक्म जारी किया (बुखारी)।

इस घटना में अनपेक्षित कुछ भी नहीं है। बादशाह खान की इच्छा के विपरीत कुछ बंधन उन्हें स्वीकृत करने पड़े ऐसा जो आभास कुछ लेखकों को हुआ, वह भी सही नहीं है। अहिंसा या सत्याग्रह के तत्वों का प्रेम बादशाह खान के लिये नया नहीं था। सत्याग्रही प्रतिकार की ताकत १६२० में उन्होंने स्वयं देखी थी, आजमायी थी। खुदाई खिदमतगारों की शपथपत्रिका में अहिंसा का अंतर्भाव है। इसलिये ये बातें उन्हें मान्य थीं ही। लेकिन अपना संघटन संभव हो इसलिए सियासी मामलों से परे रहे, वह समाज के सुधार कार्य से ही बँधी रहे ऐसी बादशाह खान की उस समय तक दृष्टि थी। तानाशाहों की इस दस्तंदाजी के बाद कोई मुस्लिम नेता शासकों के अन्याय के खिलाफ उठ खड़ा होने के लिये तैयार नहीं है, यह देखने पर बादशाह खान ने कांग्रेस नेतृत्व का यह निर्णय लिया यह उनके ध्येय धारणा के अनुरूप ही था। पेशावर प्रदेश कांग्रेस का नाम उस प्रदेश के लिये अलग अर्थात् 'कांग्रेस फ्रांटियर जिर्गा' रखकर इस नाम से काम करने के लिये अखिल भारतीय कांग्रेस ने उन्हें अनुमति दी। इस तरह गांधी इरविन करार के अनुसार सीमाप्रांत के इस नए संघटन को कांग्रेस के राष्ट्रव्यापी संघटन में समाविष्ट किया गया या संघटनात्मक संपर्क साधा गया। अन्य घटक राज्यों की तरह होते हुए भी काश्मीर राज्य को कुछ समय तक कुछ विशिष्ट अव्यक्त अलगपन महसूस करने दिया गया था। कुछ अंश में उसी तरह की सीमाप्रदेश कॉंग्रेस संघटन की स्थिति थी।

गाँधी इरविन करार केवल सत्याग्रही आंदोलन के दबाव में आकर हुआ, ऐसा किसी ने नहीं माना है। इस आंदोलन की ताकत शासकों ने पूर्णतया महसूस की थी, यह भी उतना ही सही है। वरना इतने खूंखार अत्याचार करने पर शासक नहीं उतारू थे। इंग्लिश कपड़े के बहिष्कार के कारण मैंचेस्टर पर भी बहुत हिंसा होती है ऐसी चिल्लाहट भी होने लगी थी। उस समय इसका ६० प्रतिशत आयात बंद हुआ था। अतएव बहिष्कार आंदोलन का परिणाम इंग्लैंड के पूँजीवादी वर्ग पर कितना हुआ होगा और खादी के स्वावलंबन को गाँधी जी ने इतना महत्व क्यों दिया यह ध्यान में आ सकता है। गाँधी इरविन सुलह मुख्यतः उस समय लंदन में चल रही गोलमेज परिषद के नाटक को पूर्ण करने के लिये ही हुई थी। वह परिषद

कॉंग्रेस के अभाव में कुछ अर्थ नहीं रखती ऐसी राय वहाँ पर उपस्थित सप्रू, शास्त्री, जयकर जैसे नेताओं की थी। इसलिये और स्वभावतः धार्मिक प्रवृत्ति वाले इरविन उस समय सत्ताप्रमुख थे इसलिये यह सुलह अमल में आ सका। इस सुलह में फौजी सत्ता के इस्तेमाल करने के अभ्यासी पेशावर के अधिकारी और पोलिटिकल महकमा दूसरी दिक्कतें थी। बादशाह खान और उनके लाल कुर्तेवाले खुदाई खिदमतगार कम्युनिज्म के पहले दर्जे के दूत हैं, तथा पैन इस्लामिज्म के वे प्रवर्तक हैं आदि ढिंढोरा वहाँ के अधिकारी कई सालों से पीटते आये थे। १९ ० में तो सत्याग्रही आंदोलन के समय इन अधिकारियों को पूरी छूट दी गयी थी। वह स्वातंत्र्य खोकर फिर उन्हीं लाल कुर्तेवालों के साथ गोलियां की भाषा बोलने की एवज में इंसान जैसे बात करने की नौबत लावे ऐसा मरणप्राय प्रसंग सीमाप्रांत के अधिकारियों के सामने लाया गया था। इसलिये उन्होंने एड़ी चोटी का पसीना एक कर बादशाह खान की रिहाई का सख्त विरोध किया। लेकिन गाँधी जी ने भी सीमा का सवाल हल न हुआ तो सुलह होना और उसका टिकना मुश्किल होगा, यह स्पष्ट कर दिया था। ऐसे कठिन समय में सर फजली हुसेन की बुद्धिमत्ता-पूर्ण सलाह इरविन को मिली और वही उपयुक्त साबित हुई, ऐसा दीखता है। १९३१ की जनवरी फरवरी की अपनी डायरी में वे कहते हैं, 'खुदाई खिदमतगार आंदोलन आतंकवादियों का नहीं है या अफगान या रशिया की प्रेरणा से भी नहीं है। अधिकारियों के ये इल्जाम बेबुनियाद हैं। यह आंदोलन चलानेवालों में कई जमींदार धनिक हैं, वे मुलायम याने नरम नीति के हैं, पैन इस्लामिजम या खिलाफत आंदोलन अब नष्ट हुए हैं' (सर फजली हुसेन पृ० १९७)। ये उल्लेख बादशाह खान की रिहाई के दौरान के हैं। उनकी सलाह ही सुलह करने में काम आई होगी। फ्रांटियर प्रांत के कार्यकर्ता सर फजली हुसेन से मिले थे ऐसा ऊपर उल्लेख किया ही गया है।

इस सुलह के अनुसार वे रिहा किये गये और मोटर से लाहौर और वहाँ से पेशावर दि० ११ मार्च को पहुँचे। उनका जुलूस उनके त्याग और सफलता की शोभा के तुल्य ही निकला। पेशावर में इस तरह का जुलूस पहले कभी नहीं निकला था। आसपास के देहातों से आने वाली जनता की कतारें लगी हुई थीं। शहर खुशी से फूला न समाता था। रास्ते पर सैंकड़ों कमाने झूमर लगे हुए थे, बादशाह खान, खुदाई खिदमतगार और आजादी के जयजयकार में जुलूस चींटी की चाल आगे बढ़ रहा था, उनपर बरसाये

जाने वाले गुलाब के फूलों का ढेर रास्ते पर पड़ा था तो उसकी सुगंध के कारण सरकारी दफ्तरों में बैठे हुए अधिकारियों के अंतःकरण धँसते जा रहे थे। बादशाह खान को इस तरह के जुलूस और उनका पीछा करनेवाली पकड़ और वारंट की चिलखतो मोटरों का ठीक ठीक परिचय हो चुका था। इसलिये इस सारे वातावरण में केवल जनता का प्रेम पहचान कर वे उसको स्वीकार करते थे। अपने नम्र सलाम से वे उन्हें स्नेहभरा उत्तर देते थे।

: १० :

गांधी इरविन समझौते का छलावा

भगाकर लाई हुई लड़की की शादी में सब बातें जिस तरह जल्दी जल्दी निपटाई जाती हैं वैसे ही गोलमेज परिषद् में गांधी जी को ढकेलने के लिये इरविन और उसके पिछलग्गू निरंतर प्रयत्न करते रहे। दूसरी ओर उस समझौते से नाराज हुये गांधी जी के सहकारी अपना असंतोष किसी न किसी तरह प्रकट थे। जैसे जवाहर लाल, वल्लभ भाई को यह समझौता पसंद नहीं था, वैसे ही वह खानबंधु को भी नापसंद था। सुभाष बाबू काफी नाराज थे। उनका नौजवान संघटन हथियार लेकर तैयार थी। इस सारे तूफान में कर्तव्य बुद्धि से और परिस्थिति जानकर इस समझौता को कांग्रेस अधिवेशन में पुष्ट करा लेने के लिए गांधी जी को अग्निपरीक्षा देनी थी और ठीक इसी समय जेल के संकेत ताक पर रखकर निर्धारित समय के पहले की रात में भगतसिंह, राजगुरु, दत्त को फाँसी पर चढ़ाया गया (२४ मार्च)। गांधी जी को अपेक्षा थी कि इन नौजवानों की फाँसी टलेगी। इस संबंध में बातचीत पूरी करके वे दिल्ली से कराची के रास्ते पर थे। कराची स्टेशन पर पहुँचे तो न केवल काले झंडों से बल्कि नौजवानों की हुल्लड़ से उनका स्वागत हुआ। सारा देश दुखी और शोकाकुल हुआ। कराची के कांग्रेस नगर का वातावरण असीम व्यथित भावनाओं से कुंद था।

अध्यक्ष सरदार वल्लभ भाई थे। उनके पीछे पीछे बादशाह खान और उनके ५२ लाल कुर्ते वाले बैंड पाइप बजाते हुए राष्ट्रीय सभा के खुले मंडप में आये। उस समय केवल नाम से परिचित इस पठान प्रतिनिधि का उत्स्फूर्त स्वागत तालियों से हुआ। श्रोताओं की नजर के सामने पेशावर के गोलीकांड का, गढ़वाली पल्टन के बहादुर सैनिकों का और ३१ मई को टाँगे में से जानेवाले गंगा सिंह के दो बच्चों को गोली लगने के बाद, सैकड़ों का अपने सीने पर गोलियाँ झेलने के लिये धड़ाधड़ आगे आने का चित्र खड़ा हुआ होगा ही। अहिंसा निष्ठा के और अपूर्व धैर्य के प्रतिनिधि के नाते इस पठान

देशभक्त का दर्शन कांग्रेज जनों को पहली ही बार हुआ था। उनके साथ २०० पठान कार्यकर्ता भी आये थे। इस बैठक में बादशाह खान ने तकरीर भी की। गांधी इरविन समझौते का प्रस्ताव भी सम्मत किया जाता लेकिन भगत सिंह के पिता किशन सिंह और बादशाह खान इन दोनों की उपस्थिति और गांधी जी के नेतृत्व को दिये हुए हार्दिक अनुमोदन का प्रभाव भी कुछ कम नहीं था। वहां बादशाह खान की छोटी सी तकरीर, बाद में गांधी जी के नेतृत्व में उनकी नितांत निष्ठा का द्योतक है। 'भारत और भारतीयों से परिचय और उनसे दोस्ती का लाभ गाँधी जी की वजह से हुआ' ऐसा अर्थपूर्ण वाक्य उनके भाषण में है।

कराची से बादशाह खान दो दिन के लिये बंबई आये। गाँधी जी के ज़माने में आंदोलन के दौरान बंबई राजनीतिक हलचल का केंद्र थी। देशभक्त नरिमन उस समय बंबई के लोकप्रिय नेता थे। दि० ५ अप्रैल को हुई राष्ट्रीय मुसलमानों की परिषद में उपस्थित रहने का कार्यक्रम इस दौरे में था। उनका यह बंबई का दौरा बैगपाइप के वाद्यों के साथ कुर्ला बांद्रा भाग में की हुई पदयात्रा के कारण बंबई के निवासियों को बहुत दिन तक याद रहा। आजाद मैदान पर उनका सत्कार और भाषण हुआ। इस सत्कार के समय फाँसी पर चढ़ाये गए राजगुरु की माँ, स्व० भाई राजगुरु और अपत्य-भावना से प्रेरित हो लाहौर से उनके साथ आये भगतसिंह के छोटे भाई कुलतार सिंह का भी सत्कार इस सभा में किया गया। भाई राजगुरु और कुलतार को सभा मंच पर देखते ही सामने बैठी हुई कई महिलाओं को अपने आँसुओं और रुलाई पर काबू पाना कठिन हो गया। वहाँ के भाषण में अहिंसा से पठानों की ताकत कैसे बढ़ी इसका बादशाह खान ने विवेचन किया, वैसे हम सिर्फ अनुशासन के सिपाही हैं ऐसा उन्होंने इस विराट सभा में कहा। सभा में धक्कामुक्की, शोरगुल बहुत हुआ। बादशाह खान ने पारला के सत्याग्रह शिविर और बाँद्रे को भेंट दी।

कराची बंबई से अपने प्रांत में वापस आते ही बादशाह खान ने सीमा प्रदेशों के देहातों का दौरा शुरू किया। गाँधी इरविन समझौता उन्हें पसंद नहीं था। लेकिन मिले हुए मौके का जनता में प्रचार करने के लिये उन्होंने पूरा लाभ उठाया। उनके खिलाफ प्रतिगामी मुसलमानों द्वारा चलाये हुए प्रचार का जवाब देने का मौका भी उन्हें अच्छी तरह से मिला।

कराची कॉंग्रेस में जाने के पहले ही बादशाह खान ने खुदाई खिदमतगार संगठन में नौजवानों को दाखिल होना चाहिये, ऐसी प्रार्थना की थी। स्वयंसेवकों की संख्या एक लाख के ऊपर हो जाए, ऐसी इच्छा उन्होंने व्यक्त की थी। अहिंसा और अनुशासन की निष्ठा पर वे बहुत जोर दिया करते थे। सरकारी जुल्म से पीड़ित जनता उनका नेतृत्व खुशी से और आदर से स्वीकार करने के लिये उत्सुक थी। इन तीन चार महीनों में उन्होंने सभी देहातों का दौरा किया। वे खुद दिन ब दिन आदर्श ग्रामसेवक होते चले गये। देहात में कहीं भी गये तो अक्सर पैदल यात्रा किया करते थे। यह पदयात्रा चलती फिरती सभा ही रहती थी। उन्होंने अफ्रीदी और अन्य स्वतंत्र मुल्क की जमातों को भी इस अहिंसायुद्ध में सम्मिलित होने का आवाहन किया। इसीलिए अधिकारियों में घबराहट फैल गई। गाँधी इरविन समझौता भी अधिकारियों को पठानों द्वारा भारत पर किये हुए हमले जितना ही भयंकर लगा। उन्होंने अपने दमन के शस्त्र अभी म्यान में नहीं रखे थे। उनका सरेआम इस्तेमाल होता ही था। निरोधन (पिकेटिंग) करने का जनता को हक है ऐसा इस समझौते में मान्य किया गया था। उसको आधार बना बादशाह खान ने पेशावर में पिकेटिंग शुरू की। पेशावर की सामाजिक और सार्वजनिक हलचल हमने कुचल दी है ऐसा जिन अधिकारियों को लगता था उन्हें फिर से आक्रामक आंदोलन शुरू होने से सदमा पहुँचा। २४ अप्रैल और ३१ मई १९३० के दौरान पेशावर पर किये हुए अत्याचार पीढ़ियों तक रोब जमाने के लिये काफी हैं, ऐसा गोरे अधिकारियों को लगता था, लेकिन निडरता और त्याग इन दो बातों में पठान पीछे हटनेवाला नहीं और मौत का स्वागत करने के लिये हमेशा तैयार रहनेवालों को अहिंसामार्ग की महत्ता आसानी से समझ में आ सकती है। इसलिये एक साल पहले जिस रास्ते पर अपना खून बहाया था, उसी रास्ते से खुदाई खिदमतगार और कॉंग्रेस स्वयंसेवक अनुशासन से कतारों में पुनः घूमने लगे। पेशावर में नवचैतन्य फिर से फूला। शराब की पिकेटिंग करने के लिए एक ही साथ ६०० स्वयंसेवकों ने नाम लिखाये और तीन सौ लोग एक साथ निरोधन करते रहे। लोगों का हौसला बढ़ना स्वाभाविक ही था। अधिकारी उतने ही बेचैन होते गए। इसका परिणाम क्या होगा, यह बादशाह खान जानते थे। बारडोली के किसानों से छीनी हुई जमीन उन्हें वापस मिलनी चाहिये, अन्य जुल्मों की सुनवाई होनी चाहिये आदि प्रयत्नों में सरदार गुजरात में व्यस्त थे तो सीमाप्रांत में बादशाह खान लोगों की व्यथाओं को प्रकट करते हुए और

पिकेटिंग जैसे संरक्षक आंदोलन को प्रोत्साहन दे रहे थे। यह सब समझौते की शर्तों के अनुसार ही था। इस खींचातानी में राउंड टेबल का गला न घोटा जाय इसके लिये शास्त्री-सप्रू अथक परिश्रम से दौड़धूप करते थे! गाँधी जी और लार्ड इरविन बेहद संयम से काम लेते थे, भारत में बसने वाले चर्चिल के अनुयायी इस समझौते को ब्रिटिश सत्ता पर लगा धब्बा मानते थे। सत्ताधारी नौकरवर्ग अपने पिस्तौलों की खोज में था। ऐसे वातावरण में गाँधी जी की गोलमेजी नैया सितंबर में रास्ते पर लगी। कॉंग्रेस की अनुपस्थिति की कमी को दूर करने का दाँव गाँधी-इरविन समझौते से सध गया था। हमारे अंतर्गत मतभेद कितने तीव्र हैं, इसका दृश्य वहाँ उपस्थित किया गया। चुने हुए नुमाइंदे संस्थानिक, मुसलमान, हरिजन, हिंदूसभा अपने अलग अलग सुरों में बोलने वाले थे। इतना ही नहीं, जिनका मतैक्य किसी से भी होना संभव नहीं, ऐसे ही नेता वहाँ इकट्ठे किये गये थे। मुख्य प्रधान मैक्डोनाल्ड मजदूर पक्ष के नेता होते हुए भी रीछ के कान दरवेश के हाथ में रहते हैं इस भाँति भारत विषयक नीति निर्धारित करने का काम सैम्युअल होअर के जरिये सरकारी पक्ष चलाता था। इसलिये वहाँ कुछ अधिक सफलता मिलेगी ऐसी आशा गाँधी जी को थी ही नहीं। राउंड टेबल परिषद से गाँधी जी को भारत लौटने के पहले ही जिस जल्दी से 'राजपूताना' जहाज पर चढ़ाया गया उसी जोर शोर से उन्हें यरवदा के रास्ते पर ले जाने की तैयारी भी की गई थी। कुटिल राजनीति का यह एक अनूठा अनुभव उस वक्त हुआ। अर्थात् यह सारी ताकत सिर्फ ब्रिटिश राजनीति की ही थी ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। पहले राउंड टेबल के आखरी तकरीर में मौलाना महंमदअली ने एक याद रखने लायक बात कही थी, 'फूट डालो और राज चलाओ' यह पहुँचे हुए राज्यकर्ताओं की नीति होती है। लेकिन भारत में हम ही फूट डालते हैं और तुम राज चलाते हो।' कितना हृदय विदारक सत्य उन्होंने एक ही वाक्य में व्यक्त किया था। उसमें किसकी कितनी बदनामी थी, इसकी छानबीन किसी ने कभी भी नहीं की होगी।

: ११ :

पेशावर कांग्रेस में मतभेद

राउंड टेबल बैठक में जाने के पहले बंबई की अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में सीमाप्रांत की कांग्रेस समिति के संबंध में चर्चा हुई थी। खुदाई खिदमतगार संस्था कांग्रेस में विलीन करने और अफ़गान-जिरगा नाम से वहाँ कांग्रेस का काम हो इस निर्णय से पेशावर के कांग्रेस नेताओं का विरोध था। यह विरोध तीन-चार माह से जोर पकड़ रहा था। इसमें व्यक्तिगत ईर्षा-मत्सर की अपेक्षा मतभिन्नता का ही सवाल था। इससे शहरी लोगों के हाथों से उसकी व्यवस्था उतमंजई के देहाती पठानों के हाथ में जानेवाली थी। यह अंदर की बात थी, लेकिन बादशाह खान के कुछ कार्यकर्ताओं खुदाई खिदमतगार समाजसेवा के संघटन का स्वरूप यथावत बना रहे ऐसी मान्यता थी। उसके लिये उन्होंने बादशाह खान से भी विरोध करने का संकल्प प्रकट किया, इसीलिये यह मसला आखिर में ऑल इंडिया कांग्रेस समिति द्वारा नियुक्त की हुई उपसमिति के विचारारार्थ पेश किया गया। इस उपसमिति में डॉ० अन्सारी, महादेव देसाई आदि लोग थे। खुद गांधी जी भी इस पर ध्यान देते थे। अपेक्षानुसार बादशाह खान के पक्ष में निर्णय हुआ। फ्रांटियर कांग्रेस जिर्गा नाम से वहाँ की प्रदेश कांग्रेस समिति का कार्यालय उतमंजई लाया गया। बादशाह खान को कांग्रेस और खुदाई खिदमतगार दोनों संस्थाओं का संचालन सौंपा गया। जो प्रत्यक्ष काम करता है उसके पास नेतृत्व रहना अपरिहार्य हो जाता है और वही हित में भी रहता है। बादशाह खान के नेतृत्व को किसी का विरोध था ही नहीं उसके पीछे शहर बनाम देहात की लघु भावना मात्र थी। इसी तरह शाखा कांग्रेस की संस्था और उसका 'जिर्गा' नाम कुछ कांग्रेसी नेताओं को पसंद नहीं था। खुद सरदार वल्लभभाई पटेल को यह मंजूर नहीं था, ऐसा सुनाई देता था। बादशाह खान की नीति का विरोध करनेवाले पेशावर के नेता आगालाल बादशाह, हकीम अब्दुल जलील, बैरिस्टर अहमदशाह जिक्केदेवी आदि लोग बादशाह खान के नेतृत्व के विरोधी नहीं थे लेकिन उस स्थिति में काम करने

में सहूलियत हो इसलिये प्रादेशिक जिर्गा नाम रखने से काफी विरोध टलता था। बादशाह खान की नीति विरोधियों को समझ में नहीं आती थी। लेकिन गांधी जी यह सब जानते थे। इसलिये शब्द से चिपके रहने के एवज में कार्यसिद्धि की ओर ध्यान देनेवाली नीति की वे ताईद करते थे। इसी तरह यहाँ भी हुआ। "लेकिन कांग्रेस का नाम हटाने में बादशाह खान का मकसद अलग ही था। उनका सारा ध्यान अफगानिस्तान की ओर था" ऐसा माननेवाले कौमी विचार रखनेवाले कुछ टीकाकार उस समय भी थे और आज भी होंगे। उनमें हिंदू और मुसलमान दोनों थे।

कांग्रेस संघटन का प्रत्यक्ष नेतृत्व स्वीकार करने से बादशाह खान का कांग्रेसप्रेम कुछ कम-ज्यादा हुआ हो ऐसा नहीं है? अप्रैल १९३१ से वे काम में व्यस्त हुए। इन छः महीनों में उन्होंने अधिकारियों को बेहद परेशान किया। देहातों के अधिकारी कार्यकर्ताओं पर हाथ उठाने लगे थे। जून महीने में कुछ हिस्से में सभाओं पर पाबंदी लगायी गयी। समझौते की नीति से सरकार का रवैया बिलकुल मेल नहीं खाता था। लेकिन छोटे अधिकारी वरिष्ठों को अनापशनाप रिपोर्ट पेश करते थे। देहात में खेले गये एक नाटक में नौजवानों ने उन्मत्त गोरे अधिकारी की मखौल उड़ायी थी। लेकिन चार-छः डिप्टी कमिश्नरों की हत्या के लिये उसमें प्रोत्साहन दिया गया था ऐसा इल्जाम लगाकर उस नाटक में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को जेल भेजा गया। इस चिड़चिड़ेपन के कारण जनता का राजकर्ताओं के प्रति अनादर बढ़ता गया और लाल कुर्तेवालों की संख्या रोजाना बढ़ती गई। देहाती गरीब जनता की दुर्दशा बादशाह खान की हार्दिक वेदना का रोजमर्रा का विषय बनी हुई थी। सफर में उन्हें उनकी भीषण दरिद्रता का दर्शन होता था। स्वाभाविक ही 'जितनी अनुकूलता हो उतनी रोजी दें' ऐसी सलाह वे देते थे। यह सलाह कानून के अनुकूल थी लेकिन रोजी-बंदी का यह प्रचार गैरकानूनी है इस तरह की शिकायतें अधिकारियों ने शुरू कीं। सितंबर से दिसंबर इन चार महीनों की अवधि में गांधी जी लंदन में थे। उस दरमियान गांधी इरविन समझौता गाड़ने की अधिकारियों की करतूतें जोर पकड़ रही थीं। सैम्युअल होअर के कुछ अर्थबोधक उद्गारों से प्रकट होता है कि समझौता जल्द ही टूटनेवाला है ऐसा संदेश महादेव भाई ने सरदार पटेल को लंदन से भेजा था। जवाहरलाल, सरदार और बादशाह खान सरकार के इन कारनामों को जानकर, अपने अधिकार कुचले न जायँ इसके लिये निरंतर जागरूक रहे। संयुक्त प्रांत में किसानों की हजारों की सभाओं में रोजी

बंदी के प्रस्ताव मंजूर होते थे। बारडोली में फिर से आंदोलन की तैयार शुरु हुई है ऐसी पुलिस रिपोर्ट रोजाना नीचे से ऊपर भेजी जाती थी। बादशाह खान के कार्यक्रम खुलेग्राम और निरंतर चलते थे और जिस लार्ड इरविन की बुद्धिमानी और समझदारी के कारण समझौता हुआ था और टिका उस इरविन की जगह लार्ड विलिंग्डन जैसा साम्राज्यवादी शासक आया। "गांधी जैसे चतुर नेता से विचार विनिमय करने की झंझट में न फँसते हुये, उसे अपने से चार हाथ दूर रखा जाय" इस सूत्र में विलिंग्डन की नीतिमत्ता समाई हुई थी। दिसंबर के आखिर में गांधी जी के बंबई लौटने से पहले ही देश में जहाँ तहाँ जेलों को साफ करके रखने का काम अधिकारी कर रहे थे। इस मौके का लाभ लेकर सीमाप्रांत के सरकारी घुसपैठ नेता, बादशाह खान के खिलाफ प्रचार करने में लग गये थे। इन प्रचारकों में "खानबहादुर", "रायबहादुर" ही प्रमुख थे। मुसलमानों की अपेक्षा हिंदू उसमें अधिक अगुवापन करते थे क्योंकि सरकार के अनुकूल रहकर ही वे वहाँ टिक सकेंगे ऐसी गलतफहमी में वे ब्रिटिश सल्तनत में पड़े थे और ठीक इसी परावलंबन का फायदा उठाकर अधिकारी उनमें झगड़ा पैदा करते थे। "इस प्रांत में हम या बादशाह खान इनमें से कोई एक ही पनप सकता है", ऐसा फ्रान्टियर कमिश्नर का इरविन के बाद तकाजा था।

आनेवाली तूफानी हवा का आभास बादशाह खान को था। नवंबर महीने में उन्होंने पेशावर में स्वयंसेवकों के विशाल शिक्षा शिविर का आयोजन किया। किसी फौजी छावनी जैसा व्यापक और अनुशासन का स्वरूप इस छावनी में था। इन सब परिस्थितियों का मुकाबला कैसे किया जाय इसका विचार करने के लिये कमिश्नर ने दिनांक २२ दिसंबर को पेशावर में एक दरबार बुलाया था और उसमें खान बंधुओं को निमंत्रित किया था। लेकिन रोजमर्रा की दमन नीति का स्वागत करनेवाले, जी हाँ करनेवाले लोगों की भीड़ वहाँ लगनेवाली है, वहाँ जाने से क्या मतलब, ऐसा सोचकर खान बंधु वहाँ उपस्थित नहीं हुये।

इसी दौरान फ्रांटियर प्रांतिक जिर्गा (प्रदेश कांग्रेस समिति) की बैठक २० दिसंबर को पेशावर में हुई। इस बैठक में ब्रिटिश पंत प्रधान के जाहिरनामे पर संतोषजनक होने की मुहर लगाई गयी। वैसे ही गांधी इरविन समझौता फार्स सिद्ध हो रहा है, यह विडंबना सीमाप्रदेश में निरंतर चल रही है, इसलिये यह समझौता तोड़ने की प्रार्थना करने का अधिकार कांग्रेस कार्य-

कारिणी से बादशाह खान को दिया गया। इस काम और गांधी जी से मिलने के लिये वहाँ से निकलने का उन्होंने तय किया। वैसे डा० खान साहब को पं० जवाहरलाल जी ने क्रिसमस बिताने के लिये प्रयाग आने का निमंत्रण दिया था। लेकिन पेशावर के लश्करी तानाशाहों ने ये सब नेता को जेल के कमरों में क्रिसमस मनाएँ ऐसा तय किया था। इस दमन नीति की जिम्मेदारी सिर्फ सीमाप्रांत के कमिश्नर या संयुक्त प्रांत के गवर्नर या वाइसराय पर थोपना न्यायसंगत नहीं। यह नीति साम्राज्यवादी चर्चिल के नेतृत्व की थी और वह राष्ट्र के विभाजन तक चली। यहाँ शासक कोई भी हो लेकिन उसका सूत्र-संचालन, साम्राज्य की नींव मजबूत रखने का प्रयत्न करनेवाले ब्रिटिश नेता और लंकाशायर के व्यापारियों के द्वारा होता था।

———

: १२ :

१६३२ का दमन

गांधी जी राउंड टेबल परिषद को पूरी करने बंबई में दिसंबर के अंत में पहुँचे। उसके पहले जवाहरलाल और बादशाह खान को गिरफ्तार किया जा चुका था। बादशाह खान गांधी जी से बारडोली में मई महीने में मिले थे। "सरकार तुम्हें गिरफ्तार करेगी ऐसी खबर है" ऐसा गांधी जी ने कहा था। उस वक्त बादशाह खान का सारा परिवार गिरफ्तारी के मामले में लपेटा गया था। उसके पहले २४ दिसंबर को नया आर्डिनन्स सीमाप्रांत के लिये लागू किया गया। उस कानून के अंतर्गत उन्हें और उनके साथ सैकड़ों कार्यकर्ताओं को एकदम गिरफ्तार किया गया। डा० खान इस वक्त तक प्रत्यक्ष सियासी मामले में नहीं आये थे। आंदोलन में जख्मी लोगों की सेवा करने के लिये वे दौड़ते थे। वैसे उनका रहन सहन और दोस्ती अंग्रेज अधिकारियों के साथ अधिक थी। लेकिन यह तानाशाही नीति देखकर उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ दी थी। उन्हें भी उनके अंग्रेज दोस्तों ने अब राजकारण के पाठ पढ़ाने का तय किया था। लेकिन निमंत्रण ठुकराते ही वे बागी राजद्रोही कहलाये। २४ दिसंबर को सब को उतमंजई में गिरफ्तार किया गया। डा० खान साहब के बड़े लड़के "सादुल्ला खान" हाल ही में विदेश से शिक्षा पूरी करके आये और फ्रांटियर जिर्गा के मंत्री के नाते काम देखते थे। उनका दूसरा लड़का ओबेदुल्ला खान आदि सभी को गिरफ्तार किया गया। बादशाह खान गिरफ्तार होंगे, यह बात साफ थी। उनकी दो बहनों और भौजाई (डॉ० खान साहब की पहली बीबी) को गिरफ्तार नहीं किया गया, लेकिन उन्हें तकलीफें दी गई। अन्य भतीजे और सगे जैसे बहुत से लोग एकदम पकड़े गये। डॉ० खान साहब और बादशाह खान और उनके दो सपूतों को एक ही जगह गिरफ्तार किया गया। उन्हें एक खास गाड़ी से नैनीताल (उत्तर प्रदेश), हजारीबाग (बिहार), काशी और लुधियाना ऐसे विभिन्न जगहों में भेजा गया और फिर जेलों के अंदर अत्याचार और बाहर भी जुल्म का हंगामा मचा।

पेशावर में गिरफ्तारियाँ जारी करने के पहले अंग्रेज फौज की छः टुकड़ियों को चारों ओर लाकर रखा गया था। फिर भी दि० २६ को कोहाट में और दि० २९ को पेशावर में कुछ कुछ दंगा हुआ। इस दंगे में मुख्यतः टोलीवालों ने हिस्सा लिया और उसके बाद पेशावर के गोरे शासक लाल कुर्तेवालों का शिकार खेलने के लिए आजाद हुए। १९३० के किस्साखानी बजार के नजदीक भीषण गोलीकांड की खबर सुनकर संसार के कई अखबारनवीस पेशावर की ओर दौड़े थे। उनमें से एक अमेरिकन अखबारनवीस ने लालकुर्ते वालों पर गोलियाँ दागने का खेल, एक गोरे सोल्जर का मनोरंजन इससे खेल की भाँति हुआ था, ऐसा वर्णन किया है। इस खेल में रस लेने के लिये गोरे सिपाही फिर से तैयार हुए थे। जेलों में किये जानेवाले सलूक के बारे में काफी शिकायतें आयीं, तब डॉ० खानसाहब को हजारीबाग में बादशाह खान के साथ लाकर रखा गया। ओबेदुल्ला खान (डॉ० खान साहब के दूसरे पुत्र) ने जेलों में मिलने वाले अयोग्य वर्ताव के खिलाफ पहली मर्तबा ३८ दिन और दूसरी मर्तबा ७८ दिन का उपवास कर जेलों में मिलने वाले अयोग्य वर्ताव को सुरंग लगाया था। लेकिन सत्ताधीशों का हृदय काले पत्थर का जरा भी न टूटने वाला था। ओबेदुल्ला के ७८ दिन के उपवास की खबर सुनते ही उनकी जान की फिक्र जिस तरह अन्यों को लगी उतनी ही फिक्र, डॉ० खान साहब और बादशाह खान को उससे होनेवाली तकलीफ के बारे में गोरों को लगी थी। लेकिन पठानों को शोभा देनेवाला खान बंधुओं का वर्ताव निश्चितता का रहा। दोनों ने सरकार से न तो लिखापढ़ी की और न प्रार्थनापत्र ही भेजे। ओबेदुल्ला की सेहत के बारे में जरा भी पूछताछ तक नहीं की। खुद ही कुछ मालूमात करा देने की इंसानियत की मर्यादा सरकार में थी ही नहीं। अब ओबेदुल्ला के जीने की संभावना न रही ऐसा लगने पर उसके पिता और चाचा ने उसके शव की कैसे व्यवस्था हो इसके बारे में सरकार को लिखा था। लेकिन उसके पहले ही ओबेदुल्ला की माँगें मान्य हो गईं और उसने उपवास छोड़ दिया। जेलों में जुल्म ढाने के प्रकार सीमाप्रांत में सबसे अधिक नृशंसता के रहे। पेशावर जेल में ता० २९ जनवरी को गोरी पलटनों के दो लोग राजकीय बंदियों के विभाग में घुसे और वहाँ उन्होंने लगातार दो घंटे मारपीट की। वहाँ के नेताओं में गुलाम मुहंमद लोंदखोंद, सालार नवाज खान, मुर्तजा खान, अब्दुल गफूर खान, पीर शाहनशाह आदि प्रमुख थे। पहले ही दिन अमीर मुहंमद खान, पीर मदारशाह, गुलाम मुहंमद लोंदखोंद आदि सब लोगों को तीस तीस कोड़े

की सजा दी गयी। तीन महीनों तक उनके बदन के घाव मिटे नहीं थे। उतमंजई में हुए अत्याचार भी इसी तरह इंसानियत को लांछन लगाने वाले थे। पूरे गाँव को सशस्त्र सैनिकों ने घेर कर लोगों को मारा पीटा। बादशाह खान और गाँधी जी को गालियाँ देना, उनको बदनाम करने के लिये लोगों को कहना, भद्दे शब्द मुँह से न निकालने पर बंदूक के दस्ते से ठूसे लगाना, नंगा करके गुदद्वार में लकड़ी ठूसना, गंदे पानी के जलाशय में ढकेल देना ऐसे कई अमानुषिकता अत्याचार सैकड़ों शस्त्रधारियों ने मिलकर असहाय जनता पर किए। कांग्रेस कमेटी के भवन और कार्यकर्ताओं की खड़ी फसल में आग लगाना इस तरह एक दो नहीं हजारों प्रकार से लोगों पर जुल्म करने की हद की गयी। लेकिन यह बादशाह खान के करतूत की सही सही कसौटी हुई। इन सारे पाशविक अत्याचारों को बेहद शांति से उन्होंने सहा।

इस सहनशीलता में भीरुता नहीं थी। गाँधी जी को जिस तरह की वीरों की अहिंसा चाहिये थी उसका साक्षात्कार वहाँ हुआ था। अन्यथा पठान स्वभावतः ऐसा अपमान सहकर जी नहीं सकता। कुछ कार्यकर्ताओं का जुर्माना अन्य लोगों ने दिया था। मृत्यु शय्या पर पड़े हुए बाप से मिलने के लिये पेरोल पर रिहाई करवाई। ऐसे कई प्रसंगों पर कार्यकर्ताओं ने खुदकशी की जब उन्हें वह अपमान सहा नहीं गया, ऐसे भी उदाहरण इस दौरान मिले। ऐसे स्वाभिमानी कार्यकर्ताओं ने इतने अमानुषी अत्याचार शांति से सहे वह सिर्फ इसलिए कि उन्होंने नये तत्वज्ञान की (अहिंसा की) सौगंध खायी थी। बादशाह खान को उन्होंने वचन दिया था और उन्होंने उसे निभाया। यह सारा का सारा चमत्कार ही था।

राष्ट्रीय आंदोलन और त्याग के आदर्श से प्रेरित नौजवानों के त्याग से लाभ उठाने की बारी सरकार के पिछलग्गू और जी हाँ करनेवाले लोगों की आई, यही अनुभव सर्वत्र होता है। १९३० और १९३२ की गोलमेज परिषद में सीमाप्रांत के सियासी हक का सवाल उठाया गया और अंत में यह प्रांत गवर्नर के सपुर्द किया गया और मांटेग्यु-चेम्सफोर्ड-सुधार लागू किये गये। इसके अनुसार वहाँ लोकनियुक्त मंत्री लिये गये। उस जमाने के बड़े जमींदार साहेबजादा सर अब्दुल कय्युम सरकारपरस्त मुसलमानों का नेतृत्व करते थे। उन्हें भी मुसलमानों में अधिक अप्रिय होना रुचता नहीं था। इसलिये जितना संभव हो, उतना सलूक समझौते से व्यवहार करने की सलाह वे सरकार को देते थे। द्विदल लोकशाही पद्धति इस प्रांत में सफल कर दिखाने की जिम्मे-

दारी उनपर आ पड़ी थी। इसलिये १९३२-३३ के सत्याग्रह आंदोलन का जोर कम होने पर कांग्रेस और खुदाई खिदमतगार संघटनों पर से बंधन ढीले करने के विषय में कुछ सुझाव प्रस्ताव वहाँ की कानून समिति में पेश किये गये और अचरज और वेशरमी की बात यह हुई कि पोलिटिकल महकमें की राय के अनुसार विधिमंडल के हिंदू नुमाइन्दों ने उसकी खिलाफत की।

खान बंधुओं पर मुकदमा न चलाकर उन्हें राजबंदी की हैसियत से जेल में रखा गया। पर उनपर कोई भी अपराध सिद्ध नहीं किया गया। उन्होंने शांति के मार्ग से देश की कितनी बड़ी सेवा की थी यह तो सारी दुनिया जानती थी। वैसे तो खुद पेशावर शहर को जब पुलिस और फौज ने लूटपाट के लिये गुंडों को सौंप दिया था तब खुदाई खिदमतगारों ने ही हिंदू महिलाओं और लड़कियों की रक्षा की थी। कोहाट, डेराइस्माइल खान में हुये हिंदू मुसलमानों के दंगों के समय भी इन्हीं लालकुर्तावालों ने उनकी सहायता की थी। यह जिन हिंदू आमदारों को मालूम था उनके ही द्वारा खान बंधु और लाल कुर्तेवालों के संघटन पर से बंधन ढीले करने के खिलाफ राय देने और उससे "शांति और व्यवस्था को खतरा पहुँचेगा" इस सरकारी नीति का समर्थन करने से अधिक लज्जास्पद क्या हो सकता है?

इस घटना पर रोशनी डालनेवाला जवाहरलाल जी के ख्वाब का किस्सा इस समय खयाल में आये बिना नहीं रहता। सीमाप्रांत के व्यापारी आमदार पोलिटिकल महकमे के दबाव के शिकार हुये हों लेकिन उस नीति का समर्थन और प्रचार महासभा के एक मंत्री भी करते रहे, यह पढ़कर जवाहरलाल जी को काफी खेद हुआ। वे कहते हैं, "हिंदू या मुसलमान, किसी भी जातिवादी का पक्षपात मैंने कभी भी मान्य नहीं किया। लेकिन इस घटना से मेरे मन में दुख पहुँचा कि हिंदू महासभा के एक मंत्री ने लालकुर्तेवालों पर से नियंत्रण न हटाने की सरकारी नीति की ताईद की है। उसके लिये सरकार को शाबासी दी है। जातीय दृष्टि इस हद तक बढ़ सकती है ऐसा मुझे नहीं लगता था। महासभा के प्रमुख नेता कम से कम इस नीति का विरोध करेंगे ऐसा लगता था लेकिन वैसा अभी तक किसी ने नहीं किया है।" इस घटना का नेहरू के मानस पर इतना गहरा असर हुआ था कि इस अस्वस्थ मनःस्थिति में उनकी आँख लग गई। उस दोपहर की नींद में उन्होंने एक ख्वाब देखा "अब्दुल गफार खान पर चारों ओर से हमले हो रहे थे और उनकी रक्षा के लिये मैं लड़ रहा था। मेरी नींद खुली तब मैं बिल्कुल थक गया था। मन बिल्कुल विषण्ण

था। मेरा तकिया आँसुओं से भींग गया था.......जाग्रतावस्था में भावनाओं का इतना गहरा असर मुझपर कभी भी नहीं हुआ था।" नेहरू के इन उद्‌गारों से हिंदू महासभा की आत्मघाती और लज्जास्पद नीति का परिणाम उनके मन पर किस हद तक हुआ था यह आसानी से समझ में आ सकता है। लेकिन नेहरू स्वप्नाधीन अवस्था में ही बादशाह खान के लिये दौड़े, लड़े। अठारह साल तक अपने पास सर्वश्रेष्ठ सत्ता रहने पर भी वे उनके लिये कुछ नहीं कर सके।

पंडित जी का यह स्वप्न उनकी आलोचना स्वरूप रहा है। अन्याय से या कभी कभी अत्याचारों की घबराहट पैदा करके राजशासन स्थिर रखनेवाले विदेशी राज्यकर्ताओं के फिर्कापरस्त हिंदू अल्पसंख्यक भी कैसे होते हैं यह देखने पर वही दाँव मुस्लिम धनिक या मौकापरस्त नेता हिंदुओं की घनी आबादीवाले प्रांतों में खेलें तो इसमें आश्चर्य क्यों होना चाहिये? धर्म या जातिकल्याण का कहीं भी संबंध इसमें नहीं आता है। यह मौकापरस्त नेतृत्व का प्रकार है। सीमाप्रांत की जनता के हिंदू और मुसलमान नुमाइन्दे एक ही जेल में उस समय सड़ रहे थे। कंधे से कंधा लगाकर बंदूकों की गोलियाँ झेलते थे और मुसलमान बहुसंख्यक देशसेवकों पर गोलियाँ चलाने का हुक्म तोड़ने वाली पलटन भी हिंदुओं की ही थी, यह ख्याल में रखने जैसी बात है। लेकिन यह सारा विवेक सत्ता और स्वार्थ से अंधे बने हुए लोगों में नहीं रहता है। वे कौम या जमातों के नामपर दाँव पेंच खेलते रहते हैं और कुछ कार्यकर्ता अवश्य ही उसके शिकार हो जाते हैं और सारा समाज उसमें स्वाहा हो जाता है।

: १३ :

जमनालाल जी की छत्रछाया में

बादशाह खान जैसे कर्मयोगी पुरुष का जीवन बंदीशाला की परिधि में ही समाया रहता है। उनके बारे में यह उस क्षण तक सत्य सिद्ध हुआ है। प्रागतिक और सुधरा माने जानेवाले मानव समाज पर यह कितना बड़ा लांछन है? दि० २४ दिसंबर १६३१ को उन्हें गिरफ्तार करके हजारीबाग (बिहार) की बंदीशाला में रखा गया। उनकी यह सजा स्थान-बद्धता की और अनिश्चित अवधि की थी। उनकी रिहाई की मांग सब दलों ने—मुस्लिम लीग ने भी—की थी। पंतप्रधान मैक्डोनाल्ड द्वारा किये हुये जातीय फैसले के खिलाफ यरवदा बंदीशाला में गांधी जी ने प्राणांतक उपवास किया। उसमें से हरिजन आंदोलन शुरू हुआ और सत्याग्रह का आंदोलन स्थगित किया गया। कांग्रेस के नेताओं में उसकी बदौलत फूट और मतभेद शुरू हुए। गांधी जी द्वारा बंदीशाला में से हरिजन आंदोलन पर सारी शक्ति केंद्रित करने के बारे में—नेहरू, सुभाषचंद्र ही नहीं वल्लभभाई—राजेंद्रबाबू जैसे निकट संपर्क में रहनेवालों में भी असंतोष था। कांग्रेस का अधिवेशन बंबई में करने का तय हुआ था। ऐसी परिस्थिति में खानबंधुओं को २७ अगस्त १६३४ को रिहा किया गया और उसी दिन सीमाप्रांत, पंजाब, उत्तरप्रदेश आदि इलाके में वे "प्रवेश न करें, वास्तव्य न करें या न ठहरें" इस आशय का हुक्म उन उन प्रांतों की तरफ से उनपर जारी किया गया। इस तरह से चारों ओर से पाबंदियाँ लगने पर "वर्ल्ड विदाउट ए वीसा" इस रूप में ट्राटस्की द्वारा खुद के बारे में कहे अनुसार बादशाह खान की स्थिति हुई। किस प्रांत में जा सकेंगे इसकी उन्हें ठीक से कल्पना कठिन थी। क्योंकि जिधर जाने को निकलें उन प्रांतों में प्रवेश-निषेध के हुक्म निकलने लगे। लेकिन बंबई प्रांत से "इस प्रकार का प्रतिबंध करने का हुक्म निकालने का हमें कोई कारण नहीं दीखता है' इस आशय का उत्तर मिला था। इसके पीछे भी कुछ चाल ही होगी। गाँधी जी ने खुद को हरिजन आंदोलन में व्यस्त कर लिया था ही, अतः उनके प्रांत में ही बादशाह खान को घूमने फिरने दिया

जाय ऐसा बुद्धिमानी का दूरदर्शी विचार दिल्ली वालों ने न किया होगा ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। उनपर जारी किये गये प्रवेशनिषेध के हुक्म की जानकारी गाँधी जी को और उनके वर्धा स्थित यजमान और पाँचवें पुत्र माने गये जमनालाल बजाज को मिली थी। उन्होंने तुरंत तार से बादशाह खान से वर्धा चले आने की प्रार्थना की।

हजारीबाग जेल से रिहा होने के बाद फिर दिसंबर ७ को उन्हें गिरफ्तार किया गया। तबतक के तीन महीने दस दिन के समय की जानकारी खुद बादशाह खान ने ही अपने 'पख्तून' मासिक में बाद में दी है। "हजारीबाग जेल में से हम सब भाई रिहा हुए। वह एक विचित्र प्रकार की रिहाई थी। केवल जेल में से रिहा किये गये थे। अपने प्रांत या पंजाब में प्रवेश करने पर प्रतिबंध किया गया था। रिहाई के संबंध में देश के चारों ओर से अभिनंदन पत्र आने लगे। हमें हजारीबाग छोड़ने के पहले सेठ जमनालाल बजाज का तार मिला, उसमें 'आप अपने प्रांत में जा नहीं सकते इसलिये वर्धा आकर रहें' ऐसा आग्रह था। गाँधी जी वहीं थे। इसके अलावा इस निमंत्रण के सिवा देश के अन्य किसी हिंदू या मुसलमान की ओर से न्योता नहीं मिला था इसलिए उन्होंने वर्धा जाने का निश्चय किया। लेकिन इतने में प्रा० अब्दुलबारी आये और उनके आग्रह पर वे पहले पटना गये। पटना स्टेशन पर हमारे पुराने जेल साथी राजेंद्र बाबू और अन्य महानुभाव आये थे। वहाँ रात को एक बड़ी आम सभा हुई। सुबह कयान गये। वहाँ गरीबों की एक सभा में शरीक हुए। बाद में शांतिनिकेतन पहुँचे। वहाँ कविराज टैगोर और शांति निकेतन के महाविद्यालय के प्राध्यापकों से मिले। महाविद्यालय और वहाँ के विद्यार्थियों को देखा। रात अब्दुल गनी के घर बितायी। सुबह पटना रवाना हुए। वहाँ से निकले और आगे वर्धा पहुँचे। गाँधी जी से मिले। थोड़े दिन बाद अखिल भारतीय काँग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई। उस समय मौलाना आजाद ने कहा कि पूरे बंगाल के मुसलमानों की और विशेषतः कलकत्ता के पेशावरी व्यापारियों की मंशा है कि मैं उधर आऊँ, मैंने इस निमंत्रण को स्वीकार किया लेकिन बापू को यह मंजूर नहीं हुआ। सरकार फिर से गिरफ्तार करेगी, ऐसा उन्हें उसी वक्त लगा। लेकिन मौलाना के आग्रह के कारण उन्होंने मंजूरी दी। हम कलकत्ता के लिये निकले। कलकत्ता स्टेशन पर स्वागत के लिये लोगों का बड़ा भारी जमघट लगा था। हमें बहुत आदर संमान से कलकत्ता ले आया गया। कलकत्ता महानगरपालिका की ओर से मानपत्र दिया गया। कुछ दिन वहाँ के पठान भाइयों के घर रहा।

"बंगाल के मुसलमानों से मिलने की मेरी इच्छा थी। कुछ आम सभाओं में मैंने वैसा कहा भी लेकिन कलकत्ता (शहर) के मुसलमानों के दिल में ऐसा नहीं दिखा कि मुझे इस काम में मददगार होने की इच्छा है। मेरा निर्णय पक्का था। मेरुफलचंद्र घोष नाम के एक कांग्रेस कार्यकर्ता हैं। मुझे मदद करने के लिए वे तैयार हुए। बंगाल के एक विभाग में मैं अपने मित्रों के साथ गया, डा० खान साहब आगामी असेंबली के चुनाव से संबंधित कागजात तैयार करने के काम के लिये कलकत्ता रुके। उस इलाके की परिस्थिति का मैंने अवलोकन किया। वहाँ की सारी जनता की स्थिति अच्छी नहीं थी लेकिन मुसलमानों की स्थिति बदतर थी। उस हिस्से में मैंने कुछ दिन बिताये। जल्दी ही बंबई वापस लौटना था इसलिये बंगाल का दौरा मैंने पूरा किया। कलकत्ता से वर्धा और वर्धा से बंबई पहुँचा। बंगाल में रहनेवाले मुसलमानों की गिरी हुई जो हालत मैंने देखी थी उसका मेरे अंतःकरण पर और दिमाग पर काफी असर हुआ था। उन लोगों की सेवा करने का मेरा इरादा था। गांधी जी से मैंने इस संबंध में बातें कीं। उन्होंने अनुकूलता बताई और इस काम में मुझे सहायता करने का वचन भी दिया।

जिन बंगाली मुसलमानों की परिस्थिति का मैंने कुछ अवलोकन किया था उनकी और बंगाल की सभी गरीब जनता की ओर इन दिनों मेरा ख्याल रहा इसलिये दिनांक ७ दिसंबर १९३४ को बंगाल जाने का तय किया। हमारी चहल पहल पर सरकार की कड़ी नजर थी। हमारा गुस्सा एवं नाराजगी सरकार से सही नहीं जाती थी। बंगाल के हिंदुओं में चेतावनी लाने के लिये सरकार को कई दिक्कतों का सामना करना पड़ा था और जब उन्हें यह मालूम हुआ कि मैं बंगाल जानेवाला हूँ और किसी भी सूरत से पीछे हटनेवाला नहीं हूँ तब उन्होंने मुझे दिनांक ७ दिसंबर को वर्धा में ही गिरफ्तार कर लिया और बंबई भेज दिया। मेरा अपराध केवल इतना ही था कि मेरे दिल में दीन दुखी बंगाली भाइयों के प्रति सहानुभूति थी। उनके लिये मेरे मन में स्नेह और सेवाभाव पैदा हुआ था। इसलिये राजद्रोह का इल्जाम लगाकर मुझपर मुकदमा चलाया गया (बंबई क्रानिकल)"।

हजारीबाग जेल से छूटने और बंबई प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट की कच्ची कैद में पहुँचने तक के समय की महत्व की घटनाओं का यह मार्मिक बयान है। वह खुद बादशाह खान की कलम से लिखा गया है, इस दृष्टि से भी वह ध्यान देने लायक है। उनकी सरल लेखनशैली, उनकी स्पष्टता और अपनत्व आसानी

से ध्यान में लाने जैसा है। बादशाह खान की सेवा का प्रभाव सीमाप्रदेश के ही नहीं, आजाद यागिस्तान की जमातों पर भी कितना हुआ था, यह शासकों को मालूम था। इसलिये बंगाल में वह प्रयोग वे नहीं करने देंगे, यह साफ बात थी।

लेकिन बादशाह खान ने बंगाल की ऐवज में बिहार या उड़ीसा की ओर जाने का तय किया होता तो भी सरकार ने वही किया होता। वे कहाँ जायेंगे, इसका महत्व नहीं था, वे क्या बोलेंगे, क्या करेंगे यह अन्यों को भले मालूम न हो लेकिन सरकार को मालूम था। इसलिये जन्म के साथ-साथ मृत्यु की तारीख निश्चित होने जैसी ही कारागृह से रिहाई के साथ साथ दूसरी जेलयात्रा की तैयारी हो चुकी थी ही।

बादशाह खान पर यह कटाक्ष क्यों, इसका उत्तर भी कठिन नहीं। इतने शुद्ध राष्ट्रवाद के नेता को आजाद रखना सरकार के लिये भारी हो जाता। नये सियासी सुधार उन्हें अमल में लाने थे। फूट पैदा करनेवाला और बढ़ानेवाला मुसलमान नेतृत्व उन्हें बढ़ाना था। ऐसे समय बादशाह खान जैसों को आजाद कैसे रखा जा सकता है। यह सिर्फ तर्क नहीं है। जेल से छूटने के बाद बादशाह खान घूमने फिरने लगे तब से भारत सरकार ने, प्रांतों को यह सूचित कर रखा था। दिनांक २० सितंबर को बंबई के गृह महकमे के मंत्री मैक्सवेल ने जिलाधिकारियों को भेजी गई सूचनाओं में उसका कारण स्पष्ट किया था। खानबंधु दौरे पर हैं, उनके व्याख्यानों की रिपोर्ट ध्यानपूर्वक रखी जाय ऐसा सदर पत्रक में कहा गया है। "(हैव देयर स्पीचेज केयरफुली रिपोर्टेड विद केयर टु देयर प्रासिक्यूशन शुड दे ब्रिंग देमसेल्व विदिन दी मिसचीफ आफ दि ला)।"

इसका भाव और अर्थ दोनों ही बिल्कुल स्पष्ट है। उन्हें बाहर न रखा जाय, सरकार का यह निश्चय उसके पहले से ही हो चुका था यह जाहिर है।

दांडी यात्रा के लिये निकलते हुए गाँधी जी ने साबरमती आश्रम से बिदाई ली थी। पंद्रह साल तक कई कार्यकर्ताओं ने अविश्रांत कार्य करके यह आश्रम खड़ा किया था। सैकड़ों कार्यकर्ता वहाँ देशसेवा का सबक ले रहे थे। सम्पूर्ण सामाजिक क्रांति का विधायक प्रयोग वहाँ चल रहा था। दुनियां के भिन्न भिन्न देशों से अखबारनवीस, समाजसेवक, तत्त्ववेत्ता इस आश्रम में आकर अहिंसात्मक क्रांति का दर्शन करते थे। दुनिया में ख्यातिप्राप्त इस निर्मिति पर पानी फेरने का निर्णय गाँधी जी ने तत्क्षण में लिया था। ईंट

पत्थर की संस्थाओं से चिपके रहने वाले इंसान उस ईंट पत्थर जैसे ही जड़ या मृत रहते हैं। इसलिए संस्था की मिलकियत के लिये और सत्ता के लिये लोग प्रयास करते हैं। सर्वसंगपरित्यागी परमहंस परिव्राजकाचार्यों में भी पीढ़ियों से वारिस के अधिकार के लिये मुकदमें चलते हैं। गाँधी जी कार्य के लिए संस्थाएँ खड़ी किया करते थे और उतनी ही सहजता से कार्य के लिये उसका भोग भी चढ़ाते थे।

आजादी मिलने के बाद ही यहाँ निवास ऐसे उद्गार निकाल कर गाँधी जी साबरमती आश्रम से दांडी के रास्ते पर निकल पड़े। १९३४ में आंदोलन को हरिजन कार्य का मोड़ देकर वे निरंतर देश भर में घूमते रहे। उस वक्त वर्धा के संन्यस्त लक्ष्मीपुत्र जमनालाल जी बजाज ने गाँधी जी को उनके ही मान्यता-प्राप्त वर्धा में आकर कार्यकेंद्र बनाया जाय, ऐसी प्रार्थना की। जमनालाल जी ने गाँधी जी को अपने पिता स्वरूप माना था, इतना ही नहीं, गाँधी जी भी जमना-लाल जी को अपना पाँचवाँ पुत्र, मानने के लिये बाध्य हो गये थे। और यह सारा अलौकिक नेतृत्व निष्ठा का सौदा आपस में प्रेम रूप से इकरारनामा करके पक्का हुआ था। इसलिये बादशाह खान को भी वहाँ बुला लेना स्वाभाविक ही था। इन दोनों गाँधियों को कहीं न कहीं एक जगह रहने की आंतरिक इच्छा थी और उनकी यह इच्छा सरकार ने इस तरह से पूरी की थी। बादशाह खान १९१८ और २१ में सत्याग्रह करके जेल में गये थे और गाँधी जी के सत्याग्रह मार्ग को उन्होंने स्वीकार किया था। १९३०–३१ के आंदोलन का नेतृत्व उन्होंने किया था और गाँधी जी से उनका प्रत्यक्ष संपर्क कराची काँग्रेस के वक्त हुआ था। फिर भी दोनों निश्चितता से एक दूसरे से मिले नहीं थे। और अकेले बादशाह खान ही नहीं, दोनों भाई उनके पास अब आये थे। थोड़े ही दिनों में खान बंधुओं का छोटा सा परिवार बजाज जी के 'हुजरे' में शामिल हुआ। सीमा प्रांत में अतिथिगृह को 'हुजरा' कहते हैं। लेकिन उसमें केवल अतिथिगृह की ही कल्पना नहीं है। बड़े बड़े लोगों के महलों हवेलियों से हटकर बिल्कुल स्वतंत्र बैठक का छप्परा रहता है जहाँ गाँव के सब छोटे बड़े लोग आपस के सुखदुख कहने के लिये दिन भर आया जाया करते हैं। गप्पे हाँकना और खेलने के अड्डे वहाँ होते थे। जमनालाल जी का केवल अतिथिगृह ही नहीं, उनके रहने की हवेली भी पठानी 'हुजरे' जैसी ही थी। वहाँ किसी को रोक नहीं थी। पुरानी परंपरा के मारवाड़ी का वह घर था। लेकिन वे केवल व्यापारी नहीं थे। बड़े जमींदार भी थे। जमींदारों और सेठियों की संस्कृति में जमीन आसमान का फर्क रहता है। खेतीबाड़ी

के संपर्क में आया हुआ मन, समाज के सब तबकों से संपर्क रखनेवाला, ईश्वरी सत्ता के सामने लीन रहनेवाला और इस कारण छोटे बड़े सबके बारे में स्नेह भावना रखनेवाला होता है। इसके विपरीत व्यापार और उद्योग प्रधान संस्कृति में पला हुआ मन वैयक्तिक करतूत पर अधिष्ठित निरंतर स्पर्धा भावना पर तैरनेवाला और इस कारण सामाजिक भावना की कदर न करनेवाला होता है। जमनालाल जी के मकान में काम करनेवाली स्त्रियों के गंदे रोनेवाले बच्चे इधर उधर कहीं भी अपनी माताओं के पीछे रोते फिरते हुए दिखाई देते थे तो उन बच्चों के पीछे और बीच बीच में घूमनेवाले कुत्ते भी उतने ही होते थे। हरेक का पक्ष लेनेवाला कोई न कोई रहता ही था। घर में गरीब और श्रीमान् यह भेद, केवल तिजोरी में रखे पैसे गिननेवाले, खजांची को ही मालूम था। सही माने में उनके पुराने विश्वस्त खजांची के अलावा उनके कुटुंबियों को उनकी दौलत के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं रहती थी। उनकी महान् पत्नी ने भी कभी दौलत की पूछताछ नहीं की होगी। घर के दस नौकरों के साथ खुद सेठानी और उनकी बहू बेटियाँ छोटे बड़े काम में हिस्सा लिया करती थीं। ऐसा यह चित्र सरंजाम शाही समाज पद्धति के जमींदार परिवार का होता है। समूचे गाँव का परिवार कम अधिक मात्रा में उनके परिवार का हिस्सा रहता था। मुख्यतः सारे समाज के जीवन से उनका संबंध अपनत्व का रहता है। विदर्भ में ऐसे सैकड़ों जमींदार इजारदार परिवार थे। उनमें से ही एक बजाज परिवार था और सीमाप्रदेश के खानों का परिवार भी इसी तरह का था।

लेकिन बादशाह खान और डॉ० खान राजकीय निर्वासित बनकर वर्धा पहुँचे थे। सरकारी जुल्म के कारण उनके प्रति जनता में प्रेम बढ़ा था।

गांधी जी के सेवाग्राम आश्रम का अभी निर्माण होना बाकी था। मगनबाड़ी उनका आश्रम था। खानबंधुओं को जमनालाल जी के प्रेम ने इतना विवश किया था कि बादशाह खान जैसे मितभाषी और अंतर्मुख वृत्ति के शख्स को जमनालाल जी ने हँसने बोलनेवाला बनाया, अतिथिगृह में उनका मुकाम था फिर भी श्रीमती जानकीदेवी जमनालाल जी की सेवाशील पत्नी) और उनके बालबच्चों के परिवार में उन्हें कहीं भी हिंदू-मुसलमान, इतना ही नहीं, कोई भी रोकटोक नहीं महसूस हुई, जमनालाल का परिवार एक छोटा सा देहात ही था और उसमें बीसों जातियों के लोग मिल जुलकर रहते थे। उस समय जमनालाल जी हरिजन काम में व्यस्त थे। वहाँ भेदभाव नहीं होंगे, ऐसा नहीं था, लेकिन स्नेहभाव सर्वत्र फैला हुआ था।

इस वातावरण में खानबंधु जल्द ही समरस हुये होंगे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात थी ? डॉ० खानसाहब लंदन के अस्पताल में एक होशियार चिकित्सक के नाते विख्यात हुये थे और फौजी नौकरी में पले थे फिर भी वे इस ग्रामीण और कुछ मामले में शहरी संस्कृति को ग्राम्य लगनेवाले वातावरण में घुल मिल गए। आश्रम के लोगों को ही नहीं, दूर दूर देहातों में पैदल जाकर वे वैद्यकीय उपचार करने लगे। कन्याशाला में सहायता करने लगे। खुद मरीजों के लिए शाक या सूप तैयार कर देने के काम में वे हमेशा लगे दिखायी देते थे। बादशाह खान देश और समाज के विचार में हमेशा रहते थे।

यही जिम्मेदारी निभाने के लिए परमात्मा ने उन्हें जन्म दिया है या नहीं, समझ में नहीं आता। लेकिन उन्हें भी आश्रमी जीवन की आध्यात्मिक हवा का झोंका स्पर्श कर गया। उसमें वे मशगूल रहने लगे। सुबह गांधी जी तुलसी रामायण सुनते थे। उसके पहले उनकी प्रार्थना होती थी। इस प्रार्थना में एकतारे पर भावपूर्ण भजन हुआ करते थे। उसमें बादशाह खान तुरंत मस्त हो जाते थे और इस आध्यात्मिक जीवन में वे थोड़ा रस लेने लगे थे। तुलसीदास, मीरा, तुकाराम, कबीर, नामदेव के भजन ठीक से समझने में वे दिक्कत महसूस करते थे तब उसका भावार्थ ठीक से समझें इसलिये वे व्याकुल होकर महादेव भाई या प्यारेलाल से पूछा करते थे और लिख लेते थे।

यही निःशब्द क्रांति है। निष्ठा से अनुभूति में होनेवाली क्रांति ही सही और स्थायी क्रांति होती है। यह क्रांति भारत में संत वाङ्मय के आधार पर खड़ी हुई है और सदियों तक टिकी रही है। वह भी अब बदलनी होगी। उसमें बाह्य भेदभाव रखे गये हैं। वे रूपरंग के भेदभाव के अनुसार हैं। लेकिन अंतरस्थ परमात्मा को जाननेवालों को बाह्य भेदभाव चुभते नहीं हैं। उसके विपरीत व्यापक बंधुभाव न पहचानते हुए कानून से समानता कितनी भी बढ़ी हो तो भी समानता का स्पर्श नहीं हो सकता। उसमें असमाधान का ध्येय बढ़ता ही जाता है।

बादशाह खान और गांधी जी का यह अल्प सहवास उन दोनों को मानसिक दृष्टि से निकट लाने के लिए अधिक सक्षम हुआ। वैसे तो वह हजारों कार्यकर्ताओं को प्रभावी और मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। वहाँ का संस्कारक्षम और ममताभरा वातावरण देखकर बादशाह खान ने अपनी लड़की मेहेरताज को वहाँ के कन्याविद्यालय में लाकर रखने की सोचा। लंदन की पाठशालाओं की अपेक्षा वर्धा का महिला विद्यालय अधिक हितकर है, इसका भान होना

ही असली क्रांति है। उनका छोटा लड़का लार्ली भी वहाँ आया। गर्नी, सादुल्ला और वर्ली भी वहाँ आया जाया करते थे। इंगलैंड के समुद्री बेड़े के प्रमुख की लड़की मिस स्लेड मीरा बहन भी जीवित क्राइस्ट की खोज में भारत आने के लिए उस वक्त निकली थी। उनके साथ मेहेरताज को लाया गया और इस सारे विश्वकुटुंब के यजमान थे जमनालाल जी। गांधी जी के निर्वाण और आजादी प्राप्त होने के बीस साल बाद की उथल पुथल के बाद वर्धा के उस विश्वकुटुंब से सही सहजीवन का मार्गक्रमण की हुई क्रांति आज कल्पना जैसी हो सकती है ! लेकिन जिन्होंने वह वातावरण देखा है, उन्हें वह आनंद जिंदगी भर के लिये पर्याप्त रहेगा। अनेक कार्यकर्ताओं ने उस दर्शन से अपना नया जीवन, नयी दुनिया निर्मित की है।

: १४ :

ईसाई समाज के सामने दिया हुआ भाषण और सजा १९३५

बादशाह खान वर्धा के आध्यात्मिक वातावरण में अधिक घुल मिल न जायँ इसलिये या अन्य किसी कारण से, उन्हें मौलाना आजाद ने कलकत्ता आने को मजबूर किया। वैसे ही बंबई के मित्रों ने भी उन्हें इस काम के लिये लालायित किया। बंबईवाले उस साल की कांग्रेसी बैठक की भीड़ में भी थे। इसलिये भी उन्हें बड़े बड़े लोग उपलब्ध हो सकें तो प्रभाव पैदा करने में सरलता होने की आशा थी। नेताओं पर कार्यकर्ताओं की अन्यान्य दृष्टि से नजर रहती ही है।

खुद बादशाह खान का नाम बंबई के कुछ मित्रों ने काँग्रेस के अध्यक्ष पद के लिये सुझाया था। ऐसा कुछ होते देखकर सकुचा जानेवाले नेताओं में बादशाह खान अपने ढंग के एक हैं। उन्होंने तुरंत कह डाला कि 'मैं एक मामूली सिपाही हूँ और मुझे वैसा ही रहने दो। मित्रों का अंतःकरण मैं समझ सकता हूँ। मेरे प्रांत के त्याग का सम्मान करने की उनकी इच्छा है। मेरी खुद की सेवा नगण्य है, यह उन्हें नहीं भूलना चाहिये। राजेंद्र बाबू का नाम पीछे लेना यह भी मेरे बूते के बाहर की चीज होगी। इसलिये मेरे मित्रों को यह विचार छोड़ देना चाहिये।' उनके इस स्पष्ट इन्कार से यह सवाल खत्म हुआ।

फिर भी बंबई से कुछ न कुछ कार्यक्रमों के निमंत्रण आते ही रहे। नेताओं का आलीशान स्वागत बंबई न करे तो और कौन करेगा, यह विचार भी बंबई के कार्यकर्ताओं के मन में हमेशा रहता ही है। बंबई अधिवेशन के वरली स्थित विस्तृत नगर को 'गफारखान नगर' नाम देकर बंबई के बाशिंदों ने उनके प्रति अपना आदर व्यक्त किया। बंबई की काँग्रेस कार्यकारिणी और उनके अन्यान्य कार्यक्रमों में शरीक होने के लिये वे बंबई में दिनांक १९ अक्तूबर १९३४ को पधारे। भाई मेहेरअली स्वयंसेवकों के कप्तान थे, वे कद

से दुबले पतले थे फिर भी पहनी हुई वर्दी के कारण उनके रोब में कसर नहीं थी। बादशाह खान का बड़ा शानदार जुलूस निकाला गया।

इस मर्तबा बंबई में उनका मुकाम १०-१२ रोज था। उस दौरान उनके द्वारा दी हुई तकरीरें, उनपर चलाये गये मुकदमे के कारण अमर हुईं। ऐसे उन व्याख्यानों में उन्हें कुछ अलग या विशेष कटुता पैदा करनेवाली कोई बात उन्होंने नहीं कही थी। सरकार मुकदमे की तैयारी की कैसे पूर्वरचना कर रही थी, इसके बारे में ऊपर कहा ही जा चुका है।

दि० २० को गफारखान नगर स्थित खादी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा —

'लोगों को उपदेश करनेवाले नेताओं को स्वयं वैसा आचरण करके बाद में उपदेश देना चाहिये। सूत कातने के लिये समय नहीं मिलता है, ऐसा हम कहते हैं। बापू जी को समय मिल सकता है और हमें न मिले! अजीब बात है। चरखा देहातों के गरीब लोगों को एक समय का भोजन मुहय्या कर सकता है। चरखा अन्नदाता है। सिर्फ बिक्री केंद्र निकालने की अपेक्षा देहातों के उत्पादन केंद्रों पर अधिक जोर दिया जाय। मेरे कारावास के कारण हमारे देहातों में चलाया हुआ विधायक काम बंद पड़ा है।' वर्धा आने पर सूत कातने के काम में खान साहब ने काफी प्रगति की थी। इस हफ्ते में कॉंग्रेस की बैठकों में दिये गए भाषणों के अलावा, महिलाओं के लिये पठानों की बैठक में और भारतीय ईसाई समाज द्वारा खास बुलाई गई सभा में अलग अलग उनके भाषण हुये।

उनमें से ईसाई समाज के सामने दिये गये व्याख्यान के सिलसिले में उनपर दिसंबर में मुकदमा दायर किया गया और फिर से उन्हें जेल में दो साल गुजारने पड़े। कांग्रेस अधिवेशन में भी विषय नियामक समिति की बैठक में और खुले अधिवेशन में उनके व्याख्यान हुये। इन दिनों खादी ग्रामोद्योगों की ओर उनका विशेष रूप से ध्यान केंद्रित था। कांग्रेस नेताओं में फूट और मुख्यतः विधायक काम की ओर होनेवाले दुर्लक्ष के कारण गांधी जी ने कॉंग्रेस से निवृत्त होने का निश्चय किया था। हरिजनों के काम के लिये देश के कोने कोने में वे संदेश पहुँचा आये थे। इसके बाद वे हिंदू मुसलमानों में एकता, खादी ग्रामोद्योग, अस्पृश्यता निवारण आदि कामों के लिये खुद का जीवन समर्पित करनेवाले थे। बादशाह खान के मानस का ढाँचा गांधी जी की मनोदशा के बिलकुल समान बनता चला जा रहा था इसलिये

गाँधी जी की आकांक्षा के प्रस्ताव पास होने चाहिये, ऐसा लगता था और वैसे ही बादशाह खान के भाषण हुए।

विषय नियामक समिति में उन्होंने कहा, '६८ प्रतिशत लोग देहात में हैं। उनके सुख दुख मेरी आँखों के सामने हैं। बंगाल की गरीब जनता का करुण चित्र मेरी आँखों के सामने है। वे इतने डरपोक हो गए हैं कि किसी भी अँग्रेज को देखते ही देहातों के बच्चे डर के मारे भाग खड़े होते हैं। उनमें से बहुत से अधपेट हैं। जहाँ चरखा पहुँचा वहाँ एक जून रोटी मुहय्या होती है। चरखे के साथ साथ राजनयिक विचार भी पहुँचते हैं यह ख्याल में रखना चाहिये।' गाँधी जी ने दि० २८ को काँग्रेस संघटन से प्रत्यक्ष सभासदत्व का संबंध छोड़ दिया और वे संघटन से निवृत्त हुए। लेकिन इस निवृत्ति के समय भी काँग्रेस में रहकर जितने बंधन काँग्रेसजनों पर नहीं लाद सकते थे उससे कई गुने कड़े बंधन उन्होंने काँग्रेसजनों द्वारा स्वतः मान्य करवा लिये थे। सूत की गुंडी के रूप में चंदा देने के बंधन का अंतर्भाव इसी समय किया गया। बादशाह खान इस सब कार्यक्रम का प्रस्ताव एवं समर्थन करनेवाले थे। गांधी विचारधारा के नेताओं में भी उन जैसे परखकर श्रद्धा रखनेवाले बहुत थोड़े लोग हैं। आजादी के बाद तो यह सत्य भयानक रूप से स्पष्ट हुआ।

बंबई की महिलाओं के लिये बादशाह खान का एक भाषण हुआ। इस सभा की अध्यक्ष श्रीमती गोशीबेन थीं। १९३० के आंदोलन के जमाने में महर्षि दादाभाई नौरोजी की तीन पोतियों ने बड़ा भारी लेकिन मौन काम किया था। वे तीनों बहनें थीं पेरिनबेन, गोशीबेन और खुर्शीदबेन। उन्होंने गांधी जी के कार्य के लिये सर्वस्व का दान दिया था। सत्यनिष्ठा, सदाचार, धीरज और यातना सहने की असामान्य तत्परता इन तीनों बहनों ने दिखायी थी।

१९३१ में गांधी इरविन समझौते के जमाने में सीमा प्रांत में हुए जुल्म अत्याचार आदि की परिस्थिति का निरीक्षण करने के लिये जिन अलग अलग लोगों ने उस प्रांत का दौरा किया उनमें खुर्शीदबेन भी थीं। डरावने लगनेवाले पठानों में उन्होंने करीब एक साल का समय व्यतीत किया। पठानों की स्त्रियों में उन्होंने प्रवेश किया और 'पठानों की बहन' की संज्ञा के रूप में उनका नाम महशूर हुआ था। सीमाप्रांत में वे काम न करें इसके लिये सरकार ने उन्हें जेल में भी भेजा लेकिन किसी की परवाह न करते हुए वे

वहीं टिकी रहीं। खुर्शीदबेन और उनके साथ भारतीय महिला वर्ग का ऋण बादशाह खान बहुत बड़ा मानते थे। इस ऋण का बार बार हवाला भी देते थे।

बंबई के व्याख्यान में उन्होंने कहा, "हमारे लिये पारसी महिलाओं द्वारा किये हुए उपकार पठान कभी भी नहीं भूलेंगे। खुर्शीदबेन हमारे लिये दो मर्तबा जेल हो आयीं। सरकार का पठानों पर गुस्सा क्यों, वे तो भारत से, कांग्रेस से एकरूप हुए हैं इसलिये अंग्रेजों ने जिस मकसद से हमें भारत से अलग कर हमारा प्रांत अलग बनाया वह उनका मकसद हम बेमतलब बना रहे हैं। भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में पठान कांग्रेस के साथ हैं, यह दृश्य उनसे सहा नहीं जाता है। हम भारत छोड़कर जायेंगे तो इस देश में जाति जाति में झगड़े फिसाद होंगे, ऐसा हमारे चीफ कमिश्नर ने कहा। उनका यह कहना बिल्कुल झूठ है, ऐसा मैंने उनसे कहा। वे झूठा प्रचार करते हैं इसलिये मेरा उनपर गुस्सा है। खुदाई खिदमतगार प्रेम का प्रचार करनेवाला और मानवता का पुजारी है। कोई भी मजहब आपस में द्वेष करने की सीख नहीं देता है। इस्लाम हमें भ्रातृभाव और प्रेम की सीख देता है।"

इसी दरमियान बंबई के पठानों के सामने भी दिसंबर २८ को एक खास सभा में उन्होंने तकरीर की। 'भारत किसी एक जमात का नहीं, वह हिंदू, सिख, पठान, भंगी आदि सब का है। सबको अपनी आजादी के लिये अपनी ताकत के अनुसार हाथ बटाना चाहिये।'

इधर खानसाहब अपने प्रचार में व्यस्त थे उसी समय अधिकारी उनके व्याख्यानों के अहवाल इकट्ठे करने में उनके वाक्यों की चीर फाड़ करके मुकदमे के लिये अपने अनुकूल अर्थ गढ़ने की चिंता में थे। बादशाह खान के व्याख्यानों के अहवाल ठीक समझ कर उपलब्ध किये जायँ, इसके लिये पंजाब और फ्रांटियर विभाग के आशुलिपिक बुलाकर उनके पीछे लगा दिया गया था। बंबई से बादशाह खान वापस वर्धा गये और वहाँ इंग्लैंड से वापस आयी हुई पुत्री मेहेरताज की शिक्षा आदि की व्यवस्था करने में उनका थोड़ा समय व्यतीत हुआ। मेहेरताज १५-१६ साल की होगी और लाली बारह साल का। दूसरी पत्नी के असामयिक और अनपेक्षित निधन के कारण ये दोनों अनाथ बालक से थे। हज यात्रा के रास्ते पर उनकी माँ उन्हें छोड़ गयीं। पिता देश के लिये सतत सत्याग्रही जिहाद के मार्ग पर लगे हुए थे। उनके परिवार के मानसिक कष्टों का वर्णन कौन कर सकेगा!

डॉ० खानसाहब की पत्नी अपने बच्चों के साथ मेहेरताज को अपने साथ इंग्लैंड ले गयी थीं। उनके वापस आने के कारण वे अपने बच्चों के सहवास में चार हफ्ते गुजार सके। इतना ही पारिवारिक सुख उन्हें नसीब हुआ। इंग्लैंड से वापस आयी हुई अपनी लड़की को जानकी बहन, मदालसा, कमलनयन इन लोगों से कैसे बर्ताव करना चाहिए, आश्रम का कूड़ाकचरा निकालने के अनुशासन का कैसे पालन करना चाहिए, आदि वे उन्हें खुद सिखाते थे। जमनालाल जी लाली का लाड़ प्यार करने में व्यस्त हैं यह देखकर उनकी आँखें तृप्त होती थीं। इतने में एक दिन छोटा लाली दौड़ता हुआ जमनालाल जी के पास आया और उनके गले से लिपटता हुआ जोर जोर से सुबकते हुए पूछने लगा 'आप सब यहाँ रहेंगे और मेरे पिता जी को ही पकड़ कर किसलिये वे ले जायेंगे?' ऐसा हृदय को व्याकुल करनेवाला सवाल उसने पूछा।

अक्तूबर के अंत में बादशाह खान वर्धा आये। दिसंबर ता० ७ की शाम को गांधी जी से बातचीत करने बैठे थे तभी पुलीस इंस्पेक्टर खान ने उनकी गिरफ्तारी के लिये निकाला हुआ वारंट उनके हाथ में दिया। बादशाह खान हमेशा जेल जाने को तैयार ही रहते थे। गांधी जी को तो सरकारी नीति का सुराग तुरंत ही मिल जाता था। दो महीने से दोनों को मिला हुआ निकट के परिचय का, आध्यात्मिक प्रेम का पाश इतनी जल्द टूटने वाला था। मगनवाडी की यह खबर अतिथिगृह में मालूम होते ही लाली ने जमनालाल जी से उपरोक्त सवाल किया था।

भारत के करोड़ों गरीब लोगों का कौटुंबिक जीवन स्वस्थता का, सुख का और आनंद का हो, इसके लिये उसके पिता जी ने अपने प्रापंचिक सुख को सहारा का मरुस्थल बना दिया था। यह लाली को मालूम होते हुए भी जमनालाल जी जैसे व्यक्ति को भी इसे बताना उस समय संभव नहीं हुआ।

जमनालाल जी पारिवारिक मनोवृत्ति के होते हुये भी तत्वनिष्ठा के लिये अत्यंत कठोर निग्रह से काम लेनेवाले थे। उन्होंने बादशाह खान को बिदा करने की तुरंत तैयारी की। सब ने उन्हें प्रेम से बिदा किया। बादशाह खान तो हँसते ही थे। लाली ने अपना दुख उनकी हँसी में ढूँढने की कोशिश की होगी। "बहादुर के माफिक रहो बच्चा।" ऐसा कहकर बादशाह खान ने उसे सहलाते हुए उसको संतोष देने का प्रयत्न किया। उनकी उस कठोर हँसी में कितना बड़ा दर्द समाया हुआ होगा, इसकी कल्पना करना आसान नहीं।

सिर्फ चार दिन पहले ही वे लाली को थोड़े समय अपने साथ रहने के लिये देहराडून से साथ लाए थे। लेकिन कर्मयोगी पुरुषों को अपना दुख हल्का करने के लिये भी मोहलत नहीं मिला करती है। वे यदि दुखी दीखते तो आसपास की महिला-बच्चों की क्या अवस्था होगी? उन्होंने तुरंत जानकी देवी की ओर मुड़कर कहा, "सब परमात्मा की इच्छा से होता है ऐसा हम मानते हैं न? खुदा को मुझे जितना समय बाहर रखना था उतना उसने रखा, अब जेल में जाकर सेवा करूँ ऐसी उसकी मर्जी है। उसका आनंद वही अपना आनंद" ऐसा कहकर उन्होंने सारे स्वकीयों से मुँह मोड़कर विपदा का स्वागत करने के लिये तत्परता से कदम बढ़ाया और पुलिस सुपरिटेंडेंट बॅक की गाड़ी पर सवार हुए।

पहले की रिहाई के बाद सिर्फ डेढ़ महीने पहले बोरीबंदर पर उनका भव्य स्वागत होकर उनका जुलूस निकाला गया था। मुकदमे के लिये होनेवाले आगमन की खबर बंबई न पहुँचे, इसकी सावधानी सरकार ने काफी बरती थी। फिर भी उस जमाने में खबरें मनोवेग से फैलती थी। खुद संबंधित अधिकारी ही गुप्त रूप से उसे पहुँचाते थे। "हाल में सत्याग्रह मुल्तवी रखा है इसलिये अब मुकदमा चलना चाहिये" ऐसी सलाह और आदेश खुद गांधीजी ने निकलते समय बादशाह खान को दिया था। ऐसा संदेश महादेव भाई ने मुंशी के पास पहुँचाया था। उस अनुसार दि० ८ दिसंबर को उन्हें प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट दस्तूर के सामने खड़ा किया गया, तब श्री कन्हैया लाल मुंशी और कानुगा उनके लिये कोर्ट में उपस्थित थे। जमानत पर रिहा करने के लिये उन्होंने कोर्ट को आवेदनपत्र भी दिया। लेकिन "जमानत पर रिहा होकर क्या करना है, जमानत के लिये अर्जी मत दो, मुआफ करो" ऐसी प्रार्थना उन्होंने खेदपूर्वक वकीलों से की। इसलिये वकीलों को आवेदन पीछे खींच लेना पड़ा। मुकदमे का दिन निश्चित करके मुलजिम को भायखला जेल भेजा गया। इस मुकदमें में गाँधी जी का मन कितना व्यस्त था यह सरदार पटेल को उस समय लिखे उनके पत्रों से प्रकट होता है। बचाव क्या और कैसे करना, कैसे न करना आदि विस्तार से और लिखित सूचना गांधी जी ने सरकार के पास भेजी थी। इसके अनुसार दि० ११ को सरदार पटेल ने उनसे जेल में मुलाकात की और बचाव करने की अनुमति देने के लिये प्रार्थना की। लेकिन उसका कोई उपयोग नहीं हुआ। 'जो चीज १५ साल नहीं की, वह अब करने का क्या कारण?' यही सवाल उन्होंने गाँधी जी से वर्धा में किया था।

दि० १२ को अदालत में खूब भीड़ रही। बादशाह खान के आते ही सब लोगों ने खड़े रह कर अभिवादनपूर्वक उनका स्वागत किया। श्री भूलाभाई, मुन्शी और उनके जैसे ही अन्य प्रमुख वकील उपस्थित थे। लेकिन किसी को कोई तकलीफ न हो ऐसी उनकी इच्छा थी। मजिस्ट्रेट के लिए सजा के वाक्य कहने के कष्ट कम हो यह उनके बूते के बाहर की चीज थी। मजिस्ट्रेट के 'आपने अपराध नहीं किया क्या?' इस सवाल को बादशाह खान ने जवाब दिया, 'मैं कुछ भी नहीं कहता–आइ डू नॉट् प्लीड्–मुझे कुछ कहना नहीं है' इस आशय का उत्तर दिया। मजिस्ट्रेट ने 'मैं निर्दोष हूँ ऐसा आपका कहना है, ऐसा नोट किया' यह कह कर उन्होंने काम की शुरुआत की। सरकारी वकील वॉकर ने इल्जामों के संबंध में भाषण किया। पुलिस इंस्पेक्टर चांद खान और भाषणों का अहवाल लेने वालों की गवाही होने पर भूलाभाई ने कहा कि गवाहों की फिर से जाँच नहीं की जायगी। ऐसा कहने पर इल्जाम लगाया गया। बादशाह खान ने अपना लिखित बयान पेश किया।

इस बयान में वे कहते हैं, 'तकरीर के विवरण में भावार्थ ठीक होते हुए भी उसमें काफी त्रुटियाँ रह गयी हैं। वे कानून की पाबंदी में आ सकती हैं ऐसा मेरे वकील मित्रों ने ही मुझे कहा है। इसलिये मैंने किये विधानों के बारे में खेद प्रदर्शित करने जैसा लगता है और मैं वह व्यक्त भी करता हूँ। क्योंकि मैं कांग्रेस का एक सिपाही हूँ। समझौते के दौरान कानून का भंग न होने पाये ऐसा आदेश मुझे मेरी संस्था की ओर से होते हुए भी कानून तोड़ा गया इसका मुझे खेद है। मेरा भाषण ईसाई समाज के सामने था। जो सत्य था वह मुझे कहना ही था। सारे अंग्रेजों के खिलाफ़ वैमनस्य फैलाने की इच्छा होती तो मेरे ईसाई गुरुजनों के बारे में मैं कृतज्ञता क्यों व्यक्त करता? खुदाई खिदमतगार आंदोलन के बारे में सही वाकया मैंने कथन किया।' मजिस्ट्रेट ने फैसले में सरकार पर लगाये गये इल्जाम भयानक स्वरूप के थे ऐसा तय करके दो साल की सख्त कैद की सजा सुनाई।

जिन भाषणों पर यह मुकदमा जल्दी जल्दी में चलाया गया वे भाषण आक्षेपार्थ सिद्ध होंगे या नहीं इस बारे में कमिश्नर स्मिथ कानून की सलाह देनेवाले मिस्टर डेविन्स, सरकारी वकील मिस्टर वाकर आदि में काफी मतभेद था। दिनांक २६ को जिना हाल में दिया हुआ व्याख्यान आक्षेपक ठहराकर मुकदमा दायर करने का पहले निश्चित हुआ था। लेकिन स्मिथ ने

इस संबंध में फिर शंका प्रदर्शित की थी। "इट् इज् बेटर नाट टु प्रासिक्यूट इफ् दी केस इज् डाउटफुल्" ऐसा स्मिथ ने दिनांक १६ नवंबर को होम सेक्रेटरी मक्सवेल् को स्पष्ट सूचित किया था।

इसके बाद फिर से विचार होकर "दिनांक २७ का व्याख्यान आक्षेपपूर्ण सिद्ध हो सकेगा, उसके लिये सजा दी जा सकेगी" आदि सलाह सरकारी वकील ने दी। संभवतः मुकदमा लड़ा नहीं जायगा, उनकी यह अपेक्षा सही निकली। यह मुकदमा क्यों दायर किया गया इसका कारण बादशाह खान ने ही कहा है। सीमा प्रांत से बाहर रखे जाने पर उन्होंने बंगाल के मुसलमानों में रहने का निर्णय लिया था। मुसलमानों के प्रति उनका दर्द और उनके लिये बंगाल में जाकर बैठना इसका डर सरकार को लगना स्वाभाविक ही था। बहुसंख्यक मुस्लिम आबादी का एक प्रांत कांग्रेस के पीछे और सरकार पर संपूर्ण अविश्वास करनेवाला है यह उन्होंने देखा था। बंगाल फिर से क्रांतिकारियों के मुट्ठी में जा रहा है, यह भी उन्हें मालूम था। बादशाह खान उधर जाकर बैठेंगे तो अहिंसक प्रतिकार का रेशमी फंदा अपने गले पर लगा कर वे धोखा ही देंगे इसे सरकार ने पहचान लिया और इसलिये उन्हें तुरंत पकड़ कर जेल भेजा गया। अन्याय करतूतें खोलकर बतानेवाले को जेल के अंदर बाँधना इतना ही इलाज जिन राज्यकर्ताओं को सूझता है और फिर खुद को सुसंस्कृत राज्यकर्ता मानना यह कितनी बड़ी आत्मवंचना है?

बादशाह खान का यह तर्क सही था। कांग्रेस संघटन से निवृत्त हुये गांधीजी उसी समय सीमाप्रांत में जाकर रहने के विचार में थे यह भी ध्यान में रखने लायक है। बंबई कांग्रेस के पहले दिनांक २७ सितंबर को निकाले पत्रक में "कहीं भी संभवतः वायव्य सीमाप्रांत के किसी देहात में खुद को गाड़ लेने की मेरी इच्छा है" इस आशय के उद्गार गांधी जी ने निकाले थे और खुद गांधी जी उधर जाकर रहते तो १९३०–३२ के दौरान में वहाँ किये सब अत्याचारों का पर्दाफाश होता यह डर लार्ड विलिंग्डन को रहा ही होगा। इसलिये इस योजना के अनुसार, बादशाह खान को जेल में भेजने का रास्ता उनके सामने खुला था।

दिनांक २६ दिसंबर को बादशाह खान को साबरमती पहुँचाया गया। बंबई से उन्हें इंटर के डब्बे में ले गये। वास्तव में उन्हें "ब" दर्जा देने के बजाय वे "अ" दर्जा के बंदी समझे जायँ, ऐसी प्रार्थना अदालत से की गई थी। लेकिन बादशाह खान से उनकी माली हालत के बारे में पूछे जानेपर उन्होंने

यह तहकीकात उतमंजई में करने के लिये कहा। यह उनकी चौथी जेलयात्रा थी उसकी स्थानबद्धता के लिये गत तीन साल से भारत सरकार खुद खर्च कर रही थी। ऐसा होते हुए भी अदालत या सरकारी वकील को उनके सामाजिक स्तर की जानकारी न हो, इस वृत्ति का अर्थ साफ है। पुलिस के उद्दंड सलूक के कारण जिसकी हड्डियाँ टूटती हैं उसका सामाजिक स्तर और दूसरा कौन सा हो सकता है? गुनहगार, जंगली पठान, यही उनका स्तर उनकी दृष्टि में था। अतः उन्हें जेल में कहाँ, कैसे रखा जायगा इस ओर ध्यान देने की जरूरत ही क्या!

दिनांक १६ जनवरी को बंबई की चौपाटी पर आम सभा हुई। सभा में सब वक्ताओं ने सरकारी रवैये के प्रति तीव्र निषेध व्यक्त किया। सदर थे सरदार पटेल। सभा में भूलाभाई, नरीमन, स० का० पाटिल, मुनशी, मसानी की तकरीरें हुईं। लेकिन सरकार के निषेध का तूफान कुछ ही समय टिकने-वाला था। क्योंकि दो साल बाद आंदोलन की प्रक्रिया से मुल्क बाहर आ रहा था। बहुतों की आँखें हफ्ते के बाद आनेवाली राजकीय कानून समिति की ओर और कइयों की आँखें गांधीजी के बताये हुये सहूलियत भरे हरिजन सेवाकार्य की ओर लगी थी।

सत्याग्रही नेता जिस परिणाम में "सत्याग्रही" रहते हैं उसी परिणाम में सत्याग्रह सफल होता है। गांधी जी ने सत्याग्रह करने का अधिकार अपने अकेले के हाथ में रख छोड़ा। उन्हें जब उचित लगे उस वक्त कांग्रेस के नाम पर सत्याग्रह करने के लिये वे तैयार थे, लेकिन कांग्रेस के नाम से सत्याग्रह किया तो वह झंझट, अपने कानून समिति के कार्यक्रम में बाधक तो नहीं होगा, इसकी चिंता से पछाड़े हुये अन्य नेता, यह अधिकार अकेले गांधी जी के हाथ में न रहे या कांग्रेस के लिये उसका इस्तेमाल न हो, ऐसा कहते थे। कांग्रेस की सारी शक्ति इस प्रत्यक्ष प्रतिकार के कार्यक्रम में से पैदा हो सकती है और उसका अगुवापन केवल गांधी जी ही कर सकते हैं, यह जवाहरलाल, सुभाष इन पुरोगामी और क्रांतिकारी नेताओं को महसूस हुआ था। लेकिन विधिमंडल के कार्यक्रम में ही चमक सकेंगे, ऐसों की बात अलग रहती है। वास्तव में मोतीलाल नेहरू ने १६२६ में ही इस क्षेत्र के कार्यक्रम की मर्यादाओं को कबूल किया था। लेकिन गांधी जी ने प्रतिकार आंदोलन की लड़ाई को हरिजन कार्यों याने रास्ता सफाई झाड़ू आदि से बाँध दिया। इस वजह से कुछ नेताओं ने नाक सिकोड़े तो इसमें कोई अचरज की बात नहीं। इसकी अपेक्षा कानून समिति में मुँह की गोलाबारूद से कुछ भी तो

सफलता जरूर मिलेगी ऐसा भूलाभाई, आसफअली, अनसारी, नरीमन आदि नेताओं को लगता था। राँची से प्रकाशित गांधी जी के पत्रक के बाद विधि-मंडल का पुरस्कार करनेवालों की जो चर्चा गांधी जी से हुई उस समय आसफअली, भूलाभाई, किसी गवाह की फिर जाँच करने के बारे में गांधी जी से बात करते रहे।

हरिजन काम का पुरस्कार कांग्रेस की राजकीय खुदकशी है, ऐसा बहुतों को लगता था, लेकिन चारो तरफ से घेरे जाने पर और कार्यकर्ताओं की प्रतिकार शक्ति की मर्यादा आंकने पर गांधीजी द्वारा सुझाया हुआ रास्ता गैर नहीं तो वह हितकारक ही होगा, ऐसा कुछ सोचने के बाद समझ में आ सकता था। सर्वसाधारण कार्यकर्ता अधिक समय तक जेल में जीवन बिताना पसंद नहीं करते हैं। परिस्थिति के प्रभाव से जेलों में ढकेले गये कांग्रेस के कुछ नेताओं ने जेल में कदम रखते ही, ऐसा निष्क्रिय जीवन यहाँ बिताने से क्या उपयोग ? इसकी चर्चा करने का कार्यक्रम हाथ में लिया। जेलों में बिताया हुआ जीवन, यह भी साधना द्वारा प्रभावी प्रतिकार का एक रास्ता है उस समय इस विश्वास के नेता नगण्य से ही थे। ऐसे नेताओं में गांधीजी के आगे दो कदम चलने की निष्ठा रखनेवाले केवल बादशाह खान ही थे।

गांधीजी ने वर्धा में साबरमती आश्रम बनाया इसलिये साबरमती अनाथ हुई थी। उस साबरमती को देने के लिये, गांधीजी शेष सजा भुगतने के लिये तो कहीं साबरमती जेल में आकर बैठे नहीं है ऐसा भी कइयों को लगा होगा। साबरमती आने के बाद तीन महीने की अवधि में उनका वजन तेरह पौंड कम हुआ। मार्च महीने में सरदार पटेल से उनकी मुलाकात हुई उस समय उनके अस्वास्थ्य की सही जानकारी मिली। उस दौरान गांधीजी के पास आम की टोकरी पहुँचते ही उन्होंने सरदार को लिखा, 'खान साहब को फल जाते हैं न ?' गांधीजी इतने दक्ष थे। खानसाहब के पास उनके घर का कोई जाता नहीं था क्योंकि इतनी दूर से किसी से मिलने के लिये आने की कोई आवश्यकता नहीं ऐसा उन्होंने डा० खानसाहब को संदेश भेजा था। वे खुद असेंबली का चुनाव लड़ने की तैयारी में लगे थे। तीन-चार महीने के बाद अस्वास्थ्य के कारण बादशाह खान को बरेली (संयुक्त प्रदेश) जेल में भेजा गया। आबोहवा बदलने के लिये जेल बदले जाते थे लेकिन यह परिवर्तन बिल्कुल असमय किया जाता था। याने जब वहां की हवा पूरी तरह से प्रति-

कूल या खराब हो ऐसे समय उन्हें वहां भेजा जाता था। याने जेल का परिवर्तन तो हो और आबोहवा का फायदा उन्हें न मिले और सुयश सरकार को मिले। कभी-कभी कार्यपद्धति की अंधेरगर्दी की वजह से भी ऐसा होता था। आज्ञा जारी होने के बाद इसपर अमल होने में ही इतना विलंब हो जाता था। स्वास्थ्य की वजह से इन्हें बरेली पहुँचाया गया लेकिन तब वहाँ सख्त गरमी थी। उनके बदन पर फोड़े निकलने लगे, यह वातावरण स्वास्थ्यदायक तो किसी प्रकार नहीं, इसलिये वहाँ से फिर ठंढी हवा के स्थान पर उन्हें ले जाया जाय ऐसी आज्ञा निकली। उसपर अमल होते-होते बारिश शुरू हुई। इसलिये बरेली की सख्त गरमी का भी उन्हें लाभ नहीं मिला और उसके बाद अलमोड़ा की जानलेवा बारिश का मजा भी वे नहीं चख सके। इस तरह उनकी दो साल की सजा शरीर क्लेश की कतरनी में पूरी हुई। इसके पहले की सजा के समय (१९३२-३४) उनके प्रिय भाई डॉ० खानसाहब उनके साथ थे। इसलिये उपचार की दृष्टि से उन्हें उनका लाभ मिलता था। इस वक्त सजा का पूरा समय अकेलेपन में और तरह-तरह की बीमारियों के साथ गुजारने का मौका मिलने से उन्हें खुदा के स्मरण और सान्निध्य का लाभ अधिक हुआ होगा। सरकार ने यही अधिक लाभ दिया ऐसा वे मानते रहे। अलमोड़ा जेल में पहले जवाहर लालजी ने सुंदर बगीचा तैयार किया था उसकी निगरानी करने का काम बादशाह खान ने किया। तरकारी, एरण, ककड़ी आदि पैदा की। इस काम के कारण उन्हें कुछ अधिक छुट्टी मिली और अगस्त १९३६ में वे रिहा हुए।

(बादशाह खान का २७ अक्तूबर १९३४ की तकरीर बंबई के हिंदी ईसाई समाज की ओर से हुई थी और इस समाज के सुझाव के अनुसार ही तकरीर का विषय 'खुदाई खिदमतगार' रखा गया था। श्रोता भी दो-तीन सौ के ऊपर नहीं थे। यह सब ध्यान रखने लायक है।)

'हमारा यह खुदाई खिदमतगार संगठन अक्तूबर १९२९ में खड़ा हुआ है। इस संगठन के बारे में संसार में झूठा और शरारती प्रचार किया जाता है। आपने इस विषय की जानकारी लेने की इच्छा बतलायी इसके लिये हम आपके आभारी हैं। रेड शर्ट इस तरह से हमारा परिचय दिया जाता है यह शरारत भरा है। हम खुदाई-खिदमतगार हैं।'

'हमारे तरफ जारी किये गये फ्रांटियर रेग्युलेशन ऐक्ट के कारण हम आपस में झगड़ते आये हैं। स्त्री-पुरुष सब एक दूसरे के खिलाफ झगड़ने में

लगे, यही इस कानून का परिणाम है। हमें शिक्षा नहीं लेते देते। क्योंकि हमारा मुल्क गेट वे अर्थात् प्रवेश द्वार है। अर्थात् हमें हमेशा गेटकीपर या चौकीदार ही रहना चाहिये।

'हम हिंदुस्तान में मिले रहेंगे तो अंग्रेजों को हिंदुस्तान छोड़कर जाना होगा इसलिये वे हमें अनाड़ी रखना चाहते हैं इसलिये वे हमें शिक्षा नहीं देते हैं। हमें भारत से अलग रखने की कोशिश की जाती है। हम हिंदुस्तान से एकता करने लगें तो वे हमें कहते हैं कि आपने यदि हमसे झगड़ा किया तो हम हिंदुस्तान छोड़कर जायेंगे फिर आप लोगों पर हिंदू राज चलायेंगे और इससे उल्टा हिंदुस्तान के लोगों को कहते हैं कि हम गये तो हिंदुस्तान पर पठान राज चलायेंगे और वे तुम्हें खा डालेंगे। यह सब झूठा प्रचार है। हमें शिक्षा देते नहीं। हमने शिक्षण संस्थायें बनाईं तो वे उद्ध्वस्त की जाती हैं। इसलिये ऊबकर समाज सेवा के लिये हमने यह रास्ता निकाला है। खुदा के सब बच्चों में प्रेम बढ़े यह शिक्षा देहात देहात में देने के लिये खुदाई खिदमतगार संस्था शुरू की है।

'हिंदू, सिख, ईसाई, पारसी, जर्मन, फ्रेंच, इंग्लिश कोई भी हो, वे सब खुदा के बच्चे हैं और मैं उनका सेवक हूँ, यही मेरी भावना है। जुल्म करनेवाला कोई भी व्यक्ति हो या राष्ट्र हो, जिन पर जुल्म ढाया जाता है उसका पक्ष लेने के लिए हम हैं। जुल्म करनेवाला मुसलमान रहा तो उसके विपक्ष में भी हम खड़े रहेंगे। जिन पर अत्याचार होते हैं उनकी मदद करना यही सच्चा धर्म है।

मेरी शिक्षा एक मिशन हाईस्कूल में हुई। ईसाई धर्म से मेरा कुछ परिचय हुआ है। मेरे अध्यापक एक ब्रिटिश लॉर्ड के पुत्र थे। उनका मुझपर गहरा असर हुआ है। वे कुछ भी वेतन नहीं लेते थे। घर का खाकर धर्म का प्रचार करते थे। ईसाई धर्म का अवतार क्यों हुआ? अत्याचार, शोषण होता है उनकी मदद के लिये ही न? मूसा फरोहा के पास गया तब उसने कुछ माँगा नहीं। इसरायल लोगों को आजादी दो। इतनी ही उसने माँग की।

'हमारा यह आंदोलन धार्मिक और सामाजिक है। देहातों में जाकर झूठ मत बोलो, जासूसी मत करो, अपने भाइयों के खिलाफ सहायता न करो, यही हम देहातों में जाकर कहते हैं। हमारे दिल में असत्य नहीं था लेकिन सरकार में वह था। पठान संगठित हुए तो वे हमारे खिलाफ जायेंगे

यह डर उन्हें लगता है। हम फ्रॉंटियर प्रांत में पैदा हुए यह हमारा अपराध है, सरकार को हम पर भरोसा नहीं इसलिये वे हमें, जनता को शिक्षा नहीं देते हैं।

'खुदाई खिदमतगार संगठन खड़ा होने पर चार ही महीने बाद हमारी पहली सभा के दूसरे दिन हम सब कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया। हमने अहिंसा की सौगंध खाई थी। हमारे सब स्वयंसेवकों को सौगंध खानी पड़ती है। हम उस समय तक कांग्रेस में नहीं थे। लेकिन सरकार के अत्याचारों के कारण हमें किसी न किसी की सहायता की जरूरत थी ही।

'हमें गिरफ्तार करने पर लोगों ने जो प्रदर्शन किये वे पूर्णतया शांति के थे। लेकिन सरकार को जनता पर रोब जमाना था। डेप्युटी कमिशनर ने इन्स्पेक्टर जनरल को पेशावर से फोन पर, तुम्हें इधर आने की जरूरत नहीं है, सब शांत कर दिया है, जुलूसवाले वापस चले गये हैं, आदि संदेश कहा था। फिर भी किस्साखानी बजार के तरफ सुरक्षित मोटरें और तोपें दौड़ीं। लश्करी सिपाहियों को गोलियाँ चलाने का हुक्म हुआ। लेकिन उल्टे सिपाहियों ने ही उनके हाथों में लाठियाँ या पत्थर ईंट नहीं है, गोली किन पर चलायें?' ऐसा पूछा।

'लेकिन ऐसा पूछनेवाले सिपाहियों को वहाँ से हटाया गया और उन पर फौजी मुकदमे (कोर्ट मार्शल) चलाए गए। उनमें से कई सिपाही अभी तक जेल में ही हैं। गढ़वाली सिपाही हटाकर उनकी जगह अंग्रेज सिपाही लाये गये और उन्होंने क्षणार्द्ध में दो ढाई सौ लोगों को मौत के घाट उतार दिया। हमारा क्या अपराध था। केवल सरकार की प्रतिष्ठा के लिए यह किया गया। सरकार की प्रतिष्ठा गोली चलाने से नहीं टिकती है। वह प्रेम की भाषा से कायम रहती है यह उनके ध्यान में नहीं आया। पठानों को सख्ती से नहीं जीत सकते हैं, यह उन्हें अब मालूम हुआ है।

'हमें वे फ्रॉंटियर नहीं जाने देते, क्यों? बंगाल की सरकार धौंस जमा रही है। क्योंकि लोग भी हिंसा करते हैं, लेकिन वैसी कोई मिसाल सरहद प्रांत में हुई, ऐसा सरकार नहीं बता सकती है। वैसी कोई मिसाल सरकार दे ऐसा आह्वान जेल से छूटने के बाद मैंने किया है। लेकिन वैसी एक भी मिसाल सरकार न दे सकी। उल्टे पुलिस के अत्याचार और दमन शुरू हुए। इस तरह पठान दबते नहीं हैं। शुरू शुरू में खुदाई खिदमतगारों की

संख्या तीन चार सौ थी, वह तीन चार महीने में चालीस हजार हो गयी। बाद में उसका स्वरूप राजनीतिक हुआ।

'इस तरह से दिक्कतें खड़ी होने पर लोगों की मदद लेने के लिये हमारे खुदाई खिदमतगार दिल्ली, शिमला, लाहौर इन स्थानों के मुसलमान नेताओं के पास पहुँचे। लेकिन वे मदद देने के लिये तैयार न थे। मैं तब जेल में था। मुसलमान नेता हमें मदद करने के लिये तैयार नहीं थे। डूबने वाले को तिनके का आधार लगता ही है। 'हम तुम्हारे पीछे हैं' ऐसा कांग्रेस ने कहा। 'हम भी तुम्हारे पीछे हैं' ऐसा हमारे कार्यकर्ताओं ने उनसे कहा। हमारे संगठन का यह राजनयिक परिवर्तन सरकार ने ही करवाया। हम पर हुए अत्याचारों का प्रकार देखकर अफ्रीदी लोगों ने सरकार से बदला लेना शुरू किया। कांग्रेस का प्रचार भी हमारे हक में होने लगा। तब हुकूमत होश में आई। उसके बाद, 'तुम्हें क्या चाहिये ?' ऐसा अधिकारी हम लोगों से पूछने लगे। 'वह समय बीत गया' ऐसा जवाब हमारे लोगों ने भेजा। 'तुम्हें जो भी कुछ करना हो वह करो, हम अब पीछे आने वाले नहीं हैं'। ऐसा उन्होंने अधिकारियों से कहा।

पुलिस के साझेदार बाद में हमारे कार्यकर्ताओं से मिले और, 'तुम्हें जो कुछ चाहिये वह हम देंगे, तुम को गांधी जी और कांग्रेस को छोड़ना होगा' ऐसा उन्होंने कहा। उस पर 'हम पठान ऐसे धोखेबाज नहीं' ऐसा जवाब हमारे लोगों ने दिया। आफत में होने पर जिन्होंने मदद की उनका साथ पठान कभी भी नहीं छोड़ेंगे।

'गांधी इरविन समझौते के समय हमारे चीफ कमीशनर ने लॉर्ड इरविन को लिख भेजा कि इस प्रांत में दोनों में से कोई एक ही रह सकेगा, हम यहां का शासन चलाए या तो बादशाह खान रहें, लेकिन लॉर्ड इरविन ने मुझे जेल से रिहा किया। इरविन के पास हर रोज हमारे बारे में झूठी टिप्पणियां जाती थीं यह गांधीजी को मालूम हुआ। तब उन्होंने इरविन से कहा कि आप फिर से खान बंधुओं को गिरफ्तार करेंगे तो समझौता टिकेगा नहीं।

'देहात के लोगों के त्याग के कारण हम लोगों में यह जागृति पैदा हुई है। यह खुदा द्वारा किया हुआ काम है। खुदा ने ही उन्हें जगाया। वह धर्म के अनुसार चलते हैं इसलिये ही यह हो सकता है। इतनी कुरबानी अन्य कहीं नहीं हुई होगी। १९३२ में हमें फिर से गिरफ्तार किया। उस वक्त २६ लाख की हमारी आबादी से तीन लाख लोग खुदाई खिदमतगार में दाखिल हो चुके थे।

'ट्रूस (गांधी इरविन समझौता) सरकार ने हमारी बात कभी माना ही नहीं। चारों तरफ १४४ दफा लगी थी। हिंदू मुसलमानों में झगड़ा पैदा करने का प्रयोग हुआ। हर चीज के हमारे पास सबूत हैं।

'गोलमेज परिषद पूरी करके गांधीजी के वापस लौटने पर हम सब उनके सामने यह सब परिस्थिति रखने वाले थे। सब लिखित सबूत उनके सामने आने वाले थे। सारे कागजात मेरे पास पेशावर में थे। मेरी सेहत कुछ ठीक नहीं थी। दूसरे रोज फ्रंटियर मेल से मैं निकलने वाला था, लेकिन उसके पहले ही रात में मुझे गिरफ्तार किया गया और हजारीबाग जेल भेजा गया। हमारे सब मुख्य मुख्य कार्यकर्ताओं को तीन तीन साल की सजा सुनाई गयी। हमारे घरों पर जप्ती आई। किस लिये? मेरे तरफ कुछ देना नहीं निकलता था। हमें कोई शिकायत नहीं करनी है। उन्हें जो ठीक लगेगा वह वे करेंगे। लेकिन हमारे मुसलमान भाईयों से हमें कहना है। हम वह प्रेम से ही कहेंगे और उन्हें सद्बुद्धि देने के लिये खुदा से प्रार्थना करेंगे।'

: १५ :

हद्दपारी के दिनों की दैनंदिनी (१९३६-३७)

इस रिहाई के बाद भी पंजाब में या वायव्य सीमाप्रांत में प्रवेश न करने की आज्ञा, रिहाई के पहले ही उन पर तामील हो चुकी थी। बंबई सरकार ने पहले ही अपने प्रांत में उन पर प्रतिबंध लगाने का कोई कारण नहीं दीखता है, ऐसा भारत सरकार को लिख भेजा था। और सब राज्यों ने उन पर, उनके राज्य में न आयें, ऐसी आज्ञा जारी कर दी थी। तो वे कहाँ रहे ऐसा विचार बुद्धिमान अधिकारियों को सूझा ही होगा। वैसे ही भविष्य में किसी भी कानून के अंतर्गत सजा बहाल करनी हो तो ऐसा काम दक्षता से करने वाले कुछ प्रांत होते ही हैं, बंबई प्रांत ऐसा ही था। फाँसी की सजा अमल में लाने के लिये आवश्यक सहूलियतें हर जेल में नहीं रहती हैं। निर्विकार अंतः करण से गले में फंदा फासने की कला में निष्णात कैदियों का समूह, उस पद्धति की परंपरा का जानकार अधिकारी वर्ग आदि सब साधनों की आवश्यकता उसके लिए होती है। इस दृष्टि से थाना जेल फासी कर्म के लिये ब्रिटिशों के जमाने में रख छोड़ा गया था। वैसे ही किसी भी देश भक्त को, किसी भी कारण, किसी भी जेल में ठूसने की जरूरत सरकार को दिखाई दी तो वह काम बंबई के अधिकारियों को सहज ही सौंपा जाता होगा। वैसे तत्वज्ञ अधिकारियों की देख भाल इस सुंदर नगरी में की जाती थी। लोकमान्य पर चलाया गया ताई महाराजवाले मामले जैसा मुकदमे हो या चाफेकर को फाँसी चढ़ाने का काम हो, किसी भी गैरकानूनी कार्यवाही को कानूनी सिद्ध करने की करामात करने वाले वकील और अधिकारी बंबई में उपलब्ध होते थे। गोरे नौकरों के अनुसार एतद्देशीय नौकरों को भी उस दृष्टि से रखना पड़ता है और वैसी अनुकूल परिस्थिति बंबई प्रांत में रहने के कारण सब राजनीतिक कैदियों के लिए वहाँ द्वार मुक्त रहता था। वहाँ उनके मुकदमे बड़े बड़े जुलूसों के साथ चलाये जाते थे और उनके कैदखाने की व्यवस्था भी वहाँ तुरंत होती थी। इसलिये बादशाह खान के लिये बंबई प्रांत ने अपना दरवाजा खुला रख छोड़ा था इसमें अचरज की क्या बात है?

भारत की वायव्य सीमा उनके लिये बंद थी। जिस प्रांत में मुसलमान बहुसंख्या में हो वहाँ उनका जाना और रहना, वहाँ की अज्ञ मुसलमान जनता की दृष्टि से अहितकर है, ऐसा सूज्ञ ब्रिटिश राज्यकर्ताओं ने तय किया था। यह सब कानून न था। और, गांधीजी का कार्यकेंद्र भी बंबई ही था। इसलिए एक म्यान में दो तलवारें, एक प्रांत में दो नेता, कभी निभ नहीं सकेंगे यह सिद्धांत झूठा करार करना भी आवश्यक था ही। इन दो गांधियों की पैदाइश ही इस प्रयोग के लिए थी। इसलिए अलमोडा जेल से रिहा होते ही बादशाह खान गरुड़ की गति से गांधी जी के पास आयें यह स्वाभाविक ही था।

खान का घोंसला वहीं रहे इसलिए जमना लाल जी ने १९३४ में वह कार्यक्रम हाथ में लिया था। इसीलिए उनकी लाड़ली मेहेरताज को लंदन की पाठशाला से निकाल कर वहाँ बुलाया गया था। लेकिन वह घोंसला वैसा ही खाली रहा था। बादशाह खान जैसे प्रखर कर्मवादी को भी अपने घोंसले की याद आती ही है। इसलिए वे वर्धा के रास्ते पर चल पड़े। सेहत खराब रहने पर भी उन्होंने तीसरे दर्जे से सफर किया। उनकी सेहत कितनी कमजोर थी उसका ख्याल नागपुर स्टेशन पर उन्हें मिलने के लिए जो लोग गए थे उन्हें आया था। बादशाह खान वहीं उतरें, वैसी प्रार्थना भी उन्होंने की। तीसरे दर्जे के एक खाली जैसे डिब्बे में वे नागपुर के कार्यकर्ताओं को दिखाई दिए! एक छोटे से थैले में उनका सब सामान समेट कर रखा हुआ था। लोगों ने घेर लिया, तब वे एक खिड़की में से ताकने लगे। उनकी कमजोरी का ख्याल आते ही डॉ० सोनके ने उनके स्वास्थ्य की जाँच की। बुखार १०० के ऊपर था। आए हुए लोगों में मोरोतंत अभ्यंकर नहीं थे। उनकी पूछताछ उन्होंने की और उनके देहावसान के बारे में दुख प्रदर्शित किया।

वहाँ इकट्ठे हुए कार्यकर्ताओं से बातचीत करते हुए उन्होंने कहा, "आप को देखकर अच्छा लगा। अपना यह एक भ्रातृमंडल ही है।" गाड़ी बहुत देर तक स्टेशन पर खड़ी थी इसलिए अखबारों के कुछ प्रतिनिधियों ने उनसे कुछ सवाल किये। बंदी जीवन के संबंध में उन्होंने कहा, 'बंबई में एक हफ्ता निकाला, बंबई में सजा होने पर साबरमती में सख्त ठंड रही लेकिन कंबल दो ही; वहाँ ठंड लगी और इन्फ्लुएंजा का बुखार आया। वहाँ से अगस्त में बरेली पहुँचाय गया। बरेली में भी साबरमती जैसे ही रात में

चर्चा नहीं मिलती थी। अलावा इसके अकेला कुट्टड़ में (सेपरेट) रखा था। कड़ी धूप के झोंके के कारण बदन पर फोड़े निकल आए थे। इसलिये वहाँ से अलमोड़ा भेजा गया। लेकिन वहाँ बरसात थी। पंडित जी द्वारा शुरू किए हुए बगीचे का काम पूरा किया। इसलिये पंद्रह दिन की ज्यादा छूट (रेमिशन) मिली। कुल चार महीने की सजा कम हुई।" उनके सीधे सादे बोलचाल को और कष्टमय जीवन में भी चेहरे पर दीखने वाली प्रसन्नता के कारण किसी का भी दिल भर आता। लोगों ने उनसे वहाँ थोड़ा आराम करने की प्रार्थना की, लेकिन वे वहाँ कैसे रुकते? उनका वर्धा का खिंचाव भाप के यंत्र के खिंचाव की तुलना में कई गुना अमर्याद होगा। "थोड़ा ठीक होने पर नागपुर जरूर आऊँगा" ऐसा उन्होंने रुखसत लेते हुए कहा। "गांधी जी की सलाह लेकर हिंदू-मुसलमान की एकता के बारे में जितना हो सके उतना काम करूँगा" ऐसा भी उन्होंने कहा, इस सजा के दौरान उन्होंने चाय छोड़ी ऐसा भी उनके कहने में आया। बन्नू के हाजी महमद असलाम शाह को भेजे गये खत में भी चाय छोड़ने के संबंध में जिक्र किया गया है। "बेकार खर्च और आरोग्यविघातक" इन दो कारणों का जिक्र उसमें है।

वर्धा पहुँचने पर वहाँ कइयों के तार-खत आये इसलिए महादेव भाई ने उनके स्वास्थ्य के बारे में दि० ८ अगस्त को एक पत्रक प्रकाशित किया। उसमें वे कहते हैं, "गत तीन महीने से वे बुखार से बीमार हैं इसलिए व्यक्तिशः किसी को जवाब नहीं भेज सके। हाल में वे वर्धा में ही रहेंगे।"

बजाज जी के परिवार में और जमना लाल जी के प्रेम भरे और कड़े अनुशासन के कारण खान साहब को एक-दो सप्ताह आराम और प्रसन्नता मिली। गांधी जी अब सेवा ग्राम में ही रहने लगे थे लेकिन वहाँ सहूलियत की जगह नहीं थी। वैद्यकीय उपचार आदि की दृष्टि से भी उनका वर्धा रहना ही ठीक था। लड़की मेहेरताज उस समय वहीं थी। गांधी जी के पास स्वस्थता से मिलने के लिए जाना-आना होता था। लेकिन गांधी जी ने उन्हें कुछ दिन आराम करने के लिए कहा। इन १०–१२ दिनों में उनकी सेहत काफी सुधरी और स्वास्थ्य भी ठीक हुआ। इसलिए उन्हें बंबई कांग्रेस कार्यकारिणी के समय उपस्थित रहने की गांधी जी ने अनुमति दी। वैसी अनुमति देने के लिए जमना लाल जी तैयार नहीं थे, लेकिन बंबई में एकत्रित होने वाली सभी भारतीय नेताओं से मिलने की उत्कट इच्छा हुई होगी,

इसलिये उन्हें जाने दिया। बोरीबंदर स्टेशन पर उनका यथोचित स्वागत हुआ। दि० २० को शुरू होनेवाले कांग्रेस समिति की सभा के लिए आए हुए बड़े बड़े नेता इस स्वागत के लिए स्टेशन पर उपस्थित थे। इन नेताओं में राष्ट्रसभाध्यक्ष जवाहरलाल जी, सरदार पटेल, सरोजिनी नायडू, भूलाभाई देसाई, शार्दूलसिंह कवीश्वर आदि थे। बादशाह खान का मुकाम उनके भतीजे सादुल्ला खान के मकान पर ही था।

कॉंग्रेस कार्यकारिणी और अ० भा० कॉंग्रेस समिति की सभा में वे उपस्थित रहे, वह सबसे मिलने जुलने के लिए ही। उनकी मुलाकात से सभी को संतोष हुआ। उनका भाषण केवल उनकी स्वागत सभा में ही हुआ। सरदार पटेल की सदारत में चौपाटी पर यह गौरव सभा हुई और उसमें जवाहरलाल जी, सरोजिनी नायडू, विजया लक्ष्मी पंडित आदि के भाषण हुए। बादशाह खान ने सत्कार के उत्तर में कहा, 'साम्राज्य कायम रखने के लिये कम्यूनल अवार्ड है। आजादी के लिये बड़ा भारी त्याग करना पड़ता है। सारे संसार का यही अनुभव है। हमारी दिक्कतें बढ़ाने के लिये हिंदू-मुसलमानों का सवाल और झगड़े खड़े किये जाते हैं। लेकिन मेरे प्रांत में वह सवाल नहीं। हम मुसलमान हिंदू एक दिल से बर्ताव करते हैं। जनता का असली सवाल खाने-ओढ़ने का है। बंबई के लोगों को इस सवाल की तीव्रता मालूम नहीं है। मुझे आराम करने के लिये कहा गया। लोग भूखे हैं, दुखी हैं और मैं खुदाई खिदमतगार हूँ। मैं शांत कैसे रह सकता हूँ? कौमी फैसला (कम्यूनल अवार्ड) किसी जमात की भलाई के लिये नहीं है। वह साम्राज्य अबाधित रखने के लिये है। हिंदू-मुसलमानों को मातृभूमि की एकता के लिए उसका जवाब देना चाहिये, ऐसा करके ही हमने जो गँवाया है उसे फिर से प्राप्त कर सकेंगे। इस्लाम गुलामी के खिलाफ लड़ने के लिये कहता है। गुलाम बनकर मत रहो ऐसा कुरान में कहा गया है, यह आप खुद देख लें। वह कहने के लिये किसी मुल्ला-मौलवी की जरूरत क्यों? हमारे फ्रांटियर प्रांत में भी पहले एक-दूसरे के खिलाफ ऐसा ही अविश्वास था। लेकिन हम करीब आये तो आपसी विश्वास बढ़ा। हम खुदाई खिदमतगारों को आठ करोड़ मुसलमानों की भलाई के साथ-साथ सत्ताईस करोड़ हिंदुओं की भलाई भी देखनी है।'

१९३६ के अगस्त में बादशाह खान रिहा होते ही गांधी जी के पास वर्धा जाकर रहे। सीमा प्रांत में फिर से जाने की पाबंदी होने की वजह से ही उन्हें

वर्धा रहना स्वीकार करना पड़ा, यह सचाई है। लेकिन इसीलिये इन दोनों गांधियों को एक जगह रहने का मौका मिलता गया यह भी उतना ही सच है। पाप को भी खुद के विनाश के लिये पुण्य-बीजों की बोआई करनी पड़ती ही है। उसके बिना उसका अंत कैसे हो ? अन्यथा इन दोनों गांधियों को एक जगह लाने की प्रेरणा राज्य कर्ताओं को क्यों होती ? बादशाह खान एक जमाने के सशस्त्र प्रतिकार का पुरस्कार करने वाले थे और ओढ़ा हुआ अहिंसा का लिबास सच न हो, इस विचार से तो राज्य कर्ता उन्हें सीमाप्रांत के बाहर रखते रहे होंगे ऐसी एक शंका मन में उठती है। लेकिन गांधी या उनकी अहिंसा पाप को याने राज्य कर्ताओं के अन्याय को नष्ट करने के लिये ही है, यह भी उन्होंने पहचान लिया थ। लेकिन अहिंसा का प्रतिकार भी डाक्टर द्वारा की हुई शस्त्र क्रिया जैसा ही रहता है। वह मरीज को पथ्यकारक ही लगता है। कुछ भी हो, लेकिन बादशाह खान को सीमाप्रांत में आने देने के खिलाफ स्थानीय अधिकारी ही नहीं, स्वार्थी मुस्लिम नेता भी थे। इसलिये उनका मुकाम करीब एक साल तक वर्धा ही रहा और इस तरह गांधी जी के याने अहिंसा निष्ठा के साथ रह सके, घूम-फिर सके। उनकी अहिंसा निष्ठा गांधीजी के जीवन प्रयोगों के कारण दृढ़ होती गयी हो तो भी उन्होंने पठान प्रदेशों की परिस्थिति के कारण यह अस्त्र उपयुक्त सिद्ध होने के कारण आत्मसात किया था। सही ज्ञान प्रत्यक्ष कर्म से ही विकसित होता जाता है और इस दृष्टि से इन दोनों में आपसी परिचय होने के लिये दोनों मौका देखते थे। वह मौका इस मर्तबा भी सरकारी बुद्धिमानी के कारण मिला। बादशाह खान से मिलने-जुलने की इच्छा सब प्रांतों को थी। इसलिये इस वर्ष में उन्हें काफी सफर करना पड़ा।

वे वर्धा रहें या बंबई, दिल्ली, काशी, प्रयाग इस हिस्से में घूमते रहे, फिर भी उनका दिल सीमाप्रांत के उनके सहकारियों में और वहाँ की जनता के सुख-दुख में उलझा रहता था। खुद को मिलनेवाली कड़ी सजा के कारण या रिहाई के बाद भी प्रवेश पाबंदी का हुक्म जारी रहने के कारण पठान हैरान और आपे से बाहर रहे होंगे ऐसा डर उनको हमेशा रहता था। लेकिन जिन सारे जुल्मों को और उकसानेवाले वातावरण का मुकाबला पठान कार्यकर्ता बिल्कुल शांति से करते हैं, यह देखकर उन्हें काफी संतोष होता था।

बंबई से कांग्रेस की सभाएं पूरी करके वापस लौटते हुए उन्होंने श्री शार्दूल सिंह कवीश्वर आदि के साथ अपने प्रांत और कार्यकर्ताओं को संदेश

दिया। उसमें वे कहते हैं, 'फ्रांटियर के लोगों को सरकारी दमन से न डरना चाहिये न ऊबना जाना चाहिये। कांग्रेस के नेतृत्व को अब हमने स्वीकार किया है। इसलिये वह जो-जो आदेश दे उनका अनुसरण हमें करना चाहिये। फिलहाल चुनाव बहिष्कृत नहीं किये जा सकेंगे। 'पंजाब के कौमी दंगों की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा, 'पंजाब के इन बदकिस्मत दंगों के समय उन्हें सहायता करना मेरे वश के बाहर है, इसका खेद है। संभव होता तो मैं मध्यस्थता जरूर करता। खुदाई खिदमतगारों ने अपने मन जिस तरह साफ किये हैं उसी तरह पंजाब में रहनेवाले मुसलमान अगर करें तो वहां का सवाल भी जल्द ही हल हो सकेगा।'

सितंबर-अक्तूबर में वे कुछ दिन दिल्ली रहे। इसमें अपने प्रांत के कार्यकर्ताओं से मिलना भी उनका उद्देश्य था। वहां के मुकाम में जामिया-मिलिया विद्यापीठ के विद्यार्थियों से बात करते हुए उन्होंने कहा—"खुदाई खिदमतगार यह संस्था केवल शिक्षणात्मक स्वरूप की और सामाजिक सुधार के लिये थी। लेकिन सरकार ने ही अपने बर्ताव से हमें कांग्रेस का सहारा लेने के लिये बाध्य किया और अब वही सरकार, 'गांधी और कांग्रेस का त्याग करो, ताकि हम आपके कहे अनुसार करें' ऐसा कह रही है। लेकिन आफत में सहायता करनेवालों से हम कभी भी बेईमानी नहीं करेंगे। हमारे कुछ कांग्रेस मित्रों को हमारे बारे में शंका थी, लेकिन उन्हें हमने कह दिया कि पठान प्रत्यक्ष काम पर भरोसा रखता है, उन्हें केवल सरकार के खिलाफ प्रचार नहीं करना था, समाज सेवा और हिंदू मुस्लिम एकता भी लानी थी।"

इसी संदर्भ में प्रयाग में दिए एक व्याख्यान में उन्होंने कहा, 'आफत के समय जिस कांग्रेस ने हमारी सहायता की उस कांग्रेस को छोड़ने के लिये जो कहे वह कैसा धर्म और वह कैसी नीति? कौन सा धर्म साथियों को छोड़ने के लिये कहेगा? कांग्रेस को हिंदू कांग्रेस कहने से सावधान रहें। यह सवाल केवल कायदेमंडल की दस बीस स्थानों का नहीं, वह जनता की रोटी का सवाल है।'

प्रयाग नगरपालिका ने उन्हें मानपत्र दिया। उसके उत्तर में दिये भाषण में उन्होंने नगरपिताओं को ठीक ठीक बातें सुनाईं—'बहुतेरी नगरपालिकायें सुस्थिति में रहने वाले लोगों की असुविधाओं का ख्याल करती हैं। टैक्स देनेवालों की सेवा करनी चाहिये, यह सही होते हुए भी

पिता अपने सब बच्चों की फिकर करता है वैसा नगरपालिकाओं को बर्ताव करना चाहिये।' गांधी जी के साथ खुद की गयी तुलना उन्हें अच्छी नहीं लगती थी। इस देश को एक ही गांधी काफी हैं ऐसा भी वे कहते थे। प्रयाग के इस भाषण में उन्होंने कहा, 'दो गांधी पैदा मत करो, चीन में इस कारण गलतफहमी हुई, वैसा न हो।'

नवंबर में उन्होंने अहमदाबाद और गुजरात के कुछ देहातों का प्रवास किया। अहमदाबाद के मुकाम में उन्होंने मजदूर संस्थाओं की जानकारी ली। मजदूर और मालिक का संबंध भाईचारे के रखने के प्रयत्नों की उन्होंने सराहना की। सब जगह के प्रचार में कौमी एकता के बारे में उन्होंने अहमियत देकर चर्चा की। खानबंधु कांग्रेस छोड़ें इसके लिये सरकार ने कैसे और कितने प्रयास किये इसका भंडाफोड़ दोनों खान बंधुओं ने दिल्ली की चर्चा में किया।

'कांग्रेस छोड़ने पर सब खुदाई खिदमतगारों को जेल से रिहा करने के लिये सरकार तैयार थी' ऐसा उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा।

इस साल कुछ ही समय वर्धा रह सके। वे सेवाग्राम नहीं रह पाये लेकिन बीच बीच में रहते थे। विशेषतः खास चर्चा के लिये या मरीज के नाते। अक्तूबर महीने में उन्हें दाँत की तकलीफ रही उस समय खुद गांधी जी उनकी देखभाल करते थे। कभी कभी गांधी जी ही बादशाह खान का भोजन खुद तैयार करते थे।

बादशाह खान खुद को दूसरों का खिदमतगार मानते थे और सब की सेवा करने का प्रयास करते थे लेकिन उन्हें शारीरिक कमजोरी के समय दूसरों से सेवा लेनी पड़ती थी। खुद गांधी जी ही जब उनकी सेवा में व्यस्त रहते थे तब वह बादशाह खान की मन की हालत क्या होती रही होगी इसकी कल्पना तर्क से ही करनी होगी।

जेल से रिहा होने के बाद भी कभी कभी, जेल के अंदर तो नहीं ऐसा आभास हो, ऐसे प्रसंग वर्धा में आते थे। गांधी जी से परिचर्या करवा लेना उसका ही एक हिस्सा है। लेकिन जमनालाल जी तो दरअसल जेल जैसा बर्ताव करने वाले और करवाने वाले थे। सख्ती से आराम लेने के लिये और खानपान में वे किसी की चलने नहीं देते थे। उनके प्रेम के कारण उनका कहना न मानने की हिम्मत नहीं होती थी। वे किसी की

चलने ही नहीं देते थे। खुद गांधी जी को और विनोबा को वे जली कटी सुनाते थे। उनके प्रेम का ढाँचा ही ऐसा था।

इसे देखने पर यह अहिंसा का सही साक्षात्कार है ऐसा किसी को लगेगा। बादशाह खान अपने मित्र सहकारियों की भावना की कदर रखने के लिये गोश्त खाने से इंकार करते थे। एक मर्तबा डॉक्टर ने 'मांसरस' यही दवा उन्हें दी। बादशाह खान उसके लिये तैयार नहीं थे। मान्य सब धर्मबंधनों का निग्रह से पालन करनेवाले जमनालाल जी खुद मांसरस तैयार करके देने के लिये प्रस्तुत हुए लेकिन जैसा अपने यजमान ने कहा वैसा करना ठीक नहीं इसलिये बादशाह खान ही वह आहार लेने के लिये तैयार हुए। सही निष्ठा और सच्चा प्रेम हो तो सारे भेदभाव नष्ट होते हैं, इसका सुंदर दर्शन इसमें होता है।

इस एक साल के दौरान दोनों गांधियों ने एक दूसरे को आत्मसात् किया। हिंदू मुस्लिम ऐक्य की एक आदर्श मूर्ति के नाते बादशाह खान की श्रद्धा कितनी प्रबल है यह भी गांधी जी को प्रतीत हुआ। 'मुसलमानों के लिए अहिंसा नयी या अपरिचित नहीं। खुद महंमद साहब ने मक्का में अहिंसा की सीख दी थी। गांधी जी ने उन तत्वों की फिर से केवल याद दिलाई है।' ऐसा बादशाह खान कहते थे। १९३७ के चुनाव के बाद बादशाह खान पर से पाबंदी उठने तक उनका निवास वर्धा में ही रहा।

: १६ :

राजकीय सुधारों के साथ ही साथ फूट की बोआई १९३७–३९

१९३७ के अंत में छः साल का कारावास और वनवास पूरा होकर बादशाह खान का गृहप्रवेश और प्रांतप्रवेश होना था। सीमा पार किये गये अपने भाई को धूम धाम से घर लाने का गौरव डॉ० खानसाहब के मंत्रिमंडल को मिला। सिर्फ अपना मंत्रिमंडल मात्र होने से देश की समस्यायें हल नहीं होतीं। दृढ़ संकल्प के देशभक्त कायदेमंडल में हों और उनके हाथ में पूरी सत्ता हो तभी ऐसे कायदेमंडल उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं। अन्यथा मोतीलाल जी के कथनानुसार वे कठपुतली बन जाते हैं। उनपर सवार होकर लड़ाई नहीं जीती जा सकती। सही सत्ता का बोध न रखनेवाले कायदेमंडल अपने गले में फंदा बन जाते हैं। इसलिए उनका बहिष्कार करने की सलाह गांधी जी दिया करते थे। बादशाह खान तो इस तरह धोखा देनेवाली सत्ता से परे रहने की मनोवृत्ति के थे और उसका प्रत्यंतर सीमाप्रांत के कायदेमंडल ने पूरी तरह ला दिया।

फ्रांटियर प्रांत को १९३२ में नये कायदेमंडल का लाभ हुआ और सर अब्दुल कय्युम जैसे दिलदार और समझदार पठान मुख्य मंत्री हुये। लेकिन सिर्फ मुसलमानों के मतों से ही नहीं, हिंदू आमदारों के सहारे बादशाह खान और खुदाई खिदमतगारों पर से पाबंदी न हटाई जाय जैसे प्रस्ताव पारित हुए। अच्छे नेता विधिमंडल में न भेजने से यह आपत्ति आयी हो ऐसा नहीं। उस समय गवर्नर अनियंत्रित अधिकारों का इस्तेमाल कर सकता था। बादशाह खान को इस विधिमंडल का आकर्षण कभी भी नहीं रहा। बाहर समाज की ताकत बढ़ी हुई हो तभी कायदेमंडल के घोड़े काबू में रख सकते हैं, अन्यथा हम केवल सवार होते हैं और लगाम दूसरे के हाथ होती है ऐसा वे मानते थे।

डॉ० खान साहब का स्वभाव और लियाकत इन दोनों ही दृष्टि से वे इस काम के लिए योग्य थे और उन्हें मध्यवर्ती असेंब्ली में जाने के लिए बादशाह खान ने सलाह सहायता भी दी थी। वहाँ रहते हुये भी कुछ सवाल पूछकर सरकार को दिक्कतों में डालने के सिवा अन्य कोई भी दबाव कांग्रेस पक्ष ला सकने की स्थिति में नहीं था।

बादशाह खान पर से पाबंदियाँ उठाना तो बहुत दूर रहा, सीमाप्रांत के दूसरी ओर आजाद पठान मुल्क पर बम डालकर धौंस जमाना शुरू हुआ और 'यह रास्ता कम खर्च का था' ऐसा बेशरमी से घोषित किया गया और उसकी जो ताईद इस सरकार ने किया उस पर रोक नहीं लगा सके।

नये चुनाव के समय और मंत्रिमंडल की नियुक्ति के समय बादशाह खान कुछ समय तक दिल्ली आकर रहे। उनके बहुतेरे कार्यकर्ता इस विधिमंडल के काम की ओर तुच्छता से देखा करते थे। वैसा न हो और कांग्रेस के निश्चित किये कार्यक्रम में अपना प्रांत पिछड़ न जाय इसलिये वे खुदाई खिद-मतगारों को वहाँ रह कर सलाह देते थे। इस कारण कार्यकर्ताओं में मतभेद और संघर्ष टाला जा सका।

थोड़े ही दिनों में बादशाह खान पर से पाबंदी हटा ली गयी और वे अपने प्रांत में प्रविष्ट हुये। उनके आगमन से सीमाप्रांत में फिर से अभूतपूर्व उत्साह का निर्माण हुआ। अगस्त के आखिर में वे अपने प्रांत के अटक आये। अटक से पेशावर तक पचास मील प्रदेश में गाँव गाँव रास्ते पर लतापल्लवों की कमानें खडी की गई थीं। सब रास्ते मनुष्य और फूल से आच्छादित थे। पेशावर में हुआ स्वागत चिरस्मरणीय स्वरूप का रहा और उनपर लगातार फूल बरसाये जाते थे। करीब एक लाख लोगों ने जुलूस में हिस्सा लिया था। उनमें घुड़सवार, ऊँटसवार, सायकलसवार, मोटरों की लम्बी कतारें थीं। प्रांत में आनेपर बादशाह खान ने जरा भी आराम न किया। तुरंत देहातों में दौरे शुरू किये। देश में बढ़ते हुये जातिद्वेष, धर्मद्वेष की भावनाओं पर तुरंत रोक लगनी चाहिये ऐसा जोरदार प्रचार उन्होंने शुरू किया। उसका उपयुक्त प्रभाव हुआ। बन्नू, डेरा इस्माइलखान आदि गाँवों के जो हिंदू मकान छोड़कर चले गए थे वे फिर घर वापस आने लगे। खुद बादशाह खान ने उस हिस्से में घूम फिर कर हिंदुओं को आश्वस्त किया। इतना ही नहीं, जिस स्थान के हिंदू वापस आने में डरते थे उन स्थानों के मुसलमान प्रमुखों के शिष्टमंडल अन्य प्रांत में गये हिंदुओं के पास भेजे गये। शिष्टमंडल हिंदुओं को यकीन

दिलाकर उन्हें अपने साथ लाया। इस तरह की अपूर्व सफलता ऐसे स्थानों में प्राप्त हुई जहाँ कौमी दंगे हुये थे।

उनके आने के बाद कायदेमंडल के काम में भी तेजी आती गई और अन्य पक्षों के आमदार कांग्रेस गुट में शामिल हुये। इस तरह सर अब्दुल कय्यूम के मंत्रिमंडल को हराकर डॉ० खान साहब का मंत्रिमंडल सितंबर महीने में अधिकार प्राप्त कर सका। इस डॉ० खान मंत्रिमंडल में काजी अता-उल्लाह खान, लाला मंजूराम गांधी, अब्बास खान आदि नेता थे। मंत्रि-मंडल की रचना के संबंध में और नीति के संबंध में एक जगह बात करते हुए बादशाह खान ने कहा, 'देश की परिस्थिति और जनता की गरीबी मद्दे नजर रखते हुए बिल्कुल सादगी और संन्यस्त वृत्ति से विचार करने वाला मंत्रिमंडल रहे। उनकी आँखों के सामने हमेशा जनता की भलाई रहनी चाहिये।'

छः साल की लंबी मुद्दत के बाद अपने परिवार में और कार्यकर्ताओं में वे वापस आये थे लेकिन अपने कुटुंबियों के साथ रहने की उन्हें फुरसत कहाँ थी? उन पर जिसका बेहद प्रेम था उनकी उस पचासी साल की माता का देहांत हो चुका था। उनके बच्चे इधर उधर शिक्षा के लिये अन्य प्रांतों में और विदेश में थे। डा० खानसाहब की बदौलत बादशाह खान का डेरा उतमंजई की एवज में पेशावर ही रहा लेकिन उनका बहुत सा समय देहातों में घूमने में जाता था। मंत्रिमंडल की रचना के समय मौलाना अबुल कलाम आजाद, भूलाभाई देसाई, पार्लमेंटरी बोर्ड के प्रमुख के नाते पेशावर आये थे। उसी तरह मंत्रिमंडल बनने के बाद पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी पेशावर, मर्दान, कोहाट, डेरा इस्माइल खान आदि जिलों का दौरा किया। पंडित जी और बादशाह खान इन दोनों के प्रचार के कारण सीमा प्रांत का सियासी वातावरण बिल्कुल बदल गया। डा० खान साहब के मिलनसार और सेवा-शील स्वभाव के कारण मंत्रिमंडल का काम भी अच्छा चल रहा था। इस कारण प्रतिगामी वृत्ति के नौकरशाहों की स्वाभाविक ही चिंता बढ़ने लगी। सीमा प्रांत के उस समय गवर्नर सर जार्ज कनिंगहम, डा० खान साहब के मित्र थे। डा० खान साहब की आस्ट्रेलियन पत्नी श्रीमती मेरी खान और गवर्नर की पत्नी से विशेष दोस्ती थी। लेकिन इस मित्रता का लाभ जनता को मिलने के एवज में कनिंगहम उसका उपयोग भिन्न-भिन्न तरह से कर रहे हैं, ऐसा कुछ कार्यकर्ताओं को लगता था। इसलिये मंत्रिमंडल में झगड़े के बीज

भी बोये गये। दूसरे विश्वयुद्ध की शुरूआत के कारण मंत्रिमंडल दो साल में ही खारिज हुआ। यह ठीक ही हुआ, ऐसा कहने की नौबत कुछ कार्यकर्ताओं पर आयी। यह सब खेल बादशाह खान देख रहे थे। उनका सारा ध्यान भावी आंदोलन के स्वरूप और उसके लिये आवश्यक तैयारी की ओर था। "शांति के समय जो अधिक परिश्रम करता है उसे लड़ाई में कम खून बहाना पड़ता है" यह चीनी कहावत बादशाह खान कार्यकर्ताओं के सामने अपने आचरण से रखा करते थे।

१६३५ के कानून के अनुसार होने वाले चुनाव १६३७ के प्रारंभ में हुए, उसके पहले का साल कौमी निर्णयों से संबंधित झगड़े बखड़े में ही बीत गया। खुद कांग्रेसी नेताओं में इस संबंध में दो गुट हो गए। मालवीय, अणे आदि लोग थोड़े निडर बने थे। मुस्लिम लीग में जमीयत उल उलेमा, अहरार पार्टी आदि भेद बढ़े। इसके अलावा बंगाल, सिंध, पंजाब के मुस्लिम दल लीग से बिल्कुल मेल नहीं खाते थे। मद्रास के रा० ब० एम० शिवराजा और बंबई के डा० आंबेडकर आदि ने हरिजनों का अलग मोर्चा खड़ा किया। फेडरेशन नाकामयाब हो जाने की वजह से संस्थानों के राजा मनचाही करने के लिये आजाद हुए। इस तरह जब देश नये राजकीय सुधारों की ओर पदार्पण कर रहा था तब देश में फूट बढ़ रही थी और हिंदू मुसलमानों के मतभेद, केवल मतभेद तक सीमित न रहते हुए लड़ाई झगड़े तक आ पहुँचे थे। व्यक्तिगत करतूत के लिये सत्तालोभ का आकर्षण भी रहता है। इसके अनुसार कई नौजवान नेता सत्ता हथियाने के आकर्षण से चुनाव की राजनीति में उतर पड़े थे। वायव्य सीमाप्रांत के चुनाव के समय सरदार अब्दुर रब निश्तर, पीर सय्यद लालशाह आदि जेल की हवा खाकर आए हुए लोग मुस्लिम नेशनलिस्ट दल में शामिल हो चुके थे। चुनाव के पहले इन मतभेदों का पर्यवसान देश में जगह जगह दंगों में हुआ था। इसलिये बादशाह खान ने इस दौरान हिंदू मुस्लिम एकता का प्रचार करने में समय बिताया।

१६३७ के मई में बंबई के राष्ट्रीय मुस्लिम कार्यकर्ताओं से इस संबंध में उन्होंने विस्तार से चर्चा की थी। उन्होने कहा, "मुसलमान अल्पसंख्यक हों, फिर भी बलशाली हैं। वे किस लिये डरें? हिंदू मुसलमानों का यह सवाल आपसी अविश्वास के कारण ही पैदा होता है। वह कैसे दूर किया जा सकता है, यह खुदाई खिदमतगारों ने कर दिखाया है। आपस में एक दूसरे

के पास आकर सच्चा सहयोग करना चाहिये। इसमें से ही एकता पैदा होगी। आजादी की लड़ाई में उचित हाथ बटाया तभी मुसलमान सम्मान का स्थान प्राप्त कर सकेंगे। इस तरह अपना कर्त्तव्य निभाया इसका भी समाधान मिलेगा। साम्राज्य सत्ता से टक्कर लेने के लिये खुदाई खिदमतगार खड़े हुए उसके साथ साथ आज वे भारत में आदरणीय बने हैं। इससे मुसलमानों के योग्य सबक लेना चाहिये। जुलाई महीने में दियापुर (संयुक्त प्रांत) के एक भाषण में उन्होंने कहा, "अल्प संख्यों का सवाल कहाँ नहीं है ? वह अन्य देशों में भी है। लेकिन इस तरह खून खचर कहीं भी नहीं हुआ। इस देश में हमने सब जगह जातियों के अनुसार टुकड़े कर डाले हैं, स्टेशन पर, "हिंदू पानी", "मुस्लिम पानी" इस तरह पानी की अलग अलग जाति बना डाली है। हमारे सीमाप्रांत में ये भेद मिटाने में हमने काफी सफलता पायी है। लेकिन वहाँ भी सच झूठ अफवाहें फैलती जाती हैं और उस कारण यहाँ दंगे होते हैं। सीमा प्रांत में हिंदू लड़कियाँ भगायी जाती हैं ऐसा झूठा प्रचार इधर किया जाता है और इसलिये पठानों को उधर बदनाम किया जाता है। लेकिन भगाई हुई लड़कियों में हिंदू लड़कियों के साथ साथ मुसलमान लड़कियाँ भी रहती हैं यह सत्य इधर कभी भी नहीं कहा जाता। इप्पी के फकीर के संबंध में इधर काफी शरारती प्रचार राज्यकर्ताओं ने किया है लेकिन उन्हें सही माने में अपना मुल्क अंग्रेजों के शिकंजे से बचाना था। इसलिये वे सीमाप्रांत पर हमले करते थे। वे फकीर नहीं थे। वे बड़े अमीर और श्रीमान थे। वे एक मजहबी पागल हैं, इस रूप में राज्यकर्ताओं ने उन्हें इधर मशहूर किया लेकिन इन फकीरों के लिए यह बदनामी रोकना जरूरी लगा और इसलिये उन्होंने एक बड़ा 'जिरगा' बुलाया। इसमें उन्होंने हिंदू नेताओं को भी बुलाया। उन सबके सामने उन्होंने सब वाकया सुनाया। इस जिरगे में खुद इप्पी के फकीर ने लड़कियाँ भगाना, लूटमार करना, आगजनी करना आदि बातों का तीव्र निषेध किया। लेकिन इस निषेध और जिरगे की खबर राज्यकर्ताओं ने कहीं भी बाहर जाने नहीं दी।"

ये कौमी फिसाद चुनाव के समय ही कैसे और क्यों होते हैं ? अल्पसंख्यों को हिंदू राज्य का डर बताकर सियासी आंदोलन से अलग निकाला जाता है, ऐसा प्रचार बादशाह खान ने हिंदुस्तान में ऊपर कहे अनुसार जगह जगह किया। उन्हें सीमाप्रांत के बाहर क्यों रखा जाता था इससे इसका ख्याल आसानी से हो सकेगा। सीमाप्रांत में प्रवेश करते ही उन्होंने वहाँ फिर से

गाँव गाँव में प्रचार करके जनता में जागृति पैदा की और उसके साथ साथ हिंदू मुसलमान द्वेष के बादल तितर बितर होने लगे। १९३७ में डॉ० खान मंत्रिमंडल की स्थापना होने पर भी मंत्रिमंडल के किसी काम में वे जकड़े नहीं रहे। उल्टे 'ये मंत्रिमंडल अधिक टिकनेवाले नहीं हैं। गरीबों की रोटी का सवाल वे हल नहीं कर सकते हैं। इसमें से ही अविश्वास और झगड़े पैदा किये जायेंगे।' आदि सलाह वे मंत्रियों को देते रहे। 'जनता का आंतरिक संगठन और उनकी राजकीय शिक्षा पर ही सच्ची आजादी निर्भर है।' यह उनका पहला सिद्धांत था। 'सच्ची आजादी मिलने तक हमें जागृत और कार्यनिष्ठ रहना चाहिये' ऐसा वे कहते थे। इस तरह वे लगातार घूमते हुये प्रचार कार्य में व्यस्त रहे। मंत्रिमंडल आया और गया फिर भी उनकी रहनसहन, उनकी पदयात्रा और कार्यकर्ताओं में घुलमिल कर रहने की उनकी नीति में जरा भी फर्क नहीं आया।

सीमाप्रांत में होनेवाली आदमियों को भगाने की वारदातें राजकीय आक्रमण का ही प्रकार थीं। ब्रिटिश सेना ने आजाद टोलीवालों के मुल्क पर हमले किये तो उसके प्रतिकार में टोलीवाले पठान सीमा प्रांत स्थित फौजी केंद्र पर हमले करते थे। धर्मभावना से हिंदू जमातों पर भी हमले होते थे लेकिन वे इनेगिने ही रहते थे, ब्रिटिशों द्वारा किये गए हमलों का जवाब देने के लिए ही वे अधिक सन्नद्ध रहते थे। मुख्यतः भगाये गए लोगों में केवल हिंदू लड़कियाँ भगाई जाती हैं यह प्रचार पूर्णतया शरारत भरा ही रहता था। उनमें मुसलमान भी होते थे यह आगे दिए गए आँकड़ों से साफ दिखाई देता है। (१९३६ से १९४१ में कुल हत्यायें, जखमी और भगाने के अपराध :—

	हिंदू	मुस्लिम	कुल
हत्यायें	४९	७३	१२२
जखमी	२३	३७	६०
भगाना	१२७	१२९	२५६

ऊपर दिए गए आँकड़ों से हिंदुओं की अपेक्षा मुस्लिम अधिक भगाये गये, और उनकी अधिक हत्या हुई थी यह स्पष्ट होता है। यह जानकारी सरकारी रिकार्डों से दी गयी है (फ्रांटियर स्पीक्स्—पृष्ठ ६८)। केवल पठानों की गरीबी के कारण यह डाकेजनी होती थी यह कहना भी गलत है, ऐसा श्री महमूद युनूस मानते हैं। मुसलमान आबादी ९३ फीसदी और

हिंदू और अन्य ७ फीसदी होते हुए भी दोनों जमातों के मृतकों का औसत करीब करीब एक सा है। इसके विपरीत ७ फीसदी हिंदुओं के पास ८० फीसदी धन कांट्रेक्ट आदि के रूप में जाता है, यह भी ध्यान में रखना होगा।

डॉ० खान साहब का मंत्रिमंडल सत्ताधिष्ठित होने के पहले सीमाप्रांत में सर अब्दुल कय्युम का मंत्रिमंडल अधिकारारूढ़ हुआ था। कायदेमंडल के अल्पसंख्यक दल का एक मंत्रिमंडल बनाने में विभिन्न दलों के सदस्यों में कितनी फूट डालनी पड़ती है, उसके लिये अच्छे बुरे दाँवपेंच भी करने पड़ते हैं, इसका अनुभव अब गाँव गाँव पहुँच गया है। एकाध नगरपालिका का अध्यक्षपद या ग्रामपंचायत का प्रमुख पद हथियाना हो तो वहाँ के बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दलों के नेताओं को क्या चालबाजी करनी पड़ती हैं इसका अनुभव सबको है।

लोकशाहीनिष्ठ दल में तत्वनिष्ठ लोग हों तभी दल ठीक तरह से काम करते हैं, वैसा न हो तो वे दल सब तरह से लोकशाही तत्वों और भावनाओं को हानि पहुँचाते हैं, इस कारण ऐसी लोकशाही संस्थाओं का विनाश भी होता है। इसलिये संस्था चलाने के लिए योग्य तत्वनिष्ठ मनोवृत्ति पैदा करनी जरूरी है। जमीन तैयार किये बगैर बोआई करना जितना हानिकारक है, उतना ही लोकशाही निष्ठा पैदा किये बगैर इन संस्थाओं का इस्तेमाल करना खतरनाक है। ये दोनों प्रयोग एक साथ चलने चाहिए। बादशाह खान ने यही किया। इसीलिए महान तत्वनिष्ठ नेताओं में से वे एक सिद्ध हुए हैं।

कयूम खान मंत्रिमंडल पर अविश्वास व्यक्त करते समय कांग्रेस दल को बहुमत मिला। इसके लिये अधिक सदस्यों की जरूरत थी और वह बहुमत हिंदू, सिख, नैशनलिस्ट दल के कुछ लोगों के मिलने से हो सका। लेकिन बहुमत सिर्फ चार मत से था। "दल बदलनेवाले इन लोगों की जाँच अत्यंत कड़ाई से हो और मंत्रिमंडल की जिम्मेदारी स्वीकार करते समय हम अपनी जिम्मेदारी किस हद तक निभा सकेंगे इसका विचार पहले होना चाहिये।" ऐसा बादशाह खान बार बार जताते थे।

इस मंत्रिमंडल के समय ही सीमा प्रांत में पहले पहल मुस्लिम लीग का प्रवेश हुआ, वह भी अधिकृत संघटन के तौर पर नहीं। इस मुस्लिम लीग में बहुतेरे सेवानिवृत्त सरकारी अधिकारी और बड़े जमींदार थे। हिंदू सिख नेशनलिस्ट दल में भी ऐसे ही जमींदारों और साहूकारों की भरमार थी। खानसाह

दल भी वहाँ शुरू हुआ था, लेकिन उसमें विशेष ताकत नहीं थी। कांग्रेस दल के सत्तारूढ़ होते ही इन विरोधी दलों में अपने दल छोड़ने के कारनामे शुरू हुये। इसलिये उन दलों में जहाँ फूट पैदा हुई वहीं कांग्रेस दल में भी नाराजगी पैदा हुई। कार्यकर्ताओं के स्वार्थ के कारण यह सब होता रहता है इससे जनहित का कोई संबंध नहीं रहता है। कांग्रेस विरोधी दलों की फूट के अनुसार ही कांग्रेस दल में हुई फूट देशहित के लिये उतनी ही हानिकारक सिद्ध हुई। कांग्रेस सिर्फ एक विचार की प्रणाली का दल नहीं था। आंदोलन के लिये पैदा हुई वह सर्वसंग्राहक संस्था थी। अधिकार का हिस्सा जिन्हें नहीं मिलता वैसे लोग एक दूसरे के विरोधी और कभी कभी दुश्मन भी बनते हैं। वही सीमाप्रांत में हुआ।

डा० खान साहब के उत्साही और लोकसेवाशील नेतृत्व के कारण मंत्रिमंडल द्वारा बहुत से उपयोगी कार्य हुए। उन्होंने शुरू में आननरी मजिस्ट्रेट का ओहदा खारिज किया। जबर्दस्ती बेगार लेकर अमल में आयी हुई चौकीदारी पद्धति खत्म की, खेती के कानून काश्तकारों के हित की दृष्टि से दुरुस्त किये, शिक्षा का विस्तार गाँव गाँव में किया। ऐसे अनेक लोकहित के काम किये। लेकिन अपने ही दल में असंतुष्टों की संख्या बढ़ी तो किये हुये काम का श्रेय मिलने की ऐवज में न किये हुये काम के बारे में नुक्ताचीनी सुननी पड़ती है, इसका अनुभव सर्वत्र होता है।

हिंदुस्तान में सभी कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा राज्यों में तेजी से आर्थिक सुधार अमल में लाने के बारे में तकाजा शुरू हुआ था। उसके पीछे जनता के कल्याण के बावजूद छोटे बड़े नेताओं के असंतुष्टि के प्रस्तर छिपे हुए थे। हिंदुस्तान में उस वक्त समाजवादी दल की स्थापना हो चुकी थी! इस समाजवादी मतप्रणाली से जवाहरलाल, सुभाष बाबू, सरदार पटेल और गांधी जी का मनमुटाव कैसे कैसे हुआ उसका इतिहास सब जानते हैं। जगह जगह प्रांतिक मंत्रिमंडलों के सामने किसान मजदूरों के आतंक के पर्वतप्राय ढेर लगते थे और सुलझाने की ताकत मंत्रियों में नहीं थी। राज्य संघटन से निहित अधिकार बहुत मर्यादित थे और दल की आज्ञा का पालन करनेवाली नौकरशाही गोरे लोगों और उनके प्रभावाधीन कार्यकर्ताओं से भरी हुई थी। इस कारण मंत्रियों के उचित निर्णय भी, समय पर या पूरी तरह से अमल में नहीं आते थे। इस कारण कांग्रेस के असंतुष्ट कार्यकर्ताओं के लिए मंत्रियों पर हमले करना आसान होता था। इस अंदरूनी फूट के कारण कांग्रेस की ताकत बढ़ने के बजाय कम होने लगी थी।

गल्लाढेर (जिला हजारा) के काश्तकारों का आंदोलन एक नमूने की मिसाल है। डा० खान मंत्रिमंडल पर ऐसी कई आफतें आई थीं। लेकिन उनसे वे निपट चुके थे। पर गल्लाढेर के काश्तकारों के आंदोलन को समाजवादी कार्यक्रम का ग्रामिक स्वरूप दिया गया। कांग्रेस के कुछ कार्यकर्ता मंत्रिमंडल के खिलाफ कदम उठाने के लिये तैयार हुये। उसका लाभ विरोधी दलों ने लिया। "डा० खान मंत्रिमंडल एक अत्यंत प्रतिगामी मंत्रिमंडल है। पुराने ब्रिटिश राजशासन को भी शरमानेवाला पुलिस राज्य शुरू हुआ है। महिला और बच्चों पर पुलिस लाठी चला रही है।" आदि प्रचार देशभर में किया गया। उस समय बादशाह खान जैसा सब का विश्वासभाजन नेता मंत्रिमंडल की परिस्थिति समझ लेने के लिये प्राप्त न होता तो खान मंत्रिमंडल के टुकड़े कभी के हो गये होते। खुद बादशाह खान को इस घटना ने काफी व्यथित किया था। इतना ही नहीं, इस तरह के सत्ता प्राप्त करने के कार्यक्रम से जनता की ताकत बढ़ने की बजाय, कम ही होगी, इस नतीजे पर वे आये थे। उनके स्वभाव की विशेषता और तत्वनिष्ठा का अनुभव यहाँ आता है।

गल्लाढेर तुरा के नवाब का गाँव है। वहाँ के काश्तकारों पर नवाब साहब ने कई तरह के जुल्म ढाये थे, यह भी सही था। लेकिन यह दाव मुस्लिम लीग का समर्थन करनेवाले और सरकारी अधिकारी ही खेल रहे थे और तुरा के नवाब के सारे पुराने पिछलग्गू अब कांग्रेस मंत्रिमंडल के खिलाफ चिल्लाहट करने लगे। कांग्रेस मंत्रिमंडल सत्ता में आने के पहले ही महसूलदारों की बाकी वसूल करने के लिये जप्ती वारंट निकाले गये थे और उस जप्ती हुकुम पर अमल करने के लिये होशियार अधिकारियों ने यही मौका पसंद किया था। इस समय कुछ कांग्रेस कार्यकर्ताओं में समाजवादी तत्वनिष्ठा उभड़ आयी थी। समाजवादी नेताओं ने हजारों 'काश्तकारों द्वारा सत्याग्रह करवाने की घोषणा की'। 'अदालत से निकले हुए हुक्म (डिक्री) ताक पर रखे गये तो देश में अराजकता पैदा होगी और वैसा तो होना ही नहीं चाहिये।' ऐसी सलाह नौकरशाही डॉ० खान साहब को देती थी, पुलिस अधिकारी सशस्त्र पुलिस टुकड़ियों को लेकर गल्लाढेर के किसानों के मकान उध्वस्त करने का काम करते रहे। ऐसे त्रिदोष से डॉ० खान मंत्रिमंडल मरणासन्न हो गया था। गल्लाढेर के पुलिस अत्याचारों की खबरें न केवल सीमा प्रांत में बल्कि, लाहौर, लखनऊ, कलकत्ता के अखबारों में शाया होती रही। इन सब वारदातों के कारण बादशाह खान

हैरान हुए। 'हमारे अंतर्गत झगड़े इतने बढ़ गये हैं कि उस कारण मेरा सर चकरा जाता है और इस मानसिक बोझ से महीनों महीनों मेरे अंतःकरण को स्वस्थता नहीं मिलती है।' इस आशय के उद्‌गार उन्होंने निकाले।

गल्लादेर के किसानों पर हुए पुलिस अत्याचारों का निरीक्षण खुद करूँ इस विचार से बादशाह खान ऊपर गये। उन्होंने किये हुए निरीक्षण से मंत्रिमंडल के खिलाफ किये हुए आरोप सही हैं ऐसा देखने में आया, इसलिये वे अधिक दुखी हुए। यह वस्तुस्थिति बादशाह खान ने डॉ० खान साहब के सामने रखी। उस पर डॉ० खान साहब खुद गल्लादेर की तरफ गये और वहाँ की परिस्थिति देखी। पुलिस द्वारा वहाँ किये हुए अत्याचार ज्यादातर सही हैं ऐसा उन्हें भी महसूस हुआ। अपने सीधे स्वभाव के अनुसार डॉ० खान साहब ने पुलिस अत्याचार कबूल किया। इस तरह जो गलती हुई है इसे दुरुस्त करने का आश्वासन भी उन्होंने किसानों को दिया। लेकिन मुख्य मंत्री होते हुए भी वे वैसी गलतियाँ सुधार नहीं सके। सत्ता कांग्रेस मंत्रिमंडल की थी फिर भी कारोबार पुरानी नौकरशाहों की पकड़ में था और इन नौकरशाही के नियंत्रक और संचालक गवर्नर कनिंगहॅम ही थे, कनिंगहम पर डॉ० खान साहब का इतना भरोसा था कि उनके कहने के विरोध में अपने प्रमुख सहकारियों का कहना भी सुनने के लिये वे तैयार नहीं रहते थे। इसलिये इस कांग्रेस मंत्रिमंडल में ही परस्पर अविश्वास के बीज बोये गये। कनिंगहम, डॉ० खान साहब के विश्वास का पूरा फायदा उठाते रहे। सौभाग्य से दो साल के अंदर ही दूसरे विश्वयुद्ध के समय कांग्रेस मंत्रिमंडल को इस्तीफा देने का आदेश हुआ। इसलिये आंतरिक झगड़े की जड़ स्वतः ही नष्ट हो गई। उस वक्त 'सत्ता त्याग एक बड़ी भारी कल्याणकारी घटना सिद्ध हुई।' ऐसा संसदीय कार्यक्रमों पर निष्ठा रखने वाले मुहम्मद यूनुस को भी कहना पड़ा। मंत्रिमंडल के कारोबार के जरिये ठोस शक्ति पैदा होगी, इस पर बादशाह खान को जरा भी विश्वास नहीं था। उनका भरोसा खुदाई खिदमतगारों के संघटन के विधायक कार्यक्रमों पर ही था, लेकिन अखिल भारतीय कांग्रेस संगठन से जुड़ जाने के कारण उन्हें यह कायदेमंडल का कार्यक्रम स्वीकार करना पड़ा।



: १७ :

स्वाती को साबरमती का तोहफा

वायव्य सीमाप्रांत में पठानों ने अहिंसा के अनुकरण में अग्रिम स्थान प्राप्त किया था। संसार की दृष्टि से यह चमत्कार ही था, लेकिन हिंदुस्तान के अन्य प्रदेशों में भी पठानों जितनी उत्कट और क्रियाशील निष्ठा कहीं भी नजर नहीं आयी थी। खुद गाँधी को पठानों की इस अहिंसा निष्ठा का अर्थ समझ में आया था और हो सकता है कि पठान अहिंसा के सच्चे पुजारी बन सकते हैं यह आशा भी बंधी थी। बंबई कांग्रेस अधिवेशन के पहले (१९३४) उन्होंने अपने निकाले हुए पत्रक में यह विश्वास व्यक्त किया है। बादशाह खान कुछ समय वर्धा रहे थे तब सीमाप्रांत के कुछ कार्यकर्ता भी गांधी जी के निकट रहे थे। इन सब घटनाओं के कारण बादशाह खान के बगीचे में बढ़ने वाला अहिंसा का पौधा प्रत्यक्ष जाकर देखने की उत्कंठा गांधी जी को होना स्वाभाविक ही था। लेकिन सरकार ने उनकी यह इच्छा कभी भी पूरी नहीं होने दी। १९३७ के अंत में डॉ० खान साहब के मंत्रिमंडल बनाने के बाद यह मौका मिला और गांधी जी को अपने प्यारे उत्मानजई गाँव ले जाने का बादशाह खान का स्वप्न साकार हुआ। गांधी जी की सेहत उस वक्त ठीक नहीं थी, ऐसी हालत में इतने दूर की सफर पर वे न जाँय, यह सबका आग्रह रहा। फिर भी दोनों गांधियों ने यह निर्णय विचारपूर्वक किया था। सितंबर १९३८ के अंत में वे वर्धा से निकले। दिल्ली में कॉंग्रेस कार्यकारिणी की बैठक के लिए उन्हें कुछ दिन रुकना पड़ा। यूरोप में विश्वयुद्ध के बादल संघर्ष की सीमा तक आ पहुँचे थे इस कारण कार्यकारिणी की बैठक में जागतिक परिस्थिति पर निरंतर चर्चा चल रही थी। अक्तूबर के पहले सप्ताह में वे पेशावर पहुँचे। गांधी जी की यह सालगिरह सफ़र में हुई। दिनांक ५ से ९ अक्तूबर, ये दिन उन्होंने खुदाई खिदमतगारों के साथ बिताये। मुख्य मंत्री डॉ० खान साहब और बादशाह खान ये दोनों गांधी जी के सारे कार्य-

क्रम निश्चित ढंग से पूरा करने के लिए अत्यंत दक्षता से प्रयास करते थे। मुख्यतः गांधी जी को पूरा आराम मिले, उन्हें जब जरूरत हो तब खुदाई खिदमतगारों से बातचीत कर सकें, पूरा कार्यक्रम इस प्रकार तय किया गया था। उसमें कहीं भी आम कार्यक्रम में हिस्सा लिए बगैर गांधी जी का पेशावर का मुकाम पूरा हुआ। इस मुकाम में उन्होंने प्रमुख खुदाई खिदमतगारों के सामने अपने दिल की बात रखी और खुद की अपेक्षायें भी बता दीं।

"अहिंसा पर सच्ची श्रद्धा रखनेवाले मुट्ठी भर लोग भी चारों ओर से संसार का ढाँचा बदल सकते हैं। आप लोग एक लाख हैं। काँग्रेस के पास सारे देश में इतने स्वयंसेवक नहीं हैं। आपकी श्रद्धा सच्ची होगी तो सारे भारत का चित्र आप बदल सकते हैं। आजाद मुल्क के टोलीवालों का पेचीदा मसला अंग्रेज सौ साल में हल नहीं कर पाये, वह प्रश्न आप जैसे कार्यकर्ता हल कर सकेंगे। इसके लिए आपकी अहिंसा पर पक्की श्रद्धा होना जरूरी है।" गांधी जी के आगमन से सारे पेशावर शहर का वातावरण उत्साह से भर गया था। खुदाई खिदमतगारों को तो वह सुनहरा दिन लगता था। बादशाह खान संतुष्ट और खुशमिजाजी से गांधी जी के स्वास्थ्य के चौकीदार थे, इस नाते उनके कार्यक्रमों पर नजर रखने का काम करते थे। खुदाई खिदमतगारों ने, उनकी अहिंसा की श्रद्धा ढीलीढाली नहीं है, यह गांधी जी को जताने का प्रयत्न किया। "खुद बादशाह खान ने कल अहिंसा छोड़ी तो भी हम नहीं छोड़ेंगे" उन्होंने कहा।

"मैं एक होता तो" दुनिया में मशहूर यह लेख गांधी जी ने पेशावर के मुकाम में ही लिखा था। पेशावर से गांधी जी बादशाह खान के उत्मानजई गाँव पहुँचे। उनकी यह भेंट, याने साबरमती और स्वाती, इन दो पुण्य गंगाओं का संगम था। वह शाश्वत प्रीति संगम हो वैसी परमात्मा की इच्छा नहीं थी। बाद में साबरमती लुप्त होनेवाली थी। बादशाह खान को अपने प्रांत का, वहाँ की आबोहवा का, अपनी नदी का, अपने ग्रामवासियों का, अपनी सब बातों का गरूर था। इस गरूर में घमंड नहीं था, दूसरों के प्रति घृणा नहीं। उसमें सिर्फ उत्कट आत्मीयता होती थी। अपने फल फूल की, अपनी जाति का वर्णन करते समय वे गंभीरता से जानकारी देते थे।

गांधी जी अपने सारे परिवार समेत स्वाती नदी पार करके गाँव में प्रवेश कर रहे थे, तब बादशाह खान आसपास फसल आदि चीजों का मनमोहक वर्णन करते थे तो इधर गांधी जी उनके हाथ के सहारे खुद को संभालते

संभालते कुछ हैरान हो जाते थे। जाँघ तक अपने कपड़े ऊपर उठाए हुए गांधी जी के चेहरे की ओर देखते समय बादशाह खान के दिल में उमड़ने वाली भावनाओं का वर्णन करने के लिए प्रतिभाशाली कवि हृदय होना जरूरी है। अपने गरीबखाने की राह की ओर उठनेवाली गांधी जी के हर कदम के साथ बादशाह खान का दिल खुशी से भरा हुआ था। स्वागत के लिए इकट्ठे हुए उत्मानजई के बाल वृद्धों की नजरें गांधी जी के अर्धनग्न छोटे से बदन पर लगी हुई थी। लेकिन उस सारे वातावरण में अपूर्व अनुशासन और शांति फैली हुई थी। गांधी जी की निश्चित जरूरतों का खयाल रखते हुए बादशाह खान वैसी व्यवस्था रखते थे।

उत्मानजई में एक हफ्ता गांधी जी ने पूरा आराम किया। अधिक से अधिक मौन और कम से कम संभाषण, वेखटके बाहर घूमना और बादशाह खान जैसे ममता भरे यजमान की अखंड जागरूकता के बीच गांधी जी को यह सप्ताह कई महीनों के स्वास्थ्य जैसा प्रतीत हुआ। अपना यह मत उन्होंने वल्लभ भाई के नाम लिखे एक पत्र में भी व्यक्त किया। "आप भी मुझे इतनी स्वस्थता का लाभ नहीं दे सके। फिलहाल खान साहब सिर्फ मेरे लिये ही हैं।" बीच बीच में बादशाह खान के साथ अहिंसा तत्त्व के बारे में चर्चा इसी विषय पर होती रही।

बादशाह खान ने गांधी जी सुरक्षा की दृष्टि से रात के पहरे के लिए सशस्त्र स्वयंसेवक रखे थे। इस पर से दोनों में जो संभाषण हुआ वह बोधप्रद है। वस्तुतः पुलिस संरक्षण का यह प्रश्न बादशाह खान ने गांधी जी के सामने पहले ही रखा था। सामान्यतः पुलिस संरक्षण लेना चाहिये या नहीं इसे सामान्य प्रश्न समझ कर गांधी जी ने गर्दन हिलाकर स्वीकृति दी थी। वह उनके मौन का दिन था। उस प्रश्न का संबंध उनकी खुद की सुरक्षा व्यवस्था से होगा इसकी गांधी जी के मन में जरा भी आशंका नहीं थी। उल्टे अपने स्वयंसेवकों के पास जो शस्त्र हैं वे केवल दूसरों को डराने के लिए हैं इसलिये वैसा पहरा रखने में कोई हर्ज नहीं ऐसा बादशाह खान मानते थे। लेकिन गांधी जी को इसकी खबर लगते ही उन्होंने खुद की सुरक्षा के लिए रात में रखी जानेवाली चौकसी तुरंत बंद करने के लिए कहा। "अन्यों की रक्षा के लिए सशस्त्र पुलिस की व्यवस्था रखना अलग और अहिंसातत्त्व का पालन करनेवाले को खुद सुरक्षा के लिए उसका इस्तेमाल करना अलग है, यह मेरे जीवन सिद्धांत के बिलकुल विपरीत है।' गांधी जी ने कहा।

इसी सिलसिले में गांधी जी ने उन्हें उपनिषदों में कहा गया सांप का किस्सा सुनाया। 'जहर के दांत निकाल लिये तो कोई हर्ज नहीं। मुझमें सिर्फ फुत्कारने की ताकत रहे' जैसी मांग करनेवाले सांप से ब्रह्मा ने कहा कि 'तू फुत्कार करता रहेगा तो भी लोग तुझे पीटेंगे ही। प्रत्यक्ष हिंसा करने की अपेक्षा हिंसा करने के साधन पास हैं ऐसी शंका होने से भी दुश्मन तुम्हें नष्ट करने का प्रयास करेगा ही'। इस संदर्भ में गांधी जी ने बादशाह खान को कहा।

अहिंसावादी को इस तरह खुद के संरक्षण के लिये शस्त्रों का इस्तेमाल नहीं होने देना चाहिये, उसी तरह अहिंसा मार्ग से आजाद होनेवाले भारत की सीमा पर आजाद जमातों से सुरक्षा पाने के लिये पुलिस या सेना की जरूरत नहीं होनी चाहिये।' बादशाह खान के प्रयत्न इस दृष्टि से पहले से हो रहे थे। गांधी जी के निरंतर सहवास के कारण बादशाह खान को और उनके स्वयंसेवकों को अहिंसा के स्वरूप के नित नये-नये पहलू नजर आते थे। उस खुशी में सारे खुदा के बंदे बेहोश से थे।

गांधी जी का यह दौरा एक महीने के लिये निश्चित हुआ था। इन चार हफ्तों में मर्दान, कोहाट, बन्नू और डेरा इस्माइल खान इन चार जिलों में उन्होंने प्रवास किया। नौशेरा में कार्यकर्ताओं से चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि, 'अहिंसावादी स्वयंसेवक को हमेशा व्यस्त रहना चाहिये। अपने कार्यों से उनको अपने पड़ोसी को मदद पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिये।' कार्यकर्ताओं की सभा हुई। अहिंसा की जानकारी देते हुए बादशाह खान ने कहा, 'एक स्थान पर एक अधिकारी खुदाई खिदमतगारों का जुलूस रोकने के लिये गया था। उसके पास बारूद से भरी हुई बन्दूकें तैयार थीं। उसने खुदाई खिदमतगारों के जुलूस को रोका, उनका डंडा छीन लिया, स्वयंसेवकों पर सब तरह से आक्रमण होते हुए भी वे उनका कुछ भी प्रतिकार नहीं करते हैं, यह देखकर वह अधिकारी भौंचक्का हुआ और उसने उन्हें छोड़ दिया।' कार्यकर्ताओं के लिये मखंडी में चरखा केंद्र शुरू करने की अपनी योजना बादशाह खान ने गांधी जी के सामने रखी। वैसे ही उत्मानजई को एक आदर्श गांव बनाने का अपना संकल्प भी बताया। जिस प्रवास के दौरान बादशाह खान रोजा रखते थे। खुद सारे दिन भोजन को स्पर्श न करते और गांधी जी और दूसरे मेहमानों के भोजन की व्यवस्था खुद रखते थे। यह देखकर गांधी जी को खेद हुआ। लेकिन

गांधी जी ने खुद उपवास किये होते तो वह बादशाह खान को नहीं जँचता। कोहाट, बन्नू के प्रवास में आज़ाद मुल्क के कुछ शक्तिशाली कबीलों के लोग गांधी जी से आकर मिले। टोलीवालों के हमलों के कारण सर्वसामान्य जनता का और विशेषतः अल्पसंख्यक हिंदुओं की रक्षा कैसे की जा सकेगी जिसकी चिंता गांधी जी को थी, लेकिन इस इलाके के कार्यकर्ताओं से हुई चर्चा के बाद, टोलीवालों के डाके सिर्फ कौमी या मजहब की दृष्टि से ही नहीं डाले जाते हैं, यह गांधी जी को भी महसूस हुआ। कांग्रेस मंत्रिमंडल के सत्ता में आने के बाद ये डाके बढ़े यह भी उनको मालूम हुआ। डाके डालने का उद्देश्य मुख्यतः अपनी आवश्यकतायें पूरी करने का होता है और ये डाके हिंदुओं के अनुसार मुसलमानों के घरों पर भी डाले जाते हैं, ऐसा गांधी जी की समझ यहीं आया।

गांधी जी का यह दौरा खुदाई खिदमतगारों की दृष्टि में बहुत महत्व का और मार्गदर्शक रहा। उसी तरह गांधी जी को खुद को एक प्रयोगशाला का लाभ हुआ। 'वायव्य सरहद का प्रांत मेरा हमेशा का, मिलने जुलने का यात्रास्थान होनेवाला है' यह गांधी जी ने इस दौरे में कहा। बादशाह खान की ईश्वरनिष्ठा और उनकी समर्पण भावना का दर्शन गांधी जी को अलग अलग पहलुओं से बिल्कुल करीब से हुआ। तक्षशिला से गांधी जी ने बादशाह खान से विदा ली, विदा लेते समय 'हम दोनों की आँखों में पानी भर आया' यह बात गांधी जी ने ही अपने लेख में कही। इतनी कट्टरता से तत्त्वाचरण करनेवाले इन दोनों महात्माओं के आँखों में पानी लानेवाले उस प्रसंग को कौन शब्दांकित कर सकेगा? वह पानी क्यों आया होगा?

महात्मा जी के इस प्रवास में अबोटाबाद के अल्पसंख्यकों की दिक्कतो के विषय में काफी चर्चा हुई। अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की दृष्टि से सरकार की खूब और जरूरत हो तो मुफ्त में शस्त्रों की पूर्ति करनी चाहिए, यह उनकी एक माँग रही। हिंसा अहिंसा का सवाल छोड़ दिया जाय तो भी यह माँग उपयोगिता की दृष्टि से कठिन, अव्यवहार्य और विरोध प्रभाव रखनेवाली नहीं है।' गांधी ने कहा, सरकार मुफ्त में शस्त्रो की पूर्ति नहीं कर सकेगी। जरूरत हो तो वह पैसा जुटाकर खरीद की जाय। इसके बजाय बन्नू जैसे जिले में जब सौ दो सौ टोलीवाले हमला करते हैं तब वहाँ के हजारों नागरिकों के पास शस्त्रास्त्र रहते हैं, पुलिस और सेना की सशस्त्र टुकड़ियाँ रहती हैं फिर भी नागरिकों की रक्षा नहीं हो पाती है

और टोलीवाले लाखों रुपये लूटकर अपना एक भी आदमी गँवाये विना वापस चले जाते हैं, इससे क्या सबक लिया जाय ? यह सवाल गांधी जी ने अल्पसंख्यों के सामने रखा। अल्पसंख्यकों में सिख और हिंदू पूरे चार छः फीसदी भी नहीं थे, लेकिन व्यापार, सरकारी फौजी कांट्रैक्ट और सरकार के मुलाजिमों में वे आगे रहते थे और सरकार से संरक्षण मिलेगा इस घमंड में रहते थे। फलस्वरूप बहुजन समाज में उनके बारे में घृणा ही बढ़ती है। ऐसी अवस्था में उन्हें लोगों से सहायता कैसे प्राप्त हो सकेगी ? बहुतेरे सिख और हिंदू दोनों ही धर्म की दृष्टि से मुसलमानों का स्पर्श निषिद्ध मानते हैं। दूसरे धर्म के बारे में इतना अंधापन का विरोधभाव मन में हो तो आपसी संबंध अच्छे कैसे रह सकेंगे ? इसकी जगह आपस के हार्दिक सहकार के बल पर ही अल्पसंख्य रह सकेंगे। उनके साथ संमान से वर्ताव करना बहुसंख्यकों का कर्तव्य रहेगा, लेकिन यह अल्पसंख्यकों के आचरण पर निर्भर होगा, बादशाह खान और खुदाई खिदमतगार अल्पसंख्यकों की सहायता के लिये और संरक्षण के लिये कैसे तैयार रहते हैं, यह भी हिंदू नेताओं ने गांधी जी के सामने रखा। इस प्रवास में खान मंत्रिमंडल और खानबंधु के खिलाफ उनके आलोचकों ने भी यह इल्जाम नहीं लगाया कि वे कौमी विचार के हैं। गांधी जी को उससे संतोष हुआ।[1]

---

१. वायव्य सीमा प्रांत की (१९४७) आबादी २४.७ लाख है जिसमें २२.९ लाख मुसलमान, १.९ लाख हिंदू , ४७ हजार सिख, १६ हजार ईसाई, ६२ पारसी, ११ यहूदी और २ बौद्ध ऐसी अल्पसंख्यकों की आबादी है। साहूकारी, कांट्रैक्ट और व्यापार ये व्यवसाय मुख्यतः सिख और हिंदुओं के अधिकार में थे।

: १८ :

लड़ाई के जमाने में अहिंसा युद्ध का आदर्श

विश्वयुद्ध की गड़गड़ाहट और उसके साथ साथ मंत्रिमंडल के इस्तीफे, यह भारत का इतिहास सिर्फ मंत्रिमंडल के शासन का इतिहास नहीं है। उस दृष्टि से इस आंदोलन का अभ्यास और विचार भी अधिक नहीं हुआ है। इस मंत्रिमंडल का शासन कहते ही, खेर नरीमन घटना, डॉ॰ खेर के षड्यंत्र का प्रकार, पंत मंत्रिमंडल और मुस्लिम लीग के समझौते की असफलता इन घटनाओं की नुक्ताचीनी घटनापंडितों के विवेचन में दिखायी देती है। इन घटनाओं को कुछ महत्व जरूर है, लेकिन शादी ब्याह के मानमरातव के झगड़े से अधिक महत्व उनको देने का कारण नहीं। वरवधू की माताओं के झगड़े के लिये रिवाज रूढ़ि का आधार रहता ही है।

कांग्रेस द्वारा सत्ता हाथ में लेना यह स्वतंत्रता संग्राम का एक हिस्सा था और मंत्रिमंडल का त्यागपत्र उस संग्राम का एक मौके का प्रहार था। डंकर्क की हार से ब्रिटेन की जितनी दुर्दशा हुई, वैसी ही नैतिक दुर्दशा वैयक्तिक सत्याग्रह के कारण ब्रिटिशों की हुई थी, इसकी खोज इतिहास को कभी न कभी करनी ही होगी। मानवी प्रगति करनेवाले नैतिक आंदोलन का इतिहास कभी तो लिखा ही जाता है। तब तक इस अहिंसायुद्ध का मूल्यमापन करने की हिम्मत शायद कोई नहीं करेगा। विश्वयुद्ध का रणकुंड चेता हुआ था तब खुद का राजकीय दल निष्क्रिय न होने देते हुये प्रतिकार चालू रखना, वह प्रतिकार राज्य कर्ताओं का विवेक जागृत कर सके, इस पद्धति से सोचना और लाखों अनुयाइयों को एक काम में जुटा रखना यह इतिहास की न सिर्फ अजीब लेकिन महनीय घटना और सफलता होती है। लड़ाई के दौरान छिटपुट दंगे खड़े करना, रेलवे तार को नुकसान पहुँचाना या फौज में फूट पैदा करना असंभव था, ऐसी बात नहीं थी। वैसा नहीं किया गया, इसके लिये कांग्रेस और गांधी जी की अहिंसा को बदनाम करनेवाले लोगों को जवाब देना यहाँ जरूरी नहीं है। जिनका उस मार्ग पर भरोसा था उन्हीं का वह काम था। कांग्रेसी मंत्रिमंडल के अलावा कोई भी खास मेहनत किये

वगैर सब स्थानों पर नजर रखनेवालों की भीड़ राजभवन पर हमेशा ही रहती थी। उनके इस सहकार्य का ढिंढोरा दुनिया भर में पीटना, यही राज्यकर्ताओं का मकसद रहता था। मुख्यतः अमेरिका जैसे शक्तिशाली दोस्त की आँखों में धूल झोंकना, यह चर्चिल की नीति का महत्व का हिस्सा था। लेकिन कांग्रेस के न्याय और लोकशाही निष्ठा की नीति पर प्रहार करनेवाले अंग्रेजों का दंभी स्वरूप खोल कर बताने के लिए, अपना शांति से प्रतिकार चालू रखना उस समय महत्व का था और यही गांधी जी ने सदैव किया। निःशस्त्र लोगों के लड़ने का अच्छा उदाहरण यह लड़ाई है। कांग्रेस की भीतरी फूट की ही तरह अंग्रेजों के अदूरदर्शी और भ्रष्ट लोकशाही वृत्ति के कारण उस लड़ाई में कांग्रेस का नेतृत्व सफल नहीं हो सका। वे व्यवहारतः सफल न हुये हों लेकिन विघायक नहीं हुये। इसके विपरीत अपनी कुटिल नीति के कारण उस समय सफल हुई ब्रिटिश सत्ता, आज पराजय के दर्रे की ओर ढकेली जा रही थी और उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से खुद का स्थान बनानेवाले पाकिस्तानी नेता भारत के साथ साथ अपनी कबर खोदने में व्यस्त थे। हिंसा अहिंसा के युद्ध का मूल्यमापन करते हुए एक दूसरे युद्ध और पीढ़ी का, जमाने का ख्याल करने से काम नहीं चलेगा। सिर्फ मानवजाति के लिये ही नहीं तो खुद की भावी पीढ़ियों के कल्याण का विचार जिन्हें करना है उन्हें किसी विवेकी मार्ग का आखिर में आश्रय लेना होगा। अणुयुग में प्रवेश करने का समय आने पर तो विवेक अधिक जाग्रत होना चाहिये।

इस वैचारिक पार्श्वभूमि की आदिशक्ति है जनता। जनता की सही वैचारिक जागृति होगी तो सही शक्ति का निर्माण होगा। यह विधायक काम याने मंत्रतंत्र नहीं, वह सद्गुणों की याने लोकशाही की आराधना है। वह तंत्र भारत के आत्मसात् न कर लेने के कारण उसे आज हार खानी पड़ रही है और उस तंत्र की निष्ठा से उपासना किये हुए बादशाह खान के तकदीर में आज भी सब तरह की यातनायें और अत्याचार लिखे हों तो भी पठान आज भी सबसे अधिक पुरुषार्थ का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यह इतिहास दुनिया के सामने न आये तो भी, आत्म स्वातंत्र्य के लिये निरंतर संघर्परत रहनेवाले लोगों और सत्तास्पर्धा के नीच काम में उलझे हुए लोगों में तुलना किस बात की की जाय।

जिस तरह खुशबू की एक लहर आने के बाद संगीत के आलापों की लहर कान में गूंजती रहे उसी तरह गांधी जी की पहली भेंट ने पठानों को

मोहित किया था। बादशाह खान कार्यकर्ताओं के शिक्षण कार्य के निर्माण कार्य की तैयारी में व्यस्त थे, क्योंकि सिर्फ सत्ता हथियाने से काम नहीं चलता। लोगों को सत्ता के लिये योग्य बनाना चाहिये, इस सिद्धांत पर उनका भरोसा होने के कारण लोक शिक्षा और समाज सुधार पर उनका सारा जोर था। उनका शरीर गांधी जी के कारण कांग्रेसी नेताओं की कतार में दिखायी देता था लेकिन उनका अंतःकरण हमेशा पठानों के संगठन में व्यस्त रहता था।

सीमाप्रदेश के आज़ाद पठानों की मित्रता के मसले पर गांधी जी ने बादशाह खान के साथ विचार विमर्श किया था। जिस दृष्टि से उन्होंने स्वतंत्र मुल्क के नेताओं से मिलने की इच्छा भारत सरकार से व्यक्त की। अपने पास सरकार ने उनके विश्वासभाजन किसी भी व्यक्ति को रखने के लिये सुझाया था, फिर भी उसका उपयोग नहीं हुआ। केंद्रीय विधिमंडल के कांग्रेस दल के उस समय के नेता भूलाभाई देसाई को उधर भेजने के प्रयत्न हुए, उन्हें भी नहीं जाने दिया। इस तरह स्वतंत्र पठानों को, ब्रिटिश राज्यकर्ता ही भारत का दोस्त नहीं बनने देते हैं, यह स्पष्ट हुआ। ऐसा हुआ तो पठानों का डर भारतीय हिंदुओं को बताकर हिंदू-मुसलमानों में झगड़ा नहीं बढ़ा सकेंगे यह ब्रिटिश राज्यकर्ता जानते थे और इसीलिये अपने हाथ का तुर्प खुला नहीं होने देते थे। लेकिन बादशाह खान की दी हुई शिक्षा का प्रभाव पठानों पर हो रहा था।

मंत्रिमंडल के त्यागपत्र के तुरंत बाद देश में सर्वत्र सत्याग्रह का आंदोलन शुरू किया जाय इस विचार का वर्ग कांग्रेस में था। विशेषतः सुभाष बाबू उस दृष्टि से दबाव डालने का प्रयत्न कर रहे थे। समाजवादी विचारधारा का कांग्रेस का नौजवान गुट भी इसी राय का था। लेकिन केवल उत्तेजित मनोदशा में सत्याग्रह किया तो उससे दंगे, हाथापाई होगी इसका ख्याल गाँधी जी को था इसलिये वे कांग्रेस कार्यकर्ताओं को विधायक प्रवृत्तियों में लगाते थे।

बादशाह खान की तरह इस जनसंपर्क और संगठन के काम में किसी ने विशेष रस नहीं लिया था। खुद की भावना शुद्ध और विवेक नियंत्रित रखना और जनता को भी शिक्षित करना इस मंत्र का महत्व बहुतेरे कांग्रेस नेताओं ने भी विशेष ध्यान में नहीं लिया था। जनता में जाकर रहने वाले कार्यकर्ताओं के लिये योजनाबद्ध शिक्षा देने का एक केंद्र उन्होंने खोला।

उसके लिये ही जुलाई १६३६ में गाँधीजी सीमाप्रांत में फिर हो आये, लेकिन इस बार गाँधी जी की सेहत ठीक न रहने के कारण वे आबोटाबाद तक ही पहुँचे। खुदाई खिदमतगारों के सरदरयाब (सुर-दरयाब ?) केंद्र में जाकर नहीं रह सके या अन्य कहीं वे घूमे भी नहीं। उनका यह मुकाम अबोटाबाद में ही करीब दो सप्ताह तक रहा। उन्होंने वहीं कार्यकर्ताओं से चर्चा और मिलने का कार्यक्रम रखा था। आम कार्यक्रम बादशाह खान ने निश्चित किये ही नहीं, अब युद्ध के बादल ही नहीं, युद्ध की गर्जना भी सुनाई देने लगी थी। गाँधी जी ने हिटलर के नाम लिखा हुआ अपना मशहूर पत्र आबोटाबाद के मुकाम से दि० २३ जुलाई को भेजा था।

गांधी जी को विदा करने के बाद बादशाह खान ने अपना सारा ध्यान सर दरयाब के केंद्र पर केंद्रित किया। यह केंद्र यह भी उनका एक स्वप्न था। वह और वह भी उनके सिद्धांत के अनुसार पूरा हुआ। सर दरयाब यह स्थान भी इस आश्रम स्वरूप शिक्षा केंद्र के अनुरूप, सुंदर और शांत था। सैकड़ों कार्यकर्ता इकट्ठे रह सकें और समाजसेवा की शिक्षा ले सकें ऐसी वहाँ व्यवस्था की गयी थी। बांस टाट के मंडप और कुछ तंबुओं में सैकड़ों कार्यकर्ताओं के रहने की व्यवस्था की गयी थी। बादशाह खान के इन संस्कारों के कारण ही उनके कार्यकर्ता स्वावलंबी और गरीबी में रहते थे, मंत्रिमंडल आये, गये लेकिन उसका स्पर्श भी उनको नहीं हुआ और न तकलीफ हुई। लोगों से चंदा इकट्ठा करके काम करने की पद्धति बादशाह खाँ ने कभी भी नहीं अपनायी। कार्यकर्ताओं की प्रेरणा और श्रद्धा ही उनका सच्चा धन था और इसी ताकत पर सैकड़ों कार्यकर्ताओं के लंबी अवधि के शिविर उन्होंने चलाये। लेकिन कभी भी खाने पीने के बारे में शिकायत नहीं रही या साफ सफाई की अड़चनें नहीं आयीं। जिस किसी का काम जो कोई करें, सफर खर्च, भोजन खर्च अपना अपना करना इस श्रद्धा से जो आदमी तैयार होते हैं, वे ही इंकलाब के सिपाही हो सकते हैं। वे ही जनता में घुल मिल कर उसे जाग्रत कर सकते हैं, पागल बना सकते हैं। इतनी गरीबी में काम करने के बारे में बादशाह खान और जवाहरलाल जी में मतभेद भी हुए थे। खुदाई खिदमतगारों की आर्थिक खींचतान बेहद है इसके बारे में डा० खान साहब के द्वारा पंडित जी ने जेल में सुना था और तुरंत कुछ मदद भेजना शुरू किया। लेकिन १६३४ में बादशाह खान जब जेल से रिहा हुए तब उन्हें यह मालूम होते ही उन्होंने वह सहायता बंद करवायी। बाहर के

आर्थिक सहकार्य से कार्यकर्ता परावलंबी और दूसरों का ख्याल करने वाले हो जाते हैं। इतना ही नहीं, कई मर्तबा कार्यकर्ताओं में ही झगड़े शुरू हो जाते हैं। धन पहले अपने पास खींचने की कइयों को आदत लगती है। उसके बजाय सभी परिवार जैसा एकत्र रहने लगे, भोजन करने लगे तो वह ज्यादा अच्छा है। इस आधार पर खुदाई खिदमतगारों का संगठन भी ठीक तरह से बढ़ा। इतना ही नहीं अब तो उसकी सदस्य संख्या एक लाख के करीब पहुँची थी। फिर भी उन्होंने उसके कार्यों के लिये बाहर से पैसा नहीं जुटाया। लेकिन १९४२ के आंदोलन के समय उन्होंने "बेतूल माल" यह निधि जेलों में गये हुए गरीब कार्यकर्ताओं के परिवारों की सहायता के लिये जनता से इकट्ठा किया था, वह भी आम जनता के बल पर खड़ा किया। इसलिये कार्यकर्ताओं को धनलोभ कभी नहीं हुआ। उनकी रहन सहन कभी बदली नहीं। दरिद्र नारायण के सेवक को शोभा दे, ऐसा ही खुद का सारा पहनावा और आहार बादशाह खान भी रखते थे। उनके इस त्यागी और सेवाभावी जीवन के कारण उनका नेतृत्व अडिग रहा है और उनके बारे में प्रेम स्थिर और वृद्धिगत हो रहा है। सर दरयाब केंद्र के साथ साथ उन्होंने अपने "पख्तून" पाक्षिक पत्र का साप्ताहिक प्रकाशन शुरू किया और प्रचार-साधन बढ़ाया। इस साप्ताहिक के चारों ओर नौजवान कवि, लेखक इकट्ठा हुए। उनके साहित्य का पठान जागृति के लिये खूब उपयोग हुआ। "पख्तून" के लेखकों में से कई बड़े बड़े साहित्यिक पैदा हुए। उनके काव्य और प्रहसन सुनने के लिये और देखने के लिये हजारों पठान स्त्री पुरुष इकट्ठे होते थे। समाज सुधार का बहुत सा प्रचार इन कवियों की गजलों, कव्वालियों के जरिये हुआ है लेकिन ये सारे नवोदित कार्यकर्ता इकट्ठे रह सकें, उन्हें वहाँ आवश्यक सहारा मिल सके और मार्गदर्शक शिक्षक और ग्रंथ उपलब्ध हो सकें यह योजना सर दरयाब केंद्र ने पूरी की।

इस केंद्र के संबंध में उनके विचार, इस केंद्र के उद्घाटन के समय दिये हुये उनके भाषण में व्यक्त हुए हैं। वे कहते हैं "आज मेरी कई सालों की इच्छा पूरी हुई है। हमारे विरोधियों के विरोधी प्रचार के कारण इस काम में काफी दिक्कतें खड़ी हुई थीं। लेकिन आज हम सफल हुये हैं। हर आंदोलन के कार्यकर्ताओं को एक जगह रहकर काम करने के लिए केंद्र की विशेष जरूरत रहती है इस तरह से जो कार्यकर्ता इकट्ठे होकर काम नहीं कर सकते हैं वे ठीक तरह से सफल भी नहीं हो सकते हैं। हमारे विरोधियों में दूसरे

प्रांतों के पुरानी वृत्ति के अखबारनवीस अबतक थे। उनकी सहायता के लिये अब कुछ मुस्लिम पंडित भी आकर शामिल हुए हैं। "यहाँ गांधी जी के लिये एक आश्रम तैयार किया गया है या धर्म शिक्षा की व्यवस्था की जा रही है" ऐसा भी प्रचार किया। हमारे खिलाफ घृणास्पद प्रचार हुआ, लेकिन उसका कुछ भी असर पठानों पर नहीं हो सका। सरकार की और सनातन वृत्ति के विरोधियों की मुझे बिल्कुल फिक्र नहीं है। क्योंकि उनका विरोध सत्य पर आधारित नहीं है, वह धन की ताकत पर खड़ा है। वह टिकेगा नहीं। खुदाई खिदमतगारों को मैं आगाह कर रहा हूँ, वे अपने मित्रों और शत्रुओं में चार-वाह और कसाइयों की तरह के अंतर को जाने व समझें। बुद्धि और विवेक से काम किया जाय, सत्य समझ लें और जो खुद समझें, दूसरों को समझा दें। हमारी निंदाजनक नुक्ताचीनी की जाती है उसका स्वरूप सारी जनता को भी मालूम हो। मेरा यह विचार आप सारी जमात तक पहुँचा दें।

"जल्द ही अपने नये आंदोलन का प्रारम्भ इस केंद्र से होगा। खुदा की मेहरबानी से यह शुरूआत आगामी अगस्त से ही होगी। हमारे कार्यकर्ता इस केंद्र से ही अपने कार्यक्षेत्र में आयेंगे और अपने पवित्र उद्देश्य के अनुसार काम में जुट जायेंगे। जो कार्यकर्ता योग्यता धीरज और प्रेम भावना से अहिंसायुद्ध की जिम्मेदारी उठा सकेंगे, ऐसा मुझे भरोसा होगा, उनके जत्थे भिन्न भिन्न हिस्सों में भेजे जायेंगे।

विश्वयुद्ध के कारण बदली हुई परिस्थितियों में इस समय केंद्र के लिये यह जगह लेना ठीक नहीं था ऐसा कइयों को लगता है, लेकिन मुझे विश्वास है, हमें इसी केंद्र में इकट्ठे होना है। इतना न हो तो कब्र भी इसी स्थान पर हो ऐसा भी मैं कहता हूँ।"

सर दरयाब के इस भाषण के कारण नया वातावरण पैदा हुआ और कार्यकर्ता उत्साह से काम में लग गये। सब जगह तूफानी दौरे किये गये और गाँव गाँव एकता और त्याग का संदेश पहुँचाया गया। बादशाह खान का यह प्रचार कितना प्रभावी होगा यह सरकार जानती थी। लेकिन इस वक्त उन्होंने दमन का रास्ता छोड़कर नयी तरकीब इस्तेमाल की। लालची मौलवियों की सहायता से उनके द्वारा "बादशाह खान ने एक हिंदू आश्रम खड़ा किया है और वहाँ मुसलमानों को गीता सिखायी जाती है, हिंदुओं की प्रार्थना सिखायी जाती है और हिंदू धर्म का प्रचार होता है" ऐसा प्रचार शुरू करवाया। लड़ाई के जमाने में सरकार का प्रहार इस तरह

का था। इस प्रचार का असर बहुत कुछ होकर अच्छे अच्छे लोग भी बादशाह खान के काम के संबंध में शंकित हुए। लेकिन बादशाह खान ने उस ओर ध्यान न देकर अपना काम जारी रखा। उनका सत्य और अपने काम पर भरोसा था। इस केंद्र में वरिष्ठ स्वयंसेवकों की व्यवस्था की गयी थी और जिलों में जगह जगह शिक्षा केंद्र खड़े किए थे। वह सब अनुशासित काम देखकर सरकारी विरोधी दब गये थे। लड़ाई के संबंध में परिस्थिति रोजाना बदलती थी। आगे जापान लड़ाई में शरीक हुआ तब बादशाह खान ने कहा, "अब जापान लड़ाई में शरीक हुआ है इसलिये लड़ाई हमारे सर पर आयी है। लेकिन हमारे पास जापान नहीं आ सकेगा या जर्मनी भी नहीं आवेगा। हमें गुलाम करने के लिए कोई इस ओर आया तो उसका मुकाबला करने के लिये मैं सामने खड़ा हूँ। अपने हिस्से में स्वयंसेवक शिविर खड़े किए हैं, वे सब जगह अमन कायम करेंगे। हमारा सब काम खुल्लमखुल्ला चल रहा है। छिप कर काम करने से कायरता पैदा होती है।" आत्म-विश्वास और स्वाधीनता का जोश लड़ाई के जमाने में भी और वह भी सीमा प्रांत में फैल रहा था। यह ताकत अहिंसा से काम करने की पद्धति की थी। भारत में कई जगह आम सभा में भाषण देने में भी कुछ नेता डरते थे। तो बादशाह खान के खुदाई खिदमतगार ने आजादी की और अमन की जिम्मेदारी खुद उठायी है ऐसा जाहिर करते थे। शहरी अधिकारों की रक्षा करने के लिये सभा बैठकों में जब जब बोलने के लिए कहीं कहीं वक्ता नहीं मिलते थे तो श्रोता कैसे मिलें? ऐसी डरावनी परिस्थिति में सत्याग्रही तैयार करने का कारखाना खड़ा करने के काम में गांधी जी लगे थे। इतने में सीमा प्रांत ने सत्याग्रह का कदम भी उठा लिया था। बादशाह खान सरदरयाब शिविर में योजना बना रहे थे उस समय बन्नू विभाग के कुछ कार्यकर्ताओं ने प्रत्यक्ष कानून तोड़ने की जल्दबाजी की लेकिन ऊपर कहे अनुसार इस समय सरकार ने गोली चलाने की अपेक्षा मौलवियों को जुलाब की गोली दी। मुल्ला मौलवियों को किराये पर लेकर बादशाह खान के खिलाफ प्रचार करने का काम शुरू किया। इस सारी परिस्थिति का मुकाबला करते हुए नये प्रण से कार्यकर्ता जनता में पहुँचे थे।

लड़ाई का यह समय कांग्रेस नेताओं की निष्ठा के लिये कसौटी का सिद्ध हुआ। उसके अनुसार अपने हाथ की सत्ता न छोड़ने का ब्रिटिश साम्राज्य-वादियों का विचार किस कोटि का था यह भी साफ हुआ। हिटलर-मुसोलिनी

की युद्धलोलुप सेनाओं के पैरों तले सम्पूर्ण यूरोप की आत्मा रौंदी और कुचली जा रही थी और पुरोगामी विचारों का सारा संसार चिंताक्रांत था। इस आपत्ति के समय कांग्रेस के नेताओं ने लोकशाही की रक्षा के लिये हम तैयार हैं यह शुरू में ही स्पष्ट कर दिया था। तुम्हारी लड़ाई यदि असल में केवल लोकशाही के लिये हो तो वह लोकशाही खुद के तबेले-भारत में लागू है, यह मान्य करो, यही कांग्रेस की मांग थी। केवल बातचीत का हंगामा मचाया गया लेकिन कुछ करने के लिये अंग्रेज तैयार नहीं थे। सांप के मुँह में फँसा हुआ मेंढक भी जितनी मक्खियां मिले उनको निगलने का प्रयास मरते दम तक करता ही रहता है। यही हालत बुद्धि शून्य और स्वार्थी ब्रिटिश नेताओं की थी। उन्हें अक्ल और सुसंगत विचार सिखाने के लिये कांग्रेस नेताओं ने शब्दशः भगीरथ प्रयत्न किये लेकिन कांग्रेस की प्रामाणिक और कल्याणकारी सूचनाओं को स्वीकार करके भारत की लोकशाही स्वतंत्रता को मान्यता देने के बजाय वहाँ के हिंदू-मुसलमान, हरिजन-संस्थानिकों की आपसी अविश्वास की अड़चन सामने रखकर समय निकालने की नीति का उन्होंने अनुसरण चालू रखा और बदकिस्मती की बात यह कि, अहंकार की बलि चढ़े हुए जिना साहब जैसे नेता को खुद का राजकीय दांव मारने के लिये यही अच्छा मौका है, यह समझ में आया। बैरिस्टर जिना शुरू से ही घटनात्मक कार्यक्रम के अभ्यासी और पुरस्कार करनेवाले, गांधी युग का सारा कार्य वैरागी-साधुओं का मूर्खाचार है यह उन्हें महसूस होता था। खिलाफत के तूफान में उनके नेतृत्व की पतंग कट जाने से वे राजकारण से बाहर फेंके गये थे, बाद में उन्होंने इंगलैंड में हमेशा के लिये रहने का निश्चय करके वहां एक मकान भी खरीदा था, लेकिन भारत स्थित निवास तोड़ने-फोड़ने का भवितव्य उनके हाथों बननेवाला था। उनकी बुद्धिकुशलता का राज्यकर्ताओं ने इस लड़ाई के जमाने में पूरा उपयोग कर लिया और कांग्रेस की सहायता लड़ाई में नहीं मिलती है तब मुसलमानों के हार्दिक सहकार का चित्र दुनिया के सामने रखने के लिये, अमेरिका की आंखों में धूल झोंकने के लिये, अंग्रेजों ने तैयार किया। साम्राज्यवादियों के कारनामों को जिना ने उठा लिया था। जिना के तैयार किये चित्र का उपयोग लिनलिथगो जैसे वाइसराय ने कैसे किया यह ढूंढ़ निकालना चाहिये। कांग्रेस के सत्ता त्याग के कारण जिस जमीन में खेती नहीं हो रही थी उसमें मुस्लिम लीग ने अच्छी फसल निकाली, यह बात सही है। इसलिये सूखी-मुरझाई हुई लीग फिर से पनपी और पूरी ताकतवर हुई। उसमें से ही अहंकार का

और धर्मद्वेष का भस्मासुर पैदा हुआ और उसी से बाद में देश का विभाजन हुआ। इस आश्चर्यजनक घटना का और उसमें से उछले हुए अत्याचारों का इतिहास सत्ता त्याग की नीति में से आगे बन जाने के कारण इस सत्ता त्याग के आंदोलन का चिंतन ठीक तरह से करना भी अभ्यासकों का कर्त्तव्य है। अहिंसा ने भारत को अपरिमित ताकत दी, डरपोक और अनाड़ी जनता को बंदूक के सामने खड़ा किया यह ठीक ही है, लेकिन बाजारू माप से ही चलने वाली लेनदेन में गांधी जी का विचार और अंतःकरण समझ लेने की जरूरत ब्रिटिशों को महसूस नहीं हुई, या जिना के दाँवपेंच के सामने नेहरू पटेल अपर्याप्त रहे और आजाद बेइज्जत हुए। जिन्होंने कुरान के आयत कभी देखे नहीं थे वे जिना साहब इस्लाम धर्म के नेता और संरक्षक बने, लेकिन यह सारा चित्र किस का था? अंग्रेजों की कुटिल नीति का या हमारे व्यक्तिद्वेष, सत्तावाद, धर्मांधता आदि दुर्गुणों का? इन घटनाओं के कारणों की जाँच अच्छी तरह से होनी चाहिये। खुद की भावी पीढ़ियों का कल्याण करने की इच्छा रखने वाले सभी को यह करना चाहिये।

कांग्रेस नेताओं ने ब्रिटिश राज्यकर्ताओं के झूठे प्रचार की असत्यता को सिद्ध करने के लिये और मातृभूमि की सच्ची रक्षा करने के लिये युद्धकार्य में सहकार्य देने का आश्वासन दिया। कुछ भी हो, अहिंसा नहीं छोड़नी चाहिये, क्योंकि वह अपने जीवन का तत्त्व और सत्व है इस धारणा से रहने वाले गांधी जी थे। उनके बताये रास्ते से चलने की इच्छा रखने वाले लेकिन देश की रक्षा के लिये शस्त्रों का इस्तेमाल आवश्यक हो तो उसकी इजाजत देश को देनी ही पड़ेगी ऐसा माननेवाला बड़ा वर्ग गांधी जी के शिष्योत्तमों में भी था। उनमें राजेंद्र बाबू, कृपलानी, शंकरराव देव, प्रफुल्ल घोष, पट्टाभि सीतारामैया आदि थे, तो जवाहरलाल जी, आजाद, सरोजिनी नायडू, पंत ये नेता कांग्रेस ने नीति के बतौर अहिंसा का स्वीकार किया है, आवश्यक हो तब और जितना संभव हो, भारत प्रत्यक्ष जंग के मैदान में खड़ा रहे, ऐसा वे मानते थे। आजादी का मसला हल नहीं हुआ और अंग्रेजों के साथ समझौता नहीं हुआ और पूर्व सीमा पर जापान के हमले शुरू हुए तब बंगाल की सुरक्षा का विचार करते हुए मौलाना आजाद ने आत्मसंरक्षण के लिये नहीं तो प्रतिकार के लिए गुरीला पद्धति की फौज खड़ी करने की योजना खुद बनायी थी। उस समय

वे कांग्रेस के सदर थे। इतने भिन्न भिन्न विचार कांग्रेस कार्यकारिणी में थे और राज्यकर्ताओं से समय समय पर जब बातचीत हुई उनमें नैतिक ताईद से लेकर राजाजी के सक्रिय सहकार्य के पूना प्रस्ताव तक वैचारिक भिन्नता व्यक्त हुई थी। उसमें बादशाह खान की भूमिका बिल्कुल निश्चल थी। वे लड़ाई में किसी भी तरह की सहायता करने के लिये राजी नहीं थे। कांग्रेस के पूना प्रस्ताव पास करते ही कांग्रेस के नेतृत्व का कचित् भी विशेष रूप से इस्तेमाल न किया हुआ ओढ़ना निकाल फेंक दिया और त्यागपत्र दे दिया। अपने त्यागपत्र में उन्होंने कहा—

'पूना प्रस्ताव का (अ०भा०कांग्रेस समिति का जुलाई १६४० का प्रस्ताव) स्पष्टीकरण करनेवाले निवेदन मौलाना आजाद और राजा जी ने किये हैं। उन निवेदनों पर से कांग्रेस ने अपने अहिंसा के साफ (क्लीयर) मार्ग छोड़कर हिंसा का मार्ग अपनाने की तैयारी की है। अंग्रेजों ने कांग्रेस की शर्तें मंजूर कीं तो कांग्रेस लड़ाई में मदद देने के लिये तैयार है। कांग्रेस द्वारा पसंद किया गया यह रास्ता खुदाई खिदमतगारों का रास्ता नहीं है। दरअसल में हमारी श्रद्धा और तत्वों से बिल्कुल प्रतिकूल यह रास्ता है। हमारा रास्ता शांति और प्रेम का है, लड़ाई और कटुता का नहीं। दुनिया की किसी भी जनता से हमारा झगड़ा या दुश्मनी नहीं। हम खुदाई खिदमतगार हैं और सृष्टि की, प्राणिमात्र की (मखलूख) सेवा करना ही हमारा काम है। दूसरों की जान लेना हमारा काम नहीं है उल्टे दूसरों के लिये खुद की जान कुरबान करना हमारा धर्म है। इन कारणों से मैंने कांग्रेस कार्यकारिणी से त्यागपत्र दिया है। इस रास्ते से (पूना प्रस्ताव) देश का हित होनेवाला नहीं है यह मैं देख रहा हूँ। और मेरा विश्वास है कि पठानों का कल्याण अहिंसा छोड़कर नहीं होगा। अहिंसा से पठानों का धीरज और साहस बढ़ा है। इस आंदोलन के पहले उनमें जो कायरता थी उसकी जगह धीरज पैदा हुआ है यह हम देखते हैं। इन तत्वों को संभाल रखने से ही पठानों का उद्ध्वस्त जीवन ठीक रास्तेपर आवेगा इसलिये मेरी सारे खुदाई खिदमतगार भाइयों की प्रार्थना है कि उनको प्रामाणिकता से इसपर गौर करना चाहिये। उन्हें यह न जँचे तो यह मार्ग वे यहीं छोड़ दें और सच्चे खुदाई खिदमतगार को देश की और कौम की सेवा करने का मौका दें।' इतनी स्पष्टनिश्चयी वृत्ति से पूना प्रस्ताव के खिलाफ आवाज बुलंद करनेवाला अन्य कोई दूसरा नेता नहीं था।

बादशाह खान के इस निवेदन के बाद सीमाप्रांत के कांग्रेस कार्यकर्ताओं में प्रक्षोभ पैदा हुआ। वहाँ भी कुछ मतभेद थे ही। लेकिन खुदाई खिदमतगार

कार्यकारिणी और प्रदेश कांग्रेस समिति की सभाओं में बादशाह खान की नीति का समर्थन करने वाले प्रस्ताव बहुमत से पास किये गये। सैकड़ों खुदाई खिदमतगारों ने अपने निजी त्यागपत्र कांग्रेस के पास भेजना शुरू किया। सीमाप्रांत कांग्रेस ने भी युद्ध सहकार्य के खिलाफ प्रस्ताव पास किया इसलिये व्यक्तिशः किसी के त्यागपत्र भेजने की जरूरत नहीं ऐसा स्पष्टीकरण किया गया।

पूना प्रस्ताव के बाद सारे देश में केवल एक ही प्रदेश कांग्रेस समिति इस तरह का प्रस्ताव करनेवाली निकली। बादशाह खान का नेतृत्व ऐसी प्रभावी पद्धति से फिर देश के सामने आया। इस कारण गांधी जी को स्वाभाविक ही धन्यता महसूस हुई। क्योंकि बादशाह खान किसी भी हालत में अहिंसा का तत्व छोड़ने के लिये तैयार नहीं थे। युद्ध कार्य को आशीर्वाद देने के लिये तैयार नहीं थे। भारत की आजादी मंजूर की गई तो स्वतंत्र भारत युद्ध सहकार्य के संबंध में चाहे जो निर्णय ले, इस तरह का रास्ता निकालने के लिये गांधी जी तैयार हुए थे। लेकिन बादशाह खान इतनी भी ढील देने के लिए तैयार नहीं थे। इतना होते हुए भी मौ० आजाद ने 'हमारी तरह गफार खान भी शुरू में शस्त्रों की ताकत से देश की रक्षा करने के विचार के थे' ऐसा प्रतिपादन किया (इंडिया विन्स फ्रीडम पृष्ठ ३४)। यह पढ़कर पाठकों में हलचल पैदा हुए बगैर नहीं रहेगी। लेकिन उनके इस प्रतिपादन का अर्थ लगाना संभव है। कांग्रेस के लिए हुए अहिंसाव्रत की मर्यादा बादशाह खान जानते थे। वैसे ही युद्ध का मौका लेकर देश को सशस्त्र बनाने के विचार के नेता कांग्रेस में भी थे। सुभाष बाबू की नीति बिल्कुल साफ थी। ऐसे नेताओं को और उसके साथ कांग्रेस को अहिंसा के धागे से बाँधने में कोई मतलब नहीं था। उन्हें वैसी इजाजत देकर कांग्रेस का रास्ता साफ कर देना चाहिए बादशाह खान के कथन का अर्थ यही लगाना चाहिए। खुद बादशाह खान के ऊपर दिए हुए आम भाषण से यह बिल्कुल स्पष्ट है। अर्थात् यह नीति उन्होंने अपनी संघटना तक ही मर्यादित रखी है, लेकिन उससे उनकी खुद की श्रद्धा भी स्पष्ट हुई है। इसलिये गांधी जी को धन्यता हुई। 'उस समय कांग्रेस कार्यकारिणी के बहुतेरे सदस्यों की श्रद्धा डगमगाई थी लेकिन अकेले बादशाह खान पहाड़ जैसे अपने सिद्धांत पर अडिग रहे। उनके दिए हुए त्यागपत्र से बहुतों की आँखें खुलेंगी।' यह विचार गांधी जी ने 'हरिजन' के लेख में व्यक्त किया है।

बादशाह खान ने खुद को और खुदाई खिदमतगारों को कांग्रेस संगठन से अलग कर लेने से उनका कांग्रेस का प्रेम ऊपरी था ऐसी शिकायत करनेवाले लोग आगे आये। जात्यंधता और धर्माधंता अफीम की गोली है ऐसा अनुभव कुछ लोगों के बारे में होता है। बादशाह खान कांग्रेस के एकरूप होने के लिए तैयार नहीं थे क्योंकि खिलाफत आंदोलन के समय कुछ मुस्लिम नेता कांग्रेस में कैसे और क्यों आए और बाद में कैसे विरोधी बने आदि नजारे उन्होंने देखे थे। अपना राजकीय मसला मुख्यतः सामाजिक इन्कलाब से हल होगा यही उन्हें भरोसा था। इसलिए यह काम खुदाई खिदमतगारों के जरिये करते रहना, सत्य और प्रेम के मार्ग से ही लोकजाग्रति का काम अमल में लाना इनपर उनका पूरा विश्वास था। इसलिये वे अपने रास्ते से अलग से जाना चाहते थे। लेकिन १९३०–३२ के आंदोलन के अत्याचारों के समय खुदाई खिदमतगारों को मुस्लिम नेताओं ने कोई भी मदद नहीं दी अतः उन्हें कांग्रेस के पास आना पड़ा यह उन्होंने मुस्लिम नेताओं को बार बार जताया है। इसके पीछे उनका मकसद केवल इतना ही था कि, अन्य मुस्लिम संघटनाओं को खुदाई खिदमतगारों के खिलाफ प्रचार करने के लिये मौका न रहे। ऐसा था, फिर भी जिन लोगों ने आफत में मदद दी उन्हें 'काँग्रेस को मरते मरते दम तक नहीं छोड़ना चाहिये' ऐसी कृतज्ञता पठानों में है। इसलिये काँग्रेस से मित्रता रखना तकलीफदेह हुआ तो भी उसे छोड़ने के लिये वे कभी भी तैयार नहीं हुए। ऐसी धारणा से खुदाई खिदमतगारों को उन्होंने अपनी संस्था से अलग होने दिया। लेकिन काँग्रेस के युद्ध सहकार्य के प्रस्ताव के कारण उन्हें भी अलग होने का मौका मिला और उस के लिये उन्होंने खुदा से दुआएँ माँगी। युद्ध के समय राज्यकर्ता मनचाहे पशुतुल्य अत्याचार करेंगे इसलिए भी सिर्फ समाज सुधार को कार्यक्रम हाथ में लेने की उनकी कल्पना हो, बन्नू के कार्यकर्ताओं ने जल्दबाजी में कानून तोड़ना शुरू किया तब वैसे कायदेभंग को बादशाह खान ने तुरंत रोका, पेशावर में प्रवेशबंदी करने वाले हुक्म भी कुछ कार्यकर्ताओं पर लागू किये गये थे उन्हें न तोड़ने की आज्ञा भी बादशाह खान ने तुरंत दी। इस तरह उन्होंने अपने प्रांत में सत्याग्रही मार्ग से याने लोकशिक्षण और लोकसेवा इन साधनों के जरिये आजादी की लड़ाई लड़ने का नया पर्व शुरू किया।

बादशाह खान की इस तत्वनिष्ठा की विजय पठानों को जल्द ही देखने

को मिली। खुद की अहिंसा नीति की मर्यादा कॉंग्रेस ने स्पष्ट की, इतना ही नहीं, गाँधी जी जैसे अपने मान्यवर मार्गदर्शक को भी कॉंग्रेस ने अपने लिए कुछ अलग रखा। इतना स्पष्ट करने पर भी राज्य कर्ताओं ने भारत की आजादी का सवाल अनिश्चित स्वरूप में खटाई में रखा इसलिये कांग्रेस का युद्ध सहकार्य के लिये आगे किया हुआ हाथ झटक दिया गया। इसलिये कांग्रेस नेताओं को अपनी नीति के बारे में फिर से सोचना पड़ा।

ब्रिटिश राज्यकर्ताओं का लोकशाही के प्रेम का ढोंग कांग्रेस के पूना प्रस्ताव से खुल गया। उस प्रस्ताव से कांग्रेस नेताओं की सच्ची भूमिका स्पष्ट हुई यह बात सही है। कांग्रेस ने अहिंसा के निर्बंध, नीति के बतौर और आजादी प्राप्त करने के लिये सहूलियत का मार्ग इसलिये स्वीकार किया था, लेकिन इस मतभेद के कारण गांधी जी और बादशाह खान जैसे नेता और सहकारी कांग्रेस से अलग हुए और उधर ब्रिटिश राज्यकर्ताओं की ओर से कोई प्रतिक्रिया भी नहीं हुई। साम्राज्य ढलता देखते हुए भी भारत की आजादी का विचार करने के लिये वे तैयार नहीं थे यह उससे पूर्णतया स्पष्ट हुआ। ब्रिटिशों की यह समय बिताने की नीति के कारण पूना प्रस्ताव खारिज करने के लिये कांग्रेस को बंबई की राह पकड़नी पड़ी। बंबई के अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के जलसे (१५ सितंबर १६४०) में पूना प्रस्ताव खारिज हुआ। केवल तीन महीने की मियाद में ही कांग्रेस ने गांधी जी से फिर से नेतृत्व स्वीकार करने की प्रार्थना की। बंबई प्रस्ताव के जरिये कांग्रेस ने अपनी नीति फिर से बदली। इस घटना से सीमा प्रदेश के राजकारण पर बहुत प्रभाव पड़ा। अपना नेता बौद्धिक और नैतिक स्तर पर कितना श्रेष्ठ है इसका यकीन यहां के कार्यकर्ताओं को हुआ। बादशाह खान की ख्याति और लोकप्रियता में इससे अधिक वृद्धि हुई। लेकिन उन्हें भी गांधी जी के साथ-साथ कांग्रेस में प्रवेश करना पड़ा। उन्होंने आठ जुलाई को दिया हुआ त्यागपत्र वापस लिया। पूना प्रस्ताव ४८ विरोधी मतों से पारित हुआ था तो गांधी जी को फिर से नेतृत्व देने के विपक्ष में केवल ७ मत रहे। लड़ाई के जमाने में अहिंसा की यह आराधना चालू रखने का श्रेय साम्राज्यवादी राज्य कर्ताओं के पल्ले जाता है, यह नहीं भूलना चाहिये। उसके बाद गांधी जी ने भी अपने नेतृत्व का स्वरूप तेजी से स्पष्ट करने की शुरुआत की। उसमें ही अपनूपा

में वैयक्तिक सत्याग्रह शुरू हुआ। संग के जमाने में भाषण स्वातंत्र्य का अधिकार रख सकें इस भूमिका से यह सत्याग्रह शुरू हुआ। उस वक्त भारत को अधिकतर अज्ञात अहिंसाव्रती जीवन के आदर्श, पू० विनोबा भावे के जरिये यह प्रारंभ किया गया। दूसरा क्रमांक जवाहरलाल जी का था। देश भर में अनुशासन का और चुने हुए कार्यकर्ताओं का यह सत्याग्रह गांधी जी के आदेशानुसार शुरू हुआ। सीमा प्रांत में यही तैयारी सरदारखान की छावनी में हुई थी। पठानों ने अधिकृत रूप से सत्याग्रह की शुरूआत की, फिर भी उन्हें गिरफ्तार न करने की नीति राज्य कर्ताओं ने तय की थी। मुसलमान जनता और संगठन अपना मददगार है, विरोधी नहीं ऐसा नाटक राज्यकर्ताओं को दुनिया के सामने खेलना था। कांग्रेस के युद्ध विरोधी आंदोलन में सारे पठान है यह बादशाह खान के आंदोलन के कारण संसार के सामने आए ऐसी प्रसिद्धि टालने के लिये सीमा प्रांत पर इस समय अलग किस्म की कृपा दृष्टि रही। भविष्य का और आंदोलन का स्वरूप जनता समझ ले इसलिये बादशाह खान ने इस अवधि में लगातार प्रयास किया, गाँव गाँव घूमे। उनकी मुलाकात से, उपदेश से कार्यकर्ता और सामान्य लोग कितने प्रभावित होते थे इसका सुंदर शब्दचित्र बैरिस्टर यूनुस ने अपने लेखों द्वारा खींचा है। (फ्री प्रेस जर्नल, दिसंबर १९४०) बैरिस्टर यूनुस उस समय उनके साथ संगठनकार्य की शिक्षा लेने के लिये थे। वे कहते हैं, "गत १५ महीने से मैं उनके साथ हूँ। देहातों के लोगों पर उनकी बोलचाल से बहुत प्रभाव पड़ता है। वे फौरन उनके दुखसुख में समरस हो जाते हैं। महिलाओं की आँखों में उनको देखते ही आँसू भर आते थे। उन्हें उनके साधुत्व का साक्षात्कार तुरंत होता है। उनके हस्तस्पर्श के लिये, आशीश के लिये वे उत्सुक रहती हैं। बालबच्चेवाली महिलाएँ अपने छोटे बड़े बच्चे उनके पाँव पर रखती हैं। बच्चों में वे फौरन घुलमिल जाते हैं। उनके भाषण और संभाषण प्रभावी होते हैं। बिल्कुल सादी और आसान भाषा में वे बोलते हैं। कार्यकर्ताओं के दोष वे स्पष्ट रूप से उनके सामने रखते हैं। सुबह की प्रार्थना के बाद वे गाँव में घूमने के लिये निकलते हैं तो दिन भर लोगों में ही रहते हैं। वही घूमता फिरता प्रचार। आपस का प्रेम, सहकार और निरंतर क्रियाशीलता पर उनका जोर रहता है। भावी आंदोलन के लिये तैयार रहने का उनका आवाहन लोगों के दिल में पहुँचता है। अहिंसा से अपना कल्याण हुआ है और उसी रास्ते से अपने सारे मसले हल होनेवाले हैं, यह उनकी श्रद्धा हर जगह में स्पष्ट होती है। लोगों की गरीबी के बारे में

उनके दिल में जो दर्द रहता था वह उनके मुँह से प्रदर्शित होता रहता है। सफर के लिये घोड़ा, टाँगा, लारी और जहाँ इनमें से किसी का भी उपयोग नहीं होता था तब पैदल इन सब साधनों से वे सफर करते हैं। "फखे अफगान जिंदाबाद" इस घोषणा के नारे लगानेवाले बच्चों का जमघट उनके साथ चलता रहता है।

वैयक्तिक सत्याग्रह में भारत के बड़े बड़े कांग्रेस नेताओं और कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया। विनोबा जी के बाद बादशाह खान आनेवाले थे लेकिन उन्हें इसके पहले ही चार साल की सख्त सजा सुनायी गयी थी। सरदार पटेल को स्थानबद्ध कर रखा था। कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य सातों प्रांतों के मंत्रि-मंडलों के मंत्री, विधिमंडल से दलीय सदस्य और प्रमुख कार्यकर्ता, इस तरह अंदाजन २,५०० सत्याग्रही तीन चार महीने में अनुशासित तरीके से जेल गये। सीमाप्रदेश में पंतप्रधान डा० खान साहब ने लाल कुर्ते के लिबास में पुराने सचिवालय में खुद जाकर युद्ध के खिलाफ घोषणा की। उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेजने के बजाय कुछ देर बाद उनके बंगले पर छोड़ा गया।

जंग के मैदान में युरोप और दक्षिण पूर्व एशिया में शिकस्त की ठोकरें खानेवाले ब्रिटिश राज्यकर्ता घर की बुड्ढों के लिये कितने खौफनाक थे इसकी अच्छी मिसाल इन दो साल की मियाद में भारत में दिखाई दी। रोजाना नये आश्वासन, नयी घोषणायें, राजदूत से मुलाकात के सब नाटक किये लेकिन इस सब कार्यवाही में से खास मकसद तक न पहुँचने देने की गोभक्षी जैसी नीति दिखाई देती थी। उस कारण से कांग्रेस नेताओं की यह सत्यपरीक्षण दी जाती रही। नैतिक सहमति से लेकर पूना प्रस्ताव के अनुसार सशर्त युद्ध सहकार के आश्वासन तक नीति बदली, बंबई प्रस्ताव किया, उसमें से वैयक्तिक सत्याग्रह शुरू हुआ। यह सर्कस करते हुए गांधी जी, बादशाह खान, नेहरू, आजाद, वल्लभभाई, राजाजी इनमें जिस तरह सौम्य भाव था। वैसे ही तीव्र मतभेद होते गये। उनमें से सुलह कैसे हुई यह सारी जानकारी अब उपलब्ध है। इस ऊबड़-खाबड़ रास्ते से कांग्रेस का राजरथ जा रहा था तब दुनिया में अस्थिर होनेवाली लोकशाही को आंच न आने पाये और प्रतिकार के निर्धार से कांग्रेस को चलित नहीं होने देने के इस अफलातूनी कर्मयोग का कौंग्रेस ने सफलता से आचरण किया। वह कर्मयोग था। उसमें हिसाबी नापतौल को स्थान नहीं था। निष्क्रियता का पतन टालते हुए अडिग रहना इस समय की सफलता थी। राष्ट्र की गर्दन नहीं

झुकने दी। दुनिया के विचारकों को भारत का पक्ष नीति और न्याय का नहीं है ऐसा कहना संभव नहीं हुआ। असमय की यह सफलता छोटी नहीं थी। इंग्लैंड का नेतृत्व चर्चिल की ओर जाने के बाद भारत को कसौटी पर चढ़ना पड़ा फिर भी उस हालत में कांग्रेस ने अपनी नीति का त्याग नहीं किया।

: १६ :

१९४२ के आंदोलन की पठानों की योजना

अगस्त प्रस्ताव करने वाली बंबई की अखिल भारतीय कॉंग्रेस की सभा में बादशाह खान उपस्थित नहीं रह सके थे। लेकिन वे अगस्त आंदोलन के ख्वाब बहुत पहले से देख रहे थे। वे उसकी तैयारी में ही थे। सीमाप्रांत कार्य समिति और खुदाई खिदमतगार फिर इकट्ठे लाये गये। उनके मतभेद मिटाये गये। आंदोलन के लिये खुदाई खिदमतगारों में से हरेक की आमदनी की औसत आय से निधि इकट्ठा करने में उन्होंने कुछ समय बिताया। जेल में गये हुए कार्यकर्ताओं के परिवारों की जितना संभव हो उतनी व्यवस्था करने के लिये मुख्यतः 'बेतुल माल' निधि खड़ी की गई थी। आंदोलन लंबी मुद्दत तक चलेगा इस दृष्टि से वे सारी तैयारी बाकायदा कर रहे थे। सारे भारत में इतनी व्यापक दृष्टि से कहीं मनसूबे हुए हों ऐसा दिखाई नहीं देता है। अगस्त प्रस्ताव पास होने के पहले बादशाह खान उसकी तैयारी में जुट गये। जिले जिले के शिविरों में सैनिकों के जत्थे आकर दाखिल होते थे और देहात देहात में घूमते रहे। वैयक्तिक सत्याग्रह पूरा होने के बाद सीमाप्रांत में उन्होंने शहरों में शराब निरोधन शुरू किया। उसी तरह टोलीवालों के आजाद मुल्क में भी कुछ जत्थे भेजे। वजीरिस्तान में वे नहीं पहुँच सके थे। उस समय प्रांत में गवर्नर का राज चलता था। उस समय टोलीवालों के मुल्क में प्रचार करने के लिये गये कार्यकर्ताओं को आगे १९४५ तक वापस नहीं आने दिया गया।

करीब दो माह बादशाह खान ने अपने नेतृत्व में और चुनिंदे खुदाई खिदमतगारों के द्वारा अनुशासनपूर्वक कार्यक्रम तय किये और अमल में लाये गए। अधिकारी गिरफ्तारी या लाठीमार न करते हुए सौम्यता से बर्ताव करके आंदोलन का जोश कम करने की सोच रहे थे। कार्यकर्ता थोड़े निराश होते थे। उनकी उमंग दमन की नीति पर पनपती है लेकिन बादशाह खान ने उन्हें अनुशासन और संयम की कसौटी पर कसा था। उनको भविष्य की कुरबानी के लिये उन्हें तैयार करना था।

सितंबर के अंत में सरकारी मकानों का ताबा लेने का आक्रामक कार्यक्रम उन्होंने पाचों जिलों को दिया। स्वयंसेवकों द्वारा मकानों को घेरा डालकर शांति से ताबा लेने का यह कार्यक्रम था। पुलिस ने कितने भी अत्याचार किये तो भी स्वयंसेवक पीछे न हटे। जो गिर पड़ेगा उसकी जगह उसके पड़ोसी को लेनी चाहिये ऐसी आशा थी और उस तरह चार अक्तूबर का कार्यक्रम अतुल वीरता से संपन्न हुआ। लाठी न चलाने की अधिकारियों की नीति धूमिल हो गयी। जिला दफ्तर और न्यायालयों की सुरक्षा के लिये पुलिस ने पूरी ताकत दाँव पर लगायी। विषैले गैस का इस्तेमाल किया गया। दूसरे दिन फौज और पुलिस का सरकारी दफ्तरों पर बंदोबस्त रहा। उनका घेरा तोड़कर आक्रामक लड़ाई शुरू हुई। घायल स्वयंसेवकों के लिये खुदाई खिदमतगारों का रुग्णपथक और अस्पताल खड़ा किया गया था। कुछ दफ्तरों में स्वयंसेवक घुस सके। न्यायालय की कुर्सी पर वे स्थानापन्न हुए और वहाँ से कांग्रेस कार्यालय को टेलीफोन करके सत्ता हथियाने का संदेश भी दिया।

इन दो तीन दिनों में कहीं कहीं जनता के द्वारा ईंट पत्थर फेंकने की गलतियाँ हुईं। वह कितने जल्द रोकी गयी इसका एक सबूत पेशावर के दो गोरे सैनिकों ने दिया जिसका वर्णन श्री यूनुस के किताब में है। जिन गोरे साइकल सवारों को विद्यार्थियों ने रोका उन पर हमला होगा इसकी खबर लगते ही श्री यूनुस वहाँ दौड़े। उनकी आज्ञा होते ही सारे विद्यार्थी शांत हुए और उन्होंने उन सोल्जरों को रास्ता दिया। कार्यकर्ताओं पर नेताओं का कितना वर्चस्व था इसका यह सबूत है। गोली न चलाने का और गिरफ्तारी न करने का सरकार का निश्चय दो दिन में ही तितर बितर हो गया। सैकड़ों घायल स्वयंसेवकों को जेल भेजा गया। हजारों घायल स्वयंसेवकों को गिरफ्तार होने तक आक्रमण करते ही रहे। खून से लथपथ हुए स्वयंसेवक शांति से उसका प्रतिकार करते रहे। पठानी सत्याग्रह का यह दर्शन अपूर्व था। प्रांत के बाहर यह खबरें न जाँय इसके लिए अधिकारी जी जान से कोशिश करते थे। पंजाब के अखबारों में उल्टी खबरें शाया करवाने की व्यवस्था अधिकारियों ने की थी।

बादशाह खान खुद अधिक दिन पीछे नहीं रह सके। हमें गिरफ्तार नहीं करेंगे या सरकारी अत्याचार नहीं होंगे तो जल्द ही गलतफहमी फैलेगी यह उनका कहना कार्यकर्ताओं को जल्द ही समझ में आ गया। उन्होंने

खुद मर्दान जिला कोर्ट पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसके लिये नब्बे स्वयंसेवकों का एक जत्था लेकर वे उधर गये। उनका छिपा रहना संभव नहीं था। अपने हाथों की सांकल तैयार कर लाल कुर्तेवाले घेरा बना आगे बढ़ते थे, वह घेरा तोड़ना पुलिस के लिए असंभव होता था। मर्दान पहुँचने के पहले ही उनपर जोरों से लाठियाँ चलाई गयीं। उसी समय बादशाह खान की दो पसलियाँ टूटीं। वैसी ही लहूलुहान हालत में कोई उपचार किये बिना उन्हें जेल भेजा गया। बाद में उन्हें अंत तक अबोटाबाद जेल में बंद कोठरी में रख छोड़ा गया था। उस लाठीमार में उनकी पसलियां टूटने के कारण जो कमजोरी आयी थी, वह अभी भी कायम है। उसी कारण बीच बीच में उनकी अन्य बीमारियाँ भी बढ़ती हैं।

मुस्लिम लीग का औरंगजेबी मंत्रिमंडल सत्ता में आने के पहले ही बादशाह खान के बंदी जीवन के बारे में और उनकी सेहत गिरने के विषय में सीमा प्रांत में खबर फैल गयी थी। अबोटाबाद जेल में उनसे बुरी तरह बर्ताव किया गया था। इसलिए औरंगजेबी मंत्रिमंडल सत्ता में आते ही उन्होंने खानसाहब के लिए स्वतंत्र बँगला देने का सुझाव रखा। लेकिन बादशाह खान ने वह नामंजूर किया। १९४३ के अंत में उन्हें हरिपुर जेल ले जाया गया। वहाँ खुद मुख्य मंत्री और जेल महकमे के मंत्री अमिजन खान ने उनसे मुलाकात की। इस मुलाकात के बाद अखबारनवीसों से बातचीत करते हुए मुख्य मंत्री महोदय ने कहा, 'बादशाह खान की सेहत ठीक है। वे जेल के काम में और अन्य बंदियों के मामले पर ध्यान देते हैं।' इस मंत्री के पीछे पीछे लीग के एक आमदार मि० रशीद भी उनसे मिले। उन्होंने भी उनकी सेहत ठीक है ऐसी जानकारी अखबारवालों को दी। लेकिन राज्यकर्ताओं के इस आश्वासन से ही जनता के दिल में उनकी सेहत के बारे में चिंता बढ़ी।

वह डर साधार था ऐसा दीखता है। क्योंकि बाद के दो तीन महीने में उनकी सेहत और बिगड़ती गयी और अप्रैल १९४४ में उनकी कमजोरी काफी बढ़ी। गांधी जी का स्वास्थ्य ठीक न होने की खबर उन्हें मालूम थी। कस्तूरबा के निधन की खबर का असर उनपर कितना हुआ होगा, इसकी केवल कल्पना ही करनी चाहिये। जेल से रिहा हुए एक बंदी के साथ उन्होंने गांधी जी के पास एक शोकसमाचार भेजा। खुद बादशाह खान के स्वास्थ्य के बारे में खबरें फैलने के कारण डॉ० खान साहब और उनके

परिवार के लोग हरिपुर जेल में जाकर उनसे मिले। मंत्री समिजन खान फिर से अक्तूबर में उनसे मिले उनके द्वारा प्रकाशित पत्रक में, "मुझे उनके प्रति पूरी श्रद्धा है, मुझे उनकी ओर से चिट्ठी मिली थी। उनके स्वास्थ्य की चिंता मैं कर रहा हूँ।' ऐसा आश्वासन जनता को दिया। अपने मंत्रिमंडल के बारे में लोगों के दिल में उत्पन्न होनेवाले अविश्वास की चिंता उन्हें थी यह बात सही हो सकती है तो भी बादशाह खान के बारे में समिजन खान को आदर था यह भी सत्य है। वे शुरू में खुदाई खिदमतगार और १९३७ के मुख्य मंत्री का पद न मिलने के कारण लीग से जा मिले थे। लेकिन उनमें उस आदर और प्रेम की पुनर्जागृति लोकमत के क्रोध की आँच लगते ही हुई ऐसा जनता को लग रहा था जो सच भी है।

सीमा प्रांत का ४२ का आंदोलन लंबे अरसे तक चला। वह तीन महीने में खत्म नहीं हुआ था। जिस अनुशासन में वह शुरू हुआ वह अनुशासन भी नहीं टूटा। करीब छः हजार कार्यकर्ता संगठित प्रतिकार करते हुए जेल गये। जनता पर तरह तरह के दबाव डाले गये। फिर भी जनता का साथ अंत तक खुदाई खिदमतगारों को मिलता रहा। लोगों के हथियार वापस ले लेना या उसकी इजाजत खारिज करने की घटनाएँ देहातों में आये दिन होती रहती थी। जगह जगह सामुदायिक जुर्माना वसूल किया गया लेकिन इन सारी घटनाओं के बावजूद जनता ने अनुशासन और संयम से काम लिया। बादशाह खान की सेवा का वह प्रभाव था। मुख्यतः ऐसे आंदोलन के समय कबीलों को अपने हाथ की कठपुतली बनाने का अधिकारियों का रवैया बिल्कुल असफल रहा। इस हिस्से में आंदोलन के प्रारंभ से ही खुदाई खिदमतगारों ने अपना डेरा जमाया था और प्रचार शुरू किया था। इसलिये अधिकारियों के साथियों का प्रचार फीका पड़ जाता था। टोलीवालों को ब्रिटिश मुल्क पर उस मियाद में डाके डालने चाहिये और आंतरिक सुधार करने चाहिये, इतना ही प्रचार लाल कुर्तावालों ने किया लेकिन सरकारी कारनामे असफल होने के कारण अधिकारियों ने शांति के प्रचारक लाल कुर्तावालों की ही लंबी मुद्दत की सजाएँ बहाल की। स्वयं रिहा होने पर इन कार्यकर्ताओं की रिहाई के लिये बादशाह खान को काफी प्रयत्न करने पड़े।

संग्राम में सैनिक के घायल होकर गिर पड़ने के बाद जल्दी जल्दी उसके खीसे टटोलते फिरने वाले सैनिक सेना में क्वचित् ही मिलते हैं ऐसा कहते

है। यह कृत्य ऐसा होता है कि किसी भी वीर पुरुष को घृणा पैदा हो लेकिन पराभूत वृत्ति से पछाड़े गये मुस्लिम लीग को राज्यकर्ताओं ने इस तरह के निंद्य मार्ग का अनुसरण करने के लिये उद्यत किया। सीमा प्रांत के कांग्रेस पक्षीय आमदारों को जेल में लंबी मुद्दत तक ठूस रखने के पीछे यही कारण था। बहुत से आमदारों के इस तरह से नजर के बाहर जाने के बाद कहीं कोई विरोधी दल न खड़ा हो इसके लिये गवर्नर ने यह प्रयास किया था। गवर्नर के इस प्रयास में आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन स्वाभिमान और देश प्रेम में किसी से पीछे न रहने वाले जिना साहब भी इस अशिष्ट रास्ते पर तेजी से चलने लगे थे। यह नजारा खेदजनक था। घटनात्मक या शिष्टसंमत मार्ग से हटने वाले राज्यकर्ताओं पर विधिमंडल के मध्य तेग की धार जैसी उनकी तीखी जबान चलने लगती थी तो वहाँ के गोरे सदस्यों के पाँव कभी कभी ठंडे पड़ने लगते थे। वे ही जिन्ना साहब किसी गवर्नर को, फूट डालने के लिये साधन मुहय्या करने के लिये तैयार हुए थे।

सरदार औरंगजेब खान जैसे व्यक्ति को सीमा प्रांत के लीग का नेतृत्व देने के लिए वे तैयार हुए। उनके हाथ में लीग का नेतृत्व दिया तो वह टिकाऊ नहीं होगा ऐसी सलाह खुद लीग के पार्लमेंटरी बोर्ड ने उन्हें दी थी। लेकिन किसी भी रास्ते से लीग मंत्रिमंडल के रूप में संतान प्राप्ति की चिंता जिन्ना को लगी थी और औरंगजेब मंत्रिमंडल की स्थापना से जिन्ना ने संतोष मान लिया। राजकीय तत्त्वनिष्ठा का यह अधःपतन ही राजनीति है ऐसा जो कहते हैं चाहे भले ही वे इसमें सफलता मानें। खुद जिन्ना जातिवंत योद्धा थे लेकिन उन्होंने राजकीय भ्रष्टता के इस मार्ग को निश्चयपूर्वक अख्त्यार किया था। धीरज, स्वावलंबन और सहकार के रास्ते से मिलने वाले नेतृत्व को उन्होंने झिझोड़ दिया था। राजसत्ता का मुकुट जिन्ना के सर पर रखने के लिये गांधी जी हमेशा तैयार थे। तिलक महाराज ने भी वही दृष्टि रखी थी और जिन्ना साहब की योग्यता के कारण ही वह स्थान उन्हें दिया जाता था लेकिन उसमें उन्हें संमान नहीं महसूस हुआ और जिंदगी भर जिन साम्राज्यवादियों पर उन्होंने हमले किए थे वे शासक ही अब उन्हें स्वजन लगते थे। इसमें कुछ दोष कांग्रेस नेताओं का भी होगा लेकिन गोरे गवर्नर से हाथ मिलाने के लिये भी इनका हाथ आगे नहीं बढ़ता था। उसके बदले उनके ही आगे सिर

झुकाने के लिये वे तैयार रहने लगे इससे उनके इस गिरते चरित्र के प्रति घृणा महंमद यूनुस जैसे चाहनेवालों के मन में भी औरंगजेब मंत्रिमंडल की नियुक्ति के समय आई हो तो उसमें आश्चर्य क्या हो सकता है ?

'और अंत में हमने फ्रांटियर में लीग का मंत्रिमंडल बनाया ही।' इस हर्षोन्मादपूर्ण जिना के उद्गार सुनकर यूनुस को धक्का पहुँचा। वे कहते हैं, 'जिना अन्य लीगवालों की अपेक्षा बिल्कुल अलग और तत्वनिष्ठ नेता है ऐसा मैं उस समय तक मानता रहा, लेकिन ब्रिटिशों के हस्तक बनकर पठानों के हत्यारे का काम करनेवाले लोगों की ताईद करने का उनका कर्म देखकर मेरी आंखें हमेशा के लिये खुलीं। इनके प्रति मेरे मन में बहुत आदर भाव था उनके बारे में मेरे सारे भ्रम दूर हुए।' (फ्रांटियर स्पीक्स पृष्ठ १८६) जिना को भी अपने वर्ताव के बारे में कभी-कभी संभ्रम लगता रहा होगा और विषाद भी होता होगा ऐसे प्रसंग आए हैं। औरंगजेब मंत्रिमंडल बनाते समय हम पठानों जैसी जमात पर अन्याय कर रहे हैं, खुद के अंतःकरण की यह भावना कुचल डालने की तैयारी में खुद जीने के लिए हो रही है। यूनुस से उस समय उन्होंने कहा—

'हमारे विरोधी पठान हिंदुस्थान के किसी अन्य मुसलमान की अपेक्षा ऊपर के स्तर के हैं। उन्होंने त्याग किया है, उनका खून मेरे खून की अपेक्षा अधिक तेजस्वी है। अब्दुल गफार खान जैसे महान नेता और उनके वीर पठान अनुयाई ये सब हमारे साथ नहीं है, यह शोचनीय घटना है। मैं और आज के लीग के नेता ही उसके लिये जिम्मेदार हैं यह भी सच है, वे कठिनाई में थे तब हम उनकी मदद के लिये नहीं दौड़े, इस मौके का लाभ कांग्रेस ने उठाया।' जिना के इस कथन में उनकी भूल की भलमनसाहत का दर्शन स्पष्ट होता है। औरंगजेब मंत्रिमंडल को जुलूस के घोड़े पर बैठाया गया लेकिन वह जुलूस कभी निकला ही नहीं। उन्हें विधान मंडल के सामने खड़े रहने की हिम्मत नहीं थी। कुछ अरसे के बाद कुछ कांग्रेस आमदारों ने सजा पूरी करके रिहा होकर बाहर आते ही डॉ० खान साहब ने मंत्रिमंडल पर अविश्वास का प्रस्ताव भेजा। कांग्रेस के बाहर के बहुत से आमदार औरंगजेबी कारोबार से ऊब गये थे। मंत्री और नौकरशाही इन दोनों के हाथ मिलने के कारण शासन व्यवस्था बहुत बिगड़ गई थी। रिश्वत खोरी सब जगह तेजी में थी। निर्धन मंत्रियों के खड़े हुए राजमहल जनता आखों से देखती थी। प्रांत पर अकाल ने आंखें निकाली थीं फिर भी गरीबों के दुखों को देखने के लिये मंत्रियों के पास समय नहीं था। इस सारी परिस्थिति

के कारण अन्य बहुत से आमदार कांग्रेस का समर्थन करने के लिये तैयार हुए। गवर्नर यह सब जानता था इसलिये विधिमंडल की सभा का समय बढ़ाता रहा। लेकिन गांव साफ करनेवाली की बहू को सुबह होते ही बाहर जाना ही पड़ता है। इसी के अनुसार बजट की मंजूरी के लिये अंत में सभा बुलानी ही पड़ी। १९४५ के मार्च महीने में लकड़ी के घोड़े पर सवार ये तेरह घुड़सवार गिर पड़े। पचास सदस्यों के कायदेमंडल में तेरह मंत्री-उपमंत्री बनाये गये थे। मंत्रिमंडल के लिये लीग में आये हुए कुछ लोग ही लीग को ठुकराने के लिये तैयार हो गए। डॉ० खान साहब के मंत्रिमंडल को खुद के पांव पर खड़े रहने की ताकत थी इसीलिये वे गवर्नर के सारे हथकंडों का जवाब देते हुए खुद का मंत्रिमंडल बना सके। डॉ० खान साहब के मंत्रिमंडल के प्रारंभ के कामकाज में राजबंदियों की रिहाई का काम था। लड़ाई के संकट का ओढ़ना निकल जाने के कारण नया वातावरण पैदा हुआ था। जान पर बीती हुई प्रसूती से मुक्त हुई कमजोर स्त्री जैसी ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिति थी। यहां के गोरे नौकरशाहों की आंखें इंग्लैंड के रिश्तेदारों पर लगी थीं। मुस्लिम लीग के आधार पर अपने दिन कैसे काट सकेंगे इसकी चिंता उन्हें लगी थी।

गांधीजी को रिहा हुए दस महीने बीते थे। अपना तीन-चौथाई शरीर आगा खान-पैलेस के प्रांगण में रखकर वे दुखी अंतःकरण से बाहर आये थे। १९४५ के मई-जून में कांग्रेस कार्यकारिणी के करीब-करीब सब सदस्य रिहा हुए। बादशाह खान उसी दरमियान रिहा हुए और उतमंझाई लौटे। पुलिस द्वारा की हुई १९४२ की आगजनी में मुरझाया हुआ कांग्रेस भवन उसी अवस्था में खड़ा था। बादशाह खान का उदार गंभीर हृदय ईश्वरी श्रद्धा से व्याप्त था फिर भी पच्चीस साल के त्यागमय और क्लेशमय राजकीय प्रवास के बाद अपना उजड़ा हुआ परिवार, उध्वस्त घर और जले-बुझे खंभों पर खड़ा कांग्रेस भवन आदि सारे चित्र देखकर उनके तत्वनिष्ठुर दिल को भी ठेस पहुँची होगी। वेदनशीलता जैसे शरीर का धर्म है, वैसे ही कठोर धर्मपरायणता कर्मयोगी के स्वभाव का धर्म है। बादशाह खान उस कर्मयोगी परंपरा के हैं। उनकी आंखों को आंसुओं का कभी स्पर्श न हुआ तो वह दूसरों के दुख के प्रति और दूसरों को न दीखा। उतमंजई के उनके आगमन के समय वहां इकट्ठे हुए आबाल वृद्ध स्त्री-पुरुषों की आंखों में आंसू आते हुए उन्होंने देखा होगा। पच्चीस साल तक उन्होंने अथक परिश्रम किये,

खुदा के मुल्क की पूरे भक्तिभाव से सेवा की। दुश्मनों के लिये बद्-दुवा नहीं मांगी, इतना ही नहीं, किसी को दुश्मन तक माना नहीं। गरीबों की भलाई के अलावा कोई इच्छा न रखी। ऐसे इस कर्मयोगी के पल्ले कांग्रेस का जला हुआ घर क्यों आया?

शुद्ध निष्ठा और अहिंसावृत्ति के लड़ने पर भी क्लेश और अत्याचार क्यों ऐसा तूफान देखनेवालों के मन में उमड़ आना स्वाभाविक ही है। पठानों ने शस्त्रबल की उपासना छोड़ी इसलिये ऐसा तो नहीं हुआ यह कुछ लोगों को लगा होगा। सशस्त्र आंदोलन के अनुभव प्राप्त करके बादशाह खान अहिंसा की ओर मुड़े थे। पठानों ने तो सौ साल तक सशस्त्र आंदोलन में हजारों बेगुनाह लोगों के मकान जायदाद, ढोर आदमी बमबारी के कारण हताहत हुये थे। अहिंसा के आंदोलन में केवल खुदाई खिदमतगार जख्मी हुए थे। उतमंजई गाँव सुरक्षित रहा। मुरझाये हुए कांग्रेस भवन में बादशाह खान जाकर बैठ तो सके थे। उल्टे बंदूकों के सहारे लड़ने के कारण ब्रिटिश फौज ने पूरे वजीरिस्तान को बरबाद किया था।

और थोड़े दिनों ही पश्चात् हिटलर की खुदकशी की खबर मिली। जिन जर्मनों ने सारे यूरोप को चार साल तक तहस नहस किया था उस जर्मनी की विपन्नावस्था की कल्पना करना मुश्किल था। शस्त्रसज्जा और वीर-वृत्ति इन दोनों के उत्कट बिंदु का दर्शन हिटलर ने सारे संसार को दिया था वही हिटलर और उसका देश खुद की पैदा की हुई हिंसासाधनों की खाक के नीचे १५ साल तक तड़पता रहा। और अतिपूर्व दिशा से विजय दिन की घंटियाँ बजने लगी थीं। लेकिन हिरोशिमा नागासाकी के अधमरे नागरिकों के आर्त स्वर की बराबरी वह घंटानाद नहीं कर पाता था। उतमंजई का कांग्रेस भवन भग्नावस्था में भी क्यों न हो, लेकिन खड़ा था। उसके पीछे फिर से डॉ० खान साहब के मंत्रिमंडल का राजदंड था। हजारों खुदाई खिदमतगारों को क्लेश यातनायें सहनी पड़ी थीं, लेकिन उन्होंने लाखों नागरिकों की आत्मा जाग्रत रखी थी। बाकी सब मकान जायदाद सुरक्षित रहे। बादशाह खान की पसलियाँ हमेशा के लिये अव्यवस्थित हुई थीं फिर भी पठानों की रीढ़ सीधी रही। असत्य, अत्याचार, बेईमानी के बल पर चर्चिल ने कांग्रेस को पराजित किया लेकिन उसमें भी इंग्लैंड की रुग्णावस्था के बीज बोये गये, यह बाद के इतिहास ने देखा है। भारत के पल्ले सफलता पूरी तरह न आई हो, लेकिन राजकीय पतन से वह बहुत ऊँची रही। उसने

अन्यों के नाश के लिये गड्ढे नहीं खोदे, यह सच है। कभी कभी सफलता के साथ साथ असफलता का भयंकर जहर शरीर में प्रवेश करता है। इसमें से क्या अच्छा, क्या बुरा यह समझने की हरेक की ताकत जुदा जुदा रहेगी ही। इतिहास इसका साक्षी रहता है। बादशाह खान जले हुए कांग्रेस भवन की ओर आहें भरते हुए केवल ताकते नहीं रहे। वहाँ के खंभों को ठीक से देखा। 'ठीक है, इसमें काफी ताकत है' ऐसा कहते हुए स्वाती के शुद्ध प्रवाह में स्नान करने के लिये वे चले गये। उनके कान में 'करेंगे या मरेंगे' की धुन गूँज रही थी।

मंत्रिमंडल के काम में बादशाह खान को जोश नहीं दीखता था। दवा से बीमारी कुछ मात्रा में कम होती होगी लेकिन सही माने में सुहावना स्वास्थ्य कैसे मिल सकेगा? जनता की आजादी, उसकी समानता की निष्ठा, सरकार वृत्ति, उद्योगप्रियता, अनुशासन और तत्वनिष्ठा के बल पर बढ़ सकती है, और पनप सकती है, यह उनका सिद्धांत था। 'मंत्रिमंडल गरीबों का सवाल कैसे हल कर सकता है यह आप देखें। उसी के आधार पर मेरा आपको समर्थन मिलना निर्भर रहेगा' ऐसा उन्होंने मंत्रियों से कहा। रिहाई के बाद खुदाई खिदमतगारों की एक सभा उन्होंने तुरंत बुलाई। स्लेट पर लिखा हुआ पुराना सबक मिटाकर नया सबक लिखने की सलाह उन्होंने कार्यकर्ताओं को दी। वे खुद इस काम में लग गये।

उतमंजई मुकाम के एक महत्व के भाषण में उन्होंने कहा, 'इस सत्याग्रह आंदोलन में जनता ने जो कष्ट उठाये उसकी याद मुझे आती है लेकिन दुनिया में दिक्कतों के बिना किसी को भी कभी आजादी नहीं मिली। उल्टे हमें अपने त्याग की तुलना में अधिक लाभ हुआ है।

कुछ कार्यकर्ता अभी से पार्टीबाजी, गुटबाजी इस तरह की पैंतरेबाजी में उलझे हुए दीखते हैं। बयालीस का आंदोलन अभी पूरा नहीं हुआ है। तो फिर यह झंझट किसलिये? अगस्त की घोषणा काले पत्थर की लकीर जैसी शाश्वत है। हमारे शरीर में जान है तबतक उसी ध्येय के लिये हमें काम करते जाना चाहिये। बड़ी बड़ी लड़ाइयों में भी मोर्चे बदलने पड़ते हैं। कभी पीछे हटना पड़ता है, लेकिन पीछे हटने का अर्थ हार नहीं। हमारे ध्येय की पूर्ति जबतक नहीं होती तबतक हम लड़ते ही रहेंगे। अहिंसा का रास्ता हमारे लिए नया नहीं है, वैसे वह इतिहास में भी नया नहीं है। १४ सौ साल पहले मक्का में अकरम रसूल ने यही रास्ता बताया था। कइयों को

लगता है कि इस आंदोलन में हमारी हार हुई लेकिन अहिंसा के आंदोलन में हार कभी होती ही नहीं। १९१४ के राक्षसी युद्ध ने १९३९ का विश्वयुद्ध पैदा किया। हिंसक युद्ध से दूसरा युद्ध ही पैदा होता है। अहिंसा में वैसा नहीं है। हम १९३०-३२ में लड़े। १९४२ में लड़े। अब उस आंदोलन के बाद तीन साल बाद मिल रहे हैं। लेकिन इस आंदोलन से हमारी ताकत कम नहीं हुई यह मैं तुम्हारे चेहरों पर देख सकता हूँ। हमारी यह ताकत कोई भी हिंसा नष्ट नहीं कर सकती है। हमारी आजादी का निश्चय जबतक कम नहीं होता है तबतक हार कैसे और किसकी?

कुछ कार्यकर्ता मंत्रिमंडल के कार्यक्रम के बारे में चर्चा करने में व्यस्त दिखाई देते हैं। आप मुझे अपना बड़ा जनरल मानते हैं। आपके हित का क्या है क्या नहीं, यह देखने का काम मेरा है। मैं मंत्रिमंडल के कार्यक्रम के खिलाफ हूँ। यह मेरे पहले के अनुभवों के कारण ही है। जेल में ही कुछ कार्यकर्ता मुझसे मिल गये थे। मैं साफ खिलाफ हूँ ऐसा मैंने उनसे कहा था। गत मंत्रिमंडल के समय आप कायदेमंडल और दफ्तरों में घूमते फिरते देखे गये थे। खुदायी खिदमतगारों ने नवाब और खान की जगह ली थी। इसलिये लोगों का खयाल सिफारिशबाजी की ओर लगा था और जिनका काम नहीं हुआ वे लड़ाई झगड़े करते थे। अपने इच्छानुसार जनता की सेवा जहाँ हम नहीं कर पाते वहाँ शासन हाथ में लेने से क्या मतलब? शासन की या सरकार की ताकत बढ़ाने की मेरी इच्छा नहीं। लोगों की सेवा करने में हमारी ताकत बढ़े ऐसा मैं चाहता हूँ। १९३८-३९ के हमारे मंत्रिमंडल को अंग्रेजों ने मदद नहीं दी। उल्टे विरोध किया। अभी भी मैंने इशारा किया है। मंत्रिमंडल को यदि अंग्रेजों की मदद नहीं मिली और गरीबों की सेवा ठीक तरह से नहीं हो सकी तो उसकी जिम्मेदारी मैं नहीं लूँगा। हमारा लक्ष्य ९ अगस्त का प्रस्ताव है, यही ध्यान में रखो। 'आप मेरे दोस्त हैं, साथी हैं, ऐसे रहें या न रहें, मैं किसी को सख्ती से साथी बनाये रखने की इच्छा नहीं रखता। यह आपका सवाल है। आप मेरे मित्र रहें या न रहें, लेकिन असत्य की दोस्ती न रखें। कुरान में सत्य के सेवकों को 'हजूब अल्लाह' कहा है। ऐसे ही असत्य का समर्थन करनेवालों को 'हजबुल शैतान' कहा है। आप शैतान न बनें। जनता तक मेरा यह पैगाम पहुँचाइये। वह असत्य से अलग रहे। कुछ लोग हमसे जुदा मानते हैं। मुझे उसका दर्द है। हम सारे पठान एक ही हैं। हममें भेदभाव नहीं है, यह यदि सच है, तो उन सब का सुख दुख एक ही है, हम एक ही देश के

रहनुमा है, हमारा भला बुरा एक ही है तो फिर हम एक दूसरे से जुदा कैसे हो सकेंगे। दूसरे किसी को मैं अपने से जुदा नहीं मानता। लेकिन जो खुद को हमसे जुदा मानते हैं उनको मैं क्या कहता हूँ इस बारे में सोचना चाहिए।'

'डू ऑर डाइ या करेंगे या मरेंगे' इस प्रतिज्ञा से शुरू किया हुआ बयालीस का आंदोलन देश की आजाद निष्ठा की शोभा है इस नेकी से उमड़ पड़ा था और प्रकाशित भी हुआ था। युद्धकाल में अहिंसा की लड़ाई को जितनी सफलता मिलनी संभव रहती है उतनी सफलता इस आंदोलन को प्राप्त हुई थी। इस आंदोलन की सफलता असफलता नापने के लिये मापदंड के संबंध में पहले ही विवेचन हुआ है। बंदीशाला से रिहा हुए देशभक्त—स्मशान से वापस आनेवाले दुखियों के कदम से अपने घर की ओर बढ़ रहे थे ऐसा ऊपर कहा गया है, यह भी सही है। यह प्रखर—अंतिम आंदोलन था। देश ने उसमें स्वल्प कुरबानी नहीं की थी। हजारों नौजवान शहीद हुए थे। महायुद्ध के पाँच सालों में सारे संसार का स्वरूप बदल गया था फिर भी ब्रिटन की साम्राज्यवादी वृत्ति का कवच टूटा हुआ नहीं दीखता था। इसलिये इस आंदोलन का भवितव्य क्या होगा इस चिंता से जेल से रिहा होने वालों का आनंद उमड़ पड़ते ही उतर जाता था और उससे भी अधिक विह्वल करनेवाली बात कौमी द्वेष की भड़क रही चिनगारियाँ थीं। देश का विभाजन यही शुद्धिष्ट है ऐसा मुस्लिम लीग रट लगा रही थी। मुस्लिम लीग के इस जहरीले दाँत को उखाड़ फेंकने की हिम्मत किसी को नहीं थी। ऐसी ही विलक्षण मनोदशा में कार्यकर्ता और नेता धीरे धीरे रिहा हो रहे थे।

१९४५ के जून में सफलता के ढोल बजने लगे और उसके बाद इतनी तेजी से घटनायें घटती गयीं जिसका आज भी स्मरण होते ही दिल काँप उठता है। १९४५–४७ इन दो ढाई साल की अवधि के छोटे से पट्टे पर भारत के भविष्य की विविध और विलक्षण जन्मपत्री लिखी जा रही थी। इंच इंच कर आजादी के करीब आया हुआ देश आजादी से दूर कहीं खंदक में ढकेला जा रहा है इसके दुश्चिह्न दिखाई देते थे। ऊंचे पेड़ पर लगे फल तक हाथ पहुँच रहा हो इतने में फल तोड़ने के पहले ही नीचे से कोई पैर खींचे और चारों ओर से मधुमक्खियाँ धावा बोल दें, ऐसी स्थिति थी। पीछा करने से हैरान शिकारी को शिकार मिले और उसे गोली का निशाना बनाते ही शिकारी के पैरों में जहरीला साँप घेरा डाले ऐसी अवस्था १९४५–४६

साल में भारत की आजादी के लिये जिंदगी भर प्रयास करनेवाले देशभक्तों की हुई थी। आजादी वाग लगा रही थी, उसे लंबाने की या इंकार करने की ताकत विश्वयुद्ध के जेता ब्रिटिशों में नहीं थी। लेकिन आजादी मिलेगी यह निश्चित हो जाने के कारण सत्ता पर अपना हक बतलानेवाले लोग आगे दौड़े, पहले भले ही कोई लड़े झगड़े पर प्रत्यक्ष समय आते ही सब एक होकर आजादी का स्वागत करेंगे और देश का रथ सामंजस्य और सहकार से आगे ले जाने का यत्न करेंगे। यह अपेक्षा झूठी निकली। लड़ाई के दौरान लगाया हुआ सत्तात्याग और सत्याग्रह का दांव हमपर ही पलटा जा रहा था। यह राज्यकर्ता ने बदला लिया था या मुस्लिम लीग जैसी जातीय संगठन के नेताओं के क्षुद्र राजनीति का यह घोर पर्यवसान था या कांग्रेस द्वारा राजनीति में की हुई गलतियों का यह परिपाक था, इस संबंध में निष्पक्ष निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है। संभव है वह जल्द किया भी नहीं जायगा। केवल परिणाम को मद्देनजर रखते हुए परीक्षा की जाय तो मिली हुई असफलता भयानक है। इन सब घटनाओं की बारीकी से और जागरूकता से परीक्षण जरूरी लगता है।

रिहाई के बाद बादशाह खान उतमंजई गये और वहाँ के कार्यकर्ताओं की सभा में उन्होंने वर्तमान परिस्थिति के संबंध में अपनी नीति स्पष्ट की। स्वभावतः वे धर्मप्रवृत्ति के और सियासी हथकंडों में रस न लेनेवाले पुरुष हैं इसीलिये मंत्रिमंडल का आकर्षण उन्हें कभी नहीं रहा। लेकिन जनता का जीवन इन सत्ता-केंद्रों में उलझा हुआ रहने के कारण बहुतेरे कार्यकर्ताओं की आँखें अपने हाथ पाँव की अपेक्षा सत्ता की ओर लगी रहती हैं। बादशाह खान को वह जँचता नहीं था। वे अपना विचार और मत कार्यकर्ताओं के के सामने रखकर अपने काम में लग जाते हैं। "सरकारी घोषणा में कुछ भी हो, असली सत्ता देने के लिये सरकार तैयार नहीं है। आर्थिक सत्ता हाथ में लिये बगैर हमारे मंत्रिमंडल लोगों की आवश्यकताओं के प्रश्न हल नहीं कर सकेंगे। ऐसे मंत्रिमंडल की ताकत बढ़ाने के लिये मैं अपनी ताकत नहीं लगाऊँगा।" ऐसा उन्होंने स्पष्ट किया। लेकिन कांग्रेस के कार्यकर्ताओं की एक खासी जमात मंत्रिमंडल की ओर आकृष्ट हुई और वास्तव में अंत में उस सत्ता के जरिये ही जनता की सेवा साधी जाती है, सत्ता इस्तेमाल करके ही उस क्षेत्र में समझदार बन सकते हैं। सत्ता की ओर हमेशा अविश्वास से या गौण दृष्टिकोण रखकर नहीं, यह गांधी गफार खान जैसों के गले उतारना

कठिन होता है। लेकिन आम लोग यह दृष्टि नहीं रख पाते। इसीलिये बड़े भारी नेता और उनके दोयम अनुयायी में बहुत बड़ा फासला रहता है। परिणाम स्वरूप जनता नेताओं से दूर रहती है, दूर रखी भी जाती है।

सीमाप्रांत के कांग्रेस कार्यकर्ताओं में भी ये मतभेद थे ही, महात्मा गांधी को कई बार कांग्रेस का त्याग करना पड़ा। आंदोलन के साधन की दृष्टि से वे कांग्रेस को काम में लाते थे। बादशाह खान के विचार भी कुछ वैसे ही थे। अपितु उनकी दिक्कतें कई तरह की और कई गुनी बड़ी थीं। जिन पठानों में उन्हें काम करना था उनके प्रमुख नेता खान मलिक आदि बड़े बड़े जमींदार राज्यकर्ताओं के हाथ में थे और जनता पूर्ण अज्ञान और धर्म के पीछे पागल थी। इस जनता पर मुल्ला मौलवियों का काफी प्रभाव था इसलिये उनका काम करना अधिक दिक्कत भरा था। इसलिये कांग्रेस के नाम से अलग रखने का खुदाई खिदमतगारों का प्रयास था। लेकिन उनके इस असली उद्देश्य का ख्याल बहुत थोड़े लोगों ने किया। लोगों के होशियार, समझदार हुये बगैर आजादी का ठीक तरह से इस्तेमाल नहीं होगा इस दृढ़ सिद्धांत पर आधारित उनका काम था। रिहाई के बाद वही उन्होंने उठाया।

कांग्रेस कार्यकर्ताओं का मतभेद मिटाने के लिये और पुरोगामी दृष्टि रखनेवाले दलों को एक जगह लाने की दृष्टि से प्रांतीय कार्यकर्ताओं का संमेलन अप्रैल २०, २१, २२ को पेशावर में बुलाया गया। कांग्रेसजनों का यह संमेलन कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन जैसा ही भव्य और वैसा ही आकर्षक और प्रभावी हुआ। करीब एक लाख लोगों का समावेश हो सके, इतना भव्य मंडप खड़ा किया गया था। नेताओं और कार्यकर्ताओं के रहने आदि की व्यवस्था ठीक वैसे ही और आकर्षक पद्धति से की गई थी। झाँकी, रोशनी सुख सहूलियतों का और आरोग्यरक्षण आदि सब बातों में कांग्रेस अधिवेशन से होड़ लेनेवाली सारी व्यवस्था थी। सीमाप्रदेश के कांग्रेस कार्यकर्ताओं के संघटित परिश्रम के आदर्श की दृष्टि से वह संमेलन चिरस्मरणीय हुआ। अहिंसात्मक आंदोलन के कारण पठान कुचले नहीं गये, इसकी यह उत्तम मिसाल थी। मुख्यतः इस संमेलन के निमित्त सभी आजादप्रिय और पुरोगामी विचारों के राजकीय दलों को एक जगह लाने का कांग्रेस कार्यकर्ताओं का प्रयत्न रहा। पंजाब सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट दल, किसान दल, बंबई का मजदूर फेडरेशन आदि दलों में काम करनेवाले पठानों ने भी उसमें हिस्सा लिया। इससे उसके स्वरूप का ख्याल आ सकेगा। बादशाह खान हाल ही में रिहा होकर आये थे इसलिये उन्होंने संमेलन में हिस्सा लिया

और उसे रचनात्मक दृष्टि से मोड़ दिया। संमेलन के सदर डाक्टर सय्यद महमूद थे और प्रमुख अतिथियों में भूलाभाई देसाई, शेख अब्दुल्ला, डा० किचलु, बलूचिस्तान के गांधी अब्दुस्समदखान आदि नेता उपस्थित थे। संमेलन के दूसरे दिन की सभा में भाषण देते हुए बादशाह खान ने बयालीस के आंदोलन के संबंध में निराश हुए लोगों को अच्छी तरह से जगाया। "सत्याग्रही असफलता नहीं जानता है, उसे कोई हरा नहीं सकता क्योंकि वह अपने उसूल के लिये अंत तक लड़ता रहता है। मेरा उसूल मेरी आजादी है, मेरा रास्ता वही सत्याग्रह का। खुदाई खिदमतगारों ने काफी दिक्कतों का सामना किया, यह सही है। आपने केवल तालियाँ बजाई वह काफी नहीं है। आपने कुछ अधिकार कुरबानी की होती तो सफलता मिलती। आज देश में अनेक मतभेद और दल खड़े हुए हैं, मैं खुदाई खिदमतगार होने की वजह से दूसरों को उनके रास्ते से जाने देना अपना कर्तव्य मानता हूँ। लेकिन मेरा रास्ता तय है। आप लोगों में जो निराशा पैदा हुई है वह मुझे पहले हटानी है।" ब्रिटिशों को वास्तव में सत्ता नहीं छोड़नी है, राजकीय सुधारों की घोषणा निरा तमाशा है। इस संबंध में बोलते हुए उन्होंने कहा, आजाद पठान टोलियाँ हमारे मुल्क पर डाके डालती हैं। आदमी भगाये जाते हैं। इसका इलाज करने के लिये मैंने प्रयत्न किये। १९३२ में उस हिस्से में हमारे कार्यकर्ता भेजे गये। लेकिन उन्हें सरकार ने गिरफ्तार करके जेल भेजा। टोलीवालों को हम अपना दोस्त बना पाये तो सरकार का उसमें कौन-सा नुक्सान था। सरकार प्रामाणिक हो तो वह इस काम में हमें मदद दे। ऐसा हुआ तो थोड़े ही दिनों में हिंदुस्तान के दुश्मन इस संज्ञा से उनके नाम का ढिंढोरा पीटा जाता है। ऐसे टोलीवाले हमारे दोस्त है, ऐसा प्रतीत होगा।"

इस संमेलन में भाषण करते हुए कश्मीर के नेता शेख अब्दुल्ला ने जिना का नेतृत्व लोकप्रिय क्यों होता है, इसकी ठीक से जाँच न की गयी तो हम गफलत में रहेंगे, ऐसा कहा। उन्होंने कहा, "मौलाना आजाद, बादशाह खान या डॉ० सय्यद महमूद का स्वार्थत्याग, उनकी विद्वत्ता, उनकी लोकप्रियता सब लोग जानते हैं लेकिन ये नेता धर्म के नेता नहीं हैं, ये तो राजनीति के नेता गिने जाते हैं और त्याग और धर्मनिष्ठा की दृष्टि से उनके मुकाबले में जरा भी न टिकनेवाले जिना के पीछे मुसलमान दौड़ते हैं! मुसलमान अंधे नहीं हैं। लेकिन असल में यह क्या मामला है यह ठीक से स्पष्ट नहीं हुआ तो सफलता नहीं मिल सकेगी।"

: २० :

राजकीय भूचाल का प्रारंभ

१९४५ के डॉ० खान मंत्रिमंडल का कारोबार पहले खान मंत्रिमंडल की ही तरह ठीक ढंग से चल रहा था। लेकिन लीग के औरंगजेब मंत्रिमंडल को परास्त करके वह अधिकारारूढ हुआ था। इसके बाद लीग ने सब जगह झूठा धर्म प्रचार और जोर जबरदस्ती शुरू की। इस तरह के झगड़े का कारण सत्तास्पर्धा ही रहती है इसका अनुभव खान मंत्रिमंडल को करना पड़ा।

डॉ० खान साहब की एक लड़की ने कर्नल जसवंतसिंह ईसाई सिख से शादी की। इस घटना का फायदा उठाकर मौका ढूँढ़नेवाली लीग ने डॉ० खान साहब के खिलाफ आंदोलन शुरू किया। डॉ० खान की एक पत्नी आस्ट्रेलियन थी। उनकी लड़की की शादी उसकी इच्छा और आजादी की बात थी लेकिन कुछ मुसलमानों को यह इस्लाम पर आघात लगा। इस निमित्त कुछ पुराने कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने कांग्रेस छोड़ा और वे मुस्लिम लीग में शामिल हो गये। लेकिन इससे भी अधिक भयानक प्रक्षोभ ऐसी ही दूसरी एक घटना से हुआ। हाजरा के राजकीय दंगे में शहीद हुए एक सिख की विधवा को मुसलमान बनाया गया और एक मुसलमान से उसकी शादी कर दी गयी। लड़की को अपने संरक्षण में देने के लिए उसके पिता ने अर्जी दी। डॉ० खान साहब ने यह मामला अदालत को सौंपा। उसके निर्णय के अनुसार सरकार ने लड़की को उसके पिता को लौटाने की आज्ञा दी। लेकिन इस घटना से खान मंत्रिमंडल के खिलाफ शब्दशः प्रक्षोभ की आग भड़कायी गयी। इसके खिलाफ आंदोलन खड़ा करनेवालों में कांग्रेस के एक जमाने के नेता कय्यूम खान और अब्दुल गफूर खान आदि थे। उन्होंने प्रचंड आंदोलन खड़ा किया और डॉ० खान के बंगले पर मोर्चा खड़ा किया गया। इस आंदोलन में सैकड़ों महिलाओं ने नेतृत्व किया। यह आंदोलन बहुत दिनों तक सुलगता रहा। यह आंदोलन जिना के डायरेक्ट ऐक्शन का एक हिस्सा रहा। महिलायें बड़ी तादाद में हिस्सा लेती थीं, कानून तोड़कर

गिरफ्तार होने तक रास्ता रोक रखती थीं। इस तरह लोगों में धार्मिक भावना उभाड़ कर राज्य व्यवस्था पर आघात शुरू हुए और इन सबका असली कारण मुसलमानों की अधिक आबादीवाले इस प्रांत पर कांग्रेस दल का मंत्रिमंडल था।

कांग्रेस का नेतृत्व जिना की आँखों में कांटे की तरह चुभता था। मुसलमानों का नेतृत्व करनेवाली एक मात्र संस्था लीग है, ऐसा जिना का दावा था और उनकी खुद की सत्ता माननेवाला एक भी मंत्रिमंडल भारत में नहीं था। बंगाल का मंत्रिमंडल लीग का तो था लेकिन वह भी सही माने में नहीं। उल्टे कांग्रेस का आदेश मिलते ही सात प्रांतों के राज्यकर्ता सत्ता स्थानों को ठुकराकर बाहर निकले थे। इस अनुशासनबद्ध संघटन के प्रति संतोष और आनंद अनुभव करने की एवज में दिनोंदिन जिना साहब कांग्रेस से द्वेष करने लगे। उन्हें ईर्षा ने पागल बना दिया और उस मनः स्थिति में वे अपनी राजकीय चालें खेलने लगे। देशहित का या मुस्लिमों की भलाई का उन्हें विस्मरण होने लगा था। उनके जैसे देशप्रेमी बुद्धिमान् की यह विडंबना आश्चर्यजनक थी। अन्यथा उनके इस बर्ताव का अर्थ नहीं लगाया जा सकता है।

लेकिन मुस्लिम लीग की इस बढ़ती हुई लोकप्रियता के पीछे सिर्फ जनता का धर्मप्रेम या लीग के प्रति निष्ठा ही नहीं थी, बल्कि हिंदुस्तान की ब्रिटिश हुकूमत खत्म न हो इसके लिये प्रयत्नशील गोरों के नौकरशाही की प्रेरणा और शक्ति भी थी। सीमाप्रांत के गवर्नर कनिंगहम यह चाल चल रहे थे। एक तरफ डॉ० खान साहब के जिगरी दोस्त के नाते उनके साथ घंटों तक ब्रिज खेलते रहते थे और दूसरी ओर सत्ता के लिये लालायित नेताओं को नचाते थे। दस-बीस साल जिन्होंने स्वार्थ त्याग किया और यातनायें सहीं ऐसे कई खुदाई खिदमतगार भी हाथ में आई सत्ता में कुछ हिस्सा अपनाने के लिये लालायित हो उठे थे। उनमें से कुछ समझदार, चालबाज लोगों को अपने दल में लाने का काम लीग के नेताओं ने शुरू किया। धर्मांधता के प्रचार का सही माने में शिकार होनेवाला एक वर्ग रहता है। इन सभी में से मौकापरस्त, स्वार्थी और चालबाज लोगों को ब्रिटिश नौकरशाही नचाती थी।

डॉ० खान मंत्रिमंडल कनिंगहम के अधीन घोड़े पर सवार हुआ था। और इस परावलंबी जीवन की आँच उसको लगने लगी थी। उसके द्वारा

खुद बादशाह खान को, डॉ० खान साहब के पुलिस महकमे द्वारा रोकने का चमत्कार हुआ। तीन साल के बाद रिहा होकर आने के बाद बादशाह खान को जगह-जगह के कार्यकर्ताओं, दोस्तों से मिलना था। इसके लिए वे दि० २८ जुलाई को हजारा जिले के मित्रों से मिलने के लिये निकले। साथ में प्रांतीय कांग्रेस के अध्यक्ष अलिगुल खान और चीफ पार्लमेंटरी सेक्रेटरी अमीर मुहम्मद भी थे। अमीर मुहम्मद की गाड़ी से ही वे चले थे। वहाँ कुछ रास्ता पंजाब से होता हुआ जाता था। अटक के पुल पर पहुँचते ही फ्रांटियर पुलिस ने ही पंजाब सरकार का पंजाब की सीमा में प्रवेश करने के लिये प्रतिबंध लगानेवाला हुक्म उनसे बताया। वह देखकर और उसपर दस्तखत करके वे आगे निकले। पुल पार होते ही पंजाब सरकार की सीमा लगती है इसलिये उस सरकार के प्रवेश बंदी के हुक्म की उनपर तामीली हुई। उसे लेकर उनकी गाड़ी आगे बढ़ी इतने में सामने से दूसरी मोटर आई और उसमें बैठे हुये अधिकारियों ने उनकी गाड़ी के सामने अपनी गाड़ी रोकी। "आप आगे निकलेंगे तो मुझे ड्रायवर को गिरफ्तार करना पड़ेगा।" ऐसा उस पुलिस अधिकारी ने बादशाह खान को सुनाया।

उसके बाद बादशाह खान गाड़ी से उतर पड़े और कंबेलपुर की ओर चलने लगे। फिर भी पुलिस ने रोका ही। उसके बाद एक पेड़ के नीचे उन्होंने अपना बिस्तर खोला और वे सो गये। वहाँ उन्हें गहरी नींद लगी। जगे तब उन्हें प्यास और भूख लगी, लेकिन उनके खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी। अधिकारियों ने खुद खान साहब को भी कहीं जाने देने का विरोध किया। यह देखकर खान साहब ने पड़ोस के एक गांव में संदेश भेजा। लेकिन संदेश पहुँचने के पहले ही एक अधिकारी ने आकर "आपको गिरफ्तार किया जाता है।" ऐसा कहा। उन्हें एक मोटर में बैठाया गया। प्रत्यक्ष गिरफ्तारी हुई इसलिये खान साहब को कुछ अच्छा लगा। क्योंकि उसके बाद उनके खाने-पीने की कुछ तो व्यवस्था होगी ही इस समाधान में वे थे। लेकिन वैसा नहीं हुआ। उनकी मोटर खुशालगढ़ की दिशा में बढ़ रही थी। रात के दस बज चुके थे। रास्ते में पुलिस ने रोटी खाते समय उसमें से एक रोटी बादशाह खान को दी। उन्होंने थोड़े दूध के साथ उसे खाया। गाड़ी की आगे की बत्ती चली जाने से गाड़ी रास्ते में ही अटक गयी। इस तरह आनेवाले देश के स्वातंत्र्य का स्वरूप बादशाह खान को अपनी रिहाई के चार ही महीने बाद ही अनुभव हुआ। वहाँ भावी जीवन के कालक्रमण के घने अंधःकार का भी दर्शन उन्हें हुआ। दोना

प्रदेश में केवल उनके भाई का ही नहीं, कांग्रेस की सत्ता के निर्देशन में शासन चल रहा था। पंजाब में खिजर हयात खान के यूनियन दल की सत्ता थी। उन दोनों को साक्षी रखकर इस महान देशभक्त का अपमान होते देखकर समय किस दिशा से जा रहा है यह हमने ठीक तरह से समझा नहीं अन्यथा इसका अनुभव हुये बगैर नहीं रहता।

इस प्रसंग के संबंध में काफी होहल्ला मचने के बाद भारत सरकार ने ७ अगस्त १९४५ को इसका स्पष्टीकरण प्रकाशित किया। खान साहब की सभाओं के कार्यक्रम प्रकाशित हुये थे उसके खिलाफ मुस्लिम लीग ने निर्देशन करने का जाहिर किया था। इस कारण गड़बड़ी टालने के लिये प्रतिबंध का हुक्म पंजाब सरकार को निकालना पड़ा था। स्पष्टीकरण में भी किसको और कैसे स्वातंत्र्य के लिये सरकार सुरक्षा देने की सोच रही थी यह साफ होता है।

खुद खान साहब ने यह जता दिया। "मैं आमसभा में भाषण करनेवाला था ही नहीं, लेकिन शांतिवादी सामान्य नागरिक के अधिकार भी मुझे न हों तो ऐसे कहीं के भी हुक्म मैं नहीं मानूँगा।" इस घटना के संबंध में अपने दि० ३० जुलाई के पत्रक में खानसाहब इस नाट्यमय गिरफ्तारी का वर्णन करते हुये कहते हैं: "अब कम से कम खाने-पीने की कुछ व्यवस्था होगी और आराम मिलेगा इसलिये मैं थोड़ा खुश था। लेकिन मुझे खुशालगढ़ की ओर ले जाया जा रहा था यह ध्यान में आते ही मुझे आश्चर्य हुआ। तब रात १० बजने के करीब हम जएड पहुँचे। वहाँ गाड़ी की बत्ती गयी इसलिये वहीं सफर रुका। साथ के पुलिस रोटी खाने बैठे। उन्होंने अपनी रोटी में से एक मुझे दी और मैंने वह थोड़े दूध के साथ खाई। रात करीब एक बजे हम खुशहालगढ़ पुल के पास पहुँचे (सीमाप्रांत)। वहाँ पुलिस के साथ ही उनकी ही जगह में रात बिताई। मैं अब आजाद हुआ था। सुबह वहाँ के खुदाई खिदमतगारों के साथ नमाज पढ़ी और चाय ली। बाद रेलगाड़ी से कैंबलपुर आया (पंजाब) क्योंकि मेरे पास पैसे नहीं थे। इसलिये टिकट भी नहीं लिया था। पंजाब सरकार ने मेरी इच्छा के खिलाफ मुझे वहाँ छोड़ा था। इसलिये वे मेरी अबोटाबाद जाने की व्यवस्था करेंगे, ऐसी आशा थी। लेकिन कैंबेलपुर पहुंचते ही वहाँ के पुलिस ने मुझे एक फौजी लॉरी में बैठाया और जैसे किसी बदमाश गुनहगार को पुलिस को सौंपते हैं उसी पद्धति से मुझे उन्होंने अबोटाबाद पुलिस को सौंपा।" और

बादशाह खान फिर अपने भाई के राज में आजादी से घूमने-फिरने के लिये मुक्त हुये।

वैवेल योजना आ गयी थी। भारत की पूर्व सीमा पर युद्ध में सफलता पाने के लिये भारतीय नेताओं की हार्दिक सहायता ब्रिटेन को मिले इसके लिये अमेरिका अथक प्रयास कर रहा था। कांग्रेस नेता फिर से युद्ध सहकार्य के लिये तैयार हुये थे। उस जमाने में एक महान भारतीय नेता का जुलूस किसी दरवेश की तरह निकाला जा सकता था। कोई गोरा जिलाधिकारी यह कर सकता था। मुस्लिम लीग के मोर्चे के कारण अमन नहीं रहेगा इसलिये गफार खान जैसे नेता को भूखा प्यासा पुलिस की लॉरी में घुमाया जा सकता था और डा० खान साहब का मंत्रि मंडल होते हुए भी वह कुछ कर नहीं सकता था। यह सब कैसे हो सकता था यह समझ में नहीं आता। हमारी आजादी का स्वरूप हमें बताने के लिये बादशाह खान को समारोह की जरूरत नहीं थी। यह उन्होंने ठीक तरह से आँका था। लेकिन उनके सहकारियों की आँखें खुलती नहीं थीं। वेवेल साहब दरअसल सीधे लाजमी वाइसराय थे ऐसी प्रशंसा मौ० आजाद ने की है और खान बंधु पठान कार्यकर्ताओं के साथ ठीक तरह से पेश नहीं आते थे इसलिये वे सीमाप्रांत में कुछ अप्रिय होने लगे थे ऐसा भी आजाद ने लिख रखा है। लार्ड वेवेल का बड़प्पन आजाद को न जाने कब और कैसे मालूम हुआ होगा लेकिन बादशाह खान का त्यागी और तेजस्वी जीवन उन्हें दीर्घ काल तक सुपरिचित होते हुये भी उन्होंने ऐसा विधान किया इसका दर्द हुये बगैर नहीं रहता।

हजारों तत्वनिष्ठ खुदाई खिदमतगार बादशाह खान ने तैयार किये। चाय बिस्कुट जैसे कृत्रिम आवभगत के कारण वे तैयार नहीं हुए थे। ये खिदमतगार अपनी गरीबी की रोटी पर हजारों स्वयंसेवकों के शिविर चलाते थे। बाहरी धन की हवा भी न लगे, उससे बदहजमी न हो, ऐसी सीख बादशाह खान से की थी। बादशाह खान आगामी कौमी हेप फूट निकलने के ख्वाब देखते होंगे ऐसा दीखता है। इसीलिये वे शिमला परिषद में या वैसे ही कार्यक्रम में हिस्सा लेते हुए देखे गये फिर भी उन्हें उन कार्यक्रमों पर भरोसा नहीं था। 'मेरे भाई की और मेरी राय एक है, ऐसा न मानें। मंत्रिमंडल में गरीबों का मसला हल करने की ताकत नहीं है, बड़े बड़े लोगों के लिये वह खिलौना है।' ऐसा वे कार्यकर्ताओं को जताते थे। और उनका

यह कहना १९४५ में दो मर्तबा अत्यंत भयानक ढंग का प्रतीत हुआ था। जुलाई के आखिर में अटक पुल पर उन्हें गिरफ्तार किया गया था, इसका वर्णन ऊपर आ चुका है। इस गिरफ्तारी के संबंध में भारत सरकार द्वारा निकाले हुये पत्र में खेद व्यक्त करने की बात तो दूर उल्टे पंजाब सरकार का समर्थन किया गया था। अलावा इसके इस गिरफ्तारी की अवधि में गफार खान की सारी व्यवस्था ठीक तरह से रखी गयी थी ऐसा सरासर गलत विधान इस सरकारी पत्र में किया गया था। उनके खाने पीने के बारे में कितनी और कैसी लापरवाही बरती गयी थी यह खुद बादशाह खान ने ही कहा है। अतः सच कौन और झूठ कौन है, यह पाठक समझ सकेंगे।

उनके अवमान का प्रसंग इतने पर ही पूरा नहीं हुआ था। सितंबर महीने में बादशाह खान ने फिर हजारा जिले और पंजाब के छछ हिस्से के मित्रों से मिलने के लिये जाने की सोचा। इस मर्तबा उन्होंने कुछ खुदाई खिदमतगारों को पहले ही आगे भेजा। सभा आदि न करने का भी सुझाया। केवल छछ विभाग के पठान कार्यकर्ताओं को एक जगह मिलना संभव हो इसलिये यह व्यवस्था की गयी थी। वहाँ से वे हजारा जिले (फ्रांटियर) जाने वाले थे। लेकिन उनके उधर जाने के लिये निकलने से पहले ही कँवेलपुर भाग के कमिश्नर की ओर से चारसद्दा में (पंजाब) जाने के लिये पाबंदी का हुक्म उन पर तामील किया गया। अटक पुल पर फ्रांटियर पुलिस ने ही उन्हें रोका था। लेकिन कुछ समय फोन पर बातचीत होने के पश्चात उन्हें जाने दिया लेकिन पुल के दूसरे सिरे पर पहुँचते ही उन्हें गिरफ्तार कर किया गया। पहली मर्तबा जैसा ही सारा तमाशा फिर हुआ और उन्हें अबोटाबाद लाकर छोड़ा गया।

पंजाब के अनुभव जैसा ही नया अनुभव बादशाह खान को काश्मीर में भी मिला। ३ अगस्त को कश्मीर परिषद की सभा सुपुर में हुई। शेख अब्दुल्ला के खास निमंत्रण पर बादशाह खान उधर गये। पंडित जी शिमला परिषद के बाद कुछ दिन आराम करने के लिये कश्मीर में रह रहे थे। वे भी इस परिषद में उपस्थित रहे। जनता ने इन दोनों महान नेताओं पर शब्दशः असीम प्रेम और उसके साथ ही साथ कश्मीरी फूलों की वृष्टि की। लेकिन इस देश में जनता और उसके लाडले नेताओं के अलावा तीसरी शक्ति भी थी। इस पुष्प वृष्टि के बाद उन पर पत्थर भी बरसाये गये। पंडित जी और शेख अब्दुल्ला को कुछ तकलीफ हुई। ये पत्थर बरसाने वाले हाथ किसके थे? कश्मीर के महाराजा के हस्तकों

के वे पत्थर थे, यह सही है। लेकिन मुस्लिम लीग के नेता वहाँ आये होते और उनकी परिषद होती तो क्या ये पत्थर पड़ते? आजादी के लिये लड़ने वालों की सारी ताकत कमजोर करने के लिये यह सब होता था। देश की कौमी संस्थायें, संस्थानिक आदि प्रतिगामी लोगों के द्वारा राज्य-कर्ता यह सब करवा लेते थे। अटक पुल की गिरफ्तारी का अनुभव लेकर ही बादशाह खान नुपूर की परिषद के लिये आये थे। वहाँ पत्थरवाली का उन्हें अनुभव नहीं मिला था। लेकिन इस पत्थर की वृष्टि के लिये उन्होंने लोगों का अभिनंदन किया। 'पत्थर फेंकने तक की हिम्मत आप लोगों में आयी, यह प्रगति कुछ कम नहीं है। बाहर से नेता आये तो उन्हें देखने में भी आप डरते थे। अब उनपर पत्थरों की बौछार करने जैसी हिम्मत आप में आयी यही सौभाग्य की बात है।' ऐसे उद्‌गार उन्होंने इस सभा में निकाले, संस्थानों की जनता के आंदोलनों को कांग्रेस नेता प्रोत्साहन और मदद करते थे तो उन आंदोलनों को कुचलने के लिये संस्थानिकों को सब तरह की सहायता राज्यकर्ता और जातिवादी करते थे। इस दूसरे प्रकार का चित्र नुपूर में हुई संस्थानों के प्रजापरिषद में दिखाई दिया। सरकार की इस नीति का लोकहित या लोकशाही के संरक्षण से संबंध था क्या? सच्चे लोकनेताओं को पत्थर खाने की नौबत लानेवाली लोकशाही के उदय का वह प्रसाद चिह्न था।

शिमला परिषद जिना के दुराग्रह के कारण टूटा जिसका ढिंढोरा दुनिया में हुआ है और वह सच भी है। अन्तरिम सरकार के लिये चुने जानेवाले मुसलमान प्रतिनिधि केवल मुस्लिम लीग ही चुन सकेगी, यह अधिकार अन्य किसी संगठन को न रहे जिना की इस जिद को मानने का भार लार्ड वेवेल के मत्थे मढ़ा जाता है लेकिन खुद वेवेल स्वतंत्र मुसलमान नेताओं का चुनाव करना चाहते थे लेकिन भारत मंत्री एमरी के दबाव के कारण वेवेल बदले, वैसे ही कांग्रेस अध्यक्ष आजाद ने भी गांधी जी और कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों को बताये बगैर ही देश विघायक नीति का समर्थन किया था, यह अब मालूम हुआ है। मौ० आजाद के उस अजीब समर्थन पर अब पूरा प्रकाश डाला गया है।

सिर्फ लीग के प्रतिनिधित्व के मुद्दे पर कैबिनेट मिशन की योजना तहस नहस न हो इसलिये आजाद ने इस जहर के घूंट को पीने का साहस किया ऐसा इस तथ्य का विस्फोट करनेवाले सुधीर घोष ही मानते हैं। यही संभव

भी है। मुख्य सवाल है ये अड़ंगे लगानेवाले कौन थे? ब्रिटिश राज्यकर्ता या जिना। आजाद द्वारा किया हुआ बर्ताव क्षम्य या अक्षम्य है, यह अलग सवाल है। कांग्रेस नेताओं की प्रतिष्ठा की दृष्टि से वह महा भयानक घटना सिद्ध हुई। लेकिन जिना की मांग का पुरजोर समर्थन करनेवाले एमरी थे। इसका जोरदार सबूत, जिना के एक जमाने के दाहिने हाथ समझे जानेवाले खलिक उजमान के आत्मचरित्र में है। वे कहते हैं :—

'दिस वाज दि लास्ट मेमोरेब्ल ऐक्ट आफ मि० एमरी बिफोर ही हैन्डेड ओवर चार्ज आफ दिस आफिस।' (पाथवेड्ड पाकिस्तान, पे० ३६८) यह उल्लेख लीग के एकमेव प्रतिनिधित्व के बारे में है।

बादशाह खान से ब्रिटिशों की यह राजनीति सही नहीं जाती थी। उनके प्रति अविश्वास उनके दिल में इतनी गहराई से पैठ गया था कि राज्यकर्ताओं से विचार-विमर्श करने के लिये वे तैयार नहीं होते थे। इसीलिये पार्लमेंटरी पद्धति के कार्यक्रम के बारे में उन्हें श्रद्धा नहीं थी लेकिन इस कार्यक्रम में उन्हें हिस्सा लेना पड़ता था।

गवर्नर कनिंघम की करतूतों के बारे में ऊपर कहा ही गया है। सीमाप्रांत में अनाज का अकाल बढ़ रहा था और औरंगजेब मंत्रिमंडल के जमाने में रिश्वतखोरी के कारण पतित हुई नौकरशाही से काम लेने का काम डॉ० खान साहब के गले डाला गया था। डॉ० खान मंत्रिमंडल ने रिश्वतखोरी की गंदगी ढूंढ़ निकालने के लिये एक समिति नियुक्त की और पूछताछ भी हुई लेकिन वह गंदगी कनिंघम ने साफ नहीं करने दी। उसका विवरण आखिर तक अंधेरे में रहा।

इस कमजोरी के कारण काली करतूतों से संबंधित काले और गोरे अधिकारी, खान मंत्रिमंडल के केवल छिपे दुश्मन बने। इस सारी पार्श्वभूमि में मुस्लिम लीग का (धर्म?) प्रचार सीमा प्रांत में शुरू हुआ था। वस्तुतः औरंगजेब मंत्रिमंडल के कारण सीमा प्रांत पर अनेक आपदायें आयी थीं, उनमें से एक वहां का अकाल भी था। लोगों के लिये लाया हुआ अनाज जनता तक कभी पहुँचा ही नहीं लेकिन ऐसे काले कारनामों के कारण निकाले गये मंत्री और उनके पिछलग्गू धर्म रक्षक मुल्ला-मौलवियों ने खान मंत्रिमंडल के खिलाफ झूठी अफवाहें फैलाना शुरू किया। डॉ० खान साहब की लड़की की शादी और हजारा जिले के सिख लड़की का धर्मांतर ऐसे कारणों के बल पेशावर के मुस्लिम लीगवालों ने वहां कैसा हो-हल्ला मचाया

था इसका थोड़ा निर्देश पहले हो चुका है। इस आंदोलन में पेशावर में महिलाओं ने १९४५ में ही 'लेके रहेंगे पाकिस्तान, बट के रहेगा हिंदुस्तान' विभाजन की आवाज उठायी थी और भिन्न-भिन्न कारणों से कांग्रेस के असंतुष्ट कार्यकर्ता मुस्लिम लीग में जा मिले थे। इस कांग्रेस विरोधी आंदोलन का नेतृत्व कांग्रेस आंदोलन में कई मर्तबा जेल यात्रा किये हुए अरबाब अब्दुल गफ़ूर खान के सर पर था और उनके पीछे गोरे अधिकारी जमींदार और नवाब खड़े बन गये थे, क्योंकि जिना साहब जल्द ही तशरीफ लानेवाले थे। चुनाव प्रचार के उद्देश्य से हिंदुस्तान के इस्लाम धर्म की आफत का संदेश उन्हें सीमा प्रदेश में पहुँचाना था। शिमला परिषद् के वक्त जिनासाहब द्वारा किया हुआ एकमेव प्रतिनिधित्व का दावा वेवेल ने नहीं माना था। वह शल्य उखाड़ फेंकने के लिये जिना कटिबद्ध हुये थे और उसके लिये पूर्व तैयारी, डॉ० खान साहब के दोस्त गवर्नर कनिंगहॅम और अन्य अधिकारी कैसे करते थे इसका वर्णन डॅ० युनूस ने किया है। वे कहते हैं, 'मीनह्वाइल दी फोर्सेज आफ दि ऐक्शन वेयर कस्टरिंग एण्ड वी हैव सफिशियेंट प्रूफ इन अवर हैंड्स दैट दि गवर्नर एण्ड दि एंटायर आयरकी आफ अफिशियल वेयर शेपरडिंग दि पावरफुल लैंडलार्डस इनटू दी लीग फोल्ड। आल दि बिग पीर्स सडेनली केम आउट आफ देयर हाइडिंग प्लेसेज एण्ड सिंकिंग देयर डिफरेंसेज ओवर'''।'

'तुर्किस्तान की क्रांति के समय तो खुद तुर्कों को इन मुल्ला मौलवियों ने काफिर ठहराया था ही। इन फकीरों की करतूतों से ईरान खोखला किया गया था। अमानुल्ला के खिलाफ इन्होंने ही जाहिरनामे निकाल कर ब्रिटिशों को मुहय्या किया था। मध्यपूर्व का इतिहास मुस्लिम धर्म नेताओं के इन काले कारनामों से भरा है और अपने राज्यकर्ताओं की आवश्यकता के समय ही ये नेता बिल्कुल ईश्वर के भेजे हों, इस रूप में उनकी मदद में आते हैं' (युनूस)।

सीमा प्रांत में जिनासाहब के स्वागत के लिये ऐसे धर्मधुरंधर के जत्थे पोलिटिकल महकमे की प्रेरणा से सब जगह इकट्ठा हो रहे थे। नवंबर के अंत में जिना ने पेशावर को तूफानी भेंट दी। पठानों के समर्थन पर उनका कभी भी भरोसा नहीं था। लेकिन जगह जगह हुए उनके शाही स्वागत से उनकी आँखों में भी चकाचौंध हो गई। 'फ्रंटियर प्रांत यह मुस्लिम लीग के पीछे ही है।' शूर सैनिक को शोभा दें, ऐसे नारों के बीच वे सीमा प्रांत से वापस गये। इस परिस्थिति के कारण असमंजस में पड़े हुए कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने

बादशाह खान को चुनाव प्रचार में मदद देने के लिये गिड़गिड़ाते हुए प्रार्थना की। तो भी उन्होंने उस काम पर विशेष ध्यान नहीं दिया। लोगों ने बादशाह खान के कई जुलूस खुद निकाले। इसी रास्ते से जिना का भी जुलूस निकला था। देखनेवाले लोग भी शायद उतने ही होंगे। एक जुलूस लोगों ने खुद और तब जब सरकार खिलाफ थी निकाला तो जिना का जुलूस सरकारी साधनों की सहायता से धूमधाम से निकला था। इस वक्त जनता केवल प्रेक्षक थी लेकिन यह फर्क भोले भालों के दिमाग में उतरने में देर लगती है। जनता का अज्ञान ही राजकीय नेताओं की बड़ी पूँजी है।

सरकारी अधिकारियों की छिपी कार्यवाही और पीर फकीरों की खुली कार्यवाही के कारण बादशाह खान बहुत दुखी हुए, इसलिये लोगों की गलतफहमी दूर करने के लिये वे चुनाव प्रचार के लिए बाहर निकले। दिसंबर के मध्य में कायदेमंडल का चुनाव हुआ, सीमा प्रांत की एक एक जगह के लिये यह लड़ाई थी। जिना साहब ने फ्रांटियर जीतने की घोषणा खुद ही की थी। फिर भी मुस्लिम लीग की ओर से वहाँ चुनाव वे नहीं लड़े। लीग के समर्थन प्राप्त स्वतंत्र उम्मीदवारों की मार्फत यह चुनाव लड़ा गया। कारण दिया गया कि 'यह संयुक्त मतदाता संघ है' जहाँ मुसलमानों के अतिरिक्त केवल पाँच छः फीसदी लोग थे वहाँ सयुक्त मतदाता संघ का डर लगे इतने जिना साहब अनभिज्ञ थे या फ्रांटियर जीत लिया यह उनकी घोषणा खोखली थी? अच्छा, संयुक्त मतदाता संघ उन्हें बेभरोसे का लगा ऐसा माना जाय तो जमींदार मतदाता संघ के स्थान के लिये आम चुनाव के वक्त लीग ने अपना अधिकृत उम्मीदवार क्यों खड़ा किया। यह जमींदार वर्ग निश्चित रूप से सरकारी अधिकारियों के कब्जे में था ऐसा आश्वासन मिलने पर ही उन्होंने यह निर्णय लिया था।

पूरे भारत में आम चुनाव में भारी मात्रा में लीग को सफलता मिली थी यह सच हो तो भी सीमा प्रांत की परिस्थिति अलग थी और उसका कारण खुदाई खिदमतगार है। उन्होंने बहुत अरसे तक जनता की सेवा की थी। वे जनता का जीवन जीते थे और उनके सुख दुख से एकरूप थे। लेकिन सेवा का यह पहाड़ भी स्वार्थ और मत्सर ने जल्द ही अंदर से कुरेद डाला। दिसंबर में प्रचार के लिये बाहर निकलते ही पहले ही भाषण में बादशाह खान ने कहा 'ब्रिटिश राज्यकर्ता सत्ता छोड़ने के लिये तैयार हैं यह ढोंग है, एक मुँह से वे सत्ता छोड़ने की बातें करते हैं और दूसरी ओर यह

सत्ता जनता के पास न पहुँचे इस तरह की कार्यवाही करने में सरकारी यंत्र लगा रहता है। ऐसा प्रखर हमला उन्होंने किया। 'इस प्रांत का हर अधिकारी हमारे खिलाफ कारनामें रचने में व्यस्त है। हर जिले से मिलनेवाली जानकारी के आधार पर यह स्पष्ट होता है। गवर्नर से लेकर चपरासी तक सब अधिकारी धोखेबाजी करने के काम में लगे हुए हैं। कांग्रेस ने ये चुनाव, अपने स्वाधीनता के आंदोलन की पूर्णता का एक हिस्सा है, इस नाते लड़ने का सोचा है।' ऐसा उन्होंने कहा। १९४२ के स्वाधीनता आंदोलन का यह साफ मकसद कांग्रेस नेताओं में से कितने लोगों के ख्याल में उस वक्त रहा होगा, यह सवाल ही है।

प्रवाहपतित होकर राजनीति करनेवालों में बादशाह खान नहीं है। जिना या सरकारी अधिकारियों की चालबाजी से वे विचलित भी नहीं हुए। अपने कार्यकर्ताओं में से जिन्होंने फूट डालना शुरू किया था उन्हें भी उन्होंने 'आप अपने रास्ते से जाइये लेकिन हजबुल शैतान न बनें' ऐसा कहा। 'आपको वोट डालते समय अपनी स्वाधीनता के लिये ही वोट देने हैं। ब्रिटिशों द्वारा दिये आश्वासनों के अनुसार यदि सत्ता छोड़ने में उन्होंने आनाकानी की तो आपको उनसे लड़ना पड़ेगा, इसकी तैयार रखनी होगी।' ऐसा साफ प्रचार उन्होंने इस चुनाव के लिए किया।

बादशाह खान का प्रभावी प्रचार ही उस चुनाव के समय कांग्रेस की सफलता का कारण हुआ। मध्य असेंबली का स्थान कांग्रेस को ही मिला। उसी तरह बाद के आम चुनाव में भी कांग्रेस को भारी सफलता मिली। मुस्लिम लीग को मिली सफलता थी या असफलता थी यह यदि उन्हें आवश्यक लगे तो वे सोचें।

उन्हें मिले हुए उम्मीदवार कौन और कैसे थे, उनकी सफलता के लिये कौन और क्यों प्रयत्न करता रहा यह विचार करना पाकिस्तान का पुरस्कार करनेवालों को अभी भी भलाई का साधन होगा। सीमाप्रांत ब्रिटिशों का विशेष अहमियत रखने वाला सवाल होने के कारण पोलिटिकल महकमे से उस वक्त किया हुआ मुकाबला बेहद जोशीला था। उतनी ही निष्ठा से जनता ने फिर एक मर्तबा बादशाह खान का साथ दिया। उनका चुनाव दौरा चालू था उसी समय ब्रिटिश पार्लमेंटरी डेलिगेशन के सदस्य सीमाप्रांत में आये। इस से भी उस प्रांत का महत्त्व उस समय कितनी अहमियत रखता था यह दिखाई देता है। नौशेरा में एक जलसे में बादशाह

खान तकरीर कर रहे थे तब इस शिष्टमंडल के कुछ सदस्य वहाँ पहुँचे। 'इस चुनाव के परिणामों के बाद दिये गये यकीन के अनुसार यह देश छोड़ कर जाने में ब्रिटिश आनाकानी करने लगे तो आप उनके खिलाफ लड़ने में मेरा साथ देंगे या नहीं ?' ऐसा पूछा जाने पर श्रोताओं ने सहमति के नारे लगाये। उस जलसे के लोगों का उत्साह देखकर बाद में बादशाह खान के साथ उनकी बातचीत हुई। उस संबंध में इन सदस्यों द्वारा निकाले हुए शब्दों से, सीमाप्रांत की जागृति और बादशाह खान के नेतृत्व और व्यक्तित्व से वे बहुत प्रभावित हुये थे ऐसा दीखता है।

बादशाह खान के इस प्रचार का आवश्यक वांछित परिणाम हुआ। मुस्लिम लीग के नाम से सरकारी अधिकारियों ने जो गड़बड़ी मचायी थी उसका कुछ अधिक दुष्परिणाम नहीं हुआ। जबरदस्ती और डर की परवाह न करते हुए मतदारों ने निर्भय सुसंगठित रीति से मतदान किया। कुछ मतदान केंद्रों पर अधिकारियों ने ही मतदारों को गुमराह किया। ईर्षा से लड़ी गई इस लड़ाई में ५० में से ३२ स्थान कांग्रेस को मिले। १९३७ में कांग्रेस केवल १९ स्थान जीत सकी थी। १९४६ के इस चुनाव में मुस्लिम लीग को जो स्थान प्राप्त हुये वे विशेष रूप से पुश्तू भाषी लोगों की कम आबादी वाले हजारा और मर्दान जिले में थे। वे सीटें भी कुछ थोड़े मतों से ही कांग्रेस ने गँवाईं। ऐसी अवस्था में भी सीमाप्रांत में लीग को सफलता मिली ऐसी खबरें सब जगह फैलायी गयीं। मुस्लिम लीग की इस जबर्दस्ती और प्रचार का परिणाम कॉंग्रेस नेताओं पर कुछ मात्रा में हुआ था यह मौ० आजाद की टीका से दीखता है। 'सीमाप्रांत में खानबंधुओं का और कॉंग्रेस का मंत्रिमंडल अप्रिय होता चला जा रहा है, कम से कम आधा प्रांत लीग के पीछे है' लॉर्ड वेवेल की यह जानकारी आजाद के विचार का आधार रही होगी। और वेवेल का आधार गवर्नर की रिपोर्ट। सत्ता स्वीकार करने के बाद कांग्रेस में मतभेद कैसे बढ़ते हैं उसका ठीक से अनुभव आजाद को था ही। अन्य प्रांतों में राष्ट्रीय कहलाने वाले और दो दो तप द्वारा कांग्रेस में पले हुए मुसलमान नेता मुस्लिम लीग की ओर झुके थे। ऐसे अवसर पर भी फ्रांटियर में इस चुनाव में भारी सफलता मिली, यह स्पष्ट था।

बादशाह खान ने लड़ाई का यह आदर्श केवल मतदारों से कहा ऐसा नहीं। चुनाव के बाद मंत्रिमंडल बनाते समय चुन कर आये हुए प्रतिनिधियों को भी उन्होंने यही राय दी। 'मंत्रिमंडल स्वाधीनता संग्राम का एक साधन

है और गरीबों की दिक्कतें दूर करने के लिये आप इसका इस्तेमाल कर सकते हैं क्या' ऐसा सवाल उन्होंने चुनकर आये हुये आमदारों की सभा में पूछा। तब बहुतेरे आमदारों ने खुद गवर्नर और अधिकारीगण के हस्तक्षेप की शिकायत की और उसकी सुनवाई होनी चाहिये ऐसी मांग की। मंत्रिमंडल की रचना के बारे में विचार करते समय मौलाना आजाद उपस्थित थे। उनके सामने भी सरकारी हस्तक्षेप की शिकायत रखी गयी। 'यह सभी प्रांतों का सवाल है और इसे ऊपरी स्तर पर हल करने की कोशिश की जायेगी' ऐसा आश्वासन उन्होंने दिया था। लेकिन आगे कुछ नहीं हो सका; वाइसराय द्वारा खुद ही दिये हुए आश्वासन का पालन नहीं किया। उल्टे गवर्नर, उनके हस्तक और अधिकारियों के कारनामों को गति मिलती रही।

बादशाह खान ने मंत्रिमंडल और आमदारों की फिर से एक सभा की और परिस्थिति पर ठीक से गौर करने के लिये इशारा दिया। 'नौकरशाही के रोब में रहकर यदि तेजी से काम करना संभव न हो तो ऐसा मंत्रिमंडल चलाने में फायदा नहीं है। इस कारण हम आफत में फँसेंगे।' इस तरह की उनकी राय थी। लेकिन देश में सब जगह जातीयता का तूफान उठ चुका था। उसकी चिनगारियाँ सीमाप्रांत तक आ पहुँची थीं। हजारा और डेराइस्माइलखान जिलों के दंगों की आग बुझ गयी थी लेकिन उसे फैलाने का फिर प्रयत्न किया जा रहा था। क्षोभ की यह हवा सारे देश में फैल और बढ़ रही थी। उससे केवल सीमाप्रांत कैसे अछूता रह पाता? बंगाल, पंजाब जैसे हिंदुओं की अधिक आबादी वाली बस्तियों के अन्य प्रांतों से घिरे हुए बहुसंख्यक मुस्लिम प्रांतों में अत्याचार और भयानकता की धूम थी, फिर भी ९३ फीसदी मुस्लिम आबादीवाले सीमाप्रांत में अधिक दंगे नहीं हो सके, यही बड़ा भारी फर्क है। जिन पठान टोलियों का डर भारत को बताया जाता था वे स्वतंत्र टोलीवाले भारत के दोस्त के नाते करीब आ रहे थे। यह सारा वातावरण धर्मनिष्ठ और प्रत्यक्ष लोक सेवा का फल था। अर्थात् सत्ता स्वार्थ की आग सुलगने के बाद वातावरण दूषित हुए बगैर कैसे रहता। दावानल में फँसी हुई शेरनी अपने बच्चों को संभालते संभालते जलकर तड़प-तड़प कर मर भी जाती है, उसका प्रयास व्यर्थ साबित हो सकता है लेकिन गलत साबित नहीं होता है। उसकी मृत्यु ही उसकी सफलता है, यह शेरों का कुल ही समझ सकेगा।

गफार खान के संगठन की ताकत का प्रभाव फिर अक्टूबर (१९४६)

में प्रतीत हुआ। सीमाप्रांत के गोरे अधिकारी लीग का संगठन करने का प्रयास कर रहे हैं ऐसी शिकायत नेहरू के पास आने के कारण उन्होंने उस प्रांत में जाने की सोचा। नेहरू मंत्रिमंडल (इन्टेरिम गवर्नमेंट) एक राष्ट्रीय नेतृत्व शक्ति की कसौटी का भाग था और इसीलिये उसपर आघात करने के लिए जिना ने सारी ताकत इकट्ठी कर ली थी। यह धोखा जानकर ही नेहरू ने सत्ता स्वीकार करते ही सीमाप्रांत में जाने का विचार किया था। उसके पहले वजीरिस्तान पर बीच बीच में होनेवाले बमबारी को तुरंत बंद करने का हुक्म भी उन्होंने परराष्ट्र महकमे के प्रमुख के नाते दिया। गवर्नर केरो और वाइसराय की राय, नेहरू फ्रांटियर न जाय, ऐसी थी, मौ० आजाद की भी वैसी ही राय रही लेकिन नेहरू को वस्तुस्थिति देखनी थी। खान बंधुओं ने भी आने का निमंत्रण दिया था।

नेहरू की इस यात्रा की खबर मिलते ही मुस्लिम लीग ने अलीगढ़ से कुछ विद्यार्थियों को प्रचार के लिये पेशावर भेजा। उन्होंने उधर जाते समय कुछ प्रचार साहित्य भी साथ लिया था। "इन्सान की खोपड़ियाँ, बिहार में हिंदुओं द्वारा गिरायी हुई मसजीदों की ईंटे, कुरान के फटे और जले पन्ने" उनके साधन थे। ये सब साधन पेशावर में ही तैयार किये गये थे, ऐसा बाद में मालूम हुआ। लेकिन लीग के इस प्रचार का दंगों के लिए पूर्ण उपयोग किया गया। इस सब तैयारी के पीछे गवर्नर कैरो और अधिकारी वर्ग था. यह भी दिखाई दिया। पड़ोस के स्वतंत्र पठान मुल्क में जाने के लिए खुदाई खिदमतगारों पर रोक थी लेकिन मुस्लिम लीग के स्वयंसेवकों को मुमानियत नहीं थी। जिस नेहरू ने वजीरिस्तान पर होनेवाली बमबारी तुरंत बंद करवायी, उस नेहरू के खिलाफ, "भारत के मुसलमानों के खूनी नेहरू को जिंदा वापस मत भेजो" ऐसा प्रचार वजीरिस्तान की टोलियों में किया गया था। नेहरू के पेशावर में स्वागत के समय नौजवानों के जत्थों ने हवाई अड्डे पर काले झंडे ले जाकर प्रदर्शन किए। इस निदर्शन का नेतृत्व थोड़े ही दिन पहले मध्य असेम्बली में कांग्रेस दल के उपनेता के तौर पर काम करनेवाले अब्दुल कयूम ने किया था। नेहरू के खैबर घाटी के दौरे के समय जमरुद लंडीकोतल हिस्से में प्रत्यक्ष दंगा और पत्थरबाजी हुई। नेहरू के साथ पोलिटिकल महकमे के प्रमुख के नाते गवर्नर की उपस्थिति में यह वाकया हो सका लंडीकोतल में पंडित जी और कुछ खुदाई खिदमतगारों को निदर्शकों द्वारा फेंके हुए पत्थर लगे। उनकी मोटर की तोड़फोड़ हुई। दूसरे दिन मालकंद भाग में पत्थरों की बौछार मोटर पर हुई। इस संगठन का नेतृत्व

मंकी शरीफ के पीर के तरफ से था। ये पीर साहब जल्द ही लीग के प्रमुख नेता के नाते आगे आये। इस पत्थरबाजी में बादशाह खान नेहरू पर होने वाली पत्थरों की बौछार झेलने के लिये आगे बढ़े, तब दोनों को पत्थर लगे। दोनों का खून वहाँ बहा। "हम दोनों का खून इकट्ठा बहा इसमें क्या बुरा हुआ ? भारत और सीमाप्रांत भी उतने ही करीब आवेंगे।" ऐसे उद्गार नेहरू ने बाद में कार्यकर्ताओं की सभा में निकाले। नेहरू के आगमन के समय हुए दंगों के बारे में रसदरयाब की एक आम सभा में गफार खान ने कहा, "वाइसराय और गवर्नर को नेहरू इधर न आये, ऐसा लगता था। नेहरू ने वह नहीं माना। हममें आंतरिक झगड़े पैदा हों और हम नष्ट हों, यह ब्रिटिशों का मकसद था। ये घटनायें पहले तय किये अनुसार ही हुई थीं। यह सब करनेवाला अंग्रेज खुद के मकान में छिपकर बैठता है और हमारे लोगों के द्वारा हमारा अपमान करवाता है।"

पंडित जी पर हुए इस हमले को दृष्टिगत रखते हुए बादशाह खान के प्रांत में वातावरण कितना दूषित होने लगा था यह स्पष्ट होता है। डॉ० खान साहब की सत्ता कितनी खोखली हुई थी यह भी स्पष्ट हुआ। लेकिन उस पर इलाज करने की फुरसत उन्हें नहीं मिली। दिल्ली में रोजाना नयी नयी घटनायें घटती थीं। कबिनेट मिशन योजना, मुस्लिम लीग पर बंधनकारक थी ऐसा एक तरफ वेवेल नेहरू को कहता था, तो दूसरी तरफ तरह तरह की पेचीदगियाँ पैदा कर लीग की ताकत बढ़ायी जाती थी। अस्थायी सरकार से दूर रहना नुकसान का रहेगा यह जानकर एक महीने के अंदर ही लीग ने अपनी गलती दुरुस्त कर ली। नेहरू की सलाह लिए बगैर वेवेल ने लीग को सरकार में लाने का काम किया था। घटना परिषद् पर डाला हुआ बहिष्कार स्पष्ट रूप से वापस लेने के पहले ही लीग के नुमाइंदों को अस्थायी सरकार में शरीक करवाने में वेवेल ने कबिनेट मिशन का आधा हिस्सा नाकामयाब बनाया। देश में दंगे और सियासी मामलों में जबर्दस्ती करके जीता हुआ लीग का घोड़ा वेवेल की सहायता से ही उछलता-कूदता था। इन सब घटनात्मक बातचीत में वाइसराय और उसकी नौकरशाही की मदद लीग को मजबूत करने के लिए व्यस्त थी। ऐसा करके कांग्रेस को दिया हुआ आश्वासन ठुकराया जा रहा है. इसकी ओर नेहरू के निर्देश करने पर भी असमर्थता प्रकट करने के अलावा वेवेल ने कुछ भी नहीं किया। फिर सीमा प्रदेश में गवनर की सहायता से कयूमखान और मंकीशरीफ के पीर साहब के जरिये

वही प्रयोग डॉ० खान मंत्रिमंडल के खिलाफ चालू रहे यह स्वाभाविक ही था।

नेहरू की मुलाकात के निमित्त पेशावर में शुरू हुए दंगे खुद पंत-प्रधान के बंगले में घुसकर हुये। इस अराजकता में भी मंत्रिमंडल टिका रहा यही एक विशेषता थी। नेशनल गार्ड्स के दंगों के समक्ष पंजाब के खिजर-हयात खान मंत्रिमंडल ने तीसरे दिन ही इस्तीफा देकर गवर्नर का शासन शुरू होने दिया था।

हजारा में शुरू हुआ दंगा एक धर्मांतरित स्त्री के कारण हुआ और फिर भी उसको आगे चलकर पाकिस्तान प्राप्ति के आंदोलन का स्वरूप जल्द ही दिया गया और उस प्रचार के कारण शामधारा, औघी, बालाकोट, पाटण, बेरकुंड आदि गांवों में दंगे शुरू हुये। नाथियागलीव, राजोइया गांवों में अल्प-संख्यकों को लूटा गया। वही आग डेरा-इसमाइलखान जिले में भयानक रूप में धधक उठी। इन अत्याचारों के समय सरकारी सहायता का भयावह स्वरूप पाराचिनार के निर्वासितों की छावनी पर असहाय स्त्रियों और बच्चों पर हुये हमले के समय दिखाई दिया। मुस्लिम लीग में हाल ही में गये और पहले के खुदाई खिदमतगार अरबाब अब्दुल गफूर, आगा बाबा वकील, फिदा मुहम्मदखान वकील, हाजी करीम इलाही आदि ने इस दंगे का नेतृत्व किया। उन्हें गिरफ्तार करके खान साहब ने जेल में डाला लेकिन उसका ही उपयोग प्रचार के लिये करके मुस्लिम लीग ने सारे प्रांत में आंदोलन फैलाया।

लेकिन जब पुलिस और फौज जनता की रक्षा में असफल रही या उन्होंने कांग्रेस सरकार को धोखा दिया तब खुदाई खिदमतगारों की ताकत का अनुभव हुआ। डॉ० खान साहब ने खुदाई खिदमतगारों की सहायता पेशावर में अमन कायम करने के लिये मांगी। गांव-गांव के हिंदू-सिख प्राण के डर से शहरों की ओर भाग खड़े हुये। पेशावर पहुँचने पर भी कंटोमेंट हिस्से में फौजी और पुलिस चौकियों के सामने हिंदुओं पर हमले किये गये! विधिमंडल की सभा चल रही थी तब (अप्रैल १९४६) और राजधानी के शहर में भी कांग्रेस सरकार का शासन चल नहीं सकता, ऐसा टेढ़ा प्रसंग गुंडों के जरिये खड़ा किया था। ऐसी स्थिति में संदेश पहुँचते ही बाईस घंटे के अंदर दस हजार लाल कुर्तावाले शहर में आकर दाखिल हुये। उनके आते ही शहर के अल्पसंख्यकों को धीरज आया। इतना ही नहीं, उनके सामने दंगा करनेवाले पीछे हटे। केवल उनकी बदौलत पेशावर को कुछ समय तक शांति मिली। इसका उल्लेख न्यायमूर्ति खोसला ने किया है।

वैसे ही पं० नेहरू पर खैबर घाटी में पत्थरबाजी हुई और उनपर हमला करने के लिये टोलीवाले इकट्ठा हुये थे। उस समय खानबंधुओं के नेतृत्व और जागरूकता के कारण ही नेहरू पर दंगा नहीं हो सका, ऐसा भी न्याय-मूर्ति खोसला ने यकीन किया है।

कलकत्ते के दंगे की आग सारे बंगाल में फैलने में देर नहीं लगी। नोआखाली के आक्रोश से सारा देश दहल उठा। उनकी वेदना और लोगों को गांधीजी के प्रायोपवेशन और बाद पदयात्रा के कारण महसूस हुई। मनुष्य को उसके दुःख की अनुभूति उसी समय होती है ऐसा नहीं। खून चढ़े हुए इन्सान का ऐसा ही होता है। हाथ पांव टूटे हुये जो आदमी लड़ते रहते हैं, वे कैसे और किस ताकत पर? उनकी वेदनाओं की अनुभूति संघर्ष खत्म होने के बाद ही होती होगी। कलकत्ता के खून-खच्चर के समय परस्पर आह्वान देनेवाले नेता उस बलिदान में नहीं थे, वे तो किसी भी खतरे के स्थान पर नहीं थे।

देश में अमन कायम रखने का जिम्मा लेनेवाली सरकार भी कहाँ और किस स्वरूप में अस्तित्व में थी यह भी साफ हो चुका है। फिर दंगे के समय फौजी ताकत भी पर्याप्त नहीं रही इसमें अचरज की क्या बात है। ऐसे अत्याचारों के समय गांधीजी का अनशन (वन मैन बाउण्डरी फोर्स) "जनता को शांत करने का चमत्कार कर सका।" ऐसे उद्गार माउन्टबेटन को निकालने पड़े। अगस्त में गांधीजी ने नोआखाली के काक-द्वीप और दलदल से भरे देहातों की जनता में जो इन्सानियत जगायी उसका इतिहास में कोई मुकाबला नहीं। आसमान टूट पड़ने पर केवल महान शांति पुरुष ही जो कार्य कर सकता है वही कार्य गांधीजी करते रहे। और उनकी निष्ठा से समांतर रेखा में और अपने आप बढ़नेवाले बादशाह खान उसी के लिये बिहार दौड़े। नोवाखाली में बहुसंख्य मुसलमानों की पशुता जिस तरह से जाग्रत होने दी गयी उसका जवाब बिहार के हिंदुओं ने वैसा ही दिया। हिंसा के मार्ग से भी इन्सान ने इन्सानियत का विकास किया है। कभी कभी आत्मरक्षा के लिये उसे यह रास्ता अख्तियार करना पड़ता है, कभी कभी वह कर्तव्य सिद्ध होता है। भावनाओं की आग सुलगाकर उसमें निरीह जनता को झोंकनेवाले क्रूर और कादर नेताओं की अपेक्षा खुद की जान की बाजी लगानेवाले लोग कम से कम हैं। राह भटके हुए और भावनाओं के शिकार होने के कारण उन्हें समझाना आसान रहता है। यही अनुभव गांधी जी को हुआ। प्रत्यक्ष काल

मंडरा रहा था ऐसे समय घने जंगल में बसे हुये इक्के दुक्के देहात में उन्होंने अपने सातों साथियों को अकेले छोड़ दिया था। शेर चीतों से व्याप्त जंगल में हिरन खरगोश के बच्चों को मुक्त संचार के लिये छोड़ने जैसा अत्यंत कठिन वह प्रयोग था। एक एक को एक एक देहात में जाकर रहने के लिये कहा। हिंदू स्त्रियों की विडंबना और कतल करनेवाले मुसलमानों के पड़ोस में जाकर बस्ती करने के लिये कहा। इन सातों में आभा गांधी, अब्दुल सलाम, सुशीला नय्यर, सुशीला पै ये चार जवान सेविकायें थीं। धन्य है उनकी गांधी जी के प्रति निष्ठा और धन्य है उनका कार्य। इन जवान बहनों द्वारा उस समय की हुई बलिदान की तैयारी, उसके लिये बताया हुआ धारिष्ट अलौकिक और अतुलनीय है।

बिहार के अत्याचारों की खबर से नेहरू सरकार घबरा गयी। खुद नेहरू उधर दौड़े। हिंदुओं की प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी या नहीं यह प्रश्न नहीं था। सारे देश में ऐसे ही वाकयात हों तो वे यहाँ से वापस न जाँय ऐसा निवेदन ब्रिटिशों से करना चाहिए यही मार्ग बचा था। इस जमाने में भी विवेक नहीं रहा और गैरइंसानियत उमड़ पड़ी थी। ऐसी स्थिति में भी दो नवरत्न निकले। ज्वालामुखी के पेट में उतर कर शांत अंतःकरण से वे सेवा में रत हुए।

बादशाह खान के लिये उनके प्रांत में भी इस दृष्टि से काफी काम था। लेकिन भारत में स्थान स्थान में आग सुलगने लगी इसलिये उन्हें विशेष जरूरी निमंत्रण मिले। बिहार के कांग्रेस और अन्य कार्यकर्ताओं के आग्रह को वे इन्कार नहीं कर सके। बिहार में देहात देहात में मुसलमानों पर भीषण अत्याचार हुये। गरीब समझा जानेवाला बिहार का काश्तकार ऐसा कर कैसे सका इसका जवाब उस समय राजेंद्रबाबू भी नहीं दे सके।

गांधी जी और सरहदी गांधी इन दोनों को खुद की अपनी जात थोड़े ही रह गई थी ? लेकिन उनकी पैदाइशी जात जनता भूली नहीं थी। हिंदू गांधी प्रक्षुब्ध मुसलमानी इलाके में मुसलमानों को समझाने के लिये और अल्पसंख्यकों का ढाढस बढ़ाने के लिए गए तो बिहार के बहुसंख्यक हिंदुओं से मिलने के लिये और मुसलमानों को धीरज देने के लिये बादशाह खान पटना रवाना हुये। उनके आदेशानुसार सैकड़ों खुदाई खिदमतगार भी बिहार गये। उनके उस काम का विशेष आकलन नहीं है। देहात और शहर बरबाद होने के रास्ते पर थे तब काम की टिप्पणियाँ और अखबारों के समाचार कौन लिखता ? बादशाह खान गाँव गाँव पैदल घूमे और डरे हुए लोगों को उन्होंने

धीरज देने का प्रयत्न किया। उनके सादे लफ्जों का प्रभाव हिंदुओं पर भी काफी पड़ा। उनकी राय मंत्रियों के भी काम आई। पटना के एक गुरुद्वारे में उनका व्याख्यान हुआ। अपने चारों ओर अँधेरा दिखाई देता है ऐसा उन्होंने कहा। सत्ता के लिये चालबाजी के प्रति उन्होंने तिरस्कार प्रदर्शित किया. और सारे देश में परस्पर द्वेष का जो प्रचार किया जा रहा है उसके बारे में रंज व्यक्त किया। 'एक खुदाई खिदमतगार की हैसियत से खुद के लिये दुनियां की सेवा करना संभव हो यही इच्छा है" ऐसा उन्होंने व्यथित अंतःकरण से कहा। सभा में प्रभावित हुये श्रोता सभा के बाद नजदीक की मसजिद में इकट्ठे हुए और आपस में प्रेम से गले लगे। दूसरी एक सभा में उन्होंने कहा, "हिंदुस्तान हिंदू मुसलमानों का, दोनों का एक ही देश है। कुछ प्रांतों में मुसल-मान कम हैं तो कुछ प्रांतों में हिंदू। बिहार और नोआखाली में जो हुआ वह सब जगह हुआ तो देश का भविष्य अंधकार में है, ऐसा कहना पड़ेगा। प्रांतों के मंत्रिमंडल अपने प्रांत में होनेवाले उद्रेकों को दबाने की ताकत नहीं जता सके। हम यदि सच्चे मुसलमान हों तो अपने भाइयों के प्रति अपने में अधिक सहिष्णुता बढ़ानी चाहिये। आज अन्य जमातें ही अधिक सहिष्णु हैं। अपनी यह खामी हमें दूर करनी होगी तभी हम सच्चे मुसलमान हैं यह साबित होगा। इस्लाम संसार में सबसे अधिक सहिष्णु महजब है।"

थोड़े ही दिनों में गांधी जी भी बिहार के अल्पसंख्यकों को आश्वस्त करने के लिये आये। मंत्रियों और अधिकारियों पर लगाने वाले इल्जामों की तहकीकात उन्होंने की। जनता की भावनाओं की जानकारी ली। बादशाह खान उस समय किसी सुदूर देहात में थे। उन्हें भी उन्होंने बुला लिया। देश में बढ़नेवाले खतरनाक वातावरण के बारे में दोनों को चिंता थी। लेकिन जो निराश हो वह सत्याग्रही नहीं। बादशाह खान ने दोनों जमातों के नेताओं को मुहब्बत से और कठोरता से समझाया। मंत्रिमंडल ने उनकी राय मान ली। राजनैतिक लोगों की नीच और जनहितविरोधी नीति देखकर वे दुखी होते थे। ऐसा राजनैतिक में न रहूँ ऐसा भी उन्हें इस समय लगने लगा था। लेकिन राजकारण से मुक्त होना याने हवा और पानी से अलग होने के प्रयत्न जैसा है, पूरे जीवन में वह समाया हुआ है। सूरज की रोशनी जितनी मिलेगी उतना ही हवा और पानी शुद्ध रहता है। इस तरह महान व्यक्ति राजकारण से जितना संबंध रखे, उतना ही वह शुद्ध रहता है। यह अनुभव बादशाह खान को उनके प्रांत में कई मर्तबा हुआ था, लाखों

तौर पर उन्हें राजकाज से संबंध रखना पड़ता था। लेकिन इससे राजकारण शुद्ध रखने में मदद ही होती थी। बिहार की यात्रा के दौरान गांधी जी को भेजे पत्र में वे लिखते हैं, 'आसपास के राजनीतिक लोग जब धर्म और ईश्वर के नाम का उपयोग द्वेष को फैलाने के लिये करते हैं तब राजनीति से मुझे नफरत होती है। आप कहते हैं वह सच ही है, हमारी अहिंसानिष्ठा की यह कसौटी है।'

मार्च की यात्रा में वे गांधीजी के साथ रहे। लेकिन उनका सारा ख्याल अपने प्रांत की तरफ लगा रहता था। वहाँ भी आग सुलगाने के सूत्रबद्ध प्रयत्न किये जा रहे थे। हजारा जिला मुस्लिम लीग का गढ़ था। वहाँ उर्दू भाषी लोग अधिक संख्या में थे। गत चुनाव में लीग को मिले हुए १७ स्थानों में से ११ स्थान अकेले हजारा जिले के थे। इसलिये वहाँ पहले दंगे होंगे यह डर स्वाभाविक ही था और हुआ भी वैसा ही। इसलिये बादशाह खान शरीर से बिहार में घूम रहे थे फिर भी उनका सारा ध्यान उनके घोंसले पर केंद्रित था।

१६ मार्च गांधीजी के मौन का दिन था इसलिये उस रोज गांधीजी ने बादशाह खान को प्रार्थना सभा में भाषण देने के लिए कहा। उस वक्त बादशाह खान बिल्कुल व्यथित भावना से बोले। 'सारे देश में आग फैल रही है और सारा देश जलकर खाक हुआ तो हिंदू, सिख, मुसलमान, ईसाई इन सबका नुकसान होगा। यह समझ लेना उनका काम है, एक खुदा के बंदे और सच्चे मुसलमान को इस हैसियत में दूसरों की सेवा करने का मौका मिला है। मैं पीछे नहीं हट सकूँगा। इसीलिये मैं यहाँ आप लोगों में आया हूँ। लेकिन मुझे कोई रोशनी दिखाई नहीं देती है। और पंद्रह महीनों के अंदर सत्ता त्यागने की घोषणा ब्रिटिशों ने अब की है इसलिए हमारी जिम्मेदारी बढ़ गयी है।' मुसलमानों की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा 'अगर पाकिस्तान चाहते हो तो वह भी प्रेम और मान्यता से प्राप्त हो सकेगा। जबरदस्ती से पाया हुआ पाकिस्तान कितनी भलाई का होगा कौन जाने। सारे देश की भलाई का विचार हमें करना चाहिये। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिख सभी को इस द्वेष की आग को पहले बुझाना चाहिये।'

यह आग अपने प्रांत में फैल रही है ऐसा उनके कान में बार बार आने लगा इसलिये उन्हें बिहार के दुखी भाइयों को छोड़कर वापस लौटना पड़ा।

उस इलाके में उन्होंने लगातार तीन महीने अथक परिश्रम किये थे। बहुतेरे हिस्से में उन्होंने पैदल घूमकर पूरी तरह बरबाद हुए देहातों के मुसलमानों को फिर से वापस लाने के लिये हिंदुओं को मनाया था। सीमाप्रांत पहुँचते ही उन्हें वहाँ भी वही नजारा दिखाई दिया। उन्होंने बताया कि 'हमारे देश में लोग आग सुलगा रहे हैं, लेकिन एक मर्तबा यह आग भड़क उठी तो उसमें हम सब का नाश होनेवाला है, यह न भूलें…दूसरों के धर्म स्थानों को और पूजा स्थानों को जला डालने से या निरीह लोगों की हत्या करने और लूटने से इस्लाम की कौन सी सेवा होनेवाली है ?'

बादशाह खान ने पेशावर और हजारा इलाके का दौरा किया, उसी तरह खुदाई खिदमतगारों को भी अहिंसा की निष्ठा से अत्याचारों का संगठित पद्धति पर मुकाबला करने के लिये कहा। अत्यंत प्रतिकूल वातावरण तैयार हो रहा था। 'आसपास के निसर्ग में प्रेम और मांगल्य ही बसा हुआ है हमें श्रद्धा से राह देखनी होगी। बोया हुआ बीज फलने फूलने में देरी लगती ही है। हमें खुदा पर भरोसा रखकर राह देखनी चाहिये। ऐसी असाधारण श्रद्धा उन्होंने अपने स्वंयसेवकों और सहकारियों को दी। उसका प्रत्यंतर, पेशावर के हिंदुओं की रक्षा करने के लिये और राज्यकर्ताओं की सहायता के लिये एक संदेश पर दस हजार खुदाई खिदमतगार दौड़ते आये, तब आया। लेकिन लोकसेवा की और शुद्ध धर्मनिष्ठा की इतनी सुंदर फसल भी इस आगजनी में खाक होनेवाली थी। चारों ओर से आग सुलग रही थी फिर भी बादशाह खान अपने प्रेम के बगीचे की मशागत करने में लगे हुए थे। अत्यंत प्रतिकूल परिस्थिति में विवेक से काम करते रहना यही महान संस्कृति का चिह्न है।

: २१ :

अग्निपरीक्षा

आजादी के प्रभात के समय भारत की अग्नि परीक्षा हो रही थी। लेकिन वह भारत की थी या अग्नि की ? सोने का तत्व निकालने के लिये सोने को गला देना पड़ता है लेकिन यहाँ सारा हीनत्व ही कसौटी पर चढ़ने के लिये आगे आया था। इतनी गंदगी, इतनी क्रूरता, इंसान में होगी यह यदि अग्नि नारायण को मालूम होता तो ऐसा करने के लिए उसने पहले ही इंकार किया होता। स्वधर्म, स्वातंत्र्य और स्वाभिमान इन सारे 'स्व' के सड़े हुए रक्त के स्रोत फूट निकले। इस कारण से आग का भी पानी होना असंभव नहीं था। लेकिन दुनिया की भलाई के लिये आग को अपनी दाहकता एवं शुचिता टिका रखनी जरूरी होती है और इसीलिये इतनी गंदगी उसने जला डाली। इस सारी गंदगी की जिम्मेदारी क्या सिर्फ अंग्रेजों पर थोपी जा सकेगी ? हमारे नागरिक, नेता, हिंदू मुसलमान ही इस आगजनी के लिये सारा माल मसाला लिये तैयार हुये थे तो सिर्फ अंग्रेजों को दोष कैसे दिया जा सकेगा ? कलकत्ता के दंगे का नेतृत्व वहाँ के मुख्य मंत्री करते थे, ऐसा निष्कर्ष एक न्यायाधीश ने ही निकाला है।

सत्ता छोड़ते समय अंग्रेजों ने इस तरह कदम बढ़ाये, जिनसे मुसलिम लीग की लोकशाही के लिये हानिकारक ताकत बढ़ती गयी। यहाँ के गोरे अधिकारी खुल्लमखुल्ला लीग का समर्थन करते रहे। इसमें उनका मुसलमान समाज के प्रति प्रेम था या उनमें इस्लाम धर्म का आदर था ? गांधी, नेहरू ये नेता उन्हें दूर के क्यों लगे और जिना, लियाकतअली खान करीब के क्यों ? इसका विचार पाक की निर्मिति के लिये जिन्होंने अपने प्राण की बाजी लगा दी उनके वारिसों को करना चाहिये। भारत को ब्रिटिशों की गुलामी से मुक्ति पानी थी तो सारे इस्लाम जगत की ओर सदियों से तुर्की साम्राज्य के पीछे भेड़िये की तरह लगे हुये ब्रिटिशों की मदद से मुस्लिम लीग

को पाकिस्तान का निर्माण करना था। इन नेताओं ने मुसलमान समाज की कभी भी, किसी तरह की सेवा नहीं की। अदालत में मुकदमेबाजी और देहात के लोगों से बिना मुआवजा दिये काम लेने के सिवा, मुस्लिम जनता से जिनका कभी भी सरोकार नहीं था, ऐसे नवाबजादों के कब्जे में पाकिस्तान जानेवाला था, यह इशारा बादशाह खान ने कई मर्तबा किया था।

बिहार से मार्च के अंत में वे अपने प्रांत में वापस लौटे। उस समय खान मंत्रिमंडल को फाँसी चढ़ाने की सभी तैयारी पूरी थी। २० फरवरी की घोषणा में सत्ता छोड़ते समय उसे शायद हाल के प्रांतिक मंत्रिमंडल को सौंपी जाने की संभावना व्यक्त की गयी थी। इसलिये सीमाप्रांत का मंत्रिमंडल निर्णायक स्वरूप का हो गया था। जिना को खिजर हयात खान मंत्रिमंडल को देखते देखते निगलना संभव हुआ था लेकिन खान बंधुओं को निगलना उतना आसान नहीं था इसलिये जिना ने भी सारी ताकत वहाँ लगा दी। अंग्रेज अधिकारियों की सहायता की अपेक्षा अंदरूनी फूट के कारण वे सफल हो सके। घमासान लड़ाई के ऐन मौके पर पहरेदारों ने किले के दरवाजे खोल देने जैसा भेदिये का काम कयूम खान, अरबाब गफूर खान आदि पुराने कांग्रेसवादी मुसलमानों ने किया। हजारा जिले में शुरू हुआ कानून तोड़ने का आंदोलन उन्होंने पेशावर में डॉ० खानसाहब के बंगले तक लाकर छोड़ा था।

इन कानून तोड़नेवालों को जेल में बंद करने पर वहाँ भी दंगे शुरू हुये। जेलों में गोलियाँ चलाई गयीं और जहरी धुएँ का इस्तेमाल किया गया। यह सारा काम खान मंत्रिमंडल को बदनाम करने के लिये था या यह साफ है। शासनयंत्र पर मुख्यमंत्रियों का नियंत्रण नहीं रह गया था। मंत्रिमंडल दुविधा में था। खुद गवर्नर ही भेदिये का काम करने में लगा था। फिर मंत्रि-मंडल की ताकत कहाँ तक पर्याप्त हो सकती थी। विशेषतः अपने कार्यकर्ताओं में ही इतनी फूट थी कि उसे रोकना मुश्किल था। इस मौके पर इस्तीफा देना भी खतरनाक होगा, ऐसा डॉ० खानसाहब को लगता था।

गवर्नर सर ओलफ कैरो ने पहले बादशाह खान के पास उनके लड़के की मार्फत संदेश भेजा कि भारत और सीमाप्रांत का क्या संबंध है? 'आप कांग्रेस छोड़ेंगे तो आपकी सब माँगें मान्य होंगी' ऐसा लालच बताकर मुस्लिम लीग के साथ संयुक्त मंत्रिमंडल बनाने के लिये बुलाया। लेकिन बादशाह खान ओलफ गवर्नर क्या चीज है यह जानते थे और उन्होंने उसका प्रकाशन एक व्याख्यान में किया था। सीमाप्रांत की अपेक्षा स्वतंत्र मुल्क के पठान

टोलियों के दंगे का डर उन्हें विशेष लगता था। टोलीवाले लूटपाट के लिये किसी न किसी मौके की राह देखा करते थे। उनको बहकाने का काम पगारदार फकीरों ने जारी रखा था। बादशाह खान ने वापस लौटने पर टोलीवालों के लिये कुछ व्याख्यान दिये। उनसे कहा, 'तुम्हारे जिरगे में आकर यह केरो तुमसे दोस्ती बताता है लेकिन दिल्ली जाकर तुमपर बम बरसाने की तैयारी करने के लिये कहता है। मैं यह दिल्ली में मिली जानकारी के आधार पर कह रहा हूँ। वे तुम्हारे पास फिर आये तो यह सवाल पूछो। धर्म के नाम पर आपस में झगड़े होना सब की बरबादी का कारण होगा। हमारी गुलामी खत्म नहीं होगी।' उन्होंने आगे चलकर यह भी कहा, 'जिनके अनुयायी गुनहगारी का काम करने में जुटे हैं ऐसी जातिद्वेष पर आधारित मुस्लिम लीग जैसे संगठन को राजकीय संगठन का स्थान और प्रतिष्ठा पाने देना अप्रामाणिकता है।' कांग्रेस की ढहनेवाली छत को बनाये रखने के लिए वे आखिर तक घूमते रहे, दौड़धूप करते रहे।

पेशावर का आंदोलन हुआ, दंगे बढ़े। कायदे मंडल के सामने हुए दंगे के समय पुलिस ने अकस्मात् गोली चलायी तब दस बारह प्रदर्शक मरे और कई घायल हुए।

मंत्रिमंडल अप्रिय हुआ है, जनता उसके पीछे नहीं है ऐसा स्वांग रचने के लिये पर्याप्त सबूत गवर्नर ने तैयार किया था। यह करतूत केरो का ही था ऐसा निष्कर्ष न्यायमूर्ति खोसला ने ही एक मर्तबा निकाला है। केरो ने डा० खान साहब को एक मर्तबा बुलाया और खुदाई खिदमतगार का क्या काम है इसकी चर्चा करके डा० खान साहब को आड़े हाथ लिया। खुदाई खिदमतगारों ने ही उस समय शहर में अमन कायम किया था और वही दुःख केरो को था। एक मर्तबा तो इस गवर्नर ने निम्नानुसार सारे मंत्रिमंडल की सभा में डींग हांकी थी।

दी इंगलिश मैन हू डिड नाट एलाउ दी रिफार्म्स टू बी इंट्रोड्यूस्ड इन्ट्रड एन० डब्ल्यू० एफ० प्राविंस इन १९२० वाज ए फूल। ही सेंट पठान इन-टु दि आर्म्स आफ दि कांग्रेस। 'आई शैल सी दैट दिस मिसचीफ इज रेक्टीफाइड (स्टर्न रेकनिंग, पृ० २६२)।

कैरो की "फूल" गाली कर्जन और चर्चिल के लिये थी। कैबिनेट की सभा में इस तरह की डींग हांकने वाला गवर्नर, क्या रास्ते में दंगे आगजनी करने वाले गुंडों के ऊपरी स्तर के नेता ही नहीं थे? "तुम्हारी ताकत गत

चुनाव से बहुत कम हुई है, मुस्लिम लीग की ताकत बढ़ी है। लीग के सहयोग से संयुक्त मंत्रिमंडल बनाइए अन्यथा नये चुनाव के लिये तैयार हो जाइये" इस तरह गैरकानूनी दबाव डालने का प्रयत्न कैरो कर रहा था। लार्ड माउंटबेटन ने दिल्ली आते ही किस फुरती से और कैसे कदम उठाये और यह सब जानते हैं। जहाँ नेहरू पटेल, जिना लियाकत अली निश्तर भीतरी उपद्रव से परेशान हुये थे वहाँ खान बंधु असहाय हुये हों तो आश्चर्य की क्या बात है? गवर्नर कैरो की सलाह से माउंटबेटन दिल्ली से सीमा प्रांत फौरन पहुँचे। उसके बाद सीमा प्रांत के आंदोलन में आगजनी गुंडागर्दी के लिये सजा पाये नेताओं को रिहा करके उनका शिष्टमंडल दिल्ली रवाना हुआ। खुद के मंत्रिमंडल के खिलाफ गवर्नर को इससे अधिक चालबाजी करने की क्या जरूरत थी। लेकिन वह बिलकुल अनुशासन से चल रहा था और जेलों से रिहा किये गये इन लोगों की मुलकात जिना ने माउंटबटन से करवायी थी। पेशावर में भी माउंटबटन की मुलाकातें, दंगे, अत्याचार करने वालों के अगुवापन करने वाले लोगों से करवा दी गयी थीं। इस तरह मंत्रिमंडल खतरनाक है इसका अनुभव डा० खान साहब को, ब्रिटिश लोकशाही के प्रतिनिधि कैरो ने करवा दिया था।

इस अवस्था में भी बादशाह खान ने स्वाभिमान और सिद्धांत को कायम रखते हुए लीग से समझौता करने की तैयारी इस साल में दो तीन मर्तबा की। गवर्नर कैरो ने मंत्रिमंडल पर दबाव डालने का उद्योग शुरू किया तब उसका मतलब समझ कर बादशाह खान ने मुस्लिम लीग के नेताओं को सुलह समझौते के लिये कहा। "आजादी का आंदोलन अब खत्म हुआ। अब हम सब एक जगह जिर्गा में बैठें और अपने मतभेद मिटा दें। अत्याचार का रास्ता छोड़ कर भाईचारे से मिलने का तय हो तो समझौते का रास्ता आसानी से निकाला जा सकेगा। आपस में भी संमानित सुलह के लिये मैं तैयार हूँ, तुम्हें हिंदुओं के प्रभुत्व का खतरा दीखता है तो हमें ब्रिटिशों के गुलामी की चिंता है। हम उनकी चिंता मिटाने के लिये तैयार हैं लेकिन उनकी तैयारी है क्या?" विभागशः विभाजन के संबंध में निर्णय लेने की में चर्चा चल रही थी तभी बादशाह खान ने हम "ब" विभाग (मुस्लिम बहुसंख्यक पश्चिम भाग) में समाविष्ट होकर कदम उठाने के लिये तैयार हैं ऐसा सुझाया था लेकिन "उसके लिये एक जगह आकर भाई चारे से आपस की गलत फहमियाँ दूर

करना जरूरी है। किस विभाग में जाने से किसका क्या नफा और नुकसान है यह क्या उन्हें नहीं समझना चाहिये? जबरदस्ती से कुछ भी बनने वाला नहीं है।

सीमा प्रांत को हिंदुस्तान में शामिल होना कैसे असंभव है इस संबंध में बादशाह खान ने अपना विचार स्पष्ट किया था। ऐसा होते हुए भी खुद के हाथ में शासन की बागडोर लेने के लिये लालायित सत्ता के लालची लीग वालों ने बादशाह खान हिंदुओं और नेहरू के हस्तक तथा कलकत्ता के मुसलमानों के खूनी हैं इस तरह का प्रचार किया और ऐसा प्रचार करने वाले कयूम खान और मंकी शरीफ के पीर जिना के सलाहकार हुये। उनके नेतृत्व में जनता है ऐसा गवर्नर कैरो ने हल्ला मचाया था। कयूम खान की सहायता के सिवा कैरो कुछ भी नहीं कर पाते और कैरो राज्य के प्रमुख न रहते तो कयूम खान का पुनर्जन्म ही नहीं होता। कौन कितना दोषी है? इस मूल्यमापन का अब अधिक महत्व नहीं रहा है। एक ओर गुंडों के कंधों पर सवार होकर कयूम अपनी ऊँचाई बढ़ा रहे थे तो दूसरी ओर विश्वयुद्ध से बचा हुआ भ्रष्ट ब्रिटिश जनतंत्र का प्रतिनिधित्व कैरो कर रहे थे।

साम्राज्यलोभी ब्रिटिश शासक, धर्म के नाम पर अपने भाइयों को गुमराह करने वाली मुस्लिम लीग, स्वार्थ से अंधे होकर आपस में धोखादेही करने वाले पठान कार्यकर्ता इन सब के बर्ताव के कारण पैरों तले की जमीन खिसक रही हो ऐसा आभास विवेकी खुदाई खिदमतगारों को उस वक्त हुआ हो तो आश्चर्य की बात नहीं। असत्य की हवा फैले तब सत्यनिष्ठों के होश उड़ जाने स्वाभाविक ही है। इन सब लोगों की अपेक्षा ऐसी हीन परिस्थिति में सामर्थ्यवान लोगों का कर्तृत्व भी कमजोर होता है, कम होता है। पुरुषोत्तम प्रभु रामचंद्र ने भी जीत का समय पास आने पर भी सीता मैया को वनवास के लिये भेजा, उस समय उनकी जो दारुण अवस्था हुई होगी वही स्थिति कांग्रेस ने बादशाह खान की राय न लेकर विभाजन का निर्णय करके किया था। अत्याचार और अराजकता की लपटों में कांग्रेस नेता घिरे हुए थे, यह सच है। बँटवारे का उन्होंने सख्ती से प्रखर विरोध किया था। लेकिन प्रलयंकारी तूफान में कागजी नौका कितनी काम आती? ब्रिटिशों के आश्वासन कदम-कदम पर बदलते थे और अत्याचार की आग नित नया उग्र स्वरूप लेती थी। इसलिये

अंत में कांग्रेस ने सीमा प्रांत के लिये सार्वमत (प्लेबिसाइट) लेना मान्य किया था। बादशाह खान के दिल को इससे असह्य चोट पहुँची थी। धीरज के मेरुमणि भी ऐसी अवस्था में विह्वल और व्यथित होकर गिर पड़ते हैं। लीग से हाथ मिलाकर खान बंधु सब कुछ पा सकते थे, उसके लिये लीगवालों ने उनकी मिन्नत भी कई मर्तबा की थी और अब राजगद्दी का संमान भी लीग के नेता उनके पल्ले नहीं पड़ने देते तो भी समय पर सुलह कर लेने के कारण उनकी तकदीर के अनिश्चित भविष्य की यातनायें कम से कम टल ही जातीं। लेकिन केवल सिद्धांत के लिये झगड़ने वाले ही नहीं, सिद्धांत की रक्षा के लिये ही पैदा हुए बादशाह खान क्रुद्ध हुए, आग-बबूला हुए लेकिन डरे नहीं या टूट भी नहीं पड़े या कांग्रेस के खिलाफ उनके विनाश के लिये दुआयें मांगने नहीं बैठे। जुलाई के अंत में उन्होंने जब गांधीजी से रुखसत ली तब उन्हें बाघ-शेरों की गुफा में नहीं तो खूंख्वार जानवर के पिंजड़े में प्रवेश करना था।

'यू हैव थ्रोन अस टु द वुल्व्ज'

'भेड़ियों के समूह में तुमने हमें फेंक दिया है' ऐसा जबान अत्यंत कठोर लगनेवाला उद्गार उन्होने गांधीजी के सामने निकाला।

लेकिन दोनों ने ही—दोनों गांधी ने अपनी भावनाओं को फौरन रोका। वे वीरोत्तम थे, शांतिसागर थे। सागर कितना भी क्षुब्ध हुआ हो फिर भी वह अपनी मर्यादाओं को कभी भी नहीं लांघता। 'अहिंसा के लिये हार नहीं' इस श्रद्धा भरे वाक्य से उन्होंने एक-दूसरे से रुखसत ली। उनके उस विशाल हृदय में सुलगने वाली आग और दुख को देखने की क्षमता रखनेवाली प्रतिभासंपन्न आंखें अबतक पैदा नहीं हुईं। वह दुख व्यक्तिगत हार का नहीं था या आगामी दिक्कतों की परछाईं के बारे में भी नहीं था। सैकड़ों पुण्य पुरुषों की तपश्चर्या का तेजोभंग नजरों के सामने उपस्थित था। हजारों साल तक जिस मातृभूमि का पूजन किया वह साधना खुले आम छिन्न-भिन्न होनेवाली थी और असहाय स्त्रियों-बच्चों का नरमेध खुली आंखों से देखना था। इन आगामी अदृश्य घटनाओं का दुख उनकी इस अंतिम व्यथा में था। अन्यथा 'एकला चलो रे' का ध्येयवाक्य जबान पर लिये वे पैदा हुए थे। १५ अगस्त की आजादी के दिन के विभाजन की तैयारी के लिये ३० जुलाई को बादशाह खान ने दिल्ली के भंगी-कालोनी से गांधी जी से अलविदा ली। उसी दिन दोनों गांधियों का विभाजन हुआ।

दिल से कभी दूर न गये हुए ये दो महात्मा झूठी धर्मकल्पना के प्रचार से हमेशा के लिये दूर फेंके गये। एक का खून प्रार्थनामंदिर के पवित्र मार्ग पर किया गया, दूसरे के लिये हमेशा के लिये कालकोठरी बनायी गयी। महान सिद्धांत और तत्ववेत्ताओं का इतना भयानक विडंबना हजारों साल की तवारीख ने शायद ही देखी हो।

———

: २२ :

अग्निप्रवेश

३० जुलाई को बादशाह खान ने दिल्ली से विदा ली। वह उनकी गांधी जी से तो आखरी भेंट ही रही लेकिन गांधी के शतीवर्ष में उनके चरण प्रकाश का संदेश लेकर यहाँ फिर आये। 'भविष्य के पेट में क्या भरा पड़ा है वह भगवान ही जानता है' ऐसे उद्‌गार उन्होंने निकलते समय निकाले थे। भविष्य का सफर कितने तूफानी वातावरण में करना होगा इसकी कल्पना सभी को थी। दोनों गांधी उस भयंकर रात बेचैनी में थे। 'प्लेबिसाइट' का व्यूह खतरनाक था और वह टालने की जी-जान से कोशिश दोनों गांधियों ने की थी। ८ जून के बन्नू के प्रादेशिक जिर्गे की बैठक में सार्वमत मान्य नहीं, ऐसा निर्णय लिया गया था। उसके बाद दिल्ली में जिना से मुलाकात करके उनको समझाने का प्रयत्न भी बादशाह खान ने महात्माजी की सूचना के अनुसार किया। लेकिन जिना साहब को अब कोई समझौता सुनने के लिये कारण ही बाकी नहीं रहा था। कांग्रेस अब पीछे नहीं हट सकती है। इंसाफ की तराजू हाथ में लिये आये हुए माउंटबैटन भी जिना की सार्वमत की माँग से बँधे हुए थे। अपने सीमा प्रांत में आपसी झगड़ों की आग लगी थी ऐसी दाहक और करुणाजनक परिस्थिति में वे दिल्ली से पेशावर के लिये रवाना हुए। इस अग्निप्रवेश के समय की उनकी मनःदशा का कौन वर्णन कर सकेगा!

१४ अगस्त को पाकिस्तान की निर्मिति हुई और १५ अगस्त को भारत की आजादी की विश्व घोषणा होने वाली थी लेकिन उसके पहले और उसके लिये तीस लाख पठानों की स्वतंत्रता का बलिदान होनेवाला था। वास्तव्य सीमाप्रांत में संघटन के अनुसार चुना गया और भारी बहुमत प्राप्त डॉ० खान मंत्रिमंडल मुस्लिम लीग की आँखों में चुभता था। वास्तव में कलेजे की जखम की तरह वे लीग के नेताओं को डराते थे। क्योंकि जिस विरत राष्ट्र-वाद के सिद्धांत पर पाकिस्तान की निर्मिति हो रही थी उसे लीग का का

द्विराष्ट्रवाद नब्बे फीसदी मुस्लिम आबादीवाला पठानों का इलाका मानने के लिये तैयार नहीं था। इसलिये उस भाग पर पूरी तरह से परदा डालना लीग के नेताओं के लिए जरूरी हो गया था। वहाँ के लीग के पीछे असल में गैरों की ही ताकत थी, यह देखा जा चुका है। बादशाह खान जैसे धर्म-पुरुष को इस्लाम के संरक्षण के लिये पैदा हुए पाकिस्तान के शासकों ने १६४८ के जून में जेल का रास्ता बताया।

इस बीच का करीब एक साल का समय बादशाह खान द्वारा पाकिस्तान सरकार से बाकायदा और शांति के रास्ते से बेहद धैर्य से लिया हुआ टक्कर का समय है। इस एक साल की उनकी लड़ाई उनके तत्वनिष्ठ और निडर जीवन का एक नया उजला पहलू है। परकीयों को खदेड़ कर, स्वकीयों की गुलामी आजादी या स्वराज्य नहीं यह वे बारबार बताते रहे। अपनी श्रद्धा के लिये और सिद्धांत के लिये अपने आजाद इस्लामी भाइयों के खिलाफ इस साल का मुकाबला उनके जीवन का एक कारुण्यपूर्ण लेकिन तेजस्वी पर्व है।

सत्ता के लिये स्पर्धा शुरू होने पर सत्ता के लिये लालायित लोग क्या क्या कारनामे कर सकते हैं इसकी पूरी कल्पना कौरव पांडवों की स्पर्धा में आयी है। उसमें द्यूत है, द्रौपदी की विडंबना है, लाक्षागृह भी है, सार्वमत किस उद्दिष्ट के लिये लेना है, वह उद्दिष्ट ही सामने न रखते हुए उसपर राय देने के लिये कहना अन्याय है ऐसा बादशाह खान ने पंडित नेहरू से कहा, मौंटबेटन को जताया और जिन्ना को भी समझाया, लेकिन उनकी तर्कशुद्ध आशंका का समाधान नहीं किया गया। लेकिन उनकी यह शिकायत दुरुस्त है और पाकिस्तान का राजकीय चित्र आँखों के सामने न रखते हुए पठानों को उसके बारे में राय देने के लिए बाध्य करना न्याय-संगत नहीं है ऐसा गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में सुनाया था। पंडित जवाहरलाल नेहरू इस सार्वमत के अनुकूल थे। 'इसके लिए आनाकानी करना जनमत अपने पक्ष में नहीं है यह मान्य करने जैसा है। ऐसी पंडितजी की राय थी।

'पाकिस्तान की राजकीय संघटना का क्या स्वरूप रहेगा? वह वसाहत के स्वरूप का या संपूर्ण स्वतंत्र राष्ट्र होगा, यह हम नहीं जानते। हम किसी भी संपूर्ण स्वतंत्र न होनेवाली राज्य घटना के अंतर्गत नहीं रहना चाहते' बादशाह खान के इस सवाल का जवाब पंडितजी ने नहीं दिया, दे नहीं

सकते थे। कांग्रेस नेताओं के संमान ने विभाजन को मंजूरी दी थी और तभी जिन्ना का मनचाहा काम हुआ था। इसलिये विभागीय योजना के अनुसार सीमाप्रदेश पश्चिम विभाग में शामिल होने को बाध्य हो गया है ऐसा जिन्ना जाहिर करते थे। उनका यह आग्रह ठीक है ऐसी मोंटवेटन की समझ भी या उन्होंने कर ली थी क्योंकि विभाग का बंधन सख्ती का है ऐसा निर्णय ब्रिटिश पंतप्रधान ने दिया था। लेकिन वह कांग्रेस नेताओं को मंजूर नहीं था। पर प्राम आदेश के स्वरूप उन्हें मान्य करना पड़ा था। और इस सारी परिस्थिति में बादशाह खान का सीधासादा तत्वनिष्ठ आग्रह किसी को समझा देना संभव नहीं था। उल्टे बादशाह खान के प्रति जनता का खिंचाव कम हो जाने के कारण वे सार्वमत से घबराते होंगे।' ऐसी आशंकाएँ प्रदर्शित की जाती थीं।

वस्तुतः मुस्लिम लीग की चुनाव की माँग ही गवर्नर कैरों के दिमाग से निकली हुई थी। वह डा० खानसाहब ने साफ ठुकरा दी। उसके बाद धीरे धीरे जिन्ना की अनुज्ञा से 'डायरेक्ट एक्शन' याने दंगे आगजनी शुरू हुए। इस डायरेक्ट ऐक्शन के बल पर पंजाब के खिजर हयातखान मंत्रिमंडल को नीचे घसीटा गया लेकिन पेशावर के पठान, पंजाबी जमींदार, मुसलमानों की अपेक्षा अलग तासीर के और अलग हिम्मत के थे, लीग का यह डायरेक्ट नेक्शन हजारा के दंगे से शुरू हुआ था। उसमें खुद पेशावर का राज्यशासन बंद हो गया हो ऐसा लगा क्योंकि मंत्रिमंडल ने और पुलिस कमिश्नर ने दंगा करनेवालों को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी लेकिन उस पर अमल नहीं किया जा रहा था। जिनको गिरफ्तार करने का हुकम था वे लोग खुद गवर्नर के जासूसों में बैठे पाये जाते थे। जिनसे बातचीत की जा रही है उन लीग कार्यकर्ताओं के खिलाफ गिरफ्तारी के हुकम जारी हुए हैं इसकी जानकारी गवर्नर को रहती थी। ऐसी जानकारी न्यायमूर्ति सोंडला जैसों ने दी है। खुद लार्ड मोंटवेटन की मुलाकात के समय इन दंगों का स्वरूप उन्होंने देखा था। 'दंगे और अत्याचारों के सामने मैं नहीं झुकूँगा' ऐसे आश्वासन मोंटवेटन ने डा० खान को दिये थे। उन्होंने खुद पेशावर से वापस दिल्ली लौटते हुए रास्ते में कोहुथ की भयानक आगजनी देखी थी। और इस वातावरण में सार्वमत का आग्रह रखा जाता था। वे शासक अंग्रेजों के अत्याचारों के कारण पराभूत थे या अत्याचारों का उन बलात्कार विभाजन के लिये पठानों को राजी कराना था? किसी भी प्रांत को जबर्दस्ती से विभाग में नहीं ढकेला जायगा यह भी कैबिनेट मिशन योजना का आश्वासन

था। उसमें से किसी भी तत्व का पालन नहीं हुआ। विभाजन अमल में लाने की गड़बड़ी में लाखों लोगों की हत्या हुई। लोगों ने गुस्से में आकर और गुंडों ने किया ऐसा कहा जाता है। लेकिन उतनी ही भीषण यह तत्व हत्या गवर्नर की और सत्ता के लिये उतावले कयूमखान ने आयोजित की थी।

माउंटबेटन ने उसे देखा था और कांग्रेस नेताओं को भी वह दीखता थी। इन सबको साक्षी रखकर सीमाप्रदेश के खान मंत्रिमंडल के अधिकार छीनने की कार्यवाही शुरू हुई। बादशाह खान के श्रद्धा और धर्मनिष्ठा की विडंबना करना किसी से संभव नहीं हुआ। इस दौरान बादशाह खान द्वारा जिना या माउंटबेटन को दिये हुये जवाब समर्पक हैं। उनके द्वारा की हुई मिन्नत से किसी भी सहृदय इन्सान का समाधान हो सकता था इतना वह दर्दभरा है। "युद्ध के जमाने जैसे दिक्कत के समय आप अमन कायम रख सके क्योंकि उस समय शांति रखना आपके लिये बाध्यता थी, अब बच्चों की हत्या और स्त्रियों पर अत्याचार हो रहे हैं फिर भी शांति की रक्षा करने के लिये मंत्रिमंडल को सहायक होने के बदले, दंगों की ओर संकेत करते हुये मंत्रियों पर ही दबाव डालने का प्रयत्न कर रहे हैं।" ऐसा मर्मभेदक उत्तर उन्होंने दिया है, लेकिन वे अकेले थे। उनकी आवाज आसपास के होहल्ले को लाँघकर दिल्ली या लंदन तक नहीं पहुँचती थी। केवल ब्रिटिशों से प्रार्थना करके न रुकते हुये स्थानिक और राष्ट्रीय लीगी नेताओं की भी उन्होंने बहुत मिन्नत की। "भाई-भाई की तरह एक जगह बैठकर हम सुलह करें" ऐसी प्रार्थना उन्होंने कई मर्तबा की। लेकिन यह सुनने की अब कोई आवश्यकता नहीं थी। डॉ० खान मंत्रिमंडल अब धाराशायी होनेवाला ही है इसलिये उस क्षण की राह लीग के नेता देखते रहे। 'इन सारी घटनाओं के पीछे कौन से इस्लाम धर्म का प्रेम था और किसका कल्याण था' बादशाह खान के इस प्रश्न का जवाब आज भी कोई नहीं दे सकेगा।

उसका जवाब बादशाह खान ने उसी वक्त दिया था। जिना साहब खुद की ताकत का प्रदर्शन कितना भी करते रहे होंगे लेकिन उनकी पकड़ साम्राज्यवादियों के हाथ में थी। चर्चिल का संदेशा माउंटबेटन के हाथ में आखिरी पत्ता था। "तुमने यह नहीं माना तो जिंदगी में कभी भी पाकिस्तान मिलनेवाला नहीं" यह संदेश माउंटबेटन के जरिये ही प्राप्त होनेपर जिना साहब पाकिस्तान और बंगाल-पंजाब के विभाजन के लिये तैयार हुये। इसका अर्थ जिना की चाभी साम्राज्यवादियों के ही हाथ में थी और

साम्राज्यवादियों को बादशाह खान ने यह भी कह डाला कि, "रूस का मुकाबला करने के लिये सीमाप्रदेश में हवाईअड्डा बनाने के लिये हम राजी नहीं होंगे, इसलिये पठानों को आपसी झगड़े में त्रस्त रखकर यह साम्राज्यवादी मतलब साधा जा रहा है"।

डॉ० खान मंत्रिमंडल में मुस्लिम लीग के नुमाइंदे नहीं लिये गये, सार्वमत में हिस्सा नहीं लिया गया और पाकिस्तान का स्वातंत्र्य दिन आ गया फिर भी डॉ० खान मंत्रिमंडल अडिग रहता है यह सारा तमाशा जिना जैसे सुलतानी वृत्ति के नेता के लिए असहनीय था। अपना कार्यक्रम घड़ी के काँटे के अनुसार संपन्न होता है इस घमंड में ही रहनेवाले माउंटबेटन को तत्वहत्या की बात नगण्य लगने लगी थी। उनकी यह नस पहचाननेवाले जिना ने खान मंत्रिमंडल खारिज किया जाय ऐसी सूचना माउंटबेटन को दी और उन्होंने भी वह सूचना ब्रिटिश सरकार के सामने विचार के लिये रखी। उसपर से वह माउंटबेटन को मान्य थी ऐसा तर्क भी पेश किया गया हो तो वह असंगत नहीं होगा। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने ऐसी घटना विरोधी बात करने से इन्कार किया। घटना के अनुसार चुना गया और बहुमत का मंत्रिमंडल खारिज करना अयोग्य है ऐसी राय ब्रिटिश पंतप्रधान के देने पर मंत्रिमंडल की कार्यवाही में हस्तक्षेप करने की गवर्नर जनरल की अधिकार कक्षा का विस्तार करने का सुधार माउंटबेटन ने जिना के लिये कर दिया। और उस अधिकार द्वारा पाक के कायदेआजम गवर्नर जनरल ने अपने अधिकार को सर्वप्रथम खान मंत्रिमंडल का नामशेष करने में कार्यान्वित किया।

पाकिस्तान की निर्मिति के समय ही पठान जनता पर यह जो कानूनी अत्याचार किया गया वह जनतंत्र की विडंबना करनेवाला था ही, लेकिन उससे भी अधिक पठान जनता से हमेशा के लिये दुश्मनी पैदा करनेवाला सिद्ध हुआ। यह बहुत थोड़े लीगी नेताओं के ख्याल में आया होगा। थोड़ा बहुत वह जिना के ध्यान में अवश्य आया होगा। इसीलिये उन्होंने बादशाह खान से समझौता करने का विचार किया ऐसा दीखता है। लेकिन डॉ० खान साहब के अधिकार पद पर आसनस्थ हुए कयूमखान ने जिना के कान में जहर भर दिया था और बादशाह खान–जिना की मुलाकात कभी न हो ऐसा षड्‌यंत्र रचा। डॉ० खान मंत्रिमंडल को बचाने के लिये इस समय बादशाह खान ने केवल जन-जागृति की शरण ली। खुदाई खिदमतगार संगठन

ताकतवर करने का प्रयत्न किया। स्वतंत्र टोलीवालों के नेताओं को पाकिस्तान के आक्रमण का स्वरूप समझाने की योजनायें बतायी लेकिन उन्हें उस तरफ जाने ही नहीं दिया गया। सब प्रयत्न न सिर्फ अपर्याप्त हुए बल्कि असफल बनाये गये। एक मर्तबा अधिकार हाथ में आये तो सत्ताधीश उद्दण्ड बनता जाता है और सामान्य जनता उस सत्ता की छाँव की ओर मुड़ती झुकने लगती है। उनके जिन कार्यकर्ताओं ने एक साल पहले, 'पाकिस्तान की निर्मिति का प्रखर विरोध करना चाहिये और उसमें सफलता न मिले तो हिजरात के लिये तैयार रहना चाहिये' ऐसा प्रतिपादन किया था, उनमें से कुछ कार्यकर्ता जल्द ही कयूम खान मंत्रिमंडल के आश्रित बने। अल्लाहनवाज अब्दुर्रहमान जैसे और आगे कुछ जिम्मेदार खुदाई खिदमतगार भी बादशाह खान को छोड़ कय्यूम खान मंत्रिमंडल में शरीक हुये।

इस तरह धीरे धीरे खुदाई खितमतगारों की प्रदीर्घ विधायक सेवा से निर्माण किया हुआ काम लीग के कार्यकर्ताओं ने ब्रिटिशों की ताकत के सहारे खोखला बना डाला। खान मंत्रिमंडल उनके रास्ते में बड़ा रोड़ा था, उसे हटाने की ब्रिटिश सरकार की हिम्मत नहीं हुई। आगजनी, दंगों के जरिये यह हटा नहीं या सार्वमत के बाद की परिस्थिति के कारण भी वह मंत्रिमंडल तोड़ना संभव नहीं हुआ ! पाकिस्तान से राजनिष्ठ रहने की कसम खान मंत्रिमंडल ने खाई थी। इतना ही नहीं खुद बादशाह खाँन ने 'पाक' के स्थैर्य और शक्ति के पठान मददगार होंगे, केवल उन्हें उनकी आजादी का उपभोग लेने देने के बारे में जिना से करुणाभाव से कहा। लेकिन फिर भी जिना को खान मंत्रिमंडल को नष्ट करना था ही। वह किसी भी सूरत में न होते देख उन्होंने माउंटबेटन के पीछे पड़ कर पाकिस्तान के गवर्नर जनरल के अधिकारों में वृद्धि करवा ली (गजेट ऑफ इंडिया, १४ अगस्त १९४७)। ये अधिकार जिना को जब वे गवर्नर जनरल हुए तभी मिल सके। और उसके अनुसार उस विशेषाधिकार के बल पर एक हफ्ते के भीतर ता० २२ अगस्त को खान मंत्रिमंडल बरखास्त किया। पाकिस्तान की निर्मिति के समय ही पठानों की आजादी को बलि चढ़ाया। स्वधर्म और स्वातंत्र्य के लिये पैदा हुये पाकिस्तान के नेताओं का यह कृत्य अत्यंत अन्याय का ही नहीं, आत्यंतिक बदले की भावना का भी था यही निष्कर्ष कोई भी तटस्थ व्यक्ति निकाल सकता है।

डॉ० खान मंत्रिमंडल के पदच्युत किये जाने के बाद बादशाह खान ने

सार्वमत में हिस्सा नहीं लिया। उल्टे पठानों की आजादी के लिये आवाज उठाते रहे। उनके इस नीति को महात्मा जी का समर्थन था। जवाहरलाल जी को सार्वमत अपरिहार्य लगता था फिर भी जिस तरह पाकिस्तान के लिये स्वीकृति देना लाजमी था उसी तरह इसको स्वीकार किये बिना चारा ही नहीं था। सार्वमत की मांग के पीछे कोई अन्य नैतिक समर्थन नहीं था। इस दृष्टि से बादशाह खान की सार्वमत से असहकार करने की भूमिका किसी भी तरह से पलायनवाद की नहीं थी यह स्पष्ट था। ऐसे सक्ती के वातावरण में केवल दंगे होंगे, यह उनका कहना वास्तव था। दंगे टालने की दृष्टि से उन्होंने सार्वमत में हिस्सा नहीं लिया। बादशाह खान ने अपने सहकारियों और अनुयायियों का जिर्गा सम्मेलन सरदरयाबाद में सितंबर में बुलाया। दो दिन की चर्चा के बाद उन्होंने अपना निर्णय फिर मजबूती से घोषित किया। 'अंतर्गत झगडों के कारण कमजोर हुये मेरे पठान भाइयों की सेवा और उनकी आजादी यह मेरे जीवन का कार्य है। इसी ध्येय से और पठान समाज में सुधार करवाने के लिये १९३० में खुदाई खिदमतगार संस्था का निर्माण किया गया था। १९३० में जो ध्येय मेरी नजर के सामने था वही ध्येय आज भी मेरे सामने है। जिन वसूलों का मैंने उस वक्त समर्थन किया वे आज भी मेरे सामने हैं। मेरा रास्ता स्पष्ट है। मैं अकेला रहा तो भी मैं अपने रास्ते से हटनेवाला नहीं।' उनके अनुयायियों ने भी पठानिस्तान की इस मांग के प्रति अपनी श्रद्धा फिर से दोहरायी।

यहाँ मंजूर किये गये प्रस्ताव में पाकिस्तान के एक घटक राज्य के नाते पठानिस्तान रहना चाहता है यह स्पष्ट किया था। जिस लाहोर प्रस्ताव के जरिये पाकिस्तान की माँग की जाती थी उन उसूलों से पठानिस्तान की माँग सर्वथैव सुसंगत थी। परराष्ट्र महकमा, सुरक्षा, आवागमन यह महकमें मध्य पाकशासन के मातहत रखने के लिये वे तैयार थे। लेकिन द्विराष्ट्रवाद मानने के लिये बादशाह खान तैयार नहीं थे। इस कारण अपने तंत्र पर चलने से इंकार करने वालों की सफाई का रास्ता पाक नेताओं के लिये खुला रहा। हत्याकांड के लिये कयूम खान जैसे सत्तापिपासु ही इस तरह की भयानक घटनाओं का बनाव करते थे।

कयूम खान की नियुक्ति डॉ० खान साहब की जगह हुई और वे सीमा-प्रांत के प्रधान बनाये गये और उसके साथ मुस्लिम लीग के झूठे धर्मप्रचार के कारण पाकिस्तान की कल्पना के लिये अनुकूल हुए कार्यकर्ताओं में

हलचल और असंतोष फैला। कयूम खान ने लंबे अरसे तक खानबंधुओं के अनुयायी की हैसीयत में कितनी लगन से काम किया था यह लोग जानते थे, लेकिन खानबंधुओं के हाथ से बागडोर चली जायगी यह देखते ही उन्होंने जिना से संपर्क साधा। उनके इस विश्वासघाती स्वभाव को कुछ पठान नेता जानते थे। इसलिये बादशाह खान और खुदाई खिदमतगारों से विरोध करने वाले और खान मंत्रिमंडल के खिलाफ प्रतिकार आंदोलन खड़ा करने वाले मंकीशरीफ पीर या अरबाद अब्दुल गफूर खान जैसे नेता कयूम खान का विरोध करने के लिये फौरन आगे बढ़े। मुस्लिम लीग के नये नेतृत्व के लिये या सीमा प्रदेश की सत्ता के लिये फौरन झगड़ा शुरू हुआ। मंकीशरीफ के पीरसाहब के नेतृत्व में मुख्य प्रधान कय्यूम खान से विरोध करने के लिए यह आंदोलन खड़ा किया गया था। खान मंत्रिमंडल को पीछे खींचनेवाले ये ही लोग थे। इतना ही नहीं उनके समर्थन पर कयूम खान सत्ता पर आए थे, लेकिन इस तरह से लीग के नेताओं वाले प्रांत पर मुख्य प्रधान नहीं लादना चाहिए, प्रांतिक मुस्लिमलीग की सहायता से नेता चुना जाय ऐसी माँग पीरसाहब ने की। लेकिन जिना साहब के कान तक इन विरोध करनेवालों की आवाज पहुँची नहीं। उल्टे कयूम खान के हाथ अब सत्ता के कारण ताकतवर हुए थे इसलिये उन्होंने अपने सहकारियों के माथे पर हाथ फेरना शुरू किया। १९४८ से १९५१ के दौरान कयूम खान के इस अप्रातिनिधिक मंत्रिमंडल द्वारा दमन पूरे जोर शोर से चल रहा था। उन्होंने खुदाई खिदमतगारों पर ऐसे जुल्म और अत्याचार किये जिसे देख कर विदेशी ब्रिटिश फौजी अधिकारियों को भी शरम लगे, इतना ही नहीं खुद के सहकारियों को उन्होंने जेल की हवा खाने के लिये भेजा। सत्ता पर आये हुए तत्वभ्रष्ट लोग स्वातंत्र्य की कैसे विडंबना कर सकते हैं उसकी भी एक मिसाल सीमाप्रदेश के इस कयूम मंत्रिमंडल ने पेश की। डा० खान मंत्रिमंडल को गिराने के लिये गवर्नर केरो या दिल्ली का पोलिटिकल महकमा हमेशा तैयार था, अब कयूम को सहारा देने के लिये कराची के पंतप्रधान लियाकत अली खान और गवर्नर जनरल जिना उपलब्ध हुए थे। आजादी आयी, पाकिस्तान बना, लेकिन सीमाप्रदेश की तकदीर में जुल्म कम होने के बजाय अधिकाधिक बढ़ना लिखा था। अब वह पठानों के जरिये शुरू हुआ था। सिर्फ नाम बदलने से या अपने जातिवालों के आने से आजादी नहीं मिलती है। बादशाह खान का यह रोना इतनी क्रूरता से जनता अनुभव कर रही थी।

आजादी जब हाथ के फासले पर आयी तब चारों ओर से घेरे गये शिकार की तरह बादशाह खान की अवस्था हुई थी या चारों तरफ से जंगल जुलगाया जाय और शिकारी के सामने शिकार अपने आप पेश हो इस तरह की स्थिति हुई होगी। उनके शिकारी लियाकत अली, कयूम खान आदि को वैसा लगा होगा। लेकिन यह धीरज का मेरुमणि अपने निश्चय से तनिक भी हटा नहीं। पाकिस्तान बन जाने के बाद सात आठ महीने तक बादशाह खान अपनी माँग की पृष्ठभूमि समझाने के लिये प्रचार करते रहे। गलतफहमी के कारण या अपने स्वार्थ के कारण फूट बढ़ती हुई देखकर उन्हें दुख होता था। पाकिस्तान के आजाद पठानों के साथ पठानिस्तान बनाया जाय ऐसी उनकी अपेक्षा थी। इसलिये पठान इलाके में प्रचार करने की उनकी इच्छा थी, लेकिन वह पूरी नहीं हो सकी। बादशाह खान हिंदुओं के हस्तक, मूर्तिपूजक और इसलिये इस्लाम की निंदा करनेवाले हैं इस तरह की उनकी निंदा सब जगह की जाती थी और उल्टे बादशाह खान का प्रचार जनता के कानों तक पहुँचना भी कठिन होता गया। उन्हें घटना परिषद का वैसा आकर्षण नहीं था। लेकिन अपने विचार के प्रचार के लिये मौका पाने की दृष्टि से वे १९४८ की फरवरी में कराची में होनेवाली घटना परिषद् के लिये गये। वे इस बैठक के लिये आवें इसके सरकार की ओर से भी प्रयत्न हुये थे। कयूम खान के भाई उनसे उसके लिये मिले भी थे। विभाजन के कारण दोनों देशों पर बोझ आया था। कराची पहुँचते ही वहाँ के बचे हुए हिंदुओं के शिष्ट मंडल ने उनसे मुलाकात की। गांधी जी सब को छोड़ चल बसे थे। पाकिस्तान में रहनेवाले अल्पसंख्यकों की नजर स्वाभाविक ही बादशाह खान की ओर लगी थी। उन्हें उन्होने धीरज और धैर्य का मार्गदर्शन किया। लेकिन कराची के निर्वासित मुसलमानों की दुर्दशा देखकर भी उन्हें काफी सदमा पहुँचा। वहाँ के मुस्लिम लीग में भी खींचातानी शुरू हुई थी। कराची के स्वतंत्र वृत्ति के जी० एम्० सय्यद, अब्दुल मजीद सिंधी आदि के सहकार्य से पाकिस्तान की घटना परिषद में कुछ कार्यक्रम आयोजित करने की दृष्टि से बादशाह खान ने प्रयत्न शुरू किये। उनके वहाँ के थोड़े वास्तव्य के कारण मुस्लिम लीग के और अन्य स्वतंत्र वृत्ति के मुसलमानों में कुछ चैतन्य का संचार हुआ। इन बैठकों और मुलाकातों के कारण ही स्वतंत्र लोकपक्ष की स्थापना (पीपल्स पार्टी) बाद में हुई।

बादशाह खान को कराची आगमन के कारण अखबारनवीसों से खुलकर बात करने में भी सहूलियत हुई। संसार के अखबारों के नुमाइन्दे कराची में

डेरा जमाये बैठे थे। उनके सवालों का जवाब देते हुये उन्होंने पख्तूनिस्तान के संबंध में और पाकिस्तान के संबंध में खुद की नीति के सिलसिले में स्पष्टी-करण करने के मौके का फायदा उठाया। "हमें पाकिस्तान से दुश्मनी नहीं करनी है। हमने पाकिस्तान के झंडे के प्रति वफादार रहने की कसम खाई है। पाकिस्तान का झंडा हम मानते नहीं है ऐसा प्रचार हमारे खिलाफ किया जाता है वह साफ झूठ है और शरारत भरा है। इस्लाम भाईचारे के आधार पर खड़ा है। एक दूसरे को ऊँच नीच समझना हमारे धर्म से मेल नहीं खाता। हम पाकिस्तान में वही अधिकार पठानों के लिये चाहते हैं। हम पाकिस्तान को तोड़ना मरोड़ना नहीं चाहते हैं। आजाद हो जाने पर हमारी सुरक्षा के साथ साथ पाकिस्तान की सुरक्षा में मदद पहुँचेगी। पठान बहुत गरीब हैं। आपकी तुलना में पिछड़े हुए हैं। आप सब धनवान हैं। हमारा अफगान लोगों से कुछ सुलूक नहीं। पाकिस्तान का बाहर के किसी के साथ संबंध जोड़ना शरारत भरा है। हम पिछड़े हुए, तासीर से कुछ अलग हैं इसलिये हमें हमारी पद्धति से गरीबी से शासन करने दो।" यह नीति उन्होंने जिना साहब को भी साफ बता दी थी। उनकी इस मुलाकात में उनकी यह भूमिका अच्छी तरह स्पष्ट हो चुकी थी। कराची में उन्होंने जो प्रचार किया उससे उनका ही लड़-कपन खुल जाता है यह शासकों के ध्यान में आने लगा था।

दिनांक ५ मार्च को बादशाह खान ने अपने सामान्य प्रशासन की संबंधित माँग पर कटौती (कट मोशन) विषय पर चर्चा शुरू की। उनका भाषण सुनने के लिये सारी सभा चित्रनुमा तटस्थ बैठी थी। उनका भाषण उर्दू, हिंदी, पुश्तू का मिश्रण था। करीब २५ मिनट तक वे बोलते रहे।

सारांश :—

"अबतक आजादी के आंदोलन के दौरान अपने मार्ग भिन्न भिन्न रहे। अब आंदोलन खत्म हुआ है। पाकिस्तान हमारा देश है और उसकी भलाई के लिए स्वार्थत्याग करने के लिए उसकी सेवा करने के संबंध में हम किसी के भी पीछे नहीं रहनेवाले हैं। हम स्वतंत्र पख्तूनिस्तान की जो माँग करते हैं उसका मतलब आप ठीक तरह से समझ लें। सहिष्णुता से समझ लें। हमारे आजाद होनेपर ही हमारी आजादी बढ़ेगी और हमारी ताकत बढ़ने के कारण पाकिस्तान की भी ताकत बढ़ेगी। हमारी ताकत आपके भी काम आनेवाली है। जिना साहब को मैंने यह साफ बता दिया था। पाकिस्तान में फूट पैदा हो या उसको खतरा पैदा हो ऐसी हम में से किसी की भी इच्छा नहीं। देश की भलाई के लिये हमारे सारे लोग आपके साथ रहेंगे। आपका एक दोस्त

हूँ इस नाते पाकिस्तान की भलाई के लिये आप मेरे कहने का मतलब समझ लें। इस्लाम माने सहिष्णुता, समानता और भाईचारा ही है। इन तत्वों को मद्देनजर रखते हुये वर्ताव करने का अगर हम सोचें तो सही माने में पाकिस्तान होगा और उसी के बदौलत वह ताकतवर बनेगा।"

पाकिस्तान की नयी कार्यपद्धति में हो रहा अपव्यय और अंग्रेजी नौकरशाही पर परावलंबी रहने के बारे में उन्होंने जोर से प्रहार करते हुए कहा, "हमारा शासन शुरू हुए अबतक छ महीने भी पूरे नहीं हुए हैं लेकिन अपना यह शासन पहले के परकीय सत्ताधिपों से भी बढ़कर अपव्यय का और उद्दंडता के संबंध में उन्हें भी शर्म से गर्दन झुकानी पड़े ऐसा है। राज्य का शासन चलानेवालों को जनता का सेवक बनना चाहिये। सिर्फ तंत्रज्ञ या तत्व के नाते पराये लोगों की सहायता जरूर की जाय पर शासन में पराये लोगों को जरा भी मौका नहीं मिलना चाहिये। पहले से अधिक मात्रा में ब्रिटिश राज्यपाल और ब्रिटिश अधिकारी यहाँ हैं और कभी कभी तो पहले की अपेक्षा कई गुना अधिक अन्याय सहना पड़ता है। ब्रिटिश द्वारा तैयार किये हुये ढाँचे के अनुसार ही हमारा शासन तंत्र चल रहा है। अध्यादेश के कारण यह शासन भयानक हुआ है, विदेश की मिजाजी या अपव्यय की पद्धति के कारण व्यवस्था पूरी तरह बिगड़ चुकी है।

"मुस्लिम लीग का जीवन कार्य अब पूरा हुआ है। लीग की जगह सब जाति के नागरिकों का समावेश किया जा सके ऐसे अलग राजकीय दल की स्थापना करना चाहिये। गरीब और दलितों की सेवा करने का लक्ष्य इस संगठन के सामने रहना चाहिये।"

बादशाह खान की यह तकरीर अत्यंत गंभीरता से सुनी जा रही थी। लेकिन सरकारी धन का अपव्यय और जातीय और प्रांतीय दृष्टिकोण की दृष्टि से उनके कड़े शब्द सुनते ही ट्रेजरी बेंच पर बैठे हुए नेता बौखलाहट करते थे। "आप प्रांतीयता बढ़ा रहे हैं।" ऐसा आरोप एक मंत्री के करते ही "उसका कारण पंजाबी लोगों से पूछें, उन्होंने यह गंदी भावना फैलायी है।" ऐसा खरा जवाब खान ने दिया।

पंतप्रधान लियाकत अली ने नये जनतादल पर नुक्ताचीनी की। यह नया दल भारतीयों का दल—देशद्रोहियों का दल है आदि विधान लियाकत अली ने अपने भाषण में किये। उसके जवाब में खान साहब ने कहा, "हम सच्चे मुसलमान हैं, इस्लाम के बंदे हैं, हमारा नमाज कभी भी छूटा नहीं।

हम पाकिस्तानी हैं और पाकिस्तान के झंडे के प्रति वफादार रहेंगे ऐसी कसमें खायी हैं। हम आपके रिश्तेदार भी हैं और पहले के जमाने से यहाँ के बाशिंदे हैं और आपमें से कौन कब नमाज पढ़ता है यह हम नहीं जानते। आप यहाँ पड़ोसी बाशिंदे की हैसियत से आये हैं। आप हमें पराया कहें, आप हमें कुत्सित भाव से हिंदू कहें ? इसका क्या जवाब दिया जाय ?"

"यह एक इंक्लाब है" ऐसा लियाकत अली खान ने उनके मुँह पर ही कहा। उसपर बादशाह खान ने केवल हाथ हिलाकर तुच्छता बताई। पख्तून माँग को प्रतीयवाद कहनेवालों को उन्होंने फिर से जताया, "प्रांतीयवाद मुस्लिम लीग के काम की फलनिष्पत्ति है, हम पख्तूनिस्तान चाहते हैं। वह पंजाब-सिंध जैसा ही पाकिस्तान में चाहिये।"

कराची का उनका यह मुकाम डेढ़-दो महीने का रहा और इस दरमियान उन्होंने पाकिस्तान के शासन और विशेषतः अपने सीमाप्रदेश के कयूम खान की हुकूमत पर प्रकाश डालनेवाला प्रचार मुलाकात के जरिये किया।

खुद बादशाह खान जहाँ भी जाते हों वहाँ किसी न किसी कारण से १४४ की धारा लगाकर सभाबंदी, प्रचारबंदी आदि की जाती थी। फलस्वरूप कार्यकर्ताओं से मिलना-जुलना भी कम होने लगा था।

पेशावर में उनके घर मेहमान के नाते आये हुए एक कार्यकर्ता के पास पिस्तौल थी। वह उसने खुद की सुरक्षा के लिये रखी थी। ऐसा होते हुये भी वह अनधिकृत रीति से बादशाह खान के पास था इस बात पर उन पर मुकदमा दायर किया गया। अदालत ने दो रुपये जुर्माना या अदालत उठने तक की सजा सुनाई। यह वाकया १९४८ के जनवरी का था।

कई साल खुदाई खिदमतगारों में काम किये हुये कयूम खान की हुकूमत के लिए इससे अधिक नीच और बदला लेने की वृत्ति का स्वरूप क्या होता ? उनका पख्तून साप्ताहिक बंद किया गया। विरोधी दल की कोई भी खबर प्रकाशित नहीं की जाती थी, इस तरह की कई शिकायतें उन्होंने कीं। लेकिन प्रत्यक्ष अत्याचार हजम कर जानेवाले शासकों को इस तरह की नुक्ताचीनी से क्या होता ? लेकिन खुद जिना साहब को इस दमन की नीति का खतरा मालूम हुआ होगा या मैंने बादशाह खान से समझौता करने का प्रयत्न किया यह दिखाने के लिये उन्होंने बादशाह खान को अपने घर खाने का न्योता दिया। इसके अनुसार दोनों की मुलाकात राजभवन में हुई। बहुत देर तक हुई बातचीत द्वारा जिना साहब की गलतफहमी बहुत

कुछ दूर हुई होगी, कम से कम बादशाह खान को वैसा लगा। पठानों का सामाजिक सुधार हुये बगैर वे किसी काम के लायक नहीं होंगे। शिक्षा और समाजकार्य के लिये ही खुदाई खिदमतगार संस्था खड़ी हुई थी लेकिन ब्रिटिशों के अत्याचारों की वजह से हमें राजकारणी बनाया गया। अब आजादी के बाद यदि उनमें शिक्षा और समाज सुधारों का प्रसार नहीं किया गया तो वे लोग पिछड़े ही रहेंगे। ऐसे पिछड़े हुए लोगों में जनतंत्रीय शासन जड़ नहीं पकड़ सकेगा। इस तरह की अपनी नीति जिना को खान साहब ने बताई। वह सुनकर जिना भी प्रसन्न हुये। उन्होंने बादशाह खान को गले लगाया। खान ने विधायक काम में सब तरह की मदद देने का आश्वासन दिया। 'एक लाख चरखे तैयार कर भेजता हूँ' ऐसा भी जिना ने कहा। बादशाह खान ने जवाब में कहा, 'मुझे आर्थिक या अन्य किसी भी तरह की मदद नहीं चाहिये, मुझे अंतःकरण का तोहफा चाहिये। दिल से सहकार्य किया तो हमारी दिक्कतें दूर होंगी' ऐसा उन्होंने स्पष्ट कहा। इस चर्चा के दौरान जिना ने सुझाया कि खुदाई खिदमतगार संगठन को अब मुस्लिम लीग में मिल जाना चाहिये। लेकिन वह इस योग्य नहीं और संभव नहीं यह खान साहब ने कहा। 'दोनों के मकसद जुदा जुदा हैं और कार्यपद्धति भी जुदा है। लीग के कार्यकर्ताओं में आज प्रामाणिक व्यक्ति कितना दुष्कर है। अल्पसंख्यकों को लूट का पैसा जिनके घर में न गया हो, ऐसा लीग का कार्यकर्ता ढूँढना पड़ेगा। यह मसला मैं अपने कार्यकर्ताओं के सामने रखूँगा। आप सीमा प्रदेश में आइये और हम अपने कार्यकर्ताओं के सामने यह चर्चा करेंगे।' इस तरह की बात होने पर जिना ने पेशावर आने पर खुदाई खिदमतगारों से मिलने का आश्वासन दिया। इस तरह से दोनों नेताओं की मुलाकात के बाद उससे कुछ अच्छा फल निकलेगा ऐसी थोड़ी आशा भी पैदा हुई लेकिन हमेशा की तरह उल्टा ही हुआ। इस पर से यह प्रयत्न असल में समझौता करवाने के लिये हुआ था या बादशाह खान के खिलाफ चिल्लाहट करने के लिये सबूत खड़ा करने के लिये था यह ठहराना कठिन है।

मार्च से मई १९४८ इन दो ढाई महीनों का बादशाह खान का मुकाम पार्लमेंट की सभा के लिये अधिकतर कराची में रहा। इस मुकाम का फायदा उनकी भूमिका साफ करने में काफी हदतक सहायक हुआ। लेकिन जिन्हें सचाई क्या है यह सुनना नहीं था या समझ लेना भी नहीं था ऐसे लीग

के नेताओं पर कुछ भी असर नहीं हुआ। लेकिन बादशाह खान द्वारा प्रस्थापित किये हुये जनता पक्ष का समर्थन करनेवाला वर्ग थोड़ा बढ़ने लगा था। सिंध में सक्कर बाँध के कारण जो बड़ी जमींदारी बढ़ी थी वह वर्ग अपनी सत्ता में दूसरा कोई हिस्सेदार न हो ऐसा चाहते थे, वैसे ही वहाँ के मुस्लिम नेताओं का एक गुट धीरे धीरे विरोधी दल की ओर खींचा जा रहा था। इस गुट को द्विराष्ट्रवाद का राजकारण उतना मान्य नहीं था। लेकिन पाकिस्तान का निर्माण होने पर और प्रतिगामी वृत्ति के स्वार्थान्ध नेताओं के कब्जे में पाकिस्तान का नेतृत्व जाने पर ऐसे लोगों की आँखें खुलीं। उन्हें बादशाह खान का अगुवापन मिलते ही उनका धीरज फिर से बँधा। जी० एम० सय्यद व सिंधी नया दल खड़ा करने के लिये आगे बढ़े और खुद बादशाह खान को ही इस नये दल का सदर बनाया।

पूर्व बंगाल में बहुत असंतोष पैदा हुआ था। लेकिन कायदे आजम के प्रभावी नेतृत्व का सामना करने की ताकत किसी में नहीं थी। बादशाह खान ने निश्चयपूर्वक वह उद्योग १९४६–४७ में चालू रखा था। पाकिस्तान की निर्मिति के बाद तो वे बिल्कुल अकेले पड़ गये थे। खान मंत्रिमंडल पदच्युत हो जाने पर तो सीमा प्रदेश में २०–२५ साल से उनके द्वारा खड़ी की हुई तेजस्वी संस्था धीरे धीरे ठंडी पड़ने लगी थी। ऐसे पिछड़ने के वातावरण और परिस्थिति में जनता का पक्ष खड़ा हुआ। वह सब जाति धर्म के नागरिकों के लिये खुला था। जिस जी० एम० सय्यद ने पाकिस्तान की कल्पना सिंध में लोकप्रिय करने में जिना की मदद की वे ही इस नये दल का पुरस्कार करनेवाले थे यह ध्यान में रखनेलायक बात है। पाकिस्तान बनने पर पहला प्रहार, कराची शहर केंद्रीय शासन के पास जाने के कारण सिंध पर हुआ था। सय्यद पुरोगामी विचार के और जनता के सुखदुख की चिंता वहन करनेवाले थे। जिना को बाद में बड़े पूँजीपतियों को सँभाल रखने के लिए सय्यद जैसे कार्यकर्ता को दूर हटाना पड़ा था। उर्दू भाषा को राष्ट्रभाषा का स्थान देने की सख्ती (पाकिस्तान में १९५१ में केवल ७ फी सदी लोग उर्दू जानते थे) करने से भी असंतोष बढ़ा था। उर्दू भाषा केवल पंजाबी और संयुक्त प्रदेश के निर्वासित सत्ताधीश ही जानते थे। बंगाल में यह एक फी सदी लोगों की भाषा है, तो पश्चिम पाकिस्तान में तीन फी सदी लोग उर्दू जानते हैं। इस भाषावाद से बहुत से झगड़े बढ़े लेकिन उससे भी अधिक शासनतंत्र का पूँजी के सिलसिले से

होनेवाला पक्षपातपूर्ण खर्च था। नौकरियों में सर्वस्व पंजाब और यू० पी० से आये हुए मुस्लिम नेताओं का था, जिस कारण शुरू से ही असंतोष पैदा हुआ। इस विरोध का नेतृत्व करने के लिये जी० एम० सय्यद जैसे स्वतंत्र वृत्ति के और जनता के दुख के पक्ष में बोलनेवाले कार्यकर्ता आगे आये। इससे यहाँ के जनमत की कल्पना ठीक से आ सकती है।

बादशाह खान ने इस नये दल का अध्यक्षपद अस्थायी रूप से स्वीकार किया, इतना ही नहीं, सारे पाकिस्तान में खुदाई खिदमतगार संस्था संगठित करने की कल्पना कराची के मुकाम में जाहिर की गयी। मई के अंत में कराची लौटने के पहले पीपुल्स पार्टी के नेताओं ने इस विवाद का स्वागत किया। पाकिस्तान बनाने का उद्देश्य सफल होने पर मुस्लिम लीग को विसर्जित किया जाय और सारे नागरिकों को इसमें काम करने के लिये एक मौका मिल सके ऐसे नए दल को खड़ा करें ऐसी सूचना बादशाह खान ने पार्लिमेंट में दी थी। इस सूचना पर सत्ताधारी दल विचार करें यह असंभव था। लेकिन मुस्लिम लीग में से फूटकर बाहर निकलनेवाले और मोटे पुरोगामी विचारों के लोग स्वयं जिना के नेतृत्व से इतनी जल्दी अलग हो रहे थे जिसकी यह मिसाल है। लेकिन ऐसे प्रामाणिक और जनतासेवक नेताओं से राज्यकर्ताओं को अड़चन होती है और वे उनको ठिकाने लगा देते हैं। उनके हाथ में सत्ता होने के कारण जनता के हित के नाम से ही ऐसे विरोधियों को आसानी से कुचला जा सकता है। बादशाह खान या जी० एम० सय्यद की इस पीपुल्स पार्टी का वैसा ही हुआ। विशेषतः बादशाह खान ने खुदाई खिदमतगार संस्था सब जगह संगठित करने की योजना हाथ में ली और यह योजना ही उनके सारे विधायक और अहिंसात्मक प्रयत्नों को गाड़ने का कारण बनी।

कराची के इस लंबे मुकाम में उन्होंने मुख्यतः पठानों के पचीस साल के त्याग और तकलीफों के कारण ही पाकिस्तान कैसे निर्माण हुआ यह लोगों के सामने रखा। भारत की आजादी और उनसे निर्माण हुआ पाकिस्तान आजादी के शहीदों ने कमाया था। पाकिस्तान के प्रचारक या आज के शासक इनमें से किसी ने भी पाकिस्तान मिलने के लिये त्याग नहीं किया था। आजादी देने में अधिक समय बिताने के लिये मुस्लिम लीग के नेताओं ने ब्रिटिश शासकों की मदद ही की थी। पठानों ने आजादी के आंदोलन में साहस से हिस्सा लिया था। इसलिये पाकिस्तान के निर्मिति का श्रेय त्याग किये हुए

पठानों को मिलता है। आज शासन चलानेवाले धनिक पूँजीपतियों को उसका श्रेय नहीं मिल सकता है। यह आघात शासकों के मर्म पर खुल्लम-खुल्ला होनेवाला जैसा था। हम विभाजन के लिये क्यों विरोध करते थे, यह भी उन्होंने स्पष्ट किया।' अब यह झगड़ा नहीं रहा। पाकिस्तान का कोई भला या बुरा हुआ तो वह आघात मुझ पर हुआ ऐसा मैं मानता हूँ।' ऐसा उन्होंने स्पष्ट किया।

कराची में दो महीनों का उनका कार्यक्रम इस साल की तुलना में काफी उत्साहवर्धक और विशेष फूट से लोकशिक्षा की दृष्टि से फायदेमंद रहा। और इसीलिये उनके इस विधायक काम से शासकों को खतरा मालूम हुआ होगा विशेष रूप से कुछ भी करके शासन अपनी पकड़ में रखने की चेष्टा करनेवाले शासकों को इस काम का डर ही लगा होगा।

सीमाप्रांत के मुख्य प्रधान अब्दुल कयूम खान, स्वार्थांध और डरे हुए नेताओं में से एक थे। कुटिल नीतिवाले क्रूर और शैतानी महत्वाकांक्षा रखनेवाले इस नेता का स्वभाव तवारीख में बेहद काला लिखा जाय ऐसा था। इस सत्तापिपासु नेता ने सीमा प्रदेश में बादशाह खान के किए हुए तीस साल के विधायक काम को पूरी तरह कुचल डाला। खुदाई खिदमतगार संस्था में फूट और फिरकापरस्ती की। उसने जिन्हें गुरुतुल्य और बड़ा भाई माना उन्हीं—खान बंधुओं के—मुँह में राज्य के तोबड़े बँधवाए। खुदायी खिदमतगार संगठन तहस-नहस करने के लिये उनकी स्त्रियों, बच्चों पर अनगिनत अत्याचार किये। खान बंधुओं के बारे में जिना की सहानुभूति न रहे इसके लिये छलकपट से निंद्य नाटक खेले। जिना की जान लेने का षड्यंत्र खुदाई खिदमतगारों ने रचा है, इस तरह से उनके कान भर कर खान बंधु और उनकी कभी मुलाकात भी नहीं होने दी। केवल बादशाह खान या खुदाई खिदमतगारों को अपना रास्ता साफ रखने के लिये नेस्त-नाबूद करने का इस सत्तापिपासु ने निश्चय किया था। इतना ही नहीं फ्रांटियर प्रांत से खान मंत्रिमंडल को उठा देने के लिये यहाँ की मुस्लिम लीग के जिन नेताओं ने मदद की थी उन मंकी के पीर साहब और अरबाब अब्दुल गफूर खान आदि लीगी नेताओं को इस सत्ता से बँधे हुए जुल्म ने पहले ही वर्ष में जेल का रास्ता बता दिया। सत्तास्पर्धा के राजकारणों में भी इतने गंदे कारनामों से भरा हुआ चित्र शायद ही मिलेगा। उन्होंने 'गोल्ड ऐंड गन्स ऑन् दि फ्रांटियर'

नाम की किताब डा० खान साहब को समर्पित की है और उसमें बादशाह खान एक महान नेता और ईश्वर का प्रेषित है इस तरह की तारीफ की है। कांग्रेस असेंबली दल के उपनेता और स्व० भूलाभाई देसाई के सहायक के नाते १९३७ में उनका चुनाव डा० खान साहब की सिफारिश से हुआ था। लेकिन जिना सत्ता पर आने वाले हैं यह दीखते ही इस कायदे पंडित ने सख्ती से धर्मांतरित एक देवा को उसके घर वापस पहुँचाया। बाद इस अदालत के निर्णय के खिलाफ सत्याग्रह शुरू करवाया, उसमें से उनका नेतृत्व पैदा हुआ। "जैसे जैसे कांग्रेस वाले और हिंदू विरोध करते जायेंगे वैसे वैसे पाकिस्तान फुरती से बढ़ता जायगा" ऐसा आम भाषण पाकिस्तान की स्थापना होने पर उन्होंने दिया। वे जिना के एक विश्वस्त, लियाकत अली के आधार और उसी तरह से उसका वर्णन बादशाह खान के जीवन चरित्र में अपरिहार्य है। लेकिन गुलाम महंमद के गवर्नर होने के बाद पहले के नाजिमुद्दीन हुकूमत के चालबाज के नाते कयूम का पाक मंत्रिमंडल से उद्घाटन हुआ। आदर्श चालबाज पुरुष का "सीमाप्रांत का आदर्श कार्यकर्ता" रूप में वर्णन कुछ विदेशी लेखकों ने (जे० डब्लू० स्पेन्स, दी पठान बार्डर) किया है।

कराची की मुलाकात के बाद जिना जल्द ही पेशावर आनेवाले थे। जून के पहले हफ्ते में बन्नू में बादशाह खान ने कार्यकर्ताओं का शिबिर संमेलन बुलाया और जिना के सुझाव उनके सामने पेश किये। मुस्लिम लीग से सहकार्य करने की कल्पना किसी को भी मान्य नहीं थी। झूठी धर्म कल्पनाओं का प्रचार, आपसी फूट बढ़ाने के कारनामे और शासन तंत्र में वसीलेबाजी आदि आँखों के सामने होते हुए तत्वनिष्ठा के कारण सालों तक घर की रोटी खाकर काम करने वाले खुदाई खिदमतगार, तत्वभ्रष्ट और रिश्वतखोर लोगों से कैसे सहकार कर सकेंगे ? समाज सेवा के अपने काम में लगे रहने की नीति इस संमेलन में फिर से निश्चित हुई।

इस संमेलन के बाद बादशाह खान ने जिना साहब को एक खत लिखकर अपनी खुदाई खिदमतगार संस्था का ध्येय और आगामी कार्यक्रम के बारे में खुलासा किया। उसके बाद यदि खान की नीति के बारे में किसी के मन में कोई कटुता या शंका रही तो वह किसी भी जरिये से दूर करना संभव नहीं होता। इस खत में (ता० १८ अप्रैल १९४८) बादशाह खान लिखते हैं—

माई डियर-कायदे आजम,

दे (खुदाई खिदमतगार) हैव यूनानिमसली डिसाइडेड डैट दे शैल स्पेयर नो इफर्टस इन स्ट्रेन्थनिंग एण्ड सेफगार्डिंग दी इनटरेस्ट आफ पाकिस्तान एण्ड शैल डू नथिंग व्हिच मे टेंड टु आब्स्ट्रक दि वर्क आफ गवर्नमेंट बट विल इंडल्ज इन लेजिटिमेट क्रिटिसिज्म।

जून महीने के दो हफ्ते बादशाह खान ने मर्दान, कोहाट और पेशावर जिलों में प्रचार सभायें कीं। कराची की पार्लमेंट की सभा में घटना परिषद आदि बड़े बड़े नाम की खोखली संस्थाओं का परिचय जनता को दिया। उनका सही प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थायें वे चाहते थे। लीग के झंडे के नीचे और धर्म के नाम पर केवल धर्मान्ध धनिक सत्ता के लिये ललचाये हुए लोग इकट्ठे हुये हैं ऐसा सच्चा चित्र उन्होंने जनता को दिखाया। पुराने पराये शासनकर्ता और हमारे नये धर्म बांधव इनके चेहरे मोहरे में कुछ भी फर्क नहीं यह कटु सत्य उन्होंने कह डाला। जनता के हाथ में सही शासन आने के लिये इस्लाम के आदेश के अनुरूप शासन चलाने के लिये पीपुल्स पार्टी की स्थापना हुई है और अपने आगामी कार्यक्रम की जानकारी उन्होंने इन प्रचार सभाओं में दी। हम शासन व्यवस्था के लिये नये हैं, ऐसे सरकारी प्रचार को उन्होंने जवाब देते हुये भारत की ओर इशारा किया, "आजादी के आंदोलन में कांग्रेस के साथ जो नहीं और विरोधक थे जैसे डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी या डा० आंबेडकर जैसे लोग नेहरू पटेल द्वारा सहकारी चुने गये और यहाँ जनप्रतिनिधि दूर फेंके जा रहे हैं।" ऐसी चुभने वाली आलोचना उन्होंने की और यदि इस्लामी धर्म तत्वों के अनुसार शासन चलाना हो तो पठान भाइयों को राज्य शासन का चौथा हिस्सा क्यों न मिले? आपको अपना हिस्सा प्राप्त करने के लिये तैयार हो जाना चाहिये ऐसा आवाहन उन्होंने मर्दान की विराट सभा में किया। मिली हुई आजादी में केवल पठान ही सच्चे हिस्सेदार हैं। उसके लिये उन्होंने बीस साल तक अथक परिश्रम किये हैं। हाल के शासकों ने मुश्किलें नहीं झेली हैं, यह भी उन्होंने जगह जगह कहा।

कयूम खान जैसे शासक को इस प्रचार के तूफान का अनुभव होना स्वाभाविक ही था।

: २३ :

अग्निशमन

पूर्वनिश्चय के अनुसार जून में जिना साहब पेशावर आये। उनके स्वागत समारोहों में खान बंधु न आयें, इस तरह की योजना कयूम खान ने रची थी। 'आपसे मिलने में वे अप्रतिष्ठा महसूस करते हैं' इस तरह का जहर जिना के कान में डाला गया था। इतना होने के बावजूद गफ्फार खान जिना से आकर मिले और खुदाई खिदमतगार संस्था के कार्यकर्ताओं से मिलना उन्होंने मान्य किया। उसके अनुसार उन्हें मिलने के लिये निमंत्रित भी किया। लेकिन कोई न कोई वजह बताकर उन्होंने अपना वचन वापस ले लिया। उसके लिये बाद में जिना ने खेद प्रदर्शित किया। 'लेकिन आप हमें किसी भी समारोह में मिले नहीं हमारे कार्यक्रम का बहिष्कार किया, ऐसा दीखता है' जिना की इस चुभनेवाली बात पर उन्होंने साफ-साफ शब्दों में सब कुछ कहा लेकिन उससे जिना की गलतफहमी दूर होना संभव नहीं था। जिना की एक आम-सभा में अपने ही हस्तकों को फैलाकर उनके द्वारा 'बादशाह खान जिंदाबाद, खुदाई खिदमतगार जिंदाबाद' के नारे कयूमखान ने लगवाये। उन नारों को बंद करने के निमित्त दूरध्वनि क्षेपक से कयूम खान चिल्लाते थे, 'अरे भारत के पिट्ठुओ, चुप रहो। तुम्हारी गुंडागर्दी यहां नहीं चलने दूंगा।' यह सारा नाटक उन्होंने जिना के सामने करवाया और 'आपके खून का षड्यंत्र हुआ है' ऐसा भी कहा। जिना की गलतफहमियाँ दूर करने का मौका उनको नहीं मिलने दिया। इन सारी घटनाओं के कारण जिना को गलतफहमी हुई ऐसा माना जाय या बादशाह खान जैसे तत्वनिष्ठ प्रतिस्पर्धी अपने को दिक्कत में डालेंगे यह समझ कर कयूम खान को निमित्त बना जिना ने ही बादशाह खान को दूर ढकेल दिया, यह निश्चित करना कठिन है। 'पाकिस्तान के खूनी, दुश्मन' आदि गालियां देकर जिना ने ही उन्हें अलग किया, यह पाठकों को तय करना है। जिना का पाकिस्तान का लक्ष्य कैसे निर्धारित हुआ। वे असल में लोकशाहीनिष्ठ, जातिभेद, धर्मभेद न माननेवाले, धनिक पारसी स्त्री से शादी किये हुए, प्रखर बुद्धि के कायदे आज़म थे। वे कुरान नहीं

जानते थे, वे उर्दू नहीं समझते थे, दोस्तों में मुसलमानों की अपेक्षा हिंदू, पारसी, यूरोपियन अधिक थे, लेकिन महत्वाकांक्षा के बाजार में उतरने पर अपनी बुद्धि से सारे विपरीत काम करने लगे।

हिंदू नेता ब्रिटिश मुसद्दियों पर बौद्धिक वर्चस्व प्रस्थापित करने में वे अपनी धन्यता मानने लगे। हिंदू नेताओं द्वारा की हुई कुछ गलतियों के कारण उनके दिल पर आघात हुआ, ऐसा दावा कई लेखकों की ओर से किया जाता है, लेकिन गांधी, नेहरु, राजेन्द्र प्रसाद, आजाद, सुभाष बाबू इनमें से किसी एक भी नेता से स्नेहभाव से या दिल खोलकर वे विचार-विनिमय नहीं कर सके इसका अर्थ क्या हो सकता है? ये सारे भारतीय नेता जाति-धर्म-भेदों को भूले हुये थे, इसके बारे में दुनिया का कोई विचारक शंका प्रदर्शित नहीं कर सकेगा, फिर ऐसे नेताओं के प्रति जान बूझकर किया, उन्हें झुकाया, उन्होंने बादशाह खान को भी झुकाया, चकमा दिया ऐसा कोई भी समझेगा। जिना के इस बदले हुए महत्वाकांक्षी स्वभाव से फायदा उठानेवाले नेता उनके इर्द-गिर्द १९४० के बाद इकट्ठे हुए। कयूम खान सबसे बाद १९४५ के अंत में इस परिवार में आये और उनके दुष्ट सलाह-मशविरे के कारण खानबंधु और खुदाई खिदमतगार संस्था का सत्यानाश हुआ। जिना साहब ने ही 'खानबंधु और खुदाई खिदमतगार संस्था पाकिस्तान विरोधी हैं, उनकी राजनिष्ठा धोखेबाजी है, उनसे जनता के संपर्क रखने में पाकिस्तान की भलाई नहीं' ऐसी घोषणा पेशावर छोड़ने के पहले एक सभा में की। वे पाकिस्तान के प्रति एकनिष्ठ नहीं यह आरोप गवर्नर जनरल द्वारा ही लगाने पर आगामी भवितव्य साफ था। लेकिन जिना का यह बर्ताव कराची में जैसी बादशाह खान से बातचीत की थी उसकी पूर्णतया विसंगति में था। यह सब करतूत कयूमखान की थी। सीमाप्रांत के मुख्यमंत्री का पद बेखटके खुद के नियंत्रण में वे चाहते थे।

जिना के किये इशारे के तुरंत बाद तीन ही दिन में बादशाह खान बन्नू के रास्ते पर बहादुरखेल देहात के नजदीक जब सफर में थे, तभी उनकी गाड़ी रोकी गयी। वहाँ से उन्हें तिरही तहसील की ओर ले गये। वहाँ दिन भर और खाना-पानी दिये रोक रखा। कोहाट के डेप्युटी कमिश्नर ने उनपर इल्जाम लगाया और जमानत देने को सुझाया। उनपर राजद्रोह का इल्जाम लगाया गया था। उसके बारे में कोई सबूत बताने की बादशाह खान ने मांग की। लेकिन उसकी आवश्यकता ही नहीं थी। बादशाह खान ने भी जमानत देने से इंकार किया। डेप्युटी कमिश्नर ने उन्हें तीन साल की सख्त कैद

की सजा सुनायी। सजा सुनाने के बाद उनके साथ के सहकारी मित्रों से मुलाकात भी नहीं होने दी गयी और जरूरत की चीजें भी साथ नहीं लेने दी गईं। सजा सुनाते ही उन्हें मांटगोमरी जेल भेजा गया। पाकिस्तान की निर्मिति के ठीक दस महीने बाद १५ जून को इस महान देशभक्त का फिर से बंदी जीवन शुरू हुआ।

पंद्रह साल के बाद भी वैसा ही चल ही रहा था। उनके पीछे पीछे पेशावर के प्रांतिक कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष अमीर मुहंमद खान और भूतपूर्व मंत्री काजी अताउल्ला को भी जेल भेजा गया। पाकिस्तान के समर्थकों को भी इन अशुभ घटनाओं से चिंता हुई। पाकिस्तान के स्वातंत्र्य की सुबह सीमाप्रांत के पठानों के लिए इस तरह से दाहक और मारक अंधःकार भरी रात महसूस हुई जब स्वधर्म के लिये राज्यकर्ता बने हुये धर्मबांधव खुद शासन चला रहे थे। कयूम खान ही मुख्यमंत्री थे और उनका इस्लाम की रक्षा करने का कार्यक्रम था। इस्लाम के एक महान फकीर पर ढाये हुये जुल्म पर पाकिस्तानी धर्मसेवा के राजकारण का प्रारंभ हो रहा था।

इप्पी के फकीर की मदद से पाकिस्तान के खिलाफ पठान टोलियों को प्रोत्साहित करने के षडयंत्र का इल्जाम बादशाह खान पर लगा था। बन्नू और कोहाट की पठान टोलियों ने नेताओं से मिलने के लिए खान जाना चाहते थे लेकिन उनके अंतर्गत झगड़ों को मिटाना, पाकिस्तान ने खुदाई खिदमतगारों के खिलाफ जो हथियार उठाया था या मुस्लिम लीग के नेताओं में सत्तास्पर्धा के लिये जो झगड़े चल रहे थे उनका फायदा उठाकर टोलीवाले पठान अपना लूटपाट का धंधा शुरू न करें, इसलिए उन्हें सभ्यता की चार बातें कहने के लिये उधर जाना था। उसका विपर्यास सरकार ने जान बूझकर किया। इप्पी के फकीर से हाथ मिलाकर उनके द्वारा सीमाप्रांत पर हमले करवाना, भारत की फौज जब पाकिस्तान पर हमला करने आवे तब इप्पी के फकीर को दूसरी ओर से हमला करने का मौका लेना चाहिये आदि षडयंत्र बादशाह खान ने रचे थे, ऐसी अफवाहें फैलायी गईं। वे जिना के कान तक पहुँची। अर्थात् इन खबरों में सचाई कितनी थी, भारत हमला करनेवाला है, इस खबर से मालूम हो सकती है। ये सब अफवाहें पूर्णतः बेबुनियाद और नीचता हेतु फैलायी जा रही हैं, ऐसा बादशाह खान ने बार बार कहा। लेकिन उनके स्पष्टीकरण की ओर कयूम खान की हुकूमत ने ध्यान नही दिया। ये झूठी अफवाहें स्वयं कयूम गुट ने ही फैलायी थी

इसलिए उनकी असत्यता के संबंध में वे अधिक जानते थे। लेकिन वे सत्य ही हैं, किस तरह ऐसा वातावरण कायम रखा जाय यह सवाल उनके सामने था। वही प्रचार सरकार द्वारा प्रकाशित पत्र भी कर रहे थे।

जैसे बादशाह को अपने रास्ते से हटाया, उसी तरह डॉ० खान साहब को भी अबोटाबाद जेल में बंद किया। बादशाह खान के लड़के गनी खान, काजी अताउल्ला खान, अमीर मुहंमद, अब्दुल वलीखान जैसे उनके सहकारियों को फौरन जेल में भेजा गया लेकिन खुदाई खिदमतगार संस्था मुट्ठी भर दिखावटी लोगों की नहीं थी। गाँव गाँव में, महिला-बच्चों आदि सब में इस संगठन की जड़ें फैली हुई थीं। वे सारी जड़ें उखाड़ फेंकने का मौका कयूम के सहायक देख रहे थे। उसके लिए कयूम हुकूमत ने विशेषाज्ञा द्वारा ज्यादा अधिकार जुलाई १९४८ में अपने हाथ ने लिये। खुदाई खिदमतगार संस्था गैरकानूनी है, ऐसे हुक्म जारी हुए, लेकिन जनता ऐसे हुक्म तुच्छ मानने के लिये आदी हो चुकी थी। चारसद्दा गाँव के बाबरा हिस्से में जनता ने निषेध जाहिर करने के लिए निदर्शन का आयोजन किया (१२ अगस्त १९४८)। इन निदर्शकों पर सब तरह के पशुतुल्य अत्याचार पहले पुलिस ने किये। श्री प्यारेलाल ने इन पाशविक अत्याचारों का वर्णन कतल ऐसा ही किया है। कुछ दिन इस तरह शिकार का खेल चलता रहा। इस तरह रोब जमाने से खुदाई खिदमतगारों का नाश होगा और बाद में बेखटके शासन चल सकेगा, ऐसी कयूम खान की धारणा थी। बाबरा के इन अत्याचारों का वर्णन फारिग बुखारी ने निम्नानुसार किया है : "जनता पुराने अंग्रेजों के अत्याचारों को भी भूल जाय, इस तरह के अत्याचार शांतिपूर्ण जुलूस पर किये गये। इस गोलीकांड में सैकड़ों लोग घायल हुए और मरे। कई मुर्दों की खोज बड़ी मुश्किल से और अनूठे ढंग से बाद में हुई। घायल लोगों को सरकारी अस्पतालों में प्रवेश नहीं दिया गया या उपचार भी नहीं पहुँच पाये।" लेकिन कयूम खान का यह रवैया स्पष्ट था और पहले ही प्रहार में दुश्मन को अच्छी तरह घायल करने की उनकी नीति थी। बाबरा गोलीकांड से जब सर्वत्र शोर मच रहा था उस समय इस मुख्य मंत्री ने (कयूम खान ने) पेशावर के यादगार चौक के अपने भाषण में कहा, "गुरबा बुशतन रोजेश अव्वल बिजली" याने बिल्ली को (दुश्मन को) पहले ही प्रहार में ढेर कर देना चाहिये। पहले से ही विरोधियों को डर लगना चाहिए। उनके इस उसूल के अनुसार उन्होंने पहला वज्राघात खुदाई खिदमतगारों पर याने पुराने दोस्तों पर किया।

कयूम खान ने बादशाह खान और उनके सहकारियों के लिये जो तौर तरीके अपनाये, वे ही अपने विरोधी मुस्लिम लीग के नेताओं पर इस्तेमाल किये। वे मुख्य मंत्री बने तभी सीमाप्रांत की मुस्लिम लीग में झगड़े शुरू हुये। कयूम खान लीग में घुसे हुए नये शिकारी थे। १९४६ के दंगे और दमन के समय जिना को सही माने में मदद हुई थी—मंकी शरीफ के पीर साहब की और अरबाब अब्दूर गफूर की। अब्दुल गफूर तो पुराने खुदाई खिदमतगार थे। लेकिन गनीखान ने पारसी लड़की से शादी की थी या डॉ० खान साहब की लड़की का सिख से शादी करना, यह सारा भ्रष्टाचार है इस तरह की झूठी धर्मबुद्धि से वे धर्मरक्षण करने के लिए पैदा होनेवाले पाकिस्तान के पीछे लगे थे। उन्हें खुद को जिना साहब की शादी की मालूमात शायद न हो, लेकिन पीर साहब और अब्दुल गफूर सीमाप्रांत का मुख्य मंत्री किसे बनाया जाय यह निर्णय प्रांतिक लीग और प्रांतिक कायदेमंडल के सदस्यों पर छोड़ा जाय, ऐसी माँग की थी। सब दृष्टि से यह माँग उचित ही थी। लेकिन जिना साहब ने यह नहीं मानी और कयूम खान का शासन प्रांतीय लीग के नेताओं की मर्जी के खिलाफ थोपा गया। इस कारण प्रांतिक मुस्लिम लीग और कयूम खान में शुरू से ही संघर्ष प्रारंभ हुआ था जिससे मुस्लिम लीग और अवामी लीग दल के नेताओं को भी कयूम खान की अधिकार लालसा की आँच लगने लगी थी। मुख्यतः बादशाह खान, डॉ० खानसाहब और खुदायी खिदमतगारों का संपूर्ण जीवन अस्तव्यस्त कर डाला और कयूम खान की बाद की तीन चार साल की हुकूमत में वह पूरी तथा ध्वस्त भी किया गया। ऐसे अधिकार लिप्सा के सहायकों की मदद से बने हुये पाकिस्तान का शासन खुद जिना साहब का अंत समय नजदीक लाने के लिये लियाकतअली के खून या डॉ० खानसाहब की बलि चढ़ाने के लिये हुआ है यह भी पाकिस्तान की ओर अपेक्षा से देखनेवालों को ध्यान में लेना चाहिये। कयूम खान जो बो गये थे उसमें से पाकिस्तान की फसल तो नहीं, लेकिन अयूब खान की फसल निकलती है, यह अनुभव हो चुका है।

३० जुलाई १९४७ से १६ जून १९५८ का समय बादशाह खान के जीवन में आजादी के उपयोग का समय था। इसी समय का वर्णन पिछले अध्याय में है और उसका नाम है 'अग्निप्रवेश'। इस आजादी को पाने के लिये उन्होंने १९१२ से याने उमर के बाईसवें साल से कष्ट उठाये और

आजादी होठ तक आई भी लेकिन वह अमृत का प्याला उनके लिये नहीं था। मीराबाई के सामने आये हुए जहर के प्याले की तरह था और मीरा ऐसी निष्ठा और श्रद्धा से उन्होंने उसको स्वीकार भी किया। स्वतंत्र पाकिस्तान के शासन में उनका यह एक साल का जीवन याने अक्षरशः अग्निप्रवेश जैसा ही रहा। मैं पाकिस्तान का दुश्मन या विरोधी नहीं, केवल पठानों की आजादी के लिये लड़ रहा हूँ और पठानों की आजादी पाकिस्तान के लिये सच्ची ताकतवर होगी यह उन्होंने बारबार गला फाड़कर कहा, लेकिन उनकी सत्यनिष्ठा की सेवावृत्ति की आवाज मौकापरस्त अधिकारलिप्सावालों की दंभी धर्मगर्जना में विलीन हो गयी और अंत में शरीर भी पिघल जाय इसके लिये विद्वेष से तपी हुई बंदीशाला में उनको डाल दिया गया। अत्याचार केवल पत्थर की दीवालों से या लोहे की कड़ियों से नहीं होता है, वह जुल्म तत्वनिष्ठ इंसान आनंद से सह सकता है। लेकिन समाजनेता माने जानेवाले लोग अत्यन्त दुष्टता से या स्वार्थांध नेता पशुतुल्य बर्ताव करते हैं इस कारण होनेवाली व्यथावेदना असहनीय होती है। केवल तत्वनिष्ठ और तत्वचिंतक शख्स ही ऐसे समय भी विवेक से और ईश्वरनिष्ठा से अपने मान और प्राण का रक्षण कर सकते हैं। अग्निशय्या पर बादशाह खान ने यह छ साल का समय इसी तरह व्यतीत किया।

इस मियाद की उनके बंदी जीवन की कुछ जानकारी कभी बाहर नहीं आ सकी। किसी की मुलाकात से कुछ खबर बाहर आ जाय उतनी ही बाहरी दुनिया को उपलब्ध होती थी। इस छ साल के पाकिस्तान के इतिहास में विलक्षण परिवर्तन होता गया। इस्लाम की रक्षा के लिये और संबंध के लिये पैदा हुए इस नये राष्ट्र की नैया किस ओर चली थी इसका पता नहीं था। खुद कायदेआजम जिना की मृत्यु दुर्दैव से अकाल में और संशयास्पद अवस्था में हुई। उसके बाद पाकिस्तान का नेतृत्व टूटे हुए पतंग की तरह भटकता रहा। इस विधान में अतिशयोक्ति नहीं। ऐसी परिस्थिति का परिणाम बादशाह खान के बंदी जीवन पर होता रहा। भीतरी अव्यवस्था की खबरें बाहर की दुनिया न जाने इसके लिये दक्षता बरती जाती थी। पाकिस्तान के विकास–उत्कर्ष के संबंध में भारत के विचारक नेताओं की आस्था होने के कारण उनके शासकीय दोषों को खोलकर बताने की वृत्ति भारत ने कभी भी नहीं अपनायी। इसलिये बादशाह खान जैसे अपने निकटवर्ती सहकारी के बारे में भी भारत पूछताछ नहीं कर सकता था।

अपनी इस सजा की अवधि में वे कितने जेलों में रहे यह भी ठीक तरह से मालूम नहीं होता है। लेकिन उनका पहला साल मांटगोमरी जेल में गया। वहीं हमेशा की तरह उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। उनके खाने के लिये इस बार ५०० रुपये मंजूर किये गये थे। लेकिन बादशाह खान ने जेल में हमेशा के भोजन के अलावा अन्य किसी भी सहूलियत का फायदा नहीं उठाया। डॉ० खान साहब, गनीखान, वैसे ही उनके सहकारी फाजी अताउल्ला आदि को उनके साथ ही गिरफ्तार किया गया था फिर भी उन सबको एक जगह नहीं रखा गया था। मांटगोमरी जेल से उन्हें जल्द ही बलूचिस्तान के मच्छ जेल में भेजा गया। क्योंकि १९४८-४९ में कयूम खान ने मुस्लिम लीग के प्रमुख नेताओं पर भी हथियार उठाया और उन्हें इस मच्छ जेल में रवाना किया। तब अरबाब गफ़ूरखान, ज़कोडी के पीरसाहब आदि नेताओं की बादशाह खान से मुलाकात इसी जेल में हुई और वहाँ के सहवास के कारण ही लीगी नेताओं की आँखें खुलीं और उनके विचारों में भी थोड़ा परिवर्तन हुआ। स्वार्थी पाक नेताओं के दांवपेच इस तरह पहचाने जा सके। मच्छ जेल से उन्हें फिर रावलपिंडी जेल में भेजा गया। १९५१ में वे रावलपिंडी जेल में थे और वहाँ उनका स्वास्थ्य अधिक खराब होने की खबरें पहली मर्तबा काबुल आकाशवाणी से सुनायी गयीं। इस वक्त बादशाह खान की उमर साठ साल की हो चुकी थी। पहले के १५ साल का जीवन बंदीशाला की तकलीफों के कारण कुरेदा गया था इसलिये उनके बारे में भारत में और विशेषतः वायव्य सीमाप्रांत में चिंता व्यापना स्वाभाविक ही था। इसी कारण १९५१ के मई महीने में पंडित जवाहरलाल जी ने इस संबंध में कुछ निजी तौर पर और बाद में भारत सरकार की ओर से इनके संबंध में पूछताछ करवायी। लेकिन उसका कुछ भी उपयोग न होते हुए पाकिस्तान सरकार ने "हमारी अंदरूनी व्यवस्था में यह अप्रशस्त हस्तक्षेप हो रहा है" ऐसा शोर मचाया। इस संबंध में उल्लेख उस समय के अ० भा० कांग्रेस समिति की चर्चा में आ जाने पर ही जनता के कानों तक यह बात पहुँची। अर्थात् इससे अधिक करने का भारत सरकार के लिए संभव नहीं था। कश्मीर संघर्ष के बदौलत भारत और पाकिस्तान में जो मत्सर और द्वेष की दीवाल खड़ी हुई थी उस कारण दोनों राष्ट्रों की घटनाएँ असली स्वरूप में एक दूसरे के लिए समझना कठिन हो गया था। पाकिस्तान के शासन के बारे में यहाँ चर्चा का प्रश्न नहीं है, वैसी किसी की इच्छा भी नहीं है। लेकिन वहाँ के पठान नेता ही नहीं, पूर्व बंगाल के शासन विरोधी दल

और शासकों में आंदोलन इस तरह का स्वरूप पकड़ रहा था कि आवाज दबाना संभव नहीं था। बलूचिस्तान और सीमाप्रांत की तरह ही पूर्व पाकिस्तान के १८०० कार्यकर्ता जेलों में बंद किये गये थे। इसलिये पाकिस्तान पार्लमेंट में विरोधी दल द्वारा विशेष ताकतवर न होते हुए भी देशभक्तों पर ढाये जानेवाले जुल्म के संबंध में बार बार आवाज उठाई जाती थी। बादशाह खान इन सारे स्वातंत्र्यनिष्ठ देशभक्तों के देवता थे।

बादशाह खान की सेहत लगातार गिरती चली जा रही थी इसलिये उन्हें लाहौर अस्पताल में १९५२ की फरवरी में लाकर रखा गया। वहाँ कुछ उपचार हुए भी लेकिन उनके स्वास्थ्य के संबंध में लंबी मुद्दत तक उपेक्षा होती रही इसलिये और उपचार भी ऊपर ऊपर और दिखावटी रहने के कारण वे कभी भी रोगमुक्त नहीं हुए। उन्हें शरीर स्वास्थ्य कभी भी नहीं मिला। केवल ईश्वरचिंतन से लाभ होता था उतना ही, और उनकी ईश्वरनिष्ठा असीम होने के कारण ही वे इन सारी मानसिक और शारीरिक पीड़ा-विडंबना को शांति से सह सके होंगे। उनकी बीमारी के संबंध में अधूरी सच या झूठ खबरें बाहर आती रहीं इसलिये सीमाप्रांत की जनता में चिंता का वातावरण फैल गया। फ्रांटियर विधिमंडल की मार्च (१९५२) की बैठक में पीरजादा महम्मद गुल ने बादशाह खान की सेहत के बारे में जनता को लगी चिंता व्यक्त करनेवाला प्रस्ताव पेश किया था। लेकिन यह प्रस्ताव सदर साहब ने स्वीकृत नहीं किया।

इस तरह की शारीरिक और मानसिक अस्वास्थ्य की व्यवस्था में उन्होंने १९५३ का वर्ष बिताया, उस दरमियान के भिन्न भिन्न जेल के अधिकारियों के बर्ताव के संबंध में विशेषतः वैद्यकीय अधिकारियों के कर्तव्यविहीन बर्ताव के संबंध में जो कुछ सुनाई पड़ा उससे स्पष्ट है कि बादशाह खान को परमेश्वर ने ही जिंदा रखा। टूटे पहाड़ पर से ढकेला गया या आग में फेंका गया फिर भी अंत में भक्त प्रहलाद जिंदा रहा, ऐसी पुराण कथा है। बादशाह खान का बंदी जीवन और वह भी स्वकीयों के शासन के मातहत, जैसे अनंत यातनाओं से भरा हुआ है वैसे ही वह उनकी खुद की अशेष निष्ठा का दर्शन करा देनेवाला है। प्रह्लाद पर अमानुष अत्याचार क्या प्रत्यक्ष पिता ने (हिरण्यकश्यपु) नहीं किया? लेकिन वह निरी धर्मश्रद्धा थी, वह श्रद्धा अतिरेकी थी फिर भी वह प्रामाणिक थी। असुरों की परंपरा में देवादिकों का नामसंकीर्तन होना अघोर कर्म है, ऐसा हिरण्यकश्यपु को हृदय से लगता था। इस्लाम पर वैसी श्रद्धा रखनेवाले कुछ मुसलमान भी होंगे लेकिन

पाकिस्तान के किस नेता की इस्लाम पर बादशाह खान से अधिक श्रद्धा थी ? कौन से शासक ने कुरान देखा था या रोजाना नमाज पढ़ने का नियम रखा था ! अबूबकर के गरीब जीवन का आदर्श किसने रखा था। लेकिन इन सत्ताधीशों के हाथ में बादशाह खान पर अत्याचार करने के लिये काफी शक्ति थी और अपनी वह सत्ता ढीली न हो इसके लिये ही उन्हें जेल के अंदर बंद करना कयूम खान को लाजमी था। यह सब इस्लाम धर्म के नाम पर किया जाता था।

बादशाह खान का यह बंदी जीवन का समय शब्दशः अग्नि पर सोने जैसा ही हुआ, ऐसा कहें तो उसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी।

करीब छः साल के बंदी जीवन के बाद जनवरी १९५४ में बादशाह खान को रावलपिंडी जेल से रिहा किया गया। हजारों लोगों ने उनका स्वागत किया। पाकिस्तान की स्थापना के मंगल समय से उनके इस अग्निशयन का समय शुरू होता था। उन्हें जेल में क्यों डाला गया और किस ने डाला ? और छः साल के बाद उन्हें क्यों रिहा किया गया और किसने रिहा किया। इस सारी पार्श्वभूमि का खयाल करने पर ही पाकिस्तान की राजकीय प्रगति कितनी टेढ़ी मेढ़ी हुई थी इसकी कल्पना हो सकेगी। कयूम खान के बोये बीज से पाकिस्तान की फसल बढ़ने की बजाय वहाँ केवल अयूब खान की फसल निकलती है" ऐसा उल्लेख पहले हो चुका है। इस तरह बादशाह खान की रिहाई के समय अयूब खान के लिये प्रसूति वेदनायें शुरू हुई थीं। कायदे आजम जिना या लियाकत अली की यादगार पाकिस्तान की जनता भूल नहीं सकती थी लेकिन उनके बाद के शासकों की नीति में जिना की भी सच्ची स्मृति ढूँढ़ निकालनी पड़ती थी। जिस मुस्लिम लीग के नाम से पाकिस्तान का निर्माण हुआ वह मुस्लिम लीग कम से कम पूर्व पाकिस्तान से नष्ट प्राय हो चुकी थी। १९५४ के मार्च में हुये चुनावों में कुल २३७ स्थानों में से केवल १० स्थान जन्मदात्री संस्था प्राप्त कर सकी तो फजलुल हक, सुहरावर्दी आदि पुराने लीगी नेताओं द्वारा ही खड़े किये विरोधी दल को २२३ स्थान मिले। फिर भी शासन मुस्लिम लीग के ही हाथ में रहा। पूर्व बंगाल इतनी विकलांग बन गयी थी। सिंध में भ्रष्टाचार के कारण पदच्युत किये गये खुरो फिर से लीग के नेता बने थे। सीमाप्रांत की लीग, बादशाह खान को नष्ट करने की इच्छा रखने वाले कयूम खान ने ही बरबाद कर डाली थी और पाकिस्तान के शासन को अपने काबू में रखते हुये चालें चलने वाले पंजाबी

नेता आंतरिक झगड़ों के कारण घायल हो गये थे। १९५३ में पंजाब में जो अहमदिया पंथ के खिलाफ आंदोलन या दंगे हुये उससे पाकिस्तान का शासन लीग के नाम से चलता रहा हो फिर भी शासन सूत्र किसके हाथ में था यह समझना कठिन हो गया था।

अहमदिया पंथ के खिलाफ उठाये गये इस तूफान के कारण पाकसत्ता की हड्डियाँ नरम हो गयी थीं। प्रत्यक्ष लाहोर में शासन टूटने की नौबत आयी थी। वहाँ की आगजनी फौजी कानून के बाद ही बंद हो सकी। रेल्वे, बस आदि आवागमन के साधनों को आग लगाना, पोस्ट तारयंत्रों की तोड़ फोड़ और अहमदिया बस्ती का नाश इन कारनामों की खबरों से ही नाजिमुद्दीन मंत्रिमंडल की सांस रुक गयी थी। यह सब चल रहा था तब पंजाब के मुख्यमंत्री दौलताना (इन्हें ही लियाकत अली ने १९४९ में ममदोत मंत्रिमंडल उखाड़कर सत्ताधिष्ठित किया था) हाथ जोड़कर राह देखते बैठे थे। अंत में इस्कंदर मिर्जा ने फौज की सहायता से उसे कुचल डाला। लाहौर के दंगों की पूछताछ करने वाले न्यायमूर्ति मुनीर ने "लोक शाही याने राजकीय हेतु के लिये कानून और शांति को भंग करने पर हमारा भविष्य अल्ला ही जाने और अपना अहवाल हम यहीं पूरा करते हैं" ऐसे उद्गार निकाले। इस मुनीर अहवाल ने सारी पाकिस्तानी जनता को हिला दिया। लेकिन वहाँ के राज्यकर्ता गुट के नेताओं पर उसका कुछ खास असर नहीं हुआ। पाकिस्तान के सत्ताधीश गुलाम महंमद उस समय गवर्नर जनरल थे तो पंत प्रधान के पद पर मोहंमद अली बोग्रा थे। दोनों कुशल सनदी नौकर थे। वे ही बदसूरत बनाई गई मुस्लिम लीग के नेता बने थे। ऐसी ही पृष्ठभूमि में और एक दूसरे पर दाँवपेंच करने की राजनीति के एक हिस्से की दृष्टि से बादशाह खान रिहा किये गये थे। पंतप्रधान लियाकत अली को भी बादशाह खान को जेल में रखने में खतरा लगता था लेकिन द्विराष्ट्रवाद या धर्म के नाम ले चलनेवाले राज्यशासन की गड़बड़ियों को बादशाह खान का समर्थन प्राप्त होना असंभव था। बादशाह खान के पुरोगामी राष्ट्रवादी दृष्टि का उपयोग कर लेने का विचार मुल्ला मौलवियों के उपद्रव से तंग आये हुये लियाकत अली को सूझा होगा ऐसा दीखता है। लेकिन समय निकल गया था और तत्वभ्रष्ट होकर शासन में भागीदारी करने के लिये बादशाह खान तैयार थे ही नहीं। लियाकत अली के बाद गवर्नर जनरल गुलाम महंमद ने भी १९५३ में एक दो मर्तबा बादशाह खान के साथ सरदार

बहादुरखान के जरिये बातचीत करने का प्रयत्न किया था। 'हमसे डरने का आपको कोई कारण नहीं। खुदाई खिदमतगार किसी से द्वेष नहीं करता, उसे किसी से बदला नहीं लेना है। सारे पठानों पर अन्याय हुआ है यह आपको मान्य हो तो आप हमारी रिहाई का सोचें।' ऐसा बादशाह खान ने जवाब दिया था। लेकिन खुद की चारों ओर उभरी हुई प्रचार की लपटें राज्यकर्ताओं को असह्य हो रही थीं। उन्हें कुछ रास्ता ढूँढना लाजमी हो गया था। मुख्यतः पूर्व पाकिस्तान में खड़े किए हुए कानूनी विरोधी आंदोलन का सामना करने के लिए पश्चिम पाकिस्तान का गढ़ सुरक्षित करना जरूरी था। परिस्थिति के इस दबाव के कारण बादशाह खान जेल के बाहर आए थे।

बादशाह खान की यह रिहाई याने अंगार से निकालकर शोलों पर फेंकने जितने ही परिवर्तन की थी, क्योंकि उन पर तुरंत ही स्थानबद्धता का हुक्म जारी किया गया। 'मैं राजनीति करनेवाला आदमी नहीं हूँ, सेवक हूँ, सर्वत्र अंधेरा नजर आता है।' ऐसे उद्गार रिहा होते ही पत्रकारों द्वारा पूछे सवाल का जवाब देते हुए उन्होंने निकाले। घटना परिषद में हिस्सा लेने की उन्हें मुमानियत थी। कार्यकर्ता उन्हें मिल सकते थे। लेकिन अन्य विशेष प्रचार या घूमना फिरना वे नहीं कर सकते थे। इसी दौरान घटना परिषद के गले में धार्मिक नियंत्रण का फंदा बाँधने का मौला मौलवियों का प्रयत्न चल रहा था। उनके दबाव का सामना करने की ताकत पंतप्रधान बोग्रा के नेतृत्व में नहीं थी। घटना परिषद में बादशाह खान ने कुछ समय हिस्सा लिया भी। वे धर्म निष्ठ थे, फिर भी धर्म के पीछे पागल बने हुए नेताओं से उनका मेल कैसे बैठ सकता था? गवर्नर जनरल गुलाम मोहंमद और पंतप्रधान मोहंमद अली बोग्रा के शासन को उखाड़ फेंकने के लिए बंगाल ने कमर कसी थी। घटना परिषद में बंगाल का बहुमत था। बादशाह खान की रिहाई से जिस तरह पठानों में उत्साह बढ़ा था वैसे ही सारे सरकार विरोधी दलों की शक्ति भी बढ़ी थी। घटना परिषद् में गवर्नर जनरल के अधिकारों पर पाबंदी डालनेवाले कानून पास किये गये। फलस्वरूप पूर्व बंगाल के नेताओं का शासन सारे पाकिस्तान पर होगा इस डर से पाकिस्तान के शासक चिंतित थे। पूर्व पाकिस्तान के इस कानूनी हमले का सामना करने के लिये पश्चिम पाकिस्तान के चार राज्यों का सिंध, बलूचिस्तान, सीमाप्रदेश और पंजाब का एक शासन विभाग बनाया जायगा

तभी इस गुट के केंद्रित नेतृत्व के बल पर पूर्व बंगाल को हराया जा सकेगा।' हाल में हरेक राज्य में जो फूटकर अलग निकलने की वृत्ति है वह दूर होगी आदि उद्देश्य इस योजना के नेता राज्य के नेताओं के सामने रखते थे लेकिन जिन नेताओं ने केंद्रित शासन का नाश करनेवाले कानून पास कर लेने के लिये बंगाली नेताओं की सहायता की थी, वह गुट एक आंशिक योजना की कैसे मदद करता ? खुद पंजाब में भी आंशिक योजना के विरोधक थे ही, क्योंकि बड़े जमींदार नेताओं के खिलाफ वहाँ पर कई जनतंत्रवादी और पुरोगामी या कम्युनिस्ट दल बढ़ रहे थे। "पाकिस्तान टाइम्स" जैसे अखबार और इफ्तिकार उद्दीन जैसे पुराने कार्यकर्ताओं ने वहाँ लोकशाहीवादी दल की स्थापना की थी। खुद सीमाप्रांत में कयूम खान को पाक में रखने वाले रशीद खान आंशिक योजना पास करवा लेने के लिये तैयार थे फिर भी वहाँ की जनता और लीग का नेतृत्व करनेवाले मंकीशरीफ के पीर साहब, अरबाब अब्दुल गफूर इन सब ने एक अंश की कल्पना को उठाकर फेंक दिया था। इस कारण सिंध और सीमाप्रांत के लीगी मंत्रिमंडल और नेता इन सबको केंद्रित शासन ने सत्ताभ्रष्ट किया था। उनके नेताओं को जेल का रास्ता बताया गया था। आंशिक योजना के लिये सिर्फ बड़े बड़े जमींदार ही अनुकूल थे क्योंकि शासकों को खुश करके जमीन सुधार के संबंध में कानून पास न हो यह चाल जमींदारों को खेलनी थी। सब राज्यों में छोटे काश्तकारों के आंदोलन शुरू हुए थे और करीब सभी राज्यों में जमीन की मालकियत पर पाबंदी लगानेवाले कानून बनाने की माँग जोरों से की जा रही थी। पूर्व बंगाल शासन ने २५० एकड़ से अधिक जमीन किसी के पास न रहे यह सिद्धांत मंजूर किया था। इस तरह इस आंशिक योजना का समर्थन केवल धनी और शासक करते थे। उधर जनतंत्रवादी नेता इस योजना का प्रखर विरोध करते थे। "शासकीय काम में कटौती पानी और बिजली की बड़ी बड़ी योजनायें, कारखानेदारी, इसके लिये आंशिक योजना की क्या जरूरत है ? सबको समान न्याय नहीं मिलता है। लोगों के स्वभाव भेद, भावना भेद को मद्देनजर रखते हुये जरूरत हो तो पश्चिम पाकिस्तान के दो विभाग बनावें, पंजाब और पंजाब के अलावा बाकी हिस्सा, जनमत का ख्याल करते हुए एक अंश का विचार अभी मुलतवी रखा जाय।' ऐसा विचार बादशाह खान ने शासकों के सामने कई मर्तबा रखा लेकिन अपने शासन पर होनेवालेलोक क्षोभ के कारण वे घबरा गये थे, तिसपर बंगाल से संयुक्त मोर्चेवाले लोगों ने एक विभाग की

जगह पश्चिम पाकिस्तान के छः टुकड़े करने का प्रस्ताव केंद्रीय कायदेमंडल में पास करवा लिया। इससे बादशाह खान का विचार कायदे मंडल द्वारा मंजूर किये जैसा ही था लेकिन जनमत की होनेवाली यह जीत सत्ताधारी नेता थोड़े ही माननेवाले थे। सर्वत्र दमन करके उन्होंने लोगों के नेताओं को रास्ते से अलग हटाया, सिंध पंजाब के विरोधी मंत्रिमंडल को केंद्र सत्ता ने उड़ा दिया और इतने पर न रुकते हुए पूरी राज्य घटना ही बदल डालने का षडयंत्र गवर्नर जनरल गुलाम मोहंमद और पंतप्रधान मोहमदअली ने रचा। इस सारे कपट कार्य में पाकिस्तान के मददगार और नेता अमेरिका के शासक थे, यह साफ दीखता है। इस कारण पाकिस्तान की जनता के और राजकीय हत्या के दोष का आवश्यक हिस्सा अमेरिका के सिर पर मढ़ा जायगा ही।

पाकिस्तान में जो फूट पैदा हुई थी वह सिर्फ सत्तास्पर्धा के लिये ही थी। नेताओं की निजी महत्वाकांक्षा और स्वार्थ के अलावा उनके सामने अन्य कोई उद्देश होगा ऐसा नहीं दीखता है। राज्य घटना में इस्लाम धर्म के तत्वों का समावेश करने के लिये झगड़ने वाले ३३ उलेमा मौलवियों में कोई सच्चा धर्मनिष्ठ नहीं होगा ऐसा नहीं, उनमें से बहुतेरे नेता जिंदगी भर धर्मचिंतन और धर्मप्रचार किए हुए थे। जागतिक ख्याति के विद्वान भी उनमें थे लेकिन उनमें भी मौलाना मौजूदी अब्दुल जैसे प्रखर जातिनिष्ठ ही बहुत थे। लेकिन उन्हें भी नचानेवाले गुलाम महंमद ही थे। वैसे ही गुलाम महंमद बोग्रा, सिकंदर मिर्जा और अयूबखान से टक्कर लेने के लिये एक जगह आये हुए नेता सही माने में मुस्लिम लीग के पुराने नेता थे। फजलुल हक, सुहरावर्दी, मौ० भाशानी या सरहदप्रांत के मंत्री के पीरसाहब शासनकर्ताओं की अपेक्षा कई गुना पाकिस्तान के मुसलमान समाज के लिये करीब के थे। उनका राजकीय झगड़ा युद्धघटनात्मक रीति से चला था। पाकिस्तान की राज्य घटना १९३५ के कानून के अंतर्गत थी और कायदे आजम जिना और पंतप्रधान लियाकतअली ने यह कार्यान्वित की थी, इस घटना के पीछे जनता थी। ऐसा होते हुए भी पाकिस्तान के राज्यकर्ता जनमत को रौंदते हुए जा रहे थे यह आरोप बादशाह खान उस समय करते थे लेकिन उनकी प्रतिष्ठा या मदद करने के बजाय उन्हें जेल में बंद किया गया। फलस्वरूप जनमत दबने के बजाय प्रखर होकर शासकों को डराने लगा। वह विद्रूप देखकर असमंजस में पड़ी हुई सरकार ने अमेरिका की शरण ली। वस्तुतः चुनाव के पहले ही (अक्टूबर १९५४) उन्होंने अमेरिका की शरण ली

ली थी। पंत प्रधान बोग्रा अमेरिका जाकर ठोस मदद का आश्वासन प्रे० आयजनहावर से ले आये थे। इसका मतलब साफ है कि इस सहायता के बल ही पश्चिम पाकिस्तान के चुनाव में उन्होंने सफलता हासिल की थी। लेकिन उतनी सफलता पर्याप्त न होने के कारण अब बोग्रा और सेना प्रमुख जनरल अयूब खान दोनों अमेरिका गये। चार साल के बाद आनेवाले तानाशाह शासन का जन्म उसी वक्त हुआ था। उसका संबंध सूत्र कहाँ और कैसे कैसे संबद्ध है इसका अंदाजा लगाने के लिये अधिक सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता नहीं। इस्लाम के कल्याण के लिये पैदा हुये पाकिस्तान के दो राजदूत केवल दो हफ्ते में वाशिंगटन से वापस आये और गवर्नर जनरल गुलाम मोहंमद से गोपनीय सलाह मशविरा किया। गुलाम मोहंमद हमेशा के मरीज थे फिर भी निश्चयी और पक्की कोशिश करने वाले थे। उन्होंने तुरंत (२४ अक्तूबर १९५४ को) देश में असाधारण परिस्थिति पैदा होने और घटनापरिषद खारिज करने की घोषणा की। अमेरिका जल्दी जल्दी ये दोनों नेता सुचारु रूप से पहुँचते हैं, वे वहाँ गवर्नर जनरल से स्वस्थता से विचार विनिमय कर सकते हैं, खुद कराची या ढाका या लाहौर में कहीं भी दंगे फिसाद नहीं हुए तो फिर यह असाधारण परिस्थिति कौन सी और कैसे हुई ? यह दूसरी किसी तरह की भी नहीं थी। इतना ही नहीं, गत माह ही कानूनी तरह से पूर्व बंगाल के नेताओं ने घटना परिषद में जो बहुमत और सफलता प्राप्त की थी उस कानूनी सफलता को गाड़ना था। यही घोर नीच कर्म राज्यकर्ताओं को साध्य करना था। उसके लिये गंभीर वातावरण होना जरूरी था। इस नीति की प्रेरणा कहाँ से और किस की ओर से मिली ? वह अमेरिका की ओर से लाई गई थी ऐसा तर्क किया जाय तो उसमें क्या त्रुटि हो सकती है ?

हाल ही में जेल से रिहा किये गये बादशाह खान इन सारी घटनाओं के साक्षीभूत थे। उनके सान्निध्य से कार्यकर्ताओं और नेताओं में विश्वास और धैर्यवृद्धि में मदद होती थी। उनका मुकाम एक दो मर्तबा कराची रहा होगा लेकिन उस अरसे में बंगाली नेता विशेषतः भाशानी, वैसे ही जी० ऐम० सय्यद और अब्दुल मजीद आदि सिंधी नेता आपस में अधिक समीप आए। सीमा प्रदेश के एक जमाने के माने हुए नेता मंकी के पीर साहब अब बादशाह खान के बड़े भक्त हो गए थे। उन्होंने ही बादशाह खान के लिए मुस्लिम लीग का फंदा आठ साल पहले तैयार किया था। बादशाह खान के अव्यक्त प्रभाव के लिए इससे अधिक सबूत क्या हो सकता है ?

गुलाम गवर्नर जनरल गुलाम मोहंमद ने असाधारण परिस्थिति जाहिर की और फिर बोग्रा से नया मंत्रिमंडल बनाने की प्रार्थना की। उसके पहले ही अयूब खान ने फौजी शासन खुद लेने के बारे में गवर्नर जनरल से प्रार्थना की थी। यह भेद बाद में अयूब ने ही खोला था। उस समय खुद अयूब खान घटना की हत्या करने के इस रास्ते पर चलने के लिये तैयार नहीं थे। उस समय धर्मनिष्ठ नेताओं के द्वारा पाकिस्तान का कितना नुकसान हो सकता है यह जनता अनुभव कर ले, ऐसा भी उस समय उन्हें लगता रहा। उसके संबंध में अकारण अनादर या अविश्वास करना न्याय नहीं होगा। नये बोग्रा मंत्रिमंडल में वे सुरक्षा मंत्री हुये। फजलुल हक और डा० खान साहब भी इस मंत्रिमंडल में शरीक होने के लिये तैयार थे। पाकिस्तान का नेतृत्व गुलाम महंमद बोग्रा इन दोनों के हाथ में ही रहा। पूर्व पाकिस्तान के गवर्नर इस्कंदर मिर्जा ने तुरंत ही युद्धजन्य परिस्थिति निर्माण होने की घोषणा होते ही संयुक्त मोर्चे का हक मंत्रिमंडल बरखास्त किया। सरकार द्वारा जाहिर की हुई ही वह युद्धजन्य परिस्थिति प्रत्यक्ष में न हो तो भी वह निर्माण करने की ताकत ऐसे नेताओं में स्वाभाविक ही रहती है। ऐसे जमाने में ऐसे ही नेता सच्चे साबित होते हैं। मिर्जा ऐसे ही एक षड्यंत्रकारी पुराने फौजी अधिकारियों में से थे। १९४२ में "चले जाओ" आंदोलन के समय लाल कुर्ता वालों की कुछ टोलियाँ कोर्ट कचहरी पर कब्जा लेने के लिए निकली थीं तो उनको मार्ग में चाय पानी में जुलाब की कुछ दवाइयाँ पिलाने का नीच कर्म उस समय के पुलिस कमिश्नर इस्कंदर मिर्जा ने ही किया था। ऐसे थोथे और बचों जैसे कर्तृत्व के कारण वे पुराने गोरे फौजी अधिकारियों के लाड़ले बने हुए थे। युद्धजन्य परिस्थिति जाहिर होते ही, उन्होंने छः सात सौ विरोधी दल के कार्यकर्ताओं पर छापा मारकर युद्धजन्य परिस्थिति पैदा की थी। बहुतेरे आमदारों और मंत्रियों को भी बंदी बना स्थानबद्ध किया, बंगाली मुस्लिम जनता के जमाने के अनभिषिक्त बादशाह माने गये बूढ़े फजलुल हक को भी उनके घर पर स्थानबद्ध किया गया, चपरासी जमादारों के हाथ में छत्रचामर के बजाय तलवार तोपें लगने पर मालिक के तकदीर में कारावास आया तो उसमें आश्चर्य किस बात का ? कयूम द्वारा बोये गये खेत की वह स्वाभाविक फसल थी।

गवर्नर जनरल गुलाम महंमद को वस्तुतः घटना रद्द करने का अधिकार नहीं था। घटना परिषद के अध्यक्ष तामिजुद्दीन ने यह मसला कराची हाइकोर्ट में दायर किया था। हाइकोर्ट ने

गवर्नर जनरल का यह काम गैरकानूनी ठहराया था। इस कारण पाकिस्तान के शासकों में कितना हाहाकार मचा होगा इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। लेकिन गुलाम मोहम्मद या मिर्जा और अयूब खान ने अब अकेले, सिर्फ अपने पांव पर भरोसा करें, इतने कमजोर नहीं थे। उन्होंने विदेशों से सलाह-मशविरे किए और उनसे सहकार्य की ताकत पायी थी। इसलिये गैर-कानूनी वर्ताव करने के लिये आवश्यक कानूनी श्रद्धा भी उनमें पैदा हो, बढ़ने लगी थी। इस विश्वास से वे सुप्रीम कोर्ट में गये और वहां के सर्वश्रेष्ठ न्यायालय ने भी युद्धजन्य परिस्थिति को मद्देनजर रखते हुए डॉ० कार्नेलियस की राय खिलाफ होते हुए भी हाईकोर्ट का निर्णय बदल दिया और इस तरह बोग्रा मंत्रिमंडल निडर होकर कानूनी तौर पर काम करने लगा। इस मंत्रिमंडल में अमेरिका की तरह इंग्लैंड के अभिमानी धर्मनिष्ठ नेता भी लिये गये। घटनाबद्ध हक मंत्रिमंडल को खत्म करनेवाले इस्कंदर मिर्जा गृहमंत्री हुए। उसी तरह इस्पहानी के बाद मुख्यमंत्री बने हुए चौधरी मोहम्मद अली, सिंध के ललपूर आदि नेता इकट्ठे लाये गये। यह सारी दौड़धूप पश्चिम पाकिस्तान का एक विभाग करने के हक के लिये या असल में जनतंत्रवादी जन-जागृति को हमेशा के लिये नष्ट करने के लिये थी। घटना परिषद् खारिज करने का अपनी सरकार का निश्चय जाहिर करते हुए प्रांत प्रधान मोहम्मद अली बोग्रा ने कहा—

'आल दिस वाज इन फुल एकार्ड विदि दी स्पिरिट आफ इस्लाम'

अमेरिका के धन पर ताकतवर बन रहे नवाबी नेताओं का नेतृत्व कायम रखे रहने के लिये और जनमत के समर्थन से सफल हुए पुरोगामी नेतृत्व को खत्म करने के लिये जनाब बोग्रा ने कितनी कठोर इस्लाम निष्ठा व्यक्त की है। लेकिन उनकी यह निष्ठा केवल अपने हाथ में सत्ता बनाये रखने के लिये थी और वह तबतक बनी रही जबतक उनके हाथ सत्ता रही।

१९५४ के बाद का डॉ० खानसाहब का उदय और अस्त ये दोनों बादशाह खान के अन्य जुल्मों की तरह विलक्षण और शोकप्रद हुए थे। बादशाह खान के साथ ही डॉ० खानसाहब जेल से रिहा हुए थे। खानबंधुओं का कारावास या उनकी मुक्तता का कारण साफ था। सारे पाकिस्तान में खानबंधु और उनके खुदाई खिदमतगार, बलूचिस्तान के लोग

द्विराष्ट्रवाद और धर्म के नाम पर देश के विभाजन की दृढ़तापूर्वक खिलाफत करनेवालों में से थे। पाकिस्तान बन जानेपर उससे हम एकनिष्ठ हैं लेकिन अपने प्रांत की स्वायत्तता की माँग हमने ढीली नहीं होने दी। शासन में कुछ हिस्सा देने आदि के बारे में कई प्रलोभन उन्होंने खान को अनेक मर्तबा दिए थे लेकिन वे कभी भी तत्त्वच्युत नहीं हुये। उस तत्त्वनिष्ठा के लिये ही उनपर ये सारे जुल्म ढाये गये थे और आगे भी ढाये जानेवाले थे। बादशाह खान या डॉ० खान ये दोनों ही महान देशभक्त और जनता की सेवा करनेवाले थे। इस संबंध में कोई भी शंका प्रदर्शित नहीं करेगा। लेकिन इतने महान लोक सेवकों पर निरंतर जुल्म क्यों किया जाता रहा? और कुछ राज्यकर्ताओं ने वह किया तो जनता ने इसे क्यों चलने दिया? सच्चे सत्यनिष्ठों पर होनेवाले अत्याचार जिस देश में जनता खुली आँखों से देखती रही तो उसमें अच्छे समाजसेवकों का निर्माण नहीं होता और शासन हमेशा जुल्मी नेताओं के हाथ में रहकर जनता पीढ़ियों तक परतंत्र रहती है। बादशाह खान के कष्टमय जीवन का विचार सिर्फ पाकिस्तान या भारत के लोगों को ही नहीं, विश्व के लोगों को भी इस दृष्टि से करना चाहिये।

कायदेआजम जिना के नीचे ही विरोधी आंदोलन सिंध और बंगाल में निर्माण हुए थे और १९५१ के बाद सारे पाकिस्तान में किस हद तक आपसी झगड़े शुरू हुए, वह अब पाठक जान चुके हैं।

गवर्नर जनरल गुलाम महंमद और पंतप्रधान बोग्रा ने घटना परिषद (कांस्टिट्यूएंट असेंबली) खारिज करने का प्रयास, विरोधी दलों को डराने-धमकाने और जनता को गुमराह करने के लिये किया था। लेकिन उसमें शासक सफल नहीं हो सके। मुस्लिम लीग के पीछे असल में जनमत था ही नहीं, इसका अर्थ यह है कि लीग के नाम से जो नेता शासन चलाते थे उन लोगों पर जनता का भरोसा नहीं था। मुट्ठी भर पंजाबी नेता खुद के लिये सारा शासन चलाते हैं ऐसी शिकायत अन्य सभी राज्यों की थी। इस सारी अप्रियता के तूफान में ही नई घटना परिषद ने भी भाषिक राज्य घटक बनाने की योजना पास की याने एक विभाग करने की योजना की जगह छः टुकड़े करने का प्रस्ताव पारित हुआ। वस्तुतः शासन के पीछे मुस्लिम लीग दल का बहुमत था फिर भी वह (३५ लीग और विरोधी २८) बहुमत कितना नकली था? यह भाषिक विभाग करने का प्रस्ताव पास होने पर स्पष्ट हुआ। लीग

के नेता अपनी कक्षा तक सीमित दृष्टिवाले थे इस कारण उनमें कराची शहर पश्चिम पाकिस्तान शासन के अंतर्गत रहे या स्वतंत्र रहे इस मुद्दे पर फूट पैदा हुई। इसी कारण भाषिक विभागीय राज्यों का प्रस्ताव पास हो सका।

डॉ० खानसाहब के जेल से रिहा होते ही गवर्नर जनरल गुलाम मोहंमद ने उन्हें फुसलाना शुरू किया। डॉ० खान साहब की घटनानिष्ठ प्रवृत्ति कारावास के लिये उतनी अनुकूल नहीं थी। वे दिलेर थे, हाजिरजवाब और सब तरह से विधिमंडल के काम के योग्य नेता थे। उनकी रिहाई के बाद पुरोगामी दल के कार्यकर्ता उन्हें अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रहे थे। लेकिन एक विभाग योजना का विरोध करने का उन्होंने तय किया तो अपने कठोर कंधे पर लिये हुए छोटे भाई के साथ आग में या अंगार की तपी हुई खाक में झुलसते रहने की नौबत आवेगी, यह उन्होंने पहचान लिया। उसके बजाय हर तरह के प्रयत्न करके शासन हाथ में लेने से पाकिस्तान की भटकती नैय्या को ठीक रास्ते पर ला सकेंगे और तभी अपने तपस्वी भाई के पाँव में पड़ी जंजीर तोड़ी जा सकती है ऐसे व्यावहारिक विचार से वें सत्ता-स्थान की तरफ झुके। बादशाह खान ने उन्हें प्रतिकूल सलाह दी थी। लेकिन बादशाह खान के निरंतर त्याग और तकलीफ में से तत्व या सत्वरक्षा के सिवा अन्य किसी की भी रक्षा नहीं हो सकी और तत्वरक्षा हुई तभी समाज की ताकत का, सद्गुणों का लक्षण हो सकता है। बादशाह खान वाली यह जीवनदृष्टि डॉ० खान साहब की नहीं थी।

उनकी श्रद्धा अलग और मार्ग भी अलग था। विशेषतः लंबी मुद्दत तक जेलों में ठूसने वाले स्वार्थी नेताओं से सिर्फ संत महंतों के रास्ते पर चल कर मुकाबला नहीं किया जा सकेगा ऐसा उन्हें लगता था। इसीलिये इस विभाग योजना का स्वागत करने की नीति डॉ० खान साहब ने स्वीकृत की होगी। अन्यथा सिर्फ मौकापरस्ती या जमींदारों के पिट्ठू बनकर राजकारण देखने वालों में से वे नहीं थे। वैसा होता तो शिकंजे में फँस जाने पर भी शेर से मुकाबला करने की हिम्मत से कायदेआजम जिना को टक्कर देने की निडर तत्वनिष्ठा १९४७ में वे क्यों दिखाते? वे सत्तालोभ से एक विभाग की कल्पना का पुरस्कार करने लगे ऐसा मानना न्यायसंगत नहीं होगा। उल्टे पाकिस्तान में स्वार्थान्ध मौकापरस्त नेताओं द्वारा लगाई हुई घुसपैठ को रोकने के लिये साधन के रूप में पश्चिम पाकिस्तान का मुख्य मंत्री पद पर प्रतिष्ठित होना उन्होंने स्वीकार किया होगा और उनकी अपेक्षा के अनुसार

दरअसल केवल एक साल की अवधि में उन्होंने पश्चिम पाकिस्तान की बागडोर अपने हाथ में संभाली। इतना ही नहीं, पंतप्रधान बोग्रा के नेतृत्व को भी खोखला बना दिया। उनकी इस सफलता के पीछे सिर्फ गवर्नर जनरल (इस ओहदे को 'अध्यक्ष' की उपाधि १९५६ की नयी घटना ने दी थी) मिर्जा का हाथ था यह कुछ अंग्रेज लेखकों का ख्याल ठीक नहीं लगता है। मिर्जा या अयूब खान उनके बाद के समय में सफल हुए हों तो वे कर्तृत्व से बड़े थे, ऐसा नहीं। उनकी ताकत अलग थी। वह केवल उन्हीं की ही नहीं थी, इनके विपरीत डॉ० खान साहब लोकनेता थे। आजादी के लिये उन्होंने भी काफी त्याग किया था। लोगों के दिल में उनके प्रति प्रेम भावना और श्रद्धा रहना स्वाभाविक ही है और पाकिस्तान की रैयत को शासनाधिष्ठितों से टक्कर लेने वाले नये नेता की जरूरत भी थी। इसीलिये डॉ० खानसाहब के आने के बाद उनकी प्रतिनिधिक ताकत इकट्ठी हो रही थी। इस कारण जनरल मिर्जा को गुलाम मोहंमद और मुहंमदअली बोग्रा जैसे सत्ता से चिपके हुए लोगों को दूर करना आसान हुआ (सितंबर १९५५)।

प्रेसिडेंट मिर्जा को डॉ० खान साहब की बढ़ती हुई ताकत कमजोर नहीं करनी थी, यह भी सत्य हो सकता है। क्योंकि डॉ० साहब बादशाह खान की ताकत के लिये काट थे। डॉ० खान के समर्थन के कारण ही बोग्रा की जगह चौधरी और उनके बाद सुरहावर्दी को पंतप्रधान बनाना संभव हुआ। खुद डॉ० खान साहब को पश्चिम पाकिस्तान में यद्यपि विभक्त मतदाता संघ स्वीकृत करना पड़ रहा था फिर भी पूर्व पाकिस्तान के लिये वहाँ के जनमत के अनुसार संयुक्त मतदाता संघ देने का कड़ुवा घूँट प्रेसिडेंट मिर्जा और पंजाबी लीगवालों को निगलना पड़ता था। डॉ० खान साहब का राजकरण कई दृष्टि से सफल हुआ और केंद्रीय सत्ता मुस्लिम लीग के नामधारी नेताओं के हाथ से सुहरावर्दी के पंतप्रधान होते ही छूट गई (सितंबर १९५६)। कर्तबगार और प्रामाणिक नेता मिलने पर घटना के अनुसार बहुतायत से सफलता प्राप्त हो सकती है यह जनता का भरोसा बढ़ा। लेकिन उसी तरह डॉ० खान साहब के कारण एक विभाग टिका सकेंगे ऐसा विश्वास प्रेसिडेंट मिर्जा और उनके समर्थक नेताओं को होने लगा। इस कारण पश्चिम पाकिस्तान के सिंध, सीमाप्रांत और बलूचिस्तान में होने वाले विरोधी आंदोलन कुचल डालने के लिये मिर्जा प्रवृत्त भी हुए। इस तरह एक बाजू में डॉ० खान साहब खुद की ताकत बढ़ा सके लेकिन वैसा करते हुए एक विभाग योजना के विरोधियों को, बादशाह खान की नीति की सारी ताकत

को कमजोर करने का मौका गवर्नर मिर्जा को मिला। इस लड़ाई में ही बादशाह खान के खिलाफ कदम उठाने का काम डॉ० खान साहब को करना पड़ा। इस तत्वश्रेष्ठता के रास्ते से जाकर ही अंत में देश और बादशाह खान को बंधनमुक्त करने का काम सफल कर सकूँगा ऐसा डॉ० खान साहब को लगा होगा। लेकिन उस कारण सिंध अवामी लीग के सय्यद, बलूचिस्तान के अब्दुस्समद, वैसे ही मुस्लिम लीग के नेता हाशिम गजदर और पीरजादा, पंजाब के आजाद पाकिस्तान दल आदि लोकशाही-निष्ठ और एक विभाग के विरोधी दलों को दमन और गिरफ्तारी का मुकाबला करना पड़ा। पश्चिम पाकिस्तान में अपने आप्तेष्ट और सहकारियों को फाँसी पर चढ़ाने का यह काम (८ मई १९५९) डॉ० खान साहब को ही करना ही पड़ा। १९४२ के कांग्रेस के आंदोलन के समय कामरेड एम्० एन्० राय और अन्य कुछ रायवादी और कम्युनिस्ट नेता सरकारी मदद लेकर आजादी के आंदोलन का विरोध करते ही थे। कुछ चमत्कार भरे तात्विक मतभेद के प्रसंग जीवन में पैदा हो सकते हैं। पं० जवाहरलाल जी ने राय के इतने मतभेदों के बावजूद भी उनके प्रति उनका जो स्नेहभाव था वह नहीं छोड़ा। अधिकार पद पाने के संबंध में स्वराज्य पक्ष में मतभेद हुए तब स्व० ताबेजी ने (मध्यप्रदेश कायदेमंडल १९२५–२६) अधिकार ग्रहण किया। उस समय पं० मोतीलाल जी ने 'सड़े हुए अवयव अपने ही होते हैं फिर भी काट डालने चाहिये' ऐसा कड़ा इशारा किया था।

बाद में स्वराज्य पक्ष के सब लोग धीरे धीरे सत्ता स्थानों का पुरस्कार करने लगे थे। संकुचित दृष्टि के कौन से दाँवपेंच और किस स्वार्थ से प्रेरित कौन से निर्णय लेंगे यह ठहराना कई मर्तबा कठिन होता है। उसी तरह बादशाह खान पर राजद्रोह के कई दफों के अंतर्गत मुकदमे दायर करने के पीछे डॉ० खान साहब की नीति और उद्देश्य क्या रहा होगा, यह स्थिर करना आसान नहीं है। यह अन्याय वे टाल नहीं सके, यह भयानक राजकीय दोष है। लेकिन उनके उद्देश्य के बारे में निर्णय देना कठिन है। अपने भाई की ही गिरफ्तारी वारंट के लिये स्वयं हुक्म देना एक तरह से बादशाह खान को वज्राघात ही लगा होगा जो स्वाभाविक ही था।

उनके डॉ० खान साहब से राजकारण के संबंध में काफी मतभेद थे। उनके जीवन से संबंधित दृष्टिकोण जुदा थे। बादशाह खान और सरदार

पटेल में बहुत कम साधर्म्य था लेकिन अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल और डॉ० खान साहब में बहुत कुछ समानता दिखाई देगी। बादशाह खान सही माने में अध्यात्मवादी हैं और अध्यात्मवादी इंसान जन्म और मृत्यु इन दोनों घटनाओं की ओर समानता से देखने का प्रयत्न करता है। जन्ममृत्यु के अनुसार कारावास और रिहाई दोनों उनके लिये समान सुखदायक हैं। और हो सकता है कि नाममात्र या कुछ भी स्वतंत्रता न रहनेवाले जेल के बाहर के जीवन के बजाय उन्हें कारागृह अधिक अच्छा लगता हो। लेकिन १२३-अ १२४-अ, १५४-अ आदि दफों के नीचे यह मुकदमा सात महीने तक चलाया गया। और गवाह सबूत जुटाने में कुछ दिक्कतें आ जाने के कारण यह मुकदमा लंबे अरसे तक चला होगा इसपर कोई भरोसा नहीं करेगा। शासकों के सामने इस तरह की कुछ दिक्कतें पैदा ही नहीं हो सकतीं। जहाँ तक संभव हो वहाँ तक कोई सजा न सुनाते हुये उन्हें रोक रखने का इस मुकदमे का उद्देश्य रहा हो।

और सात महीने के बाद ऐसा ही हुआ। चौदह हजार रुपये जुर्माना और अदालत का समय पूरा होने तक की सजा दी गयी। अदालत को कुर्सी पर से उठने न देने की ताकत बादशाह खान में नहीं थी लेकिन जुर्माने की रकम न भरना उनके हाथ में था। लेकिन वह भी तुरंत वसूल हो गया। बादशाह खान ने जुर्माना भरने से इंकार किया। लेकिन किसी अज्ञात व्यक्ति ने या ताकत ने वह भर दिया होगा। इसलिये वे तुरंत (१७ जुलाई, १९५७) को रिहा किये गये। अंगार से निकल कर अंगार की गरम राख में और अंगार की गरम राख से निकल कर अंगार में यह क्रम उनके जीवन का एक अंग बन गया था। 'पुनरपि मुक्ति, पुनरपि सख्ती' यही उनका कार्यक्रम था।

१९३७ में डा० खान साहब का मंत्रिमंडल शासनारूढ़ होने के बाद बादशाह खान को पाँच साल के वनवास के बाद सीमाप्रांत में प्रवेश मिला। उस समय उनका जिस उत्साह और ठाटबाट से जुलूस निकाला गया था, उसी ठाठ से डा० खान मंत्रिमंडल द्वारा दी हुई सजा पूरी होने पर जुलूस निकाला गया। उत्साह से उनके जुलूस निकालने में पठान कार्यकर्ताओं की बराबरी कर सकने वाले कार्यकर्ता भारत में कहीं ढूँढ़े भी मिलेंगे ऐसा नहीं लगता है। बंधनमुक्त नेताओं के ऐसे जुलूस निकालने में वे बंबई निवासियों से भी बहुत आगे थे। विशेषतः अपने नेता के रिहा होने पर अपनी जान

उनपर न्योछावर करने के उत्साह से नाचने वाली यह जनता और ये कार्यकर्ता अपने नेता को जेलों के अंदर ढकेले जाने पर पाँच पाँच साल क्या करते हैं, यह समझ में नहीं आता। विदेशी शासकों से टक्कर लेते समय जनता जो निश्चय और एकता टिका सकी वह निश्चय और एकता आजादी मिलने के बाद टूट गयी थी। मजहब के पागल, सत्तालोभी और भीतरी स्पर्धा इन दुर्गुणों से शुद्ध समाज की अकल भी गुरझा जाती है। लेकिन बादशाह खान का स्फूर्तिप्रद दर्शन होते ही जनता की श्रद्धा भावना और आनंद को उत्साह का ज्वार आता है यह भी साफ है। जनता के इस असीम प्रेम का स्वाभाविक आविष्कार होता है यह मानना पड़ेगा। 'इस्लाम खतरे में' इस गर्जना का प्रभाव जनता पर कुछ मात्रा में हुआ था। नेताओं में फूट पैदा हुई थी। इस कारण जनता असमंजस में थी। लेकिन उसका बादशाह खान के प्रति विश्वास और प्रेम रत्ती भर भी कम नहीं हुआ था; यह स्पष्ट है।

१९५४ की रिहाई के बाद एक डेढ़ साल जेल के बाहर लेकिन स्थानबद्धता में ही उन्हें निकालना पड़ा। उनकी इस स्थानबद्धता की आज्ञा के खिलाफ खुदाई कार्यकर्ता काफी उत्तेजित हुए थे और उसके खिलाफ सत्याग्रह करने की, उनकी इच्छा थी, लेकिन बादशाह खान के आदेशानुसार उन्हें चुप रहना पड़ा। जनता में फैली हुई इस अस्वस्थता को दृष्टिगत रखते हुए ही डॉ० खान साहब के मंत्रिमंडल ने उन्हें निर्बंधमुक्त करके (जुलाई १९५५) सीमाप्रदेश में जाने दिया। उस वक्त के उनके स्वागत का वर्णन पढ़कर किसी भी देशभक्त को धन्यता महसूस हुए बगैर नहीं रहेगी।

विशेषता यह कि १९४७ में बादशाह खान को कब्र में गाड़ने के लिए कयूम खान के मददगार मंकी शरीफ के पीर साहब ही इस स्वागत समारोह के प्रमुख नेता थे। बादशाह खान की सफलता का यह नमूना है। १७ जुलाई के जुलूस का बुखारी ने मधुरता से वर्णन किया है। "इस जुलूस में अनगिनत मोटर गाड़ियाँ, जीप गाड़ियाँ, बस गाड़ियाँ, स्टेशन वैगन्स शरीक हुई थीं। अटक नदी पर ठीक आठ बजे वे सब इकट्ठा हुए थे। उसमें हजारों लाखों लोग थे। बादशाह खान की गाड़ी सबसे पहले थी। उस गाड़ी की पिछली बैठक पर दाहिनी बाजू बादशाह खान और बाईं तरफ पीर साहब बैठे थे। सीमाप्रांत में प्रवेश होते ही अफगान स्वागत समिति के सदस्यों ने और मर्दान और स्वाती इलाके से आये हुये हजारों लोगों ने "खान जिंदाबाद, पीर साहेब जिंदाबाद" इस तरह के फतह के नारों से उनका स्वागत

किया। उनको इक्कीस बंदूकों की सलामी दी गयी। "ऐसे ठाट में जुलूस खैराबाद, जहाँगीरा, अकोडा, खटक, नौशहरा, पब्बी आदि गाँवों से होकर ८ बजे पेशावर पहुँचा।" अटक से पेशावर तक (करीब ५० मील) लोगों ने जगह जगह सैकड़ों सुंदर कमानें और द्वार खड़े किये थे। इन कमानों पर सुंदर चीजें, कपड़े और फूलों का साज चढ़ाया गया था। बैंड बाजों के ठेके पर लोग नाचते कूदते रास्ते और दुतर्फा फैले हुए थे। गाँव-गाँव उन्हें मान-पत्र दिये गये। दरिया की लहरों की तरह जनता के फैले हुए जत्थों की लहरें आगे-पीछे हो रही थीं और इस कारण जुलूस चींटी की चाल से आगे जा रहा था। ईद के त्योहार की तरह लोग खुशी में मस्त थे।

पेशावर में प्रवेश करते समय खुदाई खिदमतगारों से भरी हुई चार-पाँच लारियाँ किस्साखानी से गयीं। उनके नारों के कारण सारा वातावरण गूँज उठा था। उनके पीछे ढोल, शहनाई आदि साज बजानेवालों का जत्था, उसके पीछे पीछे ऊँटों पर उन्नीस सवारों का काफिला और उसके पीछे मोटरों की लंबी कतार. इस तरह लंबे चौड़े कतारों में घूमनेवाले नागरिकों की यह नुमाइश थी। इन सब के बीचोबीच बादशाह खान की रंग बिरंगी फूलों से सजी हुई सफेद रंग की गाड़ी थी। जनता के प्रेम भरे नारों को बादशाह खान प्रसन्नता से स्वीकार करते थे। "पाँच साल के कारावास और उसके बाद स्थानबद्धता की मार के बाद यह फूलों की मार और प्रेम की वृष्टि हो रही थी।" कई जगह बादशाह खान ने समयोचित और स्पष्टोक्ति भरे छोटे भाषण भी दिये। जहाँगीरा के एक भाषण में उन्होंने कहा "मैं तुम लोगों से बहुत दिन दूर रहा था या हम एक दूसरे से तन से काफी दूर रहे यह सही हो फिर भी मैं मन से कभी भी दूर नहीं था। जनता पर इस तरह की आपत्ति आती है तो उसमें उनकी परीक्षा होती है। अल्लाह की मेहरबानी, हम इस परीक्षा में सफल हुये हैं····

"इस आंदोलन के कारण जनता में राजकीय जागृति और समझदारी पैदा हुई, इससे हम आजाद भी हुए, लेकिन अपनी स्वार्थी दृष्टि के कारण ही आजादी मजबूत करने में हम असफल हुए हैं। देश बेकारी, भूख आदि विपदाओं में पड़ा है····मैंने जब अपने प्रांत में यह आंदोलन (खुदाई खिदमतगार) शुरू किया तब स्वार्थत्याग और प्राणिमात्र की सेवा करने की इच्छा रखने के लिये उपदेश दिया था। लेकिन लोग वह भूल गये। मेरे द्वारा कही बातें आचरण में लायें तो, अपना देश, अपनी भावी पीढ़ियाँ सुदृढ़ होंगी।"

पेशावर में भी उन्होंने ऐसी ही भावना व्यक्त की। वे कहते हैं, 'गत आठ साल में ऐसा एक भी दिन नहीं गुजारा होगा, जब मुझे आपकी याद न आई हो। आप लोगों पर जो विपदायें आईं, उनका क्या कारण था? हमें जो सफलता मिली, उस सफलता का हिस्सा अर्थात् फायदा उठाने की इच्छा हरेक को हुई। जब अधिकार मिले तब हम अपनी प्रतिज्ञा भूल गये और इस कमी के कारण ही हम पर आफत गुजरी...मैं जब जेल में था, तब तुम्हें हर कोशिश की गई, डराया, धमकाया लेकिन इस तरह हमारा आंदोलन कोई कुचल डालेगा ऐसा कभी भी नहीं लगा, क्योंकि यह देश हमारा है, और उसपर हम शासन चलायेंगे, ऐसा हमें विश्वास है....

"लियाकत अली खान शासन में थे, तब मैंने हाल के गवर्नर जनरल से कहा था कि सरकार भले हम पर कोई अन्याय करे लेकिन हमें अपना गुनाह क्या है, यह कम से कम बता दे, हिंसा का परिणाम अच्छा नहीं होगा। उसमें से कलह फैलता जायगा। मेरा कहना किसी ने नहीं माना। उन्हें जो अच्छा लगा वह उन्होंने किया। लेकिन अभी आपने देखा। पठानों की श्रद्धा कोई नष्ट नहीं कर सका। आज भी मैं यही कहता हूँ कि पाकिस्तान ताकतवर हो और उसका विकास हो ऐसी सरकार की इच्छा यदि है तो उन्हें जनता को यकीन दिलाना चाहिये। हर काम जनता की राय से होना चाहिये। यदि सरकार इस तरह वर्ताव नहीं करेगी तो हम एक दूसरे से जुदा ही रहेंगे।

'यह देश हमारा है और आज भी मैं उसकी सेवा करने के लिए तैयार हूँ। लेकिन जनतंत्र मार्ग से शासन चलना चाहिये, यह भी शर्त है। सभी दलों को मैं यही कहना चाहता हूँ कि इस देश का भला होगा तो ही हमारा भी कल्याण होगा। शासन तो आज भी हमारे हाथ में आ सकता है लेकिन उसके पीछे हम नहीं जाते हैं, क्योंकि उसे संभालने की योग्यता हममें नहीं आयी है। शासन चलाने की योग्यता हमें आने तक शासन हाथ में लेने के लिये मैं तैयार नहीं।'

सभा के उत्साह का वर्णन शब्दांकित करना कठिन था। शुरू में स्थानिक जनप्रिय कवि अजमल खटक का स्वागतगीत अच्छी तरह से गाया गया। इस गीत ने सारे श्रोताओं को गद्‌गद बनाया। खटक के इस गीत का भावार्थ निम्नानुसार था—

'हे अफगान जाति के गौरव नरश्रेष्ठ, तुम्हारे आने से हमें जीवन मिला है। हम आपका स्वागत करते हैं।'

पश्तो कवि पना ने भी अपनी एक कविता बहारदार पद्धति से सुनाई। उसकी पंक्ति : 'पठानों के पिता, आप सकुशल हैं ?' ऐसी थी। सभा पूरी होते समय किये गये जयजयकार से गत सात साल में बादशाह खान पर हुए अत्याचारों की स्मृति कुछ क्षण के लिये पूरी तरह पोंछ डाली गई ऐसा किसी को भी वह दृश्य देखकर लगता। बादशाह खान की लोकप्रियता के जयजयकार से सारा वातावरण निनादित हुआ, वही उनके लिये खतरनाक होनेवाला था। नाभि में होनेवाली सुगंध ही हिरन के शिकारी को राह बताती है। उसी तरह बादशाह खान की लोकप्रियता की यह सुगंध उनके दुश्मनों को इशारा देनेवाली सिद्ध हुई होगी।

जुलाई १९५५ की रिहाई के बाद ५० मील लंबे जुलूस में हुआ जयजयकार पाठकों के ख्याल में अबतक होगा। उस रिहाई के बाद बादशाह खान ने सीमा प्रदेश में एक विभाग योजना के खिलाफ जोरों से प्रचार शुरू किया। पहले की स्थानबद्धता के दौरान डॉ० खानसाहब केंद्रीय मंत्रिमंडल में (पुनर्गठित बोग्रा-मंत्रिमंडल) सदस्य थे, तो अब पश्चिम पाकिस्तान के एक विभाग राज्य के वे मुख्यमंत्री हुए थे और उनके एक विभाग राज्य के खिलाफ बादशाह खान ने सब विरोधी दलों का एक जोरदार मोर्चा खड़ा किया था। पूर्व पाकिस्तान के नेता मौ० भाशनी, वैसे ही सिंध अवामी दल, पंजाब की आजाद पाकिस्तान पार्टी इन सभी ने पूर्व और पश्चिम पाकिस्तान में ढाका और लाहौर में बड़ी-बड़ी मजलिसें बुलायीं। पूर्व बंगाल की अकाल की परिस्थिति (मार्च-अप्रैल १९५६) के कारण लोग विशेष रूप से परेशान हुए थे। चावल सस्ता बेचा जा सके इसके लिये भाशनी ने सरकार से पचास करोड़ रुपये की मांग की। उसके लिये प्राणांतक उपोषण किया। इस कारण सारा बंगाल जाग्रत हुआ था। केंद्रीय शासन की अप्रियता सीमा तक पहुँच चुकी थी। ऐसे समय ही पश्चिम पाकिस्तान में बादशाह खान का प्रचार भी शुरू हुआ। लाहौर में सर्वदलीय नेताओं की सभा उन्होंने मई महीने में बुलायी (मई १९५६)। उस सभा के दो दिन पहले बादशाह खान और अन्य अन्य दलों के नेताओं को गिरफ्तार किया गया। वह मुकदमा सात महीने तक खटाई में रखा गया और पहले उल्लेख किये अनुसार अदालत उठने तक की सजा दी गयी। बड़े भाई के शासन काल में सात महीने की कच्ची कैद का यह प्रकार था। फिर भी वह सजा थी ही और वह पूरा होनेपर रिहा होते ही कार्यकर्ताओं द्वारा जुलूस और जयजयकार होना ही चाहिये था।

सालों तक दमन चलता रहे तो सामान्य ताकत के कार्यकर्ता और नेता भी थक-मुरझा जाते हैं। डॉ० खानसाहब उसी कारण सत्ता स्थान की ओर मुड़े होंगे तो उनके अनुयायी जुलूस निकालने में ही संतोष मानते रहे होंगे। लेकिन बादशाह खान जैसे तत्वनिष्ठ कोई भी बहाना नहीं निकालते हैं। उन्हें ऐसे दिखावटी कार्यक्रमों का आकर्षण ही नहीं रहा, इतना ही नहीं, उससे तो नफरत भी हो जाती है। इसलिये लाहौर उच्च अदालत से जस्टिस शबीर मुहम्मद द्वारा सजा बहाल करते ही (ता० २४ जनवरी १६५७) बादशाह खान ने अस्वास्थ्य के कारण सभी को मिलने के लिये इंकार किया। लेकिन अखबार वालों ने उन्हें चैन नहीं लेने दिया। उन्होंने उनसे कहा, 'मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मैं चुपचाप अपने गांव जा सकूंगा तो अच्छा रहेगा। जुलूस-मजलिसों में हिस्सा लेने की मुझमें ताकत नहीं। ऐसे शोर मचाने या ऐसे प्रदर्शनों पर मेरा विश्वास नहीं। मैं ऐसे ही जा सका तो किसी को तकलीफ नहीं होगी और मैं भी आराम से घर जा सकूँगा।' अपने लड़के वली खान से उन्होंने कहा, 'वली, इन लोगों को वापस जाने के लिये कह दे। मेरा स्वास्थ्य ठीक होनेपर मैं खुद-ब-खुद उनके पास चला जाऊँगा। उनके साथ बातचीत करूँगा।' तो भी दि० २३ की दोपहर पाकिस्तान नेशनल पार्टी की ओर से लाहौर में उनका सत्कार हुआ। इसको उन्हें स्वीकार करना पड़ा।

बादशाह खान ने लोगों को वापस भेजा फिर भी उन्हें जो करना था वह उन्होंने दूसरे दिन किया ही। अटक नदी के पुल पर वे पहुँचे तब लोगों के जत्थे इकट्ठे हुए और हमेशा के रिवाज की तरह अटक से पेशावर तक रास्ते के गांव-गांव के लोगों के लिये रुकते हुए उन्हें जाना पड़ा। उन्होंने जुलूस नहीं निकालने दिया लेकिन नेताओं की मोटरों, प्रेक्षकों और अनुयायियों की भीड़ के कारण वह जुलूस ही बन गया था। खुद बादशाह खान के लिये सर अंजाम खान की कैडिलक मोटर का इंतजाम किया गया था। उनकी मोटर के पीछे-पीछे अन्य नेताओं के मोटरों की कतार लगी थी। पेशावर में उत्साही प्रेक्षकों ने आखिर जुलूस निकाला ही, शहीद चौक में उन्होंने छोटी-सी तकरीर की।

हमारी सरकार जनता की भलाई देखनेवाली नहीं और इस्लामी भी नहीं। उन्होंने कहा, "पुश्तू लोग जबतक आपसी झगड़े और फूट से बाज नहीं आते तबतक उनके सुख के दिन नहीं आनेवाले हैं। अब पहले जैसे

विदेशी शासन के दिन नहीं हैं। अब यह अपना ही राज्य है। यह एक इस्लामी लोकशाही शासन है। हमारे शासक ही ऐसा कहते हैं कि अंतिम शासन जनता के हाथ में रहता है। जनता को जो पसंद हो उन्हीं लोगों के हाथ में शासन की बागडोर देती है या शासन से निकाल सकती है। यह सिद्धांत ध्यान में लिया गया तो ऐसा कहा जा सकता है कि हमारी यह सरकार लोकशाही की नहीं या इस्लामी भी नहीं। सरकार तुरंत स्वतंत्र वातावरण में चुनाव कराये इसके लिये जनता आंदोलन करे।"

इस वक्त का बादशाह खान का सात महीने का कारावास लाहौर जेल में हुआ। उनका मुकदमा लाहौर की अदालत में बीच बीच में चलता था। पक्के कैदी न होकर कच्चे स्वरूप की उनकी यह कैद थी (अंडर ट्रायल) लेकिन उनकी सेहत बिल्कुल गिर गयी थी। जो कोठरी उनके इस्तेमाल के लिये उपलब्ध की गयी थी वह सन् १९३० से इस्तेमाल में नहीं आयी थी। कब्रिस्तान के एक हिस्से में वह मकान होने के कारण वहाँ भूत-शैतान का मुक्त संचार रहता था, ऐसा भी कहा जाता है। वहाँ बादशाह खान को अकेले रखा गया था। भूत-शैतानों का साथ रहता है, इस ख्याल से अधिकारियों ने अन्य किसी को उनके साथ नहीं रखा होगा। जैसे साथी नहीं दिया, उसी तरह खाना भी खराब दिया जाता था इसलिए उनका स्वास्थ्य बिगड़ा। वे रिहा हुए उस वक्त बीमार ही थे। उन्हें सरदर्द की बीमारी हमेशा के लिये हुई, हजम करने की ताकत कम हुई थी। और नींद की शिकायत से पूरा स्वास्थ्य ही बिगड़ गया था। उनकी बीमारी के बारे में अखबारों में होहल्ला होनेपर उन्हें लाहौर के अस्पताल में रखा गया। रिहा होने पर भी उनकी तबीयत वैसी ही खराब रही।

और यह सारा अंधेर वहाँ हुआ जहाँ घटक राज्य के मुख्यमंत्री उनके बड़े भाई थे। इसका ठीक तरह से समर्थन डॉ० खान साहब के विरुद्ध लोग नहीं कर पाये। २४ जनवरी १९५७ को बादशाह खान रिहा हुए और उसी दिन पाकिस्तान नेशनलिस्ट पार्टी की सदस्यता और नेतृत्व उन्होंने स्वीकार किया। देश में सर्वत्र क्षोभ और चिंता का वातावरण था। शासनाधिष्ठित नेता मुस्लिम लीग के होनेपर भी जनता उनके पीछे नहीं थी। इसलिये जनता मुस्लिम लीग के उन स्वयंभू नेताओं को परास्त करने के लिये प्रयत्नशील थी। फलतः विरोधी दलों को कुचल डालने का महत्वपूर्ण कार्यक्रम शासकों के सामने था। इस आंदोलन ने १९५७ में जोर पकड़ा।

बादशाह खान की स्वागत सभा में पंजाब मुस्लिम लीग के पुराने नेता राजा गजनफर अली का भाषण हुआ। राजकीय दलों में बढ़ रहे निराशा के वातावरण का उन्होंने उल्लेख किया। सरकार इसी तरह चुनाव करने में टालमटोल करती रही तो उसके खिलाफ आंदोलन करना चाहिये ऐसा भी उन्होंने सुझाया। इस सूचना का बादशाह खान ने अपने जवाबी भाषण में समर्थन करते हुए कहा, "जनतंत्र का नाम लेकर शासक खुद की मर्जी के अनुसार बर्ताव कर रहे हैं। उनको जनमत के अनुसार चलना चाहिये। उसके लिये चुनाव ठीक समय पर ही होने चाहिये वैसा न किया गया तो राज्यकर्ताओं की इस उद्दण्ड नीति के खिलाफ हमें जनमत का दबाव डालना पड़ेगा। इस काम में हम राजा गजनफर अली के साथ काम करने के लिये तैयार हैं। स्वास्थ्य कुछ ठीक होते ही मैं पंजाब आकर प्रचार कार्य में हाथ बटाऊँगा। गाँव गाँव घूमकर प्रचार करेंगे।" इस तरह का आश्वासन और नीति उन्होंने रिहाई के दिन ही जाहिर की। उनका स्वास्थ्य इस वक्त पूरी तरह बिगड़ चुका था। इसलिये वे कुछ दिन आराम करने के लिये उतगाई रहे। लेकिन वे जिस नेशनल अवामी दल के नेता बने थे उस दल का पूर्व-पश्चिम पाकिस्तान में राज्यकर्ताओं को होश में लाने का झगड़ा जारी था और उस ओर उन्हें ध्यान देना लाजमी था।

पंतप्रधान लियाकत अली खान के खून (अक्टूबर १९५१) से लेकर डॉ० खान साहब के खून तक (मई १९५८) का सात साल का समय पाकिस्तान के शासन में मुस्लिम लीग की बढ़ती हुई अप्रियता का समय है। या यों कहा जाय कि लियाकत अली के खून क साथ ही मुस्लिम लीग भी हमेशा के लिये घायल हो गयी तो ऐसी मान्यता गलत नहीं होगी। जिना साहब के बाद के गवर्नर जनरल गुलाम मोहम्मद या मिर्जा इस्कंदर ये दोनों पुराने निष्णात ऊँचे सरकारी अधिकारी, इनका लीग से रिश्ता या लीग के संबंध में नीति जैसी सरकारी नौकरों की रहती है, वैसी ही थी। सिर्फ लीग के नाम पर ही शासन चलाने की व्यवस्था थी और वह सहूलियत का था, इसीलिये वे लीग को जिंदा रखते थे। लेकिन उसमें दिक्कतें आते ही खुद मिर्जा ने चौधरी मुहम्मद अली को पंतप्रधान के ओहदे से हटाकर उस जगह अवामी लीग क जन्मदाता और संयुक्त मोर्चे के नेता सुहरावर्दी को पंतप्रधान बनाया और डॉ० खान साहब के जिस रिपब्लिक दल की सहायता से सुरहवर्दी पंतप्रधान हुए वही रिपब्लिक दल एक विभाग योजना के खिलाफ जोर मारने लगा तब गुलाम मोहंमद की

अप्रियता भी बढ़ी। १९५६-५७ के दरमियान पूर्व बंगाल में नेशनल अवामी दल ने जोर किया। वहाँ की अबुहसन सरकार का शासन (मंत्रिमंडल) अकाल और गुटबंदी के प्रक्षोभ के कारण ताश के पत्ते जैसा उड़ गया। डॉ० खान मंत्रिमंडल भी १९५६ में कमजोर हो रहा था। मुख्यतः १९५६-५७ में पूर्व और पश्चिम पाकिस्तान राज्य या केंद्रीय शासन इनमें कहीं भी मुस्लिम लीग दल की सत्ता बची नहीं और यह सारा जनमत का चढ़ाव उतार असल में बादशाह खान जैसे लोगों की तपस्या के कारण विरोधी दलों के आंदोलन से होता था। लोकजागृति लोकनेताओं की तपस्या के कारण और कुर्बानी के जरिये ही होती है, यह सिद्धांत यहाँ भी सच निकला।

बादशाह खान की मांग थी कि 'एक विभाग योजना अनुपयुक्त और अन्यायपूर्ण है। इस कारण पठानों जैसे पिछड़े प्रांत पर विकसित पंजाब के पूँजीपतियों का शासन हमेशा रहेगा। इस वजह से पठान हमेशा नाराज और दुखी रहेंगे। उसके बजाय उन्हें अंतर्गत आजादी दी जाय तो पठान खुद ताकतवर होगा और उसके साथ साथ पाकिस्तान भी ताकतवर बनेगा।' लेकिन बादशाह खान की किसी ने नहीं सुना। इतना ही नहीं, डॉ० खान साहब भी सत्ता पर जमे रहने के लिये धीरे धीरे सब सिद्धांतों को ताक पर रखने लगे। शुरू में वे कितने सफल हुए थे यह भी देखा गया था। १९५६-५७ साल में मुस्लिम लीग के कार्यकर्त्ता ही नहीं, मंत्री भी धड़ाधड़ लीग छोड़ कर डॉ० खान साहब के रिपब्लिकन दल में शामिल हुए।

लीग दल के गवर्नर जनरल मिर्जा भी डॉ० खान साहब की ताकत बढ़ाने में सहायता करते थे। केंद्रीय मंत्रिमंडल के राशिदी या कयानी (मुस्लिम लीग 'राजकीय षड्यंत्र और गुंडागर्दी के गंदे पानी के संचय जैसी बन गयी है') जैसी गालियाँ देकर रिपब्लिक दल में आ पहुंचे। लेकिन रिपब्लिक दल के भी दिन पूरे हो रहे थे। निधर्मी तत्त्वनिष्ठा और राष्ट्रवाद की भावना के लिए पश्चिम पाक की जनता डॉ० खान साहब के पीछे जाने के लिये तैयार थी। सीमा प्रांत, सिंध बलूचिस्तान और पंजाब का मध्यमवर्ग सब पूँजीवादी नेतृत्व के विरोध में डॉ० खान साहब के पीछे चलने के लिये तैयार थे। डॉ० खान साहब को भी अपना दल जिंदा रखने के लिये पूँजीपतियों के लिये द्वार खुला रखना जरूरी था। दलगत राजनीति शुरू होते ही पूँजीशाही खत्म करने पर उतारू हुए दलों को भी अपना काम सफल करने के लिये पूँजीपतियों की मदद से रोका जा सकता है, इस सिद्धांत

सिद्धांत पर भरोसा रखा जाय ऐसा यकीन होने लगता है। पूँजीशाही संस्कृति का यह जादू है। डॉ० खान साहब का दल पूँजीपतियों या जमींदारों के कारण ताकतवर नहीं हुआ था। वह ताकत डॉ० खान साहब के पूर्वपुण्य और राष्ट्रवाद की थी, यह उन्होंने नहीं पहचाना था। खुद की ताकत न होनेवाले लीग के जमींदार डॉ० खान साहब का लाभ उठाने का प्रयत्न कर रहे थे और डॉ० खान साहब उनका उपयोग करके अपनी प्रतिष्ठा बढ़ा रहे थे। ऐसा खेल अधिक समय तक नहीं चलता और पूर्व बंगाल की नैशनल अवामी लीग का जोरदार तूफान बादशाह खान की रिहाई के पश्चात् पश्चिम पाकिस्तान में आया। बड़ी बड़ी सभाएँ, मजलिसें हुईं। सिर्फ सीमा प्रदेश में इस दल के दो लाख सदस्य एक साल में बने। पश्चिम पाकिस्तान के कायदेमंडल के तीस सदस्यों ने त्यागपत्र दिये। शासन पर टिके रहने के लिये डॉ० खान साहब भी अंत मे एक विभाग योजना को छोड़ने के लिये तैयार हुए। लेकिन अवामी दल के लोग डॉ० खान साहब से समझौता करने के लिये तैयार नहीं थे।

१६५८ के मार्च महीने में डॉ० खान मंत्रिमंडल पर आया हुआ संकट प्रेसिडेंट मिर्जा ने असेंबली बरखास्त करके टाला। लेकिन एक विभाग योजना खत्म होने की नौबत आने पर विशेषतः राज्यकर्ताओं के खिलाफ बढ़ने वाले असंतोष को रोक रखने के लिए डॉ० खान साहब के दल का कमजोर हुआ उपवस्त्र काम नहीं आता है, ऐसा देखकर प्रे० मिर्जा ने जुलाई महीने में डा० खान मंत्रिमंडल को बरखास्त कर डाला। पाकिस्तान में जनतंत्र है ऐसा कहा जाता था लेकिन मंत्रिमंडल बनाने या बिगाड़ने के अधिकार इस जनतंत्र में अकेले गवर्नर जनरल के हाथ में थे, यह स्पष्ट है। जैसे सर कुचले हुए साँप की पूँछ कुछ समय तक छटपटाती रहती है उसी तरह रिपब्लिकन दल डॉ० खान मंत्रिमंडल बरखास्त होने के बाद भी कुछ समय तक छटपटाता रहा। लेकिन मुस्लिम लीग का नामोनिशान हाल के शासकों द्वारा मिटाने के निश्चय से नेशनल अवामी दल काम कर रहा था। उधर मुस्लिम लीग नामशेष हो रही है यह देख कर इस खतरनाक जनतंत्र को रोक लगे इसलिये उलेमा मौलवी सिर उठाने लगे। उनका इस्लामी पक्ष जोरों से हलचल करने लगा था। उस कारण खुद प्रेसिडेंट मिर्जा कुछ डर गये थे। उन्होंने भी अपने इर्दगिर्द शिया दल के सहकारियों को संगठित करना शुरू किया। वे खुद शिया पंथ के थे। सारी दौड़धूप के वातावरण में अपने

दल को खून देने में व्यस्त डॉ० खान साहब का खून हुआ (९ मई १९५८) यह खून नौकरी से हटाये गए एक शख्श ने किया, ऐसा कहा गया। लेकिन लियाकतली के खून की तरह डा० खान साहब के खून के बारे में ठीक तरह से स्पष्टीकरण नहीं किया गया। लियाकत अली की हत्या के पीछे धर्मांध और सत्तांध लोग थे। उनके पीछे ब्रिटेन अमेरिका के गुप्तचर विभाग का हाथ था। इस आरोप में कुछ सचाई हो तो वही या वैसे ही षड्यंत्र डा० खान साहब की हत्या के सिलसिले में नहीं हुए होंगे, ऐसा विश्वास होना कठिन है। उसके बाद हुई उथल पुथल में खुद मुस्लिम लीग के प्रचार पर, स्वयंसेवक संगठन पर बंधन नियंत्रण डाले गये (सितंबर १९५८)। उस वक्त फिरोज खान नून पंतप्रधान थे और वे भी रिपब्लिक दल के ही थे।

डा० खान साहब की हत्या बादशाह खान को पारिवारिक प्रेम की दृष्टि से आघात करने वाला था। उन्हें डा० खान साहब ने ही जेल भेजा। उस समय उन्हें इतना दुख नहीं हुआ होगा। अपने बड़े भाई के नाते बादशाह खान उन्हें मानते थे। उनका उन पर काफी प्रेम था। बड़े भाई की राजकीय हत्या का दुःख भी सहने का समय उन पर आया। डा० खान साहब की हत्या मई १९५८ में हुई लेकिन उस संबंध में कोई जानकारी बाहर नहीं आई। इससे देश में अराजकता और अत्याचारों का वातावरण किस तरह पनप रहा था, स्पष्ट हुआ। पाकिस्तान का वातावरण. बढ़ते हुये अकाल और दमन के कारण तप गया था। जून जुलाई में पूर्व बंगाल मंत्रिमंडल को बरखास्त किया गया। दो महीने अध्यक्ष का शासन थोपा गया। इसी समय ईराक, लेबॅनान, जार्डन, देशों में हुये उत्पात और अमेरिका की प्रतिगामी नीति के कारण पाकिस्तानी फौज में अस्वस्थता फैल रही थी, ऐसी खबरें थीं। विशेषतः पाकिस्तान के बारे में अमेरिका की नीति के संबंध में सिर्फ सरकार विरोधी गुट याने नेशनल अवामी लीग के नेताओं में ही असंतोष था, ऐसा नहीं. नियुक्त पंतप्रधान इस्माइल चुंद्रीगर ने भी पाकिस्तान की अपनी परराष्ट्र नीति तुरंत बदलने का सुझाव नेशनल असेंब्ली के भाषण में (४ सितंबर १९५८) दिया था। सरकार का पक्ष लेने वाला पश्चिम पाकिस्तान का जमींदार वर्ग भी सरकार का आलोचक बनने लगा था क्योंकि सरकार और विरोधी दल के प्रचार का प्रभाव जनमत पर होकर सारा वातावरण स्फोटक बनता चला गया था। इसीलिये कराची के अमेरिकन वकील को

सितंबर में जल्दी से वाशिंगटन बुला लिया गया। बलूचिस्तान में अमेरिका को दिये गये हवाई अड्डे और तेल संग्रह के करार के खिलाफ जनता ने जोरदार खिलाफत की थी और कलात के खान ने उस करार के खिलाफ सशस्त्र प्रतिकार शुरू किया था। करीब एक साल पहले ही गिलगिट स्थित अमेरिका के हवाई अड्डे के खिलाफ पश्चिम पाकिस्तान में और आजाद काश्मीर के कई इलाकों में जनता ने प्रदर्शन किये थे। जनता का आंदोलन जिस तरह अन्न वस्त्र और जनतंत्र के लिये था वैसे ही वह अपने देश का राजकारण स्वतंत्र से चलनेवाला हो, उस पर विदेशों का नियंत्रण न चले, इस मूलभूत तत्व के लिये भी था। लेकिन ये खबरें विशेष रूप से बाहर नहीं मिलती थीं। नेशनल अवामी लीग के नेता बादशाह खान, भाशानी, सय्यद, मियाँ इफतिखारउद्दीन ने पूर्व पश्चिम दोनों हिस्सों में शांति से आंदोलन चलाया था। मुख्यतः लोगों की गरीबी ही लोगों को शासकों के खिलाफ खड़ा करती थी, फौज में भी षड्यंत्र और असंतोष बढ़ा था। नेशनल अवामी लीग के नेताओं ने सरकार की राष्ट्रीय और विदेशी नीति में पूर्णतया परिवर्तन हो ऐसी माँग की थी। उनके दल के कार्यक्रम में खेती में आमूलाग्र सुधार, एक विभाग योजना रद्द करना, किसी भी विदेशी शासन या साम्राज्यवादी मतलब से अपने राज्य शासन पर दबाव न आने देना और तुरंत चुनाव कराना इन विषयों का समावेश था। ऐसे प्रचार से डाँवाडोल प्रेसिडेंट इस्कंदर मिर्जा और पंतप्रधान नून का शासन गिरना अटल हो गया था।

ऐसे बढ़ते हुये असंतोष के लिए गैर जिम्मेदार शासकों के पास एक ही इलाज रहता है और वह है दमन की नीति। मिर्जा गुट ने अपने दाँत और हाथ बढ़ाए थे। सैंकड़ों कार्यकर्ताओं पर मुकदमे न बनते हुए उन्हें जेल भेजा गया और उस कारण राज्यकर्ताओं के अंतर्गत फूट बढ़ने लगी। पश्चिम पाकिस्तान के जमींदार वर्ग इस तरह के जनतंत्र का खेल पसंद नहीं करता था। वे खुल्लमखुल्ला एकतंत्र राज्यशासन का पुरस्कार करने लगे थे। नेशनल असेंबली या पार्लमेंट के सदस्यों में पश्चिम पाकिस्तान के बहुसंख्यक सदस्य जमींदार ही थे। उन्हें इन आतंककारी, आंदोलनकारी नेताओं का उपद्रव असह्य था। कोई भी खेती नियंत्रण का कानून वे पास नहीं होने देते थे। उनके दबाव का मुकाबला करने की ताकत प्रेसिडेंट मिर्जा में नहीं रह गयी थी। नून तो पंजाब के एक पूरे जिले के (शाहपुर) के जमींदार

थे इन सबकी ओर से पार्लमेंटरी पद्धति की लोकशाही रद्द करने के बारे में खुले तौर से माँग होने लगी थी। खुद मिर्जा ने भी कुछ दिन पहले अमेरिकन पद्धति की और अध्यक्ष को पूरी सत्ता देनेवाली शासन पद्धति अच्छी है, ऐसा प्रचार शुरू किया था। अमेरिकन पद्धति असल में सार्वत्रिक चुनावों पर आधारभूत है और यहाँ तो चुनाव कराने की हिम्मत सरकार में नहीं थी, इतना ही उसमें फर्क था। लेकिन जलते हुए मकान में से जान को खतरा पहुँचे बगैर कैसे बाहर निकलें, इस चिंता में चोरों की जो अवस्था होती है वैसी अवस्था मिर्जा गुट की हुई थी। इसके विपरीत कुछ बड़े अधिकारी और राजकीय क्षेत्र के सहकारियों का भी इस नंगे स्वरूप की तानाशाही से विरोध था। लेकिन कमर अकड़े हुए बूढ़े घुड़सवार की तरह मिर्जा की अवस्था थी। घोड़े पर अधिक समय तक बैठे रहने की तैयारी नहीं थी। नीचे उतरने के संबंध में चर्चा करने के लिये तो वे राजी थे नहीं। पश्चिम पाकिस्तान के मंत्रि-मंडल में रोजाना उथल पुथल चल रही थी। जानेवाले मंत्री की जल्दी हो रही थी तो कोई नया आने के लिये उत्सुक नहीं था इस तरह यह घड़ी विपरीत चल रही थी। घड़ी के काँटे तेजी से घूम रहे हैं ऐसा आभास पाकिस्तान के पहले राष्ट्राध्यक्ष (प्रेसिडेंट मिर्जा) को होने लगा था।

ऐसी मनःस्थिति में दि० ७ अक्तूबर, १९५८ की रात मिर्जा ने अयूब शासन की घोषणा नहीं की लेकिन कानाफूसी कुछ परराष्ट्रीय वकीलों से की। 'सेठों की या अन्य अंतरराष्ट्रीय जिम्मेदारियाँ पाक की नई सरकार निभायेगी' ऐसा आश्वासन उन्होंने अमेरिका आदि के परराष्ट्र, वकीलों को निमंत्रित करके दिया। उसी के अनुसार सेनाप्रमुख अयूब खान को बुलाकर उन्हें शासन के सर्वाधिकार सौंप दिये। अयूब खान के स्वागत के लिये पाकिस्तान की लोकशाही कपड़े की बिछावन की इस तरह बिछाई गयी। पाकिस्तान की जनता की आशा आकांक्षाओं और अभिमान का स्थान बने हुए इस महावस्त्र का उपयोग तानाशाहों के पाँव पोंछने के लिये किया गया और इतिहास इन सारी वारदातों की जिम्मेदारी नहीं गुनहगारी, धर्म का नाम लेकर सत्ता का राजकारण खेलनेवाले मुट्ठी भर नेताओं के माथे पर थोपने से कभी चूकेगा नहीं। १९५६ की घटना तोड़ने का दोष केवल अध्यक्ष अयूब खान या जनरल मिर्जा को नहीं दिया जा सकता। प्रातिनिधिक सत्ता, और जनता की ताकत को बरबाद करनेवाले सत्तागज नेताओं ने ही यह जनद्रोह किया था। उनके हाथ में शासन था, उन्होंने ही जनता को धोखा

दिया और बेइज्जत किया था। धर्म के नाम से स्वार्थसाधन करनेवाले ऐसे नेताओं से सावधान रहने के बारे में बादशाह खान रात दिन चिल्ला चिल्ला कर कहते रहे। इसी की बदौलत उन्हें अपनी सारी जिंदगी जेल में बितानी पड़ी।

जनवरी १६५७ से ८ अक्तूबर १६५८ के इस राज्यक्रांति कहलाने वाले समय में उन्होंने अपना कर्मयोग जारी रखा था। 'राज्यशासन जनता की रोजी का सवाल है। वहाँ धर्म का संकट न रखो, अनपढ़ जनता को धोखा मत दो' यह सलाह वे बार बार देते रहे। उनके सहोदर डॉ० खान साहब ने ही इसे नहीं माना। अपनी बुद्धिमानी के बल पर अपने स्वार्थी सत्तावादियों को परास्त करने का विश्वास डॉ० खान साहब को रहा होगा। उन्होंने काफी सफलता भी पाई थी। शायद इसीलिये उनकी हत्या हुई होगी। राष्ट्रवाद और लोकशाही के तत्वों की कुछ कदर करने वाले सुहरावर्दी जैसे पतप्रधान को देखते देखते कत्ल कर डाला गया क्योंकि प्रेसिडेंट मिर्जा को वह भारी लग रहे हैं ऐसा डर लगने लगा था। इस्माइल चुंद्रीगर दो माह पंतप्रधान रहे तो फीरोज खान नून जैसे जिना को साफ साफ सुनाने वाले कुछ निःस्पृह पंतप्रधान ग्यारहवें महीने ही अपने राजभवन में स्थानबद्ध हुए। सारे संसार में पाकिस्तान का मजाक उड़ानेवाला खेल इस्लाम के संरक्षण के लिये, प्रतिष्ठा के लिये या जनता के कल्याण के लिये हुआ? पाकिस्तान की नयी घटना द्वारा १६५६ में रखा हुआ 'इस्लामिक रिपब्लिक ऑफ पाकिस्तान' नाम अयूब खान के पहले ही हुक्म से रद्द किया गया। केवल 'पाकिस्तान' ऐसा राज्य का नया नाम मुकर्रर किया गया। प्रेसिडेंट मिर्जा ने घटना रद्द की और सेना प्रमुख अयूब ने फौजी शासन घोषित किया। उसी रात बादशाह खान, अब्दुस्समद खाँ, भाशानी, जी० एम० सय्यद, मिर्जा इब्राहिम, फैज अहमद फैज, मंसूर आदि नेताओं को जेल में रखा गया। कई मंत्रियों को स्थानबद्ध किया गया। जनतंत्र शासन गिर जाने के संबंध में कहीं भी दुःख की आह या निषेध की आवाज नहीं निकली ऐसा निष्कर्ष कीथ, क्लार्ड और अन्य बहुतेरे परकीय घटना शास्त्रज्ञों ने निकाला है।

हर मकान में खड़े किये गये फौजी सिपाही की बंदूक को नजर चुका कर आवाज बुलंद करने की ताकत खुद इंग्लैंड अमेरिका के नेताओं में भी होगी, ऐसा मानने के लिये कोई जगह नहीं है। पाकिस्तान

का शासन जनता नहीं चाहती थी, जनता परेशान हुई थी यह पूरी तरह सच था। लेकिन जनतंत्र से जनता को नफरत नहीं थी। अपने सत्तांध नेताओं को ठीक करने की और ठिकाने लाने की प्रक्रिया पूर्व पाकिस्तान में चालू भी हुई थी। मौ० भाशानी उसमें सफल भी हो रहे थे और पश्चिमी देशों की मदद पर मस्ती में चढ़े हुए पश्चिम पाकिस्तान के जमींदारों को डॉ० खान साहब ने नचाया था लेकिन मिर्जा अयूब खान या गुलाम बोग्रा जैसों को कौन सत्ताधीश बनाता या निभाता था? इंग्लैंड अमेरिका की सलाह, धन और समर्थन पाक लोकशाही की इस हत्या में परदेशी नेतृत्व का कितना हिस्सा है, यह प्रामाणिकता से जाँचने का काम पश्चिमी घटनाशास्त्री करते हैं, ऐसा नहीं दीखता है। स्वतंत्र वृत्ति के अभ्यासकों को इसका विचार करना चाहिये।

बादशाह खान ८ अक्तूबर की रात को हैदराबाद जेल रवाना हुए। बाद में जो शासन चला वह लोहे के परदे के पीछे चला। वहाँ की घटनाओं की जानकारी कभी भी बाहर नहीं मिली। जो कुछ मालूम हुआ वह बादशाह खान की मुलाकात के बाद। उसके पहले वे कहीं जेल में जिंदा हैं, इतना ही मालूम होता था। वे दरअसल जिंदा हैं या नहीं यह भी जानने के लिये कोई जरिया नहीं था। अयूब खान के शासन ने पाकिस्तान की कितनी और कौन सी भलाई की है, यह पूछने का अधिकार वहाँ की जनता को था, लेकिन बादशाह खान जैसे संत देशभक्त को इतने लंबे समय के लिये जेल में क्यों रखना पड़ा इस घटना का अर्थ दुनियाँ को स्वतः लगाना पड़ेगा। उनके जेलों के स्वास्थ्य के बारे में सालों तक चिंता करने के अलावा सारा संसार कुछ भी न कर सके यह उस शासन पद्धति और दुनिया के तत्वनिष्ठों की असहायता के संबंध में दर्दनाक आलोचना है।

७ अक्तूबर की शाम सारा पाकिस्तान कुहरे में था, वह मध्याह्न का अंधकार था। वह अंधेरा कहाँ और कितना कम ज्यादा हुआ यह स्वतंत्र अभ्यास का विषय है। पाकिस्तान की राज्य घटना को पाकिस्तान के नेताओं ने ही बरबाद किया था। गरीब जनता का जीवन दयनीय हुआ था, यह सच है, लेकिन ऐसी परिस्थिति पैदा करनेवाले नेता, विदेशों की सहायता से खुद के देश पर शासन चलाते थे और जनता के भरोसे के नेताओं को जेल की राह बताई जाती थी। इस घटना का आकलन न करते हुए घटनाविद् पाकिस्तान की जनता की अयोग्यता और नेताओं के गुणावगुणों की चिकित्सा करते

आये हैं। स्वार्थी चालबाज लोगों के जरिये और उन्हें सब तरह की सहायता पहुँचा कर सच्चे देशभक्तों को कमजोर करना, अपने पिट्ठुओं को सत्ताधीश बनाकर देश को बरबाद करने पर भी जनता की अयोग्यता पर मुहर लगाने का काम साम्राज्यपुष्ट ब्रिटिशों ने सौ साल तक किया। न्यायमूर्ति तय्यबजी, हकीम अजमल खान, डॉ० अनसारी, मौलाना महंमदअली, मौलाना आजाद या बादशाह खान को ब्रिटिश राज्यकर्ताओं ने कभी नहीं माना, खुद कायदे-आजम जिना भी जब सत्ताधीशों को परेशान करते थे, तब वे भी मुसलमानों के नेता नहीं हो सके थे। उस जमाने में सरकारमान्य नेता कौन थे उसका जिक्र यहाँ करने की जरूरत नहीं। लेकिन उस ब्रिटिश नीति से ही पाकिस्तान पैदा हुआ है। पाकिस्तान की निर्मिति के बाद भी वहाँ के स्वार्थी नेताओं को कठपुतली बनाकर पुराना ही रवैया साम्राज्यवादियों ने जारी रखा इसलिये वहाँ भी सच्चे देशसेवकों पर जेलों में अत्याचार किये गये और मौकापरस्त नेताओं की चालबाजी की बदौलत अयूब खान पैदा हुए। जनतंत्र की इस हत्या में पश्चिमी राष्ट्रों का हिस्सा मुकर्रर किए बगैर पाकिस्तानी नेताओं को बदनाम करना प्रामाणिक संशोधकों को और लेखकों को शोभा नहीं देता।

गवर्नर जनरल इस्कंदर मिर्जा द्वारा हत्या के संबंध में निकाले हुए आज्ञापत्र में राज्यक्रांति और फौजी शासन की स्थापना करने के कारणों का जिक्र किया है। पाकिस्तान पर इस कारण आनेवाली आपत्ति के बारे में मिर्जा भी दुखी हुए थे, ऐसा दीखता है। लेकिन ये जहरीले पौधे कैसे और किसने बढ़ाये? वे कहते हैं—

आई हैव बीन वाचिंग दी डिपेस्ट एंक्जाइटी दि रथलेस स्ट्रगल फार पावर, करप्शन, दि शेमफुल एक्सप्लायटेशन आफ अवर सिपुल आनेस्ट पैट्रियाटिक मासेज......दि प्रासिट्यूशन आफ इसलाम फार पोलिटिकल एण्डस'.....दीज डिसपीकेबुल एक्टिविटीज हैड लेड टू डिक्टेटरशिप आफ दि लोवेस्ट आर्डर, एडवेन्चरर्स एण्ड एक्सप्लायटर्स फलरिश टू दि डिट्रिमेंट आफ द मासेज।

इनमें से कौन सी उपाधियाँ मिर्जा अयूब को नहीं लगती हैं? जनरल अयूबखान ने हुकूमतशाही के कारण नीचे दिये अनुसार बताए हैं—

दी केआटिक कन्डिशंस हैव बीन ब्राट एबाउट बाइ सेल्फ-सीकर्स, हू इन दि गार्ब आफ पोलिटिकल लीडर्स हैव रैवेज्ड दि कंट्री आर ट्राइड टु बारटर इट अवे फार परसनल गेन्स। सम हैव डन इट ऐज ए मैटर आफ राइट

विकाज दे प्रोफेस्ड टू हैव क्रियेटेड पाकिस्तान ऐण्ड अदर्स हू वेयर अगेन्स्ट दी वेरी आइडिया आफ पाकिस्तान ओपेनली वर्क्ड फार इट्स डिजोल्यूशन।

धर्म भावना का दुरुपयोग स्वार्थी नेताओं ने अपनी, जेब भरने के लिए किया और इस कारण फौजी शासन आया; यह मिर्जा अयूब खान का कहना सही है और दोनों उस समय दुखी अवस्था में होंगे ऐसा कुछ लेखकों का कहना है। वह भी सही हो सकता है लेकिन जब दंभी नेताओं ने इस तरह लूटपाट चलायी तब ये दोनों नेता भिन्न भिन्न अधिकार पदों पर रहकर इस लूटपाट में हिस्सेदार थे ही। राष्ट्र की भलाई बेचने के लिए निकालने का मिर्जा का इल्जाम संभवतः कम्युनिस्टों के खिलाफ होगा या बादशाह खान का विभाजन के प्रति विरोध उन्हें ठीक न लगा होगा, लेकिन मौ० भाशानी ने पूर्व पाकिस्तान के अकाल के समय जान की बाजी लगायी थी, सस्ता चावल लोगों को मुहय्या हो, इसके लिए उन्होंने प्रायोपवेशन किया था। सिंध के सय्यद एक पुराने समाजनिष्ठ नेता हैं। अपने प्रति उल्टा काम करने के कारण खुद जिना ने जिन्हें लीग के बाहर निकाल दिया था उन खुरों को बार बार अधिकार पद पर कौन लाता था? और बादशाह खान के खिलाफ गुस्सा किसलिये? उनका एक विभाग के लिये विरोध जमींदार पंजाबी नेताओं की गुलामी सीधे-साधे पठानों को करने की नौबत न आवे, इसीलिये न था? उसके लिये उन्हें जिंदगी भर जेल? जिंदगी भर अपमान और अत्याचार? उनसे गैर इन्सानियत के बर्ताव?

अयूब खान के शब्दों पर विश्वास होना मुश्किल हो जाता है। अयूब खान ने अपने हाथ में सत्ता आते ही दो हफ्ते में प्रेसिडेंट मिर्जा को आसमान के तारे दिखाये और हवाई जहाज में बैठाकर हमेशा के लिये इंगलैंड रवाना किया, ऐसा कहते हैं। अयूब खान और मिर्जा को, उनके पहले के सारे शासक, गुलाम महंमद, मोहंमद अली बोग्रा, नाजीमुद्दीन, चौधरी मुहंमद अली या पंजाब के दौलताना और नून, सिंध के खुरों या पूर्व पाकिस्तान के फजलुल हक और अबूहसन सरकार ये सारे के सारे ही पेटपूजा करनेवाले थे, ऐसा क्यों लगा? और वैसा होता तो उनका साथ छोड़कर इन दोनों ने विरोधी दलों से हाथ क्यों नहीं मिलाया? वैसा करने के बदले विदेशी लोगों से वाममार्ग से धन और हथियारों की सहायता प्राप्त करके अपने देश को स्वयं तहस नहस करने में कौन सा पुरुषार्थ है? और फिरकापरस्त, पुराने सहकारियों को स्वार्थी, चोर इस तरह की गालियाँ देकर कैसे भुलाया

जा सकता है ? इस कारण जैसे तुम्हारा पावित्र्य प्रस्थापित नहीं होगा उसी तरह कम–अधिक सामाजिक स्वास्थ्य या आर्थिक स्थैर्य निर्माण करने से ही तुम्हारा फौजी इंकलाब न्याय सिद्ध नहीं होगा ? वह अपरिहार्य और जनहित का था या नहीं इसका जवाब वहाँ की जनता ही दे सकेगी।

बादशाह खान, अब्दुस्समद खाँ, मौ० भाशानी, गुलाम मुहंमद सय्यद आदि सभी सच्चे देशसेवकों को इस राज्यक्रांति ने जेल की राह बताई इस कारण इस राज्यक्रांति के बारे में स्वातंत्र्यनिष्ठ लोग शंकित ही रहेंगे।

बादशाह खान की पैदाइश ही जेलों को साफ करने के लिये है। उनको आजादी से घूमने फिरने के लिये कितने दिन मिले, उसकी गिनती करना अधिक आसान है। पूरी उमर जेल में ही बीती।

अयूब खान क्रांति के बाद १९५८ के अक्तूबर में वे जो जेल में लुप्त हुए तो १९६४ के अंत में लंदन में प्रकाश में आये, सही अर्थ में प्रकाश में, जनतंत्र के जन्मस्थान में आ पहुँचे। वे वहाँ कैसे फेंके गये इसका इतिहास थोड़ा ध्यान देने लायक है। इस वजह से प्रे० अयूब खान के मक्सद और कार्यपद्धति पर रोशनी पड़ती है। १९५८ से लेकर १९६४ तक का समय बादशाह खान ने लगातार जेल में ही बिताया, ऐसा नहीं। १९६१ में वे कुछ समय के लिये आजाद थे। छः साल के कारावास में उनका फौलादी बदन कमजोर और रोगजर्जर बना। पहले वे हैदराबाद में एक दो साल रहे होंगे। वहाँ पूरा समय अकेले रहकर बिताना पड़ा। वहां की हवा बेहद गरम थी, सेहत बिगड़ गई। तो भी वहाँ के पंजाबी जेलर ने उनकी बीमारी में दखल लेने से इंकार किया। मरीज के बारे में वह बेफिक्र रह सकता था लेकिन नियमानुसार बीमारी का ख्याल करना लाजमी होता है। अस्पताल भेजने से भी जेलर ने इंकार किया।

इस्लाम धर्म के भाई चारे का ढोल पाकिस्तान में पीटा जाता है। लेकिन उस भाई चारे का अनुभव बादशाह खान को करवाने के लिये कोई अधिकारी मिला नहीं, ऐसा दीखता है। हैदराबाद से लाहौर और लाहौर से रावलपिंडी या मुलतान इस तरह उस मियाद में उन्हें घुमाया गया। लेकिन इस १९५८ की क्रांति के जेल का अनुभव ब्रिटिशों के जमाने के जेल जैसा ही था, उससे भी अधिक बुरा रहा। जहाँ प्रतिकूल आबोहवा हो, वहाँ आबोहवा बदलने के लिये भेजने की ब्रिटिश परंपरा पाकिस्तानी अधिकारी नेकी से चलाते थे। उन्हें उपचार के लिये लाहौर जेल ले गये, लेकिन वहाँ

कोई डॉक्टरी जाँच नहीं की गई। अंत में बादशाह खान की तकलीफ असहनीय हो जाने के कारण उन्होंने मुख्य अधिकारी को संदेश भेजा कि उसके निषेध में वे भोजन बंद करेंगे। यह मालूम होने पर और चार दिन उपवास करने पर उन्हें मुलतान के अस्पताल में इलाज के लिये भेजा गया। मुलतान में उस वक्त तापमान छाया में ११७° रहता था। वहाँ के उपचार से कुछ आराम हो रहा था लेकिन वहाँ की गरमी उन्हें असह्य थी, इसलिये दूसरी जगह भेजने की उन्होंने प्रार्थना की। तब उन्हें फिर लाहौर भेजा गया। तबादला होने के दौरान उनकी सेहत और बिगड़ी थी।

इस दौरान जेल के संबंध में जो जानकारी मिली वह खुद बादशाह खान के मुँह से मिलने के कारण उसकी सचाई के बारे में जरा भी शंका नहीं है। श्री प्यारेलाल जी ने भी सारी जानकारी अपने लेख में दी है। श्री कमलनयन बजाज और प्रस्तुत लेखक से हुई मुलाकातों में भी करीब करीब इन सारी घटनाओं का जिक्र आया था। लाहौर में गरमी बहुत थी ही, लेकिन उससे भी अधिक दी हुई दवा के कारण वे झुलस गये। उन्हें टट्टी की शिकायत शुरू हुई (डिसेंट्री) और उसपर अनजान में दवा गलत दी गयी ऐसा दीखता है। लेकिन वह गलती नहीं थी, वह नीचता थी, ऐसा कहना पड़ता है। होनेवाली यातनाओं के बारे में उन्होंने अधिकारियों को खबर दी फिर भी डॉक्टर ने कोई भी इलाज नहीं किया। उल्टे जिस वार्ड में उन्हें अकेला छोड़ा गया था उस सारे हिस्से को और उनके कमरे पर ताले लगाये गये। इतना ही नहीं, उस हिस्से की सारी बत्तियां रात में बंद की गयीं। ऐसी अवस्था में उन्हें कुछ पूछताछ किये बगैर ३६ घंटे रखा गया। उस अवधि में उन्हें प्राणांतक वेदनाएं हुईं। उन दरमियान उनका अंत हो गया होगा ऐसा जेल अधिकारियों को लगा, ऐसा दीखता है। वैसा नीच उद्देश्य न होगा ऐसा मानने के लिये कोई सबूत नहीं मिलता है ? बादशाह खान जैसा संतपुरुष ऐसा साफ कहता नहीं है। अधिकारियों का वैसा नीच उद्देश्य होने का कारण क्या था ? उन्हें जेल में क्यों भेजा गया। जेल में भेजने पर भी उनपर जुल्म क्यों ढाये गये ? क्या उन्हें न पहचाननेवाले अधिकारी द्वारा वैसा हुआ होगा ? डाक्टर ने देखभाल क्यों नहीं की ? ये सारी आशंकायें बेबुनियाद नहीं हैं। इस तरह की अत्यंत नीचता महान पुरुषों के बारे में करने की दानवता नौकरशाही में कई मर्तबा जागृत हो सकती है इसका अनुभव १९४२ के आंदोलन में कई जगह हुआ है। लेकिन वह सिर्फ नीचता नहीं थी, बदला लेने की भावना थी। यह दानिह

नेताओं की थी या स्वार्थलोलुप नौकरशाही की थी? इन सब सवालों का जवाब मिलना कठिन है। लेकिन लाहौर जेल में टट्टी की शिकायत पर किये गये उपचारों से उनका अंत होने के बदले, वे रिहा हुए। इसलिये यह प्रयत्न उन्हें मारने के लिये ही हुआ हो तो भी सही माने में उन्हें तारने में याने बाहर निकालने में मददगार हुआ। इसलिये इस षडयंत्र के लिये या जहरीली दवा देने की घटना के लिये जो कोई जिम्मेदार हो उसको शुक्रिया ही अदा करनी होगी।

उन्हें असल में शिकायत टट्टी की ही थी, उसकी जगह अब कई बीमारियां पैदा हुईं। यह उस दवा देनेवाले का उपकार ही नहीं तो और क्या है? क्योंकि इतनी रोगग्रस्त अवस्था में उन्हें जेल में रखना शासकों को खतरनाक मालूम हुआ। बादशाह खान को पहले लो ब्लडप्रेशर था उसकी जगह अब हाई ब्लडप्रेशर हुआ, उन्हें कलेजे की भी कुछ शिकायत पैदा हुई। किडनी, लिवर सभी मंद या बंद होने की राह पर लगे। फिर दवा का उपयोग नहीं हुआ, ऐसे कैसे कहा जा सकेगा? पांव और सारे बदन पर सूजन आने लगी। ऐसी अवस्था में उनपर अब अधिक इलाज करने की जरूरत नहीं रहेगी ऐसा जेल अधिकारियों को लगा होगा। इसलिये उन्होंने उन्हें जेल से ही नहीं, लाहौर से दूर भगाया। लाहौर से हरिपुरा में उनके लिये स्वतंत्र मकान लेकर दिया और वहां स्थानबद्धता में रखा गया। हरिपुरा क्या या लाहौर क्या कहीं भी उस प्रभावी उपचार का उपयोग या हो-हल्ला होने का खतरा था ही। अब तो छः साल के तानाशाही अनुशासन में तैयार हुआ अधिकारी वर्ग तैयार हो गया था। प्रेसिडेंट अयूब खान अपने नौकरशाही को रोजाना लोकसेवा के सबक देते थे और कराची में स्थायी पश्चिमी पत्रकारों द्वारा पाकिस्तान के इस सुधरे हुए शासन की रोजाना सूचना भी होती थी। फिर जेल के अधिकारियों का यह वर्ग अनुशासन और तत्परता से बर्ताव किये बगैर कैसे रह सकता। उन्होंने बादशाह खान को फौरन हरिपुरा भेजा, फौरन मकान दिलाया और वहाँ उन्हें मुक्त संचार करने के लिये छोड़ दिया। हरिपुरा की कुछ ठंडी हवा उन्हें ठंडा करने के लिए पर्याप्त नहीं है ऐसा मालूम होने पर ही मानों उन्हें हमेशा बर्फीले वातावरण में रहना संभव हो सके इसलिये १९६४ के ठंड के मौसम में लंदन रवाना किया। प्रे० अयूब खान की सख्त अनुशासन की सुधरी राज्य व्यवस्था में ४-५ साल के जेल जीवन का यह अस्पष्ट चित्रपट है। बादशाह खान की यह सारी जीवनयात्रा,

अंगार से गर्म खाक और गर्म खाक से कोहरे और कोहरे से बर्फ की ओर चलती रही है। वहाँ से वे अपने मूल स्थान की ओर पहुँचनेवाले हैं।

१९६४ के ठंढ के मौसम में बादशाह खान लंदन पहुँचे। उनकी सेहत अब दुरुस्त होना संभव नहीं और उनकी मृत्यु अगर पाकिस्तान की जेल में हुई तो वह सब तरह से शासकों के लिये बाधक सिद्ध होगी इस डर से उन्हें विदेश भेजा गया, ऐसा शक बादशाह खान समेत बहुतेरे लोगों को होता है। उनसे पाकिस्तान में हुआ अमानुषी छल उस शक के लिये आधार है। लेकिन यह दांवपेंच खेलनेवालों का कुछ भी उद्देश्न हो अपने भक्तों की रक्षा करनेवाले ईश्वर ने ही उन्हें सुचारु रखा है, यह सत्य है। इसलिये इस सुपरिणाम का कुछ श्रेय पाकिस्तान के नेताओं को मिलता हो तो मिलने दें, लेकिन पाकिस्तान के नेताओं के दांवपेंच वहीं खत्म नहीं हुए। लंदन में हुए उपचारों के कारण चार-पांच महीने में ही अच्छा 'परिणाम निकला। वहाँ भी उन्हें इंग्लैंड में उत्तर की ओर कहीं दूर रखा गया था। कुछ दिन के बाद वे लंदन आये। वहाँ की ठंढ उन्हें नहीं भायी तब अमेरिका जैसे कुछ मध्यम आबोहवा के मुल्क में रहने की सलाह डाक्टरों ने ही दी। उस पर बादशाह खान ने अमेरिका जाने के लिये प्रयत्न किया लेकिन अमेरिका को भी उन्हें देश में उपचार के लिये आने देने की इजाजत देना ठीक नहीं लगा। जन-तंत्र और मानवी स्वातंत्र्य का उद्घोष करने वाले इस महान और श्रीमान देश ने यह अनुदार निर्णय क्यों लिया यह समझना कठिन नहीं। सिर्फ पाकिस्तान के राज्य कर्ताओं की मोहब्बत के लिये अमेरिका जैसे महान देश ने यह नीचता की। इंग्लैंड के खिलाफ सदियों से सशस्त्र युद्ध करने वाले आयरिश नेता अमेरिका की स्वातंत्र्यनिष्ठा की गोद में निर्भय रहते थे। इतना ही नहीं, वहाँ रह कर मातृभूमि को आजाद करने के आंदोलन चलाते थे, हिंदुस्तान के क्रांति कारकों को भी अमेरिका ने अपनी गोद में आश्रय दिया था। लेकिन बादशाह खान के बारे में इतना परायापन क्यों बताया गया? क्या प्रेसिडेंट अयूब खान के शासन से अमेरिका इतना एक रूप हुआ था, इसका यह सबूत नहीं माना जा सकता? उसके लिये दूसरे सबूतों की जरूरत नहीं है। दो विश्वयुद्धों के बाद पूँजीवाद का जो प्रचंड विस्तार अमेरिका ने किया उससे उसकी स्वातंत्र्यनिष्ठा का स्तर गिरता गया, यही उसका अर्थ है।

के खुद के राजकीय जीवन का, उसमें बदली हुई परिस्थितियों का और उथल-पुथल का चित्रपट उनकी आँखों के सामने से गुजरा होगा। इसी कारण उनके लिए खोले गये लोहे के दरवाजे पर की हुई प्रश्नचिह्नांकित कलाकारी की ओर उनका ध्यान भले न गया हो, लेकिन उसमें प्रवेश करते हुए उनके मन में कई सवालों का तूफान उमड़ा ही होगा।

१९२० में हिजरात के आंदोलन में वे मोहाजरीन बन कर काबुल आए थे। उसके पहले के पाँच साल वे पहले विश्वयुद्ध के जमाने में सशस्त्र प्रतिकार के कार्यक्रम में थे। उस वक्त वे काबुल न पहुँचे हों, लेकिन वे जिन क्रांतिकारी नेताओं के लिए शुद्ध संगठन खड़ा कर रहे थे, उन नेताओं की अस्थाई भारत सरकार काबुल-ए-बाबर के अतिथिगृह में थी। महेंद्र प्रताप, बर्कतउल्ला, ओबेदुल्ला इनकी संस्था से उस समय (१९१४–१९) बादशाह खान का कुछ थोड़ा संबंध हुआ था। शेख उलहिंद महंमद हसन की सूचना के अनुसार ही वे सशस्त्र प्रतिकार आंदोलन में शरीक हुए थे। बाद में हिजरात के वक्त खुद अमानुल्ला खान से उनकी बातचीत हुई थी, उनकी सलाह के बाद ही बादशाह खान काबूल से अपने घर लौटे थे। इतना ही नहीं, अपने हाथ की बंदूक फेंक कर लोकशिक्षण के अपनी चाह के काम में फिर से लगे।

'किसी भी कारण से अपने स्वजनों से दूर जाने पर अपने सवाल कैसे हल होंगे। अपने अज्ञ समाज बांधवों की आजादी करीब कैसे आवेगी? उनमें ही रहकर और उनको होशियार बनाकर सभी को आजाद कराना वह वीर पुरुष का कर्तव्य है।' राजा अमानुल्ला खान की मुलाकात के बाद बादशाह खान ने नीति से चलने का निश्चय किया था। अपने अनाड़ी और पिछड़े हुए पठानों को होशियार और आजाद करने के दृढ़ संकल्प में उन्होंने बाद के चालीस साल बिताये। १९३० के बाद वे गांधी जी के संपर्क में आए तथा अहिंसा की निष्ठा में पले और लड़े थे। देश के आजाद होने पर पंद्रह साल की जेल के बाद अमानुल्ला की यादगार से प्रतीत हुए परिसर की छाया में फिर पहुँचे थे। ओबेदुल्ला अमानुल्ला गांधी का हाथ पकड़ कर और बाद में जिना अयूब खान के जेलखाने से अमानुल्ला के अतिथिगृह में ऐसा उनका पैंतालीस साल का प्रवास रहा। अतिथिगृह के प्रवेश द्वार पर जो प्रश्नचिह्न की निशानी थी, उससे वे अधिक अस्वस्थ हुए होंगे।

आसपास के नीले धुंधले रंग की टेकड़ियों पर आनेवाली ठंडी हवा,

राजप्रासाद की ओर जानेवाले सीमेंट के साफ रास्ते के दोनों ओर खड़े हुए शस्त्रधारी सैनिक की तरह लगनेवाले पोपलर पेड़ की कतारें, सैनिकों की लाठी पर लहरानेवाले निशान की तरह पोपलर पेड़ों की डालों पर लहरानेवाले पीपल के छोटे छोटे पत्ते इस तरह के इस स्वतंत्र और रमणीय वातावरण में बादशाह खान आ पहुँचे थे। रास्ते से गुजरनेवाली मोटरों के चक्के से उड़नेवाले बारीक कंकरों की ध्वनि और पेड़ों के समूह में होनेवाली पंछियों की किलकिलाहट इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी आवाज या शोर कान पर नहीं आ सकती या हिमाच्छादित टेकड़ियों पर से बहनेवाली हवा किसी भी तरह का शरीरदाह नहीं होने देती। ऐसा होते हुये भी लाहौर की जेल की दशा के कारण हुए दाह की अपेक्षा अधिक क्षोभ उनके अंतःकरण में यहाँ पहुँचने पर जाग्रत हुआ होगा।

आगे क्या? इस एक सवाल से उनके दिल में कितना प्रचंड तूफान उमड़ पड़ा होगा? अतिथि होने के लिए या वहाँ मिलनेवाली स्वस्थता का लाभ लेने के लिये वे वहाँ नहीं गये थे। इसलिये राजमहल से आनेवाले मिष्टान्न की थालियाँ, नौकरों की चहलपहल या बड़ी बड़ी शाही मोटरों का वहाँ पर आना उन्होंने तुरंत बंद करवाया। पठानों की समस्या कैसे हल की जा सकेगी इस चिंता में वे तुरंत व्यस्त हुये। काबुल पहुँचने पर कुछ दिन के लिये उन्हें अपनी सेहत की ओर ध्यान देना पड़ा। खुद राजा साहब, युवराज और राजघराने के अन्य बड़े बड़े लोग, पंतप्रधान और अन्य मंत्री, देश के नागरिक और छोटे बड़े सामाजिक कार्यकर्ता इन सबसे खुलकर मिलना जुलना होने लगा। मुख्यतः कार्यकर्ताओं से मुलाकातें और दीन दुखियों का स्नेह यही उनकी सच्ची खुराक थी इसलिये उनका स्वास्थ्य तेजी से अच्छा हुआ।

प्रेसिडेंट अयूब खान की जेल से 'अब यह अधिक दिन टिकनेवाला नहीं है' इस दृष्टि से बाहर फेंका हुआ शरीर फिर ताजा होने लगा। अपने कर्मयोगी जीवन का उन्होंने फिर से श्रीगणेश किया। राजा जहीरशाह और उनकी सरकार ने उन्हें मौत के मुँह से वापस बुला लिया ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनका यह ऋण संसार के सारे शान्तिप्रिय लोग कैसे भूलेंगे?

बादशाह खान लंदन पहुँचे उसी समय कई भारतीयों की आशा खिल उठी और उनसे मिलना और उन्हें देखना अब संभव होगा इस कल्पना से

उन्हें आनंद हुआ और उनके काबुल पहुँचने पर वह कई गुना बढ़ा। उनसे संबंधित खबरें कभी कभी अखबार में आने लगीं, कुछ लोगों ने उनसे पत्रव्यवहार भी शुरू किया। १६६६ में डा० लोहिया, प्यारेलाल, कमलनयन बजाज आदि लोग उनसे जाकर मिले। उन्नीस साल के बाद अब उन्हें उनके पुराने भारतीय दोस्त कार्यकर्ता मिलते थे। उन मुलाकातों से उन्हें हुये आनंद दुख का वर्णन करना आसान नहीं है। खुदाई खिदमतगारों ने पूरा जीवन भारत की आजादी के लिये व्यतीत किया और आजादी मिलते ही उनके पाँवों में नई बेड़ियाँ लगाई गईं इस दैवदुर्विपाक की विस्मृति उन्हें या उनसे मिलनेवाले दोस्तों को कैसे हो सकती है ?

विभाजन के पश्चात् उनसे पहले पहल मिलनेवाले संभवतः मोरारजी देसाई ही थे। १६६१ में श्री मोरारजी भाई भारत पाकिस्तान के अर्थमंत्रियों की संयुक्त बैठक के लिये रावलपिंडी गये थे, तब बादशाह खान से मिलने की अपनी इच्छा उन्होंने पाक सरकार के सामने प्रदर्शित की उस समय बादशाह खान उत्मंजई में स्थानबद्ध रहे होंगे। श्री मोरारजी भाई ने खान साहब जहाँ हों वहीं मिलने के लिये व्यवस्था करने के लिये सुझाया था फिर भी बादशाह खान को श्री मोरारजी भाई का संदेश पहुँचा कर उन्हें पिंडी बुलाया गया। उसके लिये श्री मोरारजी भाई ने खेद भी प्रदर्शित किया लेकिन उन्हें वापस पहुँचाते समय मोरारजी भाई उनके साथ उत्मंजई तक गये थे। यह असल में लंबी चौड़ी मुलाकात हुई थी, लेकिन वह पूर्णतया अंधेरे में रही। उस मुलाकात में बादशाह खान ने गांधी जी के आश्वासनों का स्वरूप और उस संबंध में भारत सरकार के बारे में उनकी अपेक्षाओं के संबंध में उनसे अपनी भावना व्यक्त की थी। पठानों के आपत्काल में भारत उनके पीछे रहेगा यह अपेक्षा झूठ साबित होने के बारे में उन्होंने खेद व्यक्त किया था। महात्मा जी के उन आश्वासनों को नयी परिस्थिति में भारत सरकार कैसे निभा सकती है इस संबंध में श्री मोरारजी भाई को भी कुछ रास्ता नहीं दीखता था और आज भी उन्हें वह न दीखता होगा। बादशाह खान का और भारत की आजादी के लिये लड़नेवाले पठानों का भारत पर कुछ ऋण है यह मोरारजी भाई और बादशाह खान से मिले हुये अन्य नेताओं को मान्य है ही, कुछ रास्ता निकाला जाय ऐसी भी उनकी इच्छा है, लेकिन अंतरराष्ट्रीय भारतीय जिम्मेदारियाँ निभाते हुए मार्ग कैसे निकाला जा सकेगा इसकी खोज कोई नहीं कर सका यह खेदजनक है। कराची

पहुँचने पर श्री जयप्रकाश जी ने भी उनसे मिलने की कोशिश की थी, लेकिन उसमें वे सफल नहीं हो सके थे। उस समय के सुरक्षा मंत्री श्री यशवंतराव चव्हाण, समय की माहिती महकमे की मंत्री इंदिरा गांधी और सहायक कमिश्नर डा० जीवराज मेहता आदि उनसे लंदन में मिले थे। उन सबको बादशाह खान ने गांधी जी के आश्वासन की याद दिलाई थी और उस संबंध में उन नेताओं से कुछ जवाब की अपेक्षा भी रखी थी। पंडित नेहरू के कानों तक ये सब बातें गई ही होंगी। लेकिन उस विषय की ओर कोई ध्यान नहीं दे सका। हम कुछ कर सकेंगे ऐसा किसी को भी नहीं लगा, यह इस समस्या की, हमारी परराष्ट्रीय नीति की या राजकीय विचारों की दुर्भाग्यपूर्ण उलझन है। यह उलझन ताशकंद करार के बाद भी वैसी ही रही या बढ़ी है ऐसा बहुत से नेताओं को लगता है।

ऐसी मनोदशा में भारतीय नेताओं कार्यकर्ताओं की मुलाकातें १९६५ में शुरू हुई। इस मिलने जुलने से बादशाह खान को कुछ आनंद और कुछ क्षोभ ही हुआ होगा।

"हमें भारत भूल गया है। आजादी के लिये पठानों ने उनके पास जो कुछ भी था वह सभी दिया और वे अब दिक्कत में हैं। पठानों को न्याय नहीं मिला। उनपर आफत आई तो भारत उसकी रक्षा के लिये दौड़ आवेगा, भारत का यह कर्तव्य है, ऐसा भरोसा गांधी जी ने दिया था। हम मुश्किल में हैं, भारत कम से कम गांधी जी के कहने का ख्याल रखे" कहीं दूर आसमान से आवाज निनादित हो या कहीं नीचे से दरें में से किसी की पुकार सुनाई दे इस तरह उनके शब्द भारत के कानों पर टकराने लगे। दिल तोड़ देनेवाले उनके शब्द प्यारेलाल ने अपने लेखों के जरिये भारत के कोने कोने में पहुँचाये। लेकिन पठानों को बचाने के लिये बादशाह खान के दर्दभरे कंठ से आई हुई यह पुकार नहीं थी। संभ्रम में उलझे हुए पुराने दोस्तों सहकारियों से कर्तव्य बुद्धि से किया हुआ वह आवाहन था। बादशाह खान की इस पुकार से लाखों स्वातंत्र्य भक्तों में चेतना आई। सैकड़ों लोगों ने उन्हें आदर-भावना व्यक्त करते हुए खत लिखे। उन्हें भारत आने के लिये भारत सरकार विनती करे, इस तरह की हलचल शुरू हुई। भारत पाकिस्तान की लड़ाई के वातावरण में और बाद में पंडित जी के अवसान के कारण वह मसला वैसे ही लटकता रहा। लालबहादुर शास्त्री ने काबुल जाकर बादशाह खान से मिलने का और उनसे बातचीत करने का निश्चय किया था लेकिन वह

विचार भी वैसा ही ताशकंद के शोकसागर में बह गया। लेकिन काबुल की ओर से भारत की ओर आनेवाली हवा को कोई रोक नहीं सकता था। इसीलिये हजारों नौजवानों की कर्तव्य भावना जागृत हुई, "हम खुदाई खिदमतगारों का ऋण कभी भी नहीं भूल सकते हैं, आपके काम में हम अपनी जान कुर्बान कर सकें तो वह हमारा महत् भाग्य होगा।" इस आशय की भावनायें सैकड़ों लोगों ने उन्हें लिख भेजीं।

कालका के एक नौजवान संपादक ने "आप इधर आयेंगे तभी मैं शादी करूँगा। आप मेरी शादी में उपस्थित रहें" ऐसा उन्हें लिखा। अपने जवाब में बादशाह खान ने उसे लिखा, "आपकी शादी के लिए जरूर आऊँगा। मैंने भी भंगी का काम किया है।" उपर्युक्त संपादक भंगी जमात के हैं।

अन्य किनके खत गये यह मालूम नहीं। वैसे खत जाना स्वाभाविक है। भारतीय सुसंस्कृति का वह एक हिस्सा है लेकिन पू० विनोबा जी की एक लकीर में भारत की कृतज्ञता की सारी रामायण भरी हुई है, और उस खत के कारण बादशाह खान को थोड़ा संतोष भी हुआ है। विनोबा जी ने बादशाह खान की शिकायत की भावना का साथ दिया है। उनके पत्र का मतलब "हमारे आजादी के संग्राम के आप एक महान नेता हैं और आपके बारे में बड़ा अन्याय हुआ है। हमारे दोस्तों ने आपको करीब करीब धोखा दिया है यह व्यक्त करते हुए मुझे होनेवाला खेद शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं······पदयात्रा में मुझे आपका स्मरण हमेशा रहता है। आप ईश्वरभक्त हैं। आत्मक्लेश और अहिंसा पर आपकी अटल श्रद्धा है आपकी इस तरह परीक्षा लेकर बाद में आपके द्वारा ही संसार की समस्या हल करवा लेने की परमात्मा की इच्छा होगी। "बाशिरिस साबिरीन" जो गम खा कर राह देखते हैं वे धन्य हैं"। विनोबा जी की इस आदरपूर्ण और स्नेह भरी शब्दांजली के कारण उनके टूटे हुए दिल को कुछ यकीन मिला होगा। कमलनयन बजाज, उनकी बहन मदालसा बहन और बहनोई तथा हाल के नेपाल के राजदूत श्री श्रीमन्नारायण का मिलना पारिवारिक मिलना ही था। भारत सरकार के परराष्ट्र महकमे की ओर से भी उन्हें भारत आने के लिए निमंत्रित किया गया। इस कारण भारत उन्हें भूला है, यह उनकी गलतफहमी कुछ दूर हुई होगी।

भारत सरकार की नीति के बारे में बादशाह खान को कुछ दुख होता हो लेकिन भारतीय जनता के बारे में और यहाँ के कार्यकर्ताओं के बारे में

उन्हें पहले जैसी ही आत्मीयता है। उनका प्रेम पहले जैसा ही ताजा है। उनके पास भारत में आये हुये निर्वासितों के भी असंख्य खत जाते हैं। उन्होंने एक पुराने पेशावरी कार्यकर्ता की कड़े शब्दों में आलोचना की है।

"मुझे उधर आने के लिये कई लोगों के प्रार्थना पत्र आते हैं लेकिन मैं किस काम के लिए उधर आऊँ? इस प्राचीन भूमि को (एनशेंट लेंड) पठान मुल्क को मुझे पाकिस्तानियों के चंगुल से मुक्त कराना है। इस काम के लिये लोग तैयार हों तो मैं उनके लिये आऊँगा, लेकिन आप मातृ देश को भूल गये हैं और पैसे कमाने के काम में फँस गये हैं। जो लोग धन के पीछे लगते हैं वे लोग और उनका देश दोनों ही बरबाद होते हैं।" (ता० ३-११-६५)

दिल्ली के उनके विश्वासभाजन कार्यकर्ता, पेशावर के ख्यातनामा साहित्यिक श्री रामशरण नगीना को लिखे एक खत में वे लिखते हैं (ता० १८ ऑगस्ट १९६५):

"मैंने यहाँ खुदाई खिदमतगार आंदोलन शुरू किया है (मूवमेंट) वैसा ही नारंग को हिंदुस्तान में शुरू करना चाहिये ऐसा उन्हें लिखा है। मैं आपको आशीष देता हूँ, आप मुझे दें। खुदा हमें हिमत और ताकत दे। खुदा को संतोष देने के लिये सारे विश्व की सेवा करने का कार्य हमारे हाथों हो।"

उनके दूसरे विश्वासपात्र कार्यकर्ता सीमाप्रदेश के विधिमंडल के पुराने सदस्य और खुदाई खिदमतगारों के जिला प्रमुख श्री कमरभान नारंग को लिखे हुए ता० २४ दिसंबर १९६५ के पत्र में वे कहते हैं, "हमारा मुख्य प्रश्न है वह है आजादी का। खुदाई खिदमतगारों के जरिये होनेवाली सेवा में हमें अपनी ताकत केंद्रित करनी चाहिये। उनके लिये सच्चे कार्यकर्ता चाहिये। अभी करीब करीब सारे काम पुलाव और पैसों के लिये होते हैं। पूँजीपतियों और हुकमशाहों की पकड़ से (पठानों को) मुक्त करने के लिये निरंतर चिंता करता रहता हूँ। आपको भी यही विचार करना चाहिये।"

दारूल अमन के ठंडे प्रदेश में आने के बाद और सेहत कुछ ठीक होते ही किस गति से और किस दिशा में उनका चिंतन चल रहा था वह १९६५ में उनके द्वारा लिखे गये व्यक्तिगत पत्रों के उपर्युक्त हिस्से से दिखाई देता है।

: २४ :

अग्निशयन–उनके सहवास में आठ दिन

वे काबुल आये इसकी मालूमात होते ही हजारों कार्यकर्ताओं ने उन्हें खत लिखे ही होंगे। हजारों निर्वासितों के खत भारत से आते हैं ऐसा उल्लेख उनके एक खत में भी है ही। प्रस्तुत लेखक भी इस तरह से पत्र संपर्क जोड़नेवालों में से ही एक था।

'भारत आपको और पठानों को नहीं भूला है और भूल नहीं सकेगा' ऐसा नम्र निवेदन उनकी ७५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष में अभिवादन और अभीष्टचिंतन इस पत्र के जरिये इस लेखक ने किया था।

(२ जुलाई १९६५)

भारत से मिलने आए दोस्तों से वे एक ही सवाल करते थे, 'गांधी जी द्वारा दिया हुआ आश्वासन आपको पवित्र लगता हो तो उसे पूरा करें और सिर्फ पठानों की भलाई के लिए ही नहीं भारत की भलाई के लिये आप पठानों को बचायें। आप भगवान कृष्ण को भी भूल गये हैं। हिंदुस्तान और अफगान इन दोनों राष्ट्रों ने सहारा दिया तो पठान सफल होंगे। यह करना हो तो ही मुझे बुलाओ, मैं खुशी से आऊँगा।' उनके इन उद्‌गारों के पीछे क्या भावना है, यह जानने की इच्छा थी।

उनके चरित्र का कुछ शंकास्पद स्थान भी समझ लेना जरूरी था। यह सारा विचार करते हुए लेखक १९६९ के अगस्त में दारुल अमन पहुँचा। बादशाह खान के साहचर्य में उनके ही अतिथिगृह में रहने का मौका लेखक को मिला। उस वक्त उनके घर अन्य कोई भी मेहमान न होने के कारण आठ दिन बेखटके चर्चा करने और खुले दिल से जिज्ञासा शांत करने के लिये मिले। उनके सहवास का वह समय संस्मरणीय और स्फूर्तिप्रद रहा। बादशाह खान का दुखी और कर्मयोगी जीवन मन को आकर्षित करनेवाली मोहिनी है। इतने क्लेशमय जीवन के बावजूद भी लोकसेवा के लिये निरंतर दौड़धूप करते रहने की उनकी उत्कट निष्ठा देखकर मन विस्मित होता है। उनकी निष्ठा के सामने सिर झुक जाता है।

२५ अगस्त १९६९ को दोपहर दो बजे काबुल हवाई अड्डे पर पहुँचा। भारतीय राजदूत के पास संदेश पहुँचते ही उनके प्रथम कार्यवाहक श्री० जौहरी हवाई अड्डे पर आये और उन्होंने मेरी सब व्यवस्था की। दूतावास पर पहुँचने पर भारतीय राजदूत जनरल थापर से कुछ समय बातचीत करने के बाद बादशाह खान से पूछताछ हुई। मेरे सफर का दिन पहले तय न होने के कारण किसी को भी पहले इत्तला नहीं दी जा सकी थी। कहीं भी होटल में उतरने का मेरा इरादा था। लेकिन बादशाह खान का संदेश उनके घर ही ठहरने के बारे में आया। इससे मेरी खुशी की सीमा न रही। बादशाह खान से मिलने जाने पर उनके यहाँ रहने का जिन्हें संमान या मौका मिला हो ऐसे लोगों से मैं दूसरे या तीसरे क्रमांक का मेहमान था यह मुझे बाद में पता चला। इसका सारा श्रेय श्री० कमलनयन बजाज को था। उन्होंने ही बादशाह खान से मेरा परिचय करा दिया था। मेरी मुलाकात का उद्देश्य भी बताया था। भारतीय दूतावास से दोपहर में उनके निवास पर गया। समय चार बजने का था फिर भी सूर्यास्त का समय लगता था। अतिथिगृह के सामने के गोलाकार बगीचे में बादशाह खान एक छोटी सी फोल्डिंग कुर्सी पर बैठे थे। उनके आसपास वैसी ही (फोल्डिंग कॅम चेअर्स) पाँच दस कुर्सियाँ फैलाकर रखी गयी थीं। चार छः लोग उनसे मिलने के लिये आये थे। उनसे बातचीत करने में बादशाह खान व्यस्त थे। इतने में हमारी गाड़ी उस वर्तुल के पास पहुँची। बादशाह खान ने हमारा आत्मीयता से स्वागत किया हाथ से पकड़कर अपने पास की कुर्सी पर बैठाया। अन्य मेहमानों से परिचय करा दिया। बादशाह खान से किस भाषा में बातचीत की जाय, उनकी बात या उच्चारण ठीक से ध्यान में न आने पर क्या किया जाय, अपनी हिंदी या अंग्रेजी भाषा ठीक व्यक्त न हुई तो क्या होगा, इस तरह के कई विचारों में मैं परेशान था। लेकिन ये सब मानसिक आंदोलन मोटर से नीचे उतरने पर उनके साथ बैठते ही खत्म हुये, नहीं भूल गए। शुरू में मैं क्या बोला या उन्होंने क्या पूछताछ की इसका भी मुझे बाद में स्मरण नहीं रहा। वे इतनी घरेलू और अनौपचारिक पद्धति से बर्ताव करते हैं कि उनके बारे में परायेपन का अंश भी दिल में बाकी नहीं रहता है।

'कितने दिन आपकी राह देखी जाती! अंत में मैंने जलालाबाद जाने का तय किया था। आप आये अच्छा हुआ।' उनके इस कहने का मतलब

समझने में मुझे देरी लगी। मिलने के लिये तुरंत आने के बारे में श्री कमलनयन के पास उनका भेजा हुआ संदेश हमें नहीं मिला था। 'ये कोई जोशी आने वाले हैं उनकी राह मैं देख रहा हूँ। और एक दो रोज में जलालाबाद जाने का कार्यक्रम भी तय हुआ है।' ऐसा उनका आखरी संदेश श्रीमती मदालसा बहन से हमें मिला और मैं तुरंत दिल्ली से रवाना हुआ। उनसे प्रत्यक्ष मुलाकात होने पर सारी चिंता दूर हुई। वहाँ उनसे मिलने के लिये आए हुए लोगों में से एक दो बड़े लोग होंगे। वे मेहमान उनसे विशेष मर्यादा रखकर बोलते थे ऐसा लगता था। उनसे हुई बातचीत का एक लफ्ज भी मैं नहीं समझ पाता था। इसलिये आसपास फैली हुई घनी झाड़ी, बगीचे के छोटे छोटे पौधों पर डोलने वाले रंगबिरंगे फूल, दूर फासले पर फाटक पर खड़े शस्त्रधारी नाटे पहरेदार ऐसे चित्र मेरी आँखों के सामने से गुजरते रहे। पठान याने भव्य यह कल्पना बदलना जरूरी था। वहाँ के पाँच छः सेवकों में से करीब करीब सभी नाटे कद के थे। सशस्त्र पहरेदार तो अपनी बंदूक से ही थोड़ी अधिक उँचाई के थे। बादशाह खान से मिलने के लिये आने वाले लोगों में भी भली लंबी चौड़ी और विपुल कल्लेदार दाढ़ी वाले थोड़े ही रहते थे। वे संभवतः यागिस्तान के टोली वाले प्रदेश के होंगे।

हम उस हरियाली पर दो तीन घंटे बैठे होंगे। दोपहर में कुछ गरमी बढ़ी थी इसलिए ठंड के डर से बदन पर लादे हुए गरम कपड़े श्री जौहरी जी के घर पहुँचते ही उतारने पड़े थे। काबुल ७ हजार फुट ऊँचाई पर है। शाम के पाँच बजने के बाद धीरे धीरे ठंड महसूस होने लगी और करीब छः बजने के अंदाज शरीर ठंड से कांपने लगा। उनकी बातचीत चल रही थी। बादशाह खान का स्वभावविशेष उनकी समझ में न आनेवाली बातचीत में से समझ लेने का मैं प्रयास कर रहा था।

पुश्तू प्रसन्न और समृद्ध भाषा है ऐसा मैंने पढ़ा और सुना था। बंबई के एक पठान संमेलन में जान बूझकर उपस्थित रह कर उनके भाषण संभाषण सुने थे। लेकिन बहुत थोड़ा जान पाता था। पहाड़ पर से ऊँचे निचले प्रदेश से गुजरने वाली रेलगाड़ी की आवाज की तरह बीच में भद्दी आवाज तो बीच बीच में बिल्कुल हल्की कर्णमधुर आवाज इस तरह का नादसाम्य उनकी बातचीत में महसूस होता था। बादशाह खान की बातचीत में विनोद, बोध वाक्य, अधिक प्रमाण में आते होंगे। सुनने वाले बारबार

हँसते या जोर जोर से उसका प्रत्युत्तर देने का प्रयत्न करते थे। जवाब देने के बाद बादशाह खान काफी समय तक स्तब्ध और व्यथित मनोदशा में इधर उधर देखते रहते। अपने कहने का श्रोताओं पर क्या असर हुआ, यह देखने का यह उनका तरीका होगा, ऐसा लगा। बीच बीच में वे मेरी ओर देखते थे। 'क्यों जोशी जी, ठंड तो नहीं लगती? रात को ज्यादा ठंड होगी', ऐसा कुछ कहा। दीखने में और बोलने में वे अधिक सौम्य नहीं हैं। मुझे उनकी पुरानी याद विशेष नहीं थी। फैजपुर कांग्रेस के बाद वे महाराष्ट्र में कुछ घूमे थे। कुछ करीब से देखा भी था। वहाँ जाने के पहले कमलनयन, प्यारेलाल आदि मित्रों से कुछ जानकारी हुई थी। 'माँ के साथ बच्चे जिस तरह बर्ताव करते हैं वैसा बर्ताव उनके साथ करो' ऐसा कमलनयन जी ने कहा था। शेरनी के बच्चे ही उसके बदन पर खेल सकते हैं, इतना ममत्व और निरहंकारिता हो तभी कोई वैसा समरस हो सकता है। लेकिन इतने खुले दिल के हम शायद ही हों।

बादशाह खान बात करते करते कुछ सकुचाये जैसे प्रतीत हुए। वैसा प्रसंगानुरूप होता होगा। लंबे चौड़े, दमदार करने वाले वाक्य बोलकर बाद में कभी कभी वे 'बेशक' कह कर गुर्राते हुए इधर उधर देखा करते थे। उनकी आवाज कठोर है, स्वर तानने की आदत, उसमें खिंचाव भी काफी है। एकदम ऊँचे और एकदम निचले सुर में बात करने की आदत सारे ही पुश्तूभाषियों में दिखाई दी। लेकिन कवियों का बोलना धीमा और सुरीले शब्दोच्चार का रहता है तो बादशाह खान के आवाज में चढ़ाव उतार बहुत लंबे रहते हैं। यह सब सुनने में और अपनी टूटी फूटी हिंदी की मदद से अगला सफर कैसे करना है, इस चिंता में मेरा समय व्यतीत होता रहा।

'तो कहो जोशी जी, अभी क्या खाओगे? आप को क्या पसंद है, बता दो' उनकी बातचीत में ऊपरी औपचारिकता नहीं थी या बड़प्पन का दंभ नहीं था। उल्टे बिल्कुल घरेलूपन का एकदम अनुभव हुआ। छः बजे वे कुछ अस्वस्थ से दीखे। इतने में नौकर ने उनके सामने के स्टूल पर ट्रांजिस्टर ला रखा। बीच बीच में वे कुछ बात मुझसे करते थे लेकिन रेडियो की खबरें सुनने में इतने डूबे हुये थे कि मेरा जवाब उनके कानों तक पहुँचा हो तो भी मन पर उसका कुछ असर न होता होगा। मेरे लिये यह मुश्किल का रहा। चर्चा बातचीत के लिये मैं तैयार नहीं था।

'ठंड और बढ़ेगी ?' उन्हें कुछ देखते ही मैंने पूछा।

'क्यों ? डरते हो। जरूर बढ़ेगी। चलो अंदर बैठेंगे, पहले ही क्यों नहीं कहा ?' थोड़े से झुके शरीर से वे कुर्सी से उठे।

'यह आपका कमरा। जो जरूरत लगे मुझसे कहो। संकोच मत करो। हम थोड़ी ही देर में भोजन करेंगे। आपको हाथ पाँव धोने हों तो धो लीजिए।' मेरे कमरे में उन्होंने मुझे छोड़ा। पास का स्नानगृह बताया। यह सब खुद उन्होंने किया और वे अपने कमरे में गये। जो कुछ बातचीत हुई वह उर्दू हिंदी में, लेकिन समझना आसान रहा।

और अंदाजन ९ बजे हम भोजन के लिये उनकी बैठक के कमरे में ही आये। अतिथिगृह के भोजन का अलग और थोड़ा सजा हुआ बड़ा कमरा है लेकिन वे भोजन के लिये उधर नहीं जाते होंगे। एक कोने में बड़ा रेडियो, सामने दीवालपर टँगा हुआ शिकारी का चित्र दिल की थाह लेनेवाला था। मुलाकाती बैठक का यह कमरा मध्यम आकार का है। उसमें एक सोफा-सेट और बीच में छोटीसा लंबाकृति चाय की टेबुल और आसपास चार छः कुर्सियाँ थीं। दाहिनी ओर एक कुर्सीपर वे बैठे थे और बीच की कुर्सीपर मुझे बैठाया। टेबल पर चीनी मिट्टी की दो चार बड़ी खाली तश्तरियाँ, चम्मच, नमकीन आदि बिल्कुल गिनती का और सादा सामान था। गनी (नौकर) ने गर्म पानी की एक झारी और तश्तरी ला रखी। उन्होंने उस तशत में (बेसिन बर्तन) पाँच सात मर्तबा स्वस्थता से हाथ मुँह धोया। पीछे की खिड़की में रखी हुई डब्बी में से दाँत निकाल करके साफ धोकर ठीक बैठाये। वे हर बात आस्ते आस्ते कर रहे थे। उनकी इस धीमी गति में उनकी स्वाभाविक कमजोरी नहीं थी। यह उनकी आदत ही होगी या, व्यग्रता का परिणाम होगा। वे काफी दुबले हो गए थे। पहले के जमाने में मैंने उन्हें दस पाँच मर्तबा करीब से देखा था। अब उसके आधे भी वे नहीं थे। शरीर सूख गया था। बारीकनुमा सूखा था। वैसे ही चेहरे पर और हांथ पांव पर झुर्रियाँ थीं। आंखें छोटी लेकिन लगातार कुछ ढूँढ़नेवाली पानीदार। आंतरिक आनंद से और शांति के कारण फूले हुए ईसामसीह के चेहरे से उनकी तुलना की गई है। वार्नेस और महादेव भाई ने उनकी वैसी तुलना की है। चेहरा मोहरा (प्रोफाइल) ऐसा दीखता भी है। ऐसा स्मित हास्य शांति उनके चेहरे पर कभी कभी दीखती भी है। उस वक्त वे बिल्कुल छोटे बच्चे जैसे हँसते हैं और दीखते भी हैं। लेकिन वह उनका स्थिरभाव नहीं। उनके अंतर में

निरंतर क्षोभ रहता है। वह अभी अभी के जमाने का भी होगा। उनकी नजर की हर हलचल में व्यथा चिंता प्रतीत होती है। सामाजिक अन्याय के खिलाफ चल रहे आंतरिक विचार युद्ध का वह प्रतिबिंब हो सकता है।

मुँह पर से पानी का हाथ फेरते समय, दांत साफ करते समय या दोनों हाथ साफ कर पोंछते समय, अपनी हर क्रिया की ओर देखते समय उनकी नजर तीव्र और भेदक मालूम पड़ी। उनकी हर हलचल में लगातार व्यग्रता, व्याकुलता और क्षोभ प्रतीत होता था। कर्मयोगी की कठोर कर्मनिष्ठा उसमें व्यक्त होती थी। वे ईसा के बजाय महंमद के ही प्रतीक हैं, बुद्ध की अपेक्षा कृष्ण या गांधी जी की अपेक्षा तिलक के प्रतिनिधि हों ऐसा भी एक विचार मेरे मन में हुआ। समय और परिस्थिति के अनुसार यह परिवर्तन उनके दर्शन में भी होना संभव है। कर्म उनके जीवन का लक्ष्य है। उस कर्मलेप के परिहारार्थ ईश्वर चिंतन, पूरा जीवन ईश्वर भक्ति से भरा हुआ, समर्पित, सृष्टि की सेवा करने के लिये और अन्याय का प्रतिकार करने के लिये निरंतर जाग्रत रहना यही उनका स्वभावविशेष है, कर्मनिष्ठा उनके हर लफ्ज और नजर में भी प्रकट होती थी।

कांच के उस छोटे से टेबल पर हमारा "शाही डिनर" आया। चीनी मिट्टी की दो तीन तश्तरियाँ और तीन चार कटोरियां यह सामान जैसे तैसे उस टेबल पर समाया हुआ था।

बादशाह खान टोमटो और ककड़ी के छिलके बिलकुल बारीकी से निकालने में व्यस्त थे। बातचीत के लिये कुछ विषय निकले या कुछ निकालूँ इस प्रयास में मैं था लेकिन मेरा सारा समय और विचार शक्ति उन्हें समझ लेने में व्यग्र थी। मैं बोल नहीं रहा था इसका ख्याल मुझे काफी देर से रहा था। हवाई जहाज से उतरते ही मेरा स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था, यह भी उसका कारण हो सकता है। मैंने उन्हीं लिखे एक पत्र में उनके कुछ विचारों के विरुद्ध प्रतिपादन किया था। कुछ नेताओं को अपने विचारों पर किये गये आक्षेप अच्छे नहीं लगते हैं। लेकिन यह मेरा मेरे मन का ही विचार था। वे ककड़ी के छिलके निकालने में इतने डूबे हुए थे मानो कोई चित्रकार चित्र में रंग भरने में मस्त हो। गांधी जी भी अपने हाथ से सारी बातें करते समय पूर्ण व्यस्त रहते थे लेकिन अधिक कौतुक नहीं चढ़ाते थे। खाने पीने की सारी चीजें तैयार करके उनके सामने रखी जाती थीं, विनोबा जी या अन्य कुछ आश्रमी नेताओं के व्यवहार में यह कर्मयोग दिखता था

समय की पाबंदी नहीं दिखाई देती। अधिक शरीरश्रम करने वाले बुद्धिमान लोग खुद के दिल बहलाव के लिये वे काम करते होंगे। ककड़ी और टोमटो छीलने में बादशाह खान के ५-१० मिनट गये होंगे और उस समय शायद ही कुछ सवाल जवाब हुये होंगे। उल्टे ककड़ी के और टोमटो के छिलके देखने और ढूँढने में वे व्यग्र दीखे। मैं कुछ बात निकालूँगा ऐसी उनकी अपेक्षा होगी।

बड़े आम जितना करीब २०० ग्राम वजन का टोमटो होगा, ककड़ी उतनी ही याने दो तीन सौ ग्राम, दो टोस्ट और करीब आधा सेर दही उतना रात का भोजन था। ककड़ी और टोमटो बारीक चीर कर दही में डाला। उसमें फिर ५-१० मिनट गये होंगे। मैं उनके सामने था, इसकी याद उन्हें है या नहीं यह भी आशंका मुझे हुई। वे छोटे मोटे काम में ऐसे ही लीन होते हैं। अपने दुखी मन को बहलाने का वह शौक भी हो सकता है। मेरी शंका झूठ भी हो सकती है। मेरे लिये भी उन्होंने ककड़ी टोमटो छीले थे और उन्होंने वे मेरे सामने रखे तब मैं कुछ गड़बड़ा गया।

'कच्ची चीज मैं हजम नहीं कर पाता हूँ।' अपनी कमजोरी की बात से ही चर्चा छेड़ने का अप्रस्तुत काम मुझे करना पड़ा था। लेकिन आखिर कभी भी मेरे अस्वास्थ्य का भंडा फूटनेवाला ही था।

'तो तुम क्या खाओगे ?'—ऐसा कुछ अचरज से उन्होंने पूछा।

'टोस्ट और दूध।'

'दूध नहीं तो ?'

शाही मेहमानदारी में इतनी मितव्ययता होगी इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी। 'कल से सब कुछ मैं खुद कर लूँगा।' ऐसा कुछ मैं जल्दी-जल्दी में कह गया। लेकिन उतने में उन्होंने खुद की कटोरी में से कुछ दही निकाल कर मेरी कटोरी में डाल दिया।

'वह भी मुझसे नहीं चलेगा।'—ऐसा कुछ मैं बुदबुदाया।

'अच्छा तो फल लो।'

'ऐसा कहते कहते हमारा शाही डिनर शुरू हुआ। और पावरोटी के दो टुकड़े, दही में तैयार की हुई वह खीर मिश्रण खतम करने के लिये उन्होंने आधा घंटा लिया। मेरे लिये गनी डब्बे का दूध तैयार कर लाया और मैं भी उनका साथ देते हुए पावरोटी के दो टुकड़े आधे घंटे तक खाता रहा। अंगूर की दो टोकरियाँ पास में पड़ी थीं। किसी ने आम भी भेजे थे।

लेकिन बादशाह खान की खोराक सीमित होती। पहला कोर्स दही-ककड़ी पूरा होने पर मुँह और दाँत धोने के कार्यक्रम के लिये पहले जैसा ही बहुत समय लगा। उसके बाद अफ़ग़ान जिसे अमृत-फल मानते हैं वह खुशबूदार खरबूजा आया। उनके लिये टेबुल पर रखा हुआ टुकड़ा आधा कीलो से अधिक होगा।

'ये तो थोड़ा लोगे न ?'

मुझे लगा कि मेरे खानपान के बारे में वे कुछ परेशान हुए हों।

'हाँ जरूर, यह तो यहाँ की मशहूर चीज है खरबूजा।'

उनके स्पष्ट पुश्तू उचारों का थोड़ा नमूना सुनने को मिला।

गनी भी कद में दोहरे-बदन का नहीं लेकिन गठीले कद का पठान है, वह मेरे लिये और कुछ फल लाया लेकिन वह उन्हें वापस ले जाय ऐसा मैंने धीरे से इशारा किया। उसपर वह भी काफी अस्वस्थ हुआ होगा। मेहमान कुछ खाते ही नहीं इसके लिये वह हाथ हिलाकर अफसोस जाहिर कर रहा था, यह मैं जान गया। हाथ में फलों की तश्तरी लेकर वह बादशाह खान से जोर जोर से बात कर रहा था। उसके प्रत्येक शब्द के शुरुआत में 'ख' कार जोड़ा जाता था ऐसा आभास होता था। उसके शब्दोच्चारण की गति मेल-गाड़ीनुमा थी। बादशाह खान पुश्तू बोलते हैं तो उनके बजाय में बेहद तेजी आती है। पुश्तू की यह विशेषता होगी। खरबूजे की कुछ फांके छिलका निकाल कर उन्होंने मेरे सामने रखीं। फांक की लंबाई एक फुट से अधिक थी। उसकी मिठास शहद में रखी गयी चीज जैसी थी। उसके स्वाद का वर्णन करना मुश्किल था। दही-ककड़ी-टोमैटो पाव के दो टोस्ट और आखिर में वह अमृतफल खरबूजा इतने से मेरा काम निभ गया। मेरे लिये वह बहुत था।

इस दौरान बीच में एक दो मर्तबा अपना विषय शुरू करने का मैंने प्रयत्न किया। सेहत कैसी है, आबो-हवा आदि की बात करते करते 'फिर हिंदुस्तान आनेवाले हैं न ?' ऐसा पूछा। 'मैं आकर क्या करूँगा ? मेरे काम में आप कोई मदद करनेवाले हैं क्या ?'

'आपके काम में—पख्तून लोगों के आंदोलन में अब परदेशी हुए हमलोग क्या सहायता कर सकेंगे ? सरकार भी क्या कर सकेगी ?

जिन्हें शासन चलाना है उन्हें अपने तरीके से सोचना चाहिये। केवल आप सहायता कर सकते हैं। शास्त्री जी ने सारा विचार किया था ऐसा लगता है लेकिन दुर्भाग्य से वे चल बसे, सिर्फ पठानों की मदद करने के लिये

ही नहीं तो अपनी खुद की भलाई के लिये आपको इसका विचार करना चाहिये। 'बेशक तुम जरूर मदद कर सकते हो।' यह आखरी वाक्य उन्होंने बिल्कुल आस्ते लेकिन बल देकर कहा।

पिंजड़े में बंद किया हुआ शेर प्रेक्षकों के शोर गुल से ऊब जाने पर घूमकर गुर्राता हुआ पाँव खींचकर बैठता है और परेशान नजर से इधर उधर देखता रहता है। वैसा ही कुछ वे मेरी ओर देख रहे थे ऐसा लगा। पठानों के काम में ध्यान देने की स्वाभाविक असमर्थता के बारे में मेरे कहने से उन्हें दुख हुआ होगा। गांधी जी के आश्वासन की याद उन्होंने दिलाई ही। लेकिन भारत को खुद की भलाई के लिये भी इस मसले पर ठीक से विचार करने की बुद्धि नहीं होती है इसका उन्हें आश्चर्य होता था। कुछ समय पश्चात् उन्होंने धीमे स्वर में कुछ नरम-गरम आलोचना की।

मेरे दुर्भाग्य ने मेरा पीछा किया था। काबूल में पांव रखते ही मेरी पेट के दर्द की बीमारी फिर से उभड़ आयी। वैसी अवस्था में बादशाह खान से बातचीत करना मुश्किल था। दूसरे दिन उन्होंने इसे जान लिया। गनी से चुपचाप कुछ कहना असंभव था। मेरा मतलब है शब्दों में उसे कहने के बजाय अंगविक्षेपादि गूँगों के सब माध्यमों का इस्तेमाल करने का प्रयत्न मैं कर रहा था। लेकिन उसकी समझ में कुछ भी न आने के कारण वह परेशान होता था।

अबतक मुझे सोया देखकर मेरी नींद न टूटे इस ख्याल से हल्के कदम से वे मेरे कमरे के दरवाजे के पास आये थे। दरवाजे की दरार में से वे देख रहे हैं ऐसा मालूम होते ही मैं उठने लगा, 'तुम बीमार हो, उठो मत, सोते रहो' आदि बोलते हुए वे पलंग के नजदीक की कुर्सी पर बैठ गये। 'आज डाक्टर के पास चलोगे, या डाक्टर को यहाँ बुलाएँ।'

'नहीं, मेरे पास मेरी दवा है। मेरी बीमारी पुरानी है, उसमें फिक्र की कोई बात नहीं है। आप फिक्र न करें।'

'दो दिन से आपकी हालत देख रहा हूँ, आपको तकलीफ में देखकर मैं कैसे शांति से बैठ सकता हूँ!' उनकी मेहमानदारी की नहीं तो सेवावृत्ति की तड़पन उनके शब्दों से प्रतीत हो रही थी। वे खुद के लिये भी डाक्टरों को नहीं बुलाते थे। आम लोगों की तरह खुद ही अस्पताल जाते थे। मेरे करीब बैठकर उन्होंने बहुत आत्मीयता से मेरी बीमारी के बारे में, खान-पान के बारे में पूछताछ की। बोलचाल में कहीं भी औपचारिकता नहीं थी। उल्टे मेरी

व्यवस्था के बारे में उनके चेहरे पर चिंता स्पष्ट दिखाई देती थी। खुद की तकलीफें खुशी से सहनेवाले या अन्यों को उसकी खबर भी न हो ऐसा प्रयत्न करनेवाले कई लोग दूसरों की तकलीफ के कारण दुखी होते हैं। वे दूसरों का दुख नहीं सह सकते हैं। गांधी जी के लिए भी ऐसा ही था, ऐसा लोग कहते हैं।

दि० ३० को पख्तून स्वातंत्र्य दिन शहर में मनाया जानेवाला था। इसलिए उससे संबंधित नेताओं एवं कार्यकर्ताओं का प्रतिनिधि में आना-जाना बढ़ा था। बादशाह खान मेरे कमरे में आकर बैठे थे।

'आप तकलीफ उठा नहीं पायेंगे, आप घर ही रहें।'

'मेरा स्वास्थ्य अब ठीक है, मुझे अपने साथ रहने दीजिये। मैं अब ठीक हूँ।'

'आप आयें, लेकिन बहुत समय लगेगा। भीड़ काफी होगी। पख्तो जनता ने अपनी आजादी घोषित की उस समय से यह स्वातंत्र्य दिन मनाया जाता है। सभा में तकरीर करना, न करना, मैंने कुछ भी तय नहीं किया है।'

'तकरीर न करने से लोग निराश नहीं होंगे?' मैंने पूछा।

'यहाँ की सरकार की नीति स्पष्ट नहीं है। वे पाकिस्तान सरकार को दुखाना नहीं चाहते हैं। मैं यहाँ बैठकर कुछ काम कर सकता तो कुछ उप-योग होता। केवल तकरीरें करके क्या होनेवाला है! मैं तकरीर नहीं करूँगा ऐसा मैंने पंतप्रधान को कह दिया है। वे कल रात यहां आये थे। उस समय मैं आपके कमरे के पास आया था। आपको नींद से जगाया नहीं।'

'समारोह में नहीं बोलूँगा ऐसा आपने क्यों कहा?'

'देखिये, मैं यहाँ उनका मेहमान हूँ। मेरे मुँह से कोई आलोचना हुई तो वह ठीक नहीं होगा। अच्छा, केवल अधूरी बात करने से क्या मतलब! प्राइम मिनिस्टर ने बहुत आग्रह किया है, आप साथ आयें तो चलने की तैयारी कीजिये।'—ऐसा कहकर वे अपने कमरे की ओर बढ़े।

यहाँ की राजकीय परिस्थिति का या राजकारण से मेरा अबतक परिचय नहीं हुआ था। रात में पंतप्रधान आ गये, उनसे मिलने और देखने का आया हुआ मौका फजूल गया, यह बात खटकी। समारोह में क्यों नहीं बोलना चाहते हैं, पंतप्रधान तकरीर करने के लिये क्यों आग्रह करते थे आदि विचार मन में चल रहे थे।

'चलो जोशी जी' उन्होंने मुझे पुकारा। मैं अपने कमरे से बाहर आया तो वे मेरे सामने खड़े थे। हम एक फौजी जीप में बैठे। अपनी आवभगत के लिये रखी हुई सारी बड़ी-बड़ी मोटर गाड़ियाँ उन्होंने वापस लौटायी थीं।

'मैं तकरीर नहीं करूंगा ऐसा संदेश भेजा था, लेकिन मुख्य प्रधान ने मुझसे बोलने के लिये आग्रह किया है। मैं बात नहीं करूंगा तो सरकारी दबाव के कारण मैं नहीं बोलता, ऐसी जनता की गलतफहमी होगी, यही उनकी असली दिक्कत है। यह सरकार पठानों को नाराज करने के लिये तैयार नहीं। अफगान की आबादी में आधा पख्तून है। उन्हें नाराज करने की सरकार की इच्छा नहीं है।' आदि बातें वे धीरे-धीरे करते रहे।

'यह है आपका काबुल दरिया।' रास्ते की बाईं ओर से बहनेवाली सूखी काबूल नदी की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा, दरिया याने नदी-जलप्रवाह। पूने की मुठा नदी की तरह यह नदी शहर से गुजरती है। जगह जगह गड्ढों में पानी भरा था, धोबियों आदि के काम के लिए पर्याप्त पानी था। रास्ते बड़े और सुंदर, दोनों ओर खड़ी इमारतों को देखकर काबुल में हो रहे परिवर्तन का थोड़ा ख्याल हो जाता है। काबूल-दरिया में, पानी भरे हुए गड्ढों पर काम करनेवाली गरीब जनता और उनके कपड़े उनकी गरीबी का दर्शन कराती थी तो नयी तीन मंजिल ऊँचाई की इमारतें और ठाठ के शो-रूम वहाँ पर पड़े पश्चिम के प्रभाव को जाहिर करते थे। रास्ते के दोनों ओर छोटे छोटे जत्थे में जानेवाले लोग पख्तून चौक की ओर जा रहे थे यह उनके द्वारा 'बाछाखान जिंदाबाद' घोषणायें सुनने से मालूम होता था। तीन दिन के बाद में पहले पहल लोगों को और शहर देख रहा था।

पख्तून वाँट (वाट ?) एक भारी आबादी का जहाँ चार-पाँच रास्ते एक जगह आ मिले थे, एक सुंदर चौक है। बीच में स्थित गोलाकार बगीचे के चारों ओर लगाये गये लोहे के कठड़ों पर विभिन्न राष्ट्रों के झंडे लगे हुये थे। उनमें अफगान राष्ट्रध्वज था और उसके दोनों ओर पख्तून झंडा ठाठ से लहरा रहा था। उनमें भारत का झंडा भी लहरा रहा था। हमारी जीप दिखते ही 'स्वतंत्र पख्तून व बाछाखान' के नारों से सारा वातावरण गूँज उठा। साढ़े आठ का समय होगा, करीब पाँच हजार से ऊपर लोग इकट्ठे थे। राष्ट्रध्वज के गोलाकार छोटे बगीचे के इर्दगिर्द भिन्न भिन्न रंगबिरंगी पोशाकों में मर्द नर्तकों के नृत्य बाजे के साथ चालू थे। इन बाजों की धुन

के कारण सारा वातावरण मस्ती भरा था। महाराष्ट्र के लेजिम-ढोल जैसे वे वाद्य थे। मुख्यतः नर्तकों का उत्साह अपूर्व था। दो-तीन सौ से अधिक नर्तकों के जत्थे अपने गाने और घोषणाओं के ठेके पर नाचते हुए वर्तुलाकार घूम रहे थे। आसपास में हजारों प्रेक्षक अनुशासन से वर्तुल कतार में खड़े थे। सामने की एरीयाना होटल की भव्य सुंदर इमारत पर चमकनेवाली किरणें अभी तक सौम्य लगती थीं। जीप रुकते ही उसको प्रेक्षकों ने घेर लिया। मैं कहीं गुम हो जाऊँ तो क्या होगा इसकी चिंता मुझे अबतक नहीं थी, लेकिन वह फिक्र बादशाह खान को थी। मैं उनसे कुछ थोड़े से फासले पर पीछे था। मिलनेवालों को वे गले लगाते थे और हस्तस्पर्श करते थे। 'जोशी जी आप मेरे साथ ही रहिये, यहाँ आओ' ऐसा कहते हुये उन्होंने मुझे अपने पास बुला लिया। उनके पास के वर्तुल में आने पर मेरा ढाढस बंधा। भीड़ काफी थी फिर भी लोग अनुशासन से और अदब से हस्तस्पर्श करते थे। होटल के सामने बीचवाली जगह पर जाकर वे खड़े हुये। मैं उनके पीछे खड़ा था। उनके पास आनेवाले बड़े बड़े नेताओं का अभिवादन, अभिनंदन स्वीकार करने में और शुक्रिया अदा करने में वे व्यस्त थे। शहर के बड़े बड़े नेता, व्यापारी, राजकीय कार्यकर्ता, कवि लेखक ऐसे चुनिन्दे समाजश्रेष्ठ और सामान्य जनता का वह जमघट था। नर्तकों के नाच-गाने पूरे जोश में चल रहे थे।

'देखो, तुम थक जावोगे। तुम बैठे रहो। ऊपर कुर्सी पर बैठो' उन्होंने कहा।

इस पूरी भीड़ में कुछ फासले पर पीछे खड़े हुए मुझको उनकी नजर ने ढूँढ निकाला। उनके पीछे के होटल के प्रशस्त प्रांगण में रंगबिरंगी छोटी छतरियों के नीचे गोलाकार कुर्सियाँ रखी हुई थीं। एक खुदाई खिदमतगार ने मुझे ले जाकर वहाँ बैठाया। उसका पहरावा खादी का था। कुछ सफेद सी गुलाबी खादी के उन कपड़ों ने मेरे सामने कई सवाल खड़े किये। लेकिन वीरभावना जाग्रत करनेवाले उन नृत्यों ने मुझे उस समय आकर्षित किया था। एक सुंदर छाते के नीचे मैं बैठा था। मेरे नजदीक की छतरी के नीचे बैठे हुये लोग शायद विदेशी मुसाफिर थे। वे लोग बादशाह खान से उनके रिवाज के अनुरूप मिलकर उस गोलाकार कतार में जाकर खड़े हो जाते थे। उनमें पाश्चिमात्य पद्धति की वेशभूषा (पोष) और पहरावे की एक-दो महिलायें भी थीं। नर्तकों के नाच जारी थे।

बादशाह खान के सामने की ओर एक तरफ और राष्ट्रध्वज के वर्तुल से करीब सौ फीट फासले पर दूरध्वनिक्षेपक खड़ा था। उस पर एक वक्ता बीच बीच में कुछ वक्तव्य देता था। कुछ नेता बादशाह खान से आ मिले तब तालियाँ गूँज उठीं। ऐसे महान नेताओं में खुद युवराज और पंतप्रधान मेमंदवाल भी थे। दोनों ने बादशाह खान को अत्यंत आदर से प्रणाम किया और वे भी उस वर्तुलाकार कतार में खड़े हुये। इस तरह यह कार्यक्रम वहाँ करीब एक-डेढ़ घंटे चला। प्रतिष्ठितों का आगमन और बादशाह खान को प्रणाम, नर्तकों का घेरे में नाच, विशेषतः वे जब अपने सिर जोर से हचका कर घुमाते थे तब उनके लंबे बाल सिर पर सीधे खड़े होकर फिर गर्दन तक गिर कर घूमने लगते थे। वह नजारा मजेदार और आकर्षक था। उनका ढोल वाद्य वीर घोष करनेवाला लगा। महाराष्ट्र में भी कई जगह इस तरह के ढोलवाद्यों का साज सुनने को मिलता है। करीब दस के अंदाज में काबुल के मेयर ने छोटी सी तकरीर की। उसमें बादशाह की उपस्थिति का जिक्र था। समारोह पूरा हुआ तब मैंने वापस मुकाम जाने का तय किया था। जो श्रम हुआ वह मुझे थकान लाने के लिये पर्याप्त था, लेकिन जीप ढूँढ़ने की फिक्र में था। लोग वापस जाने लगे तब प्रेक्षकों की तादाद और स्वरूप की अधिक ठीक से कल्पना हुई। करीब सात आठ हजार से अधिक लोग होंगे। होटल के दाहिनी ओर की गली के पास सवार घोड़े पर बैठे हुए थे। वे सरकारी सवार न होते हुए देहातों से आये हुए प्रेक्षकगण थे। उनमें महिलायें भी काफी थीं। जिप्सी औरतों जैसी अनेक चोटियाँ और काँच के मणि की मालायें उनका पहरावा था। उनके घोड़े भी बिल्कुल नाटे ही और छोटी कद के थे। फौज और पुलिस के कुछ सवार भी व्यवस्था के लिये इधर उधर खड़े थे, उनके घोड़े भी छोटे कद के और सवार भी नाटे ही थे।

मैं चारों ओर देख रहा था इतने में बादशाह खान मेरा नाम लेकर पुकार रहे हैं इसका खयाल हुआ। उन्होंने एक शख्स से मुझे जीप तक पहुँचाने के लिये कहा। वे नागरिकों से मिलने जुलने में व्यस्त होंगे, ऐसा लगता था। समारोह खत्म हुआ है ऐसा समझ कर मैं वापस जाने के लिये निकला। इतने में भारतीय दूतावास के एक दो लोगों ने यह देखकर रोका कि मैं वापस लौट रहा हूँ।"

ऐसा उनमें से एक ने पूछा और अपना परिचय दिया।

"तो फिर जो देखा वह क्या था?" मैंने पूछा। "यह ट्रेलर हुआ। मुख्य

कार्यक्रम अब गाज़ी स्टेडियम पर है। वहाँ बादशाह खान भाषण करेंगे इसलिये हजारों लोग वहाँ इकट्ठे हुये होंगे।"

"आपको मालूम होगा ही, क्या आज बादशाह खान तकरीर करेंगे ?" दूसरे एक ने अत्यंत उत्सुकता से पूछा।

"हम चलें तो सही। वहीं मुख्य कार्यक्रम है।" हम दो चार वाक्य बोल भी न पाये थे कि मेरे लिये बादशाह खान द्वारा प्रेषित राह बतानेवाला आदमी मुझे जीप तक पहुँचाने के लिये उतावला हुआ। उधर बादशाह खान की पद-यात्रा का जुलूस शुरू हुआ था। नर्तकों के कई जत्थे बढ़ रहे थे। बाजों की आवाज और जयघोष गूँज रहा था। उस जुलूस में शरीक होने के लिये मुझे राह बतानेवाला उतावला था। उन लोगों के लिये वह एक महापर्व रहता है।

एक क्षण के लिये अपनी कमजोरी भूल कर मैं दूतावास के उन मित्रों के साथ उनकी मोटर में बैठा।

'बादशाह खान आज तकरीर करेंगे या नहीं क्या इतना कह सकेंगे ?" बिल्कुल उत्सुकता से फिर से एक ने पूछा।

"मुझे कोई कल्पना नहीं। वे तकरीर करें इसके लिये कुछ अधिकारी उनसे आग्रह करने के लिये आये थे ऐसा सुना है।"

उनमें से एक ने कहा—दैट इज इट, दी बिगेस्ट न्यूज।

कौन आये थे, क्या बातचीत हुई आदि इतने सवाल उन मित्रों ने मुझसे किये कि मुझे महसूस होने लगा कि कहीं मैं अखबारनवीसों के घेरे में तो नहीं हूँ।

"क्या यहाँ रास्ते में कोई अच्छा सा होटल मिल सकेगा ?" सारे सवालों को बगल देकर मैंने छुटकारा पाने का प्रयास किया। दरअसल मुझे दूध की सख्त जरूरत भी थी।

'चलो हम कुछ पीयें। पास में ही आर्याना रेस्टारन्ट है।' एक ने उत्तर दिया। गाड़ी रोकने के लिये एक ने कहा।

'मुझे दूध की जरूरत है। वह मिल सकेगा क्या ?'

'मिल्क, ह्वाट फार ?' वह आश्चर्य से देखता रहा।

'यहाँ इर्दगिर्द में कहीं भी दूध नहीं मिलेगा। स्टेडियम आ ही गया है। वहाँ हम देखेंगे'—एक ने कहा।

'लेकिन बादशाह खान क्या सच में तकरीर करेंगे ?'—दूसरे एक ने मुझे कुछ एक तरफ ले जाकर पूछा।'

'ऐसा कहते कहते हम उस शाही स्टेडियम में परराष्ट्र प्रतिनिधियों के कक्ष की ओर मुड़े। बड़े चौड़े जीने, उसपर टाट की जगह सुंदर गलीचे बिछे हुए, छोटी बड़ी फूल की कुंडियाँ दोनों ओर थी।

पहरेदार को प्रतिनिधियों ने अपनी प्रवेशपत्रिकायें दिखाईं। भारतीय प्रतिनिधि ने मेरे बारे में कुछ जानकारी उसके कान में दी। पहरेदार ने सलाम करके मुझे रास्ता बतलाया। अन्य मित्र अपनी अपनी जगह पर गये। भारतीय संपर्काधिकारी मुझे लेकर अपने स्थान की ओर चले। बीच में मिले हुए एक प्रतिनिधि को जल्दी जल्दी में परिचय करा दिया।

'हैपी टु मीट यू अगेन। यू विल बी हियर फार ए फ्यू डेज मोर टु सी द हिस्टारिकल प्लेसेज'

'प्रोबेब्ली नाट।'

सामनेवाला व्यक्ति कौन है यह समझने के पहले ही मैंने जवाब दे डाला था। संबंधित व्यक्ति पाकिस्तान दूतावास में अधिकारी था। मेरे मित्र सिगरेट पीने के निमित्त कुछ थोड़ी दूर गये।

करीब दो सौ प्रतिनिधियों का समावेश हो सके, इस जैसे कक्ष में ३०–४० परराष्ट्र प्रतिनिधि उपस्थित थे। स्टेडियम रंगबिरंगे कागजी और कपड़े की पताकाओं से सज्जित था। हमारे सामने के अर्धवर्तुलाकार हिस्से में करीब आधे फर्लांग के फासले पर अफगान और पखतून और अन्य राष्ट्रध्वज लहरा रहे थे। वहाँ सुंदर व्यासपीठ खड़ा किया गया था। करीब तीस हजार से ऊपर लोग चारों ओर से खींचातानी करते हुए दूरबीन से मुझे दीखे। परराष्ट्र महकमे के दालान में कुछ पश्चिमी राष्ट्रों के भी प्रतिनिधि सपत्नीक थे। हमारे दाहिनी बाजू कुछ ऊँचे मंच पर राजघराने के व्यक्तियों के आसन थे। उनके दाहिनी ओर का दालान मंत्रिमंडल का था। हम बायीं तरफ के दालान में थे। हम चारों ओर निरीक्षण कर रहे थे। इतने में आजाद 'पख्तूनिस्तान जिंदाबाद', 'बादशाह खान जिंदाबाद' के नारे दूर से सुनाई पड़ रहे थे।

बारह का समय रहा होगा। करीब एक घंटे से यह जुलूस धूप में पैदल चल रहा था। लोगों का उत्साह अपूर्व था। गाँव गाँव से ऊँटों, घोड़ों पर आये स्त्री पुरुषों की कतार आते हम देख रहे थे। गाजी मैदान पर जुलूस आया तब जयघोष हमें कुछ कुछ सुनाई देने लगे। हमारा छज्जा करीब बीस फीट ऊँचाई पर था। बादशाह खान और उनके साथ के कुछ लोग उस

मैदान की परिक्रमा पूरी कर सामने के व्यासपीठ पर जा बैठे। केवल आँखों से उनकी आकृति ठीक से पहचानना मुश्किल था। लोग उनके हाथ के स्पर्श का लाभ हो इसके लिये कोशिश कर रहे थे।

यहाँ भी मेयर की छोटी सी तकरीर से कार्यक्रम शुरू हुआ। उसके बाद तरह तरह के खेलों का कार्यक्रम शुरू हुआ। अपनी कमजोरी की वजह से मुझमें अधिक देर तक टिके रहने की क्षमता नहीं थी। साथ ही बादशाह खान तकरीर करेंगे या नहीं इसकी ठीक से कल्पना भी नहीं थी। इसलिये वापस लौटने के लिये मैं मौका देख रहा था। एक कोने से श्रोताओं ने भी उनके भाषण के लिये नारे लगाये, ऐसा लगा। लोगों का जोश असीम था ऐसा दूर से बीच बीच में कान पर पड़नेवाले नारों से लगता था। और अंत में तालियाँ और जयजयकार की गूँज में बादशाह खान तकरीर देने के लिये उठ खड़े हुए। इस कारण वापस आने के लिये उठा हुआ मैं फिर बैठ गया। क्षणार्ध में चारों ओर सन्नाटा फैल गया। उनकी वह तकरीर करीब पचास मिनट चली। उस दौरान कैमरे लगातार चलते रहे। दूर-ध्वनिक्षेपक की वजह से उनका पूरा भाषण सब को सुनाई देता था। तालियों और नारों की गूँज बीच बीच में सुनाई देती थी। लोगों की खुशी का पार नहीं है इससे इतना मैं समझ सकता था इससे अधिक कुछ भी मैं उनके उपाख्यान में नहीं समझ पाया। लेकिन भारत का जिक्र होते ही मेरे एक मित्र ने जल्दीजल्दी उसका सारांश बताया। लेकिन वह मित्र तकरीर सुनने में लगा था यह सारांश खुद बादशाह खान ने रात घर पहुँचने पर मुझसे कहा। सारे दिन याने करीब १०–१२ घंटे वे बाहर जुलूस में व्याख्यान देने में या खाना लेने के लिये लगातार खड़े ही थे। रात ६ बजे वे घर पर भोजन के समय मिले। वे खूब थक गये थे। फिर भी फुरतीले और उत्साही दिखायी दिये। लोकप्रेम की अमृत वर्षा के कारण वे दस साल से नौजवान हुए हो, ऐसा लगा।

गाजी मैदान पर की हुई उस तकरीर में उन्होने कहा, 'पठान अब जग गये हैं। उनकी जाति जमातों में एकता बढ़ रही है। इतने दिन आपसी झगड़ों के कारण हममें फूट थी। अब हमारी खाली डोल पानी से भरी हुई है। वह ऊपर आकर हमारी प्यास जरूर बुझायेगा।

'आज जिसे मजहब कहा जाता है, वह मजहब नहीं, वह भगवान का नहीं, प्रोफेट द्वारा कहा हुआ नहीं। वह पूँजीपतियों का है, महंमद साहब

आये, वह नया महजब ले आये। उन्होंने हमें नया जीवन दिया। जिनकी बाजुओं से और जबान से दूसरे को कभी तकलीफ नहीं होती, दुख नहीं पहुँचता वह मुसलमान है, जो दूसरे को स्वास्थ्य और आराम देता है वह मुसलमान है...मुल्क पर प्रेम करना ही सच्चा मजहब है। 'हुबुल वतन मिन्नुल इमान' 'भाइयों, मैं जो हिंदू बनता हूँ (हिंदुस्तान के प्रति सद्भाव रखता हूँ) वह इसी देशप्रेम के कारण। देश और जाति के प्रेम से। इसी तरह ईश्वर द्वारा बनाई हुई सृष्टि की सेवा करने के लिये। पाकिस्तान का मजहब देखो। वहाँ क्या हो रहा है? इस्लाम के नाम से ढिंढोरा पीटा जाता है लेकिन प्रत्यक्ष क्या होता है? पाकिस्तानी भाइयों ने बाजौर के पठानों पर कई मर्तबा बम बरसाये थे वे किसलिये? उन्होंने क्या पाप किया था? क्या स्त्रियाँ, बच्चे, बूढ़ों पर बम बरसाना, यही इस्लाम की सेवा है! वैसे ही बलूचिस्तान पर गोले फेंके जाते हैं वे किसलिये? उन्होंने क्या पाप किया?

'भारत पाक युद्ध के समय मुझसे पाकिस्तान एम्बसी के लोग आकर मिले थे। 'आप भारत जा रहे हैं, ऐसा सुनते हैं' ऐसा उन्होंने कहा। मैंने उनसे कहा, मैं यहाँ हूँ। यह आप देख ही रहे हैं न? आप मेरे भाई हैं। मैं आप के लिये यहाँ हूँ। लेकिन आप मुझे भाई नहीं मानते हैं और पठानों के अधिकार उन्हें नहीं देते हैं। तो मैं यहाँ कितने दिन रहूँगा। मैं हिंदुस्तान नहीं जा रहा हूँ पर आप मुझे उधर ढकेल रहे हैं। आज इस्लाम का नाम सिर्फ गरीबों को फँसाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। हम पठान, बहाव में तैरते बह रहे हैं। हम डूबते डूबते बहते चले हैं। इस्लामी भाई सहायता नहीं करते हैं, हिंदुओं ने सहायता का हाथ बढ़ाया तो मैं उनसे मदद लूँ या न लूँ?' आप ही कहें।

और चारों ओर से तालियों की गड़गड़ाहट हुई। 'ले लो—ले लो' ऐसे नारे गूँज उठे। कुछ क्षण के लिये उनका व्याख्यान रुका। भारत मदद करे तो वह जरूर ली जाय, यह जनता की इजाजत उन्होंने इतने खुले आम और इतनी खूबी से हासिल की थी। हमारे पीछे दो तीन कतारें छोड़ कर बैठा हुआ एक पश्चिमी कुटुंब हाथ की सिगरेट फेंक जोर जोर से तालियाँ बजाता था और वे जोर जोर से हँस रहा था।

'मुझे पख्तूनों को बचाना है। मैं किसी की भी मदद लेना चाहता हूँ। अमेरिका मदद नहीं करता है, रूस पूछताछ नहीं करता है। अफगान भी

मदद नहीं देता। फिर मैं यहाँ कितने दिन बैठा रहूँ? १८ साल बन्नू देखो, यहाँ भी दो साल होने को आये। अब इससे अधिक समय रुकना संभव नहीं है। मेरा रास्ता अहिंसा का ही है। पाकिस्तानी भाइयों से मैं कहना चाहता हूँ कि यह मसला दोस्ती के जरिये ही मैं हल करना चाहता हूँ। दुनिया में अमन कायम रहे ऐसा लगता हो तो अमेरिका, रूस को भी इसका विचार करना चाहिये और पठान भाइयों के लिये भी मैं यही कहूँगा कि उन्हें आपसी लड़ाई झगड़ा बंद करना चाहिये। हम देश प्रेम से और एकता से रहेंगे तो हमारा यह मसला बगैर लड़े हल हो सकेगा।

'हम संगठित होंगे लेकिन फिर भी पाकिस्तान ने हमें हमारे हक नहीं बख्शे तो क्या किया जाय?' इस तरह का सवाल एक श्रोता ने किया। 'फिर आपको जो मुनासिब लगे, वैसा करें। तबतक आपको शांति और अनुशासन से चलना होगा।'

व्याख्यान पूरा हुआ तब लोगों का उत्साह असीम था। तालियों की गड़गड़ाहट और नारे बहुत समय तक चलते रहे। व्यासपीठ पर होनेवाली हलचल का निरीक्षण करने में हमारे कक्ष के लोग व्यस्त थे। करीब डेढ़ बजे मैं बड़ी अनिच्छा से वहाँ से लौटा। गाड़ियों की कतार से जीप बाहर निकालने में ही हमारा काफी समय चला गया। दोपहर डेढ़ का समय होते हुये भी हवा की ठंडक आह्लाददायक थी। स्टेडियम की ओर आनेवालों की भीड़ अभी तक दोनों ओर दीख रही थी। ईद के नये कपड़े हरेक के शरीर पर थे। फल बजार की ओर बेचने के लिये जा रही अंगूर की टोकरियाँ ढोनेवाले गधों की कतार के पीछे कतार, बीच बीच में दिखाई देती थी। अंगूर और खरबूजे का मौसम हाल ही में शुरू हुआ था। उनके बहुत से ढेर रास्ते पर बेचने के लिये लगाये गये थे। गधे और उन्हें चलाने वाले उनके मालिक काश्तकारों से गधे अधिक सुदृढ़ दिखाई देते थे। उनकी दीनता की पहचान करा देने वाले कपड़े उनके (गधों के) शरीर पर नहीं थे यह उनका भाग्य ही मानना होगा। इस कारण वे सुखी होंगे ऐसा मानना पड़ेगा। लेकिन गधों के मालिकों के तन पर जो कपड़े थे वे दुनिया भर की दरिद्रता की निशानी थे। महिलाओं का बुर्के का कपड़ा भी कई जगह फटा हुआ होने के कारण बुर्के का रिवाज नष्ट करने में मदद हो रही थी। हमारे ड्रायवर ने बेहद तेज रफ्तार से गाड़ी निकाल कर मुझे अतिथिगृह पहुँचाया। गाजी मैदान पहुँचने के लिये वह उतावला रहा होगा।

रात ६ बजे के अंदाज वे वापस आये। मैं बगीचे में घूम रहा था, उनकी ही राह देख रहा था। 'तुम अभी तक बाहर हो, यहाँ ठंड है।'

'इंतजार कर रहा था, सुबह से आप घूम फिर ही रहे हैं।'

'चलो, खाना नहीं लिया ?' हमेशा की अपेक्षा अधिक तेजी से कदम बढ़ाते हुये सीढ़ियाँ चढ़े। कमरे में पहुँचते ही उन्होंने जल्दी जल्दी में रेडियो शुरू किया। उनका ही दोपहर का भाषण सुनाई दे रहा था। रोज की तरह हाथ पाँव धोया, मुँह पर कई मर्तबा पानी फेर कर उसे पोंछना आदि कार्यक्रम आहिस्ते आहिस्ते चल रहे थे। भाषण के दौरान हुई तालियों की गड़गड़ाहट, जनता के नारे आदि सब ध्यान से वे सुन रहे थे। रेडियो में यह सब चालू था और साथ साथ हमारा भोजन भी चालू था। टोमैटो, ककड़ी, टोस्ट और दही यही पकवान था। वही काम, वही धीमापन, वहाँ कसदार सब्जियाँ बहुतायत में उपलब्ध थीं फिर भी वे उनका उपयोग न करते हों ऐसा दीखा, खुद के भोजन के लिए कुछ कहकर बनवा लेना उन्हें पसंद नहीं। गनी से कहकर मैंने फ्लावर, आलू आदि कुछ सब्जी बनवाई थी। वह आज नई थी। वह उन्हें विशेष रूप से भायी, ऐसा लगा। उसके बाद रोजाना कुछ शाक सब्जी तैयार करने के लिये उन्होंने गनी से कहा। कदाचित् यह सिर्फ मेरे लिये हो। लेकिन शाक सब्जी ज्यादा परिमाण में लेनी चाहिये ऐसा उन्होंने ही गनी से कहा था। बोलते समय कई मर्तबा वे नजर भिड़ाकर और गुस्से से बोल रहे हैं ऐसा लगता था। सुनने वाले को अपने कहने का मतलब तुरंत ध्यान में न आने के बारे में उनकी प्रतिक्रिया उनकी नजर में दिखाई देती है। वे बीच बीच में बातें करते रहे लेकिन उनका सारा ध्यान रेडियो पर हो रहे अपने भाषण की ओर था। 'डोल माने....' मैंने पूछा।

'खेती के लिये पानी खींचने का मटका होता है। पवनचक्की पर भी डब्बे रहते हैं।' आदि समझाते वक्त वे बहुत खुश दीखते थे।

'हमारा डोल अभी भर गया इसका अर्थ ?' मैंने फिर से पूछा।

-जरूर भरा है। हम इतने दिन दबे हुए दुर्लक्षित रहे लेकिन अब पठान संगठित हो रहे हैं। वे कुचले गये हैं लेकिन उनकी ताकत बहुत बढ़ी है। अब उनकी कामयाबी का समय पास आया है। जो श्रीमान् (गेब) से बर्ताव करते हैं वे ईश्वर की प्रार्थना (निमाज) करते हैं। अपनी कमाई का निश्चित हिस्सा सृष्टि की (खुदा के मखलूख की) सेवा करने के लिये निकाल रखते

है ऐसे लोगों को कामयाबी मिलनी ही चाहिये। मुहंमद, ईसा, कृष्ण भगवान पर भरोसा रखनेवालों की फतह होकर रहनी चाहिये।

'उनकी कामयाबी होकर ही रहेगी' यह वाक्य वे पूरे विश्वास और श्रद्धा से बोल रहे थे। गांधी जी की ईश्वर के प्रति श्रद्धा के कई पहलू जैसे के वैसे उनकी निष्ठा में दिखाई देते थे।

अलिफलाम मीम, जालिकल किताबो,
लारे वा फी हि, हुदद्दाहिल मुत्तकीन इज्जीन,
यु मन् नापिर गैब, वद्य किमून सरगता,
वमिंमा रजक नाहुम, युने फिक्न।

यह चरण उन्होंने आहिस्ते सुनाये। हाथ धोकर खरबूजा छीलने का काम शुरू करने के पहले मैंने सुबह से जेब में रखी हुई सूत की गुंडियाँ खोलकर उनके गले में पहनाई।

'ऐसी बातों की आपको भी जरूरत लगती है? इन गुंडियों का मैं क्या करूँ? मैं अब न सूत कातता हूँ न बुनता हूँ।'

'मेरे साथ के एक कार्यकर्ता ने अपनी गुंडी आपके लिये भेजी है। वे उमर में आपसे बड़े हैं। अब ९४ उमर के हैं। अब तक वे रोजाना सूत कातते थे।'

'क्या नाम"?

'हरिभाऊ पाठक, उनके सूत की यह गुंडी है। उनके स्वास्थ्य के अनुरूप यह गुंडी आड़ी मोटी है। मैं कभी क्वचित् कातता हूँ।' उन्होंने वे गुंडियाँ गले में रहने दीं।

'गांधी जी को याद करनेवाले कितने लोग हैं? राजकारण के लिये उनके नाम का उपयोग सभी करते हैं। उनका काम अर्थात् गरीबों की सेवा कौन करता है? विनोबा कर रहे हैं इतना सच है। केवल उनका अखबार ही मैं अक्सर पढ़ता हूँ। यहाँ अखबार ही नहीं हैं। जो हैं वे सिर्फ सरकार के। मैं कोई भी अखबार नहीं पढ़ता। विनोबा एक मर्तबा कहते थे कि लोकमत के अनुसार पखतून का मसला हल किया जाय। हम लोकमत के अनुसार ही करो ऐसा कहते हैं। क्या पाकिस्तान की राय माने केवल नेताओं की और अधिकारियों की राय हो सकती है? फ्रंटियर प्रांत, बलोचिस्तान, सिंध ये सारे सरकार के खिलाफ हैं, पंजाब की जनता भी खिलाफ है। फिर लोकमत कौन सा? वे सारे 'पखतून' का समर्थन करते

वाले हैं। यह लोकमत ठुकरा कर पाकिस्तान के सत्ताधीश जबर्दस्ती करते हैं। फिर हम लोगों को क्या करना चाहिये। लोकमत के अनुसार हम चल रहे हैं और सरकार भी वैसा करे ऐसी हमारी माँग है। भारत को अपना कर्तव्य समझ कर पठानों का साथ देना चाहिये था। आपकी भलाई की भी वही राह है यह भी आपको जानना चाहिये था।'

'लेकिन विभाजन के पश्चात् यह मसला अंतरराष्ट्रीय हो गया है, अमेरिका की नीति साफ है।

'ठीक है, ताकत हो तो अंतरराष्ट्रीय दिक्कतें ध्यान में नहीं आती है और भारत भी यदि धीरज से इंसाफ के समर्थन में खड़ा रहा तो अमेरिका भी भारत का कहना ही मान्य करेगा। चीन कमजोर था तो भी कोरिया के हक में धीरज से खड़ा हुआ। आपके निश्चय की आवश्यकता है। आपका कोई भी निश्चय न होने से संसार में आपके ताकतवर दोस्त भी धीरे धीरे अलग हो जायेंगे।'

उस दिन वे बहुत थके थे इसलिये मैं जल्दी उठा। उलटे मुझे ही जल्द सो जाने की सूचना उन्होंने दी। न जाने वे कहाँ इतनी देर बैठे थे। रेडियो ही उनका संसार से संबंध रखनेवाला साधन और उनके एकाकी जीवन में निरंतर साथ देनेवाला उनका मित्र जैसा मालूम हुआ।

दो तीन दिन में उनसे काफी बातचीत कर सका, मुख्यतः चरित्र-विषयक थोड़ी जानकारी प्राप्त करने में कुछ सफल भी हुआ। लेकिन मेरे स्वास्थ्य की चिंता उन्हें न हो इसलिये मैंने जल्द लौटने की सोचा। लेकिन यह उनसे कहने के लिये मन तैयार नहीं था, उनकी प्रेमभरी मेहमानी और निरंतर चर्चा करने की उनकी तैयारी के कारण उनका सहवास छोड़ना कैसे अच्छा लग सकता है। लेकिन मैंने ऐसा निश्चय किया और उनके ऊपरी मंजिलवाले कमरे में गया। वे सोने के लिये रात को ऊपर की मंजिल पर जाते थे और सुबह घूमने के लिये नीचे उतरते थे और सारे दिन करीब करीब नीचे ही रहते थे।

'आओ, चाय लिया ?'

वे कॉफी पी रहे थे। सुबह के नास्ते के लिये दो कच्चे अंडे, पावरोटी का एक टुकड़ा और काफी की छोटी किटली, ये चीजें टेबल पर थीं, उनके साथ मुझे भी थोड़ी सी काफी लेनी पड़ी, वे खुद के आहार का कुछ कम ख्याल करते हैं ऐसा दीखता है। खाने न खाने का कोई आडंबर नहीं

था। मेरे लिये ही जो शाक रोजाना तैयार होता था, कम से कम वह वे रोजाना लेते थे।

'मैं जाने का इरादा कर रहा हूँ।'

'क्यों? तुम तो जलालाबाद भी आनेवाले थे! वहाँ तबीयत ठीक रहेगी, उधर चलो, कभी भी चले जायेंगे।'

जलालाबाद बहुत गरम प्रदेश है। वह उनकी सेहत के लिये भी अच्छा था। उस हिस्से में कार्यकर्ताओं के लिये एक केंद्र शुरू करने की उनकी इच्छा भी है।

'हमारे काम में सहायता देने के बारे में आप बात करते थे, उधर भी होते आइये।'

'मैं चाहता तो बहुत हूँ, लेकिन संभव हुआ तो आऊँगा। वहाँ कौन सा काम शुरू करनेवाले हैं?'

'यह सरकार पर अवलंबित है। उन्होंने सहूलियत की जगह दी तो लोगों की सेवा का काम शुरू किया जा सकेगा। 'खुदाई खिदमतगार' संगठन का हमारा ढाँचा पुराना ही है। चाहते हो तो कहीं भी काम किया जा सकता है।'

'लेकिन उससे पख्तून का मसला कैसे हल होगा?'

'सेवा से अपनी ताकत बढ़ती है और ताकत बढ़ने पर सारे सवाल आसान हो जाते हैं।'

"पाकिस्तान की ताकत से लोहा लेना है और उसके पीछे…"

"हम मुद्दत से झगड़ रहे हैं। ताकत से सारे मसले हल थोड़े ही होते हैं?"

थोड़ा डर डर के मैं बात कर रहा था।

"आप डर से पेश आयेंगे या झुके रहेंगे तो भी अपकी दिक्कत कम नहीं होने वाली है, उल्टे वह बढ़ती ही रहेगी। मकान के पास गंदगी हो, पाप बढ़ता हो फिर भी आप शांति से परिवार चला सकेंगे यह मान्यता भ्रामक है। आप लोग भगवान कृष्ण जी का उपदेश भूल गये हैं। पाप का नाश करना ही चाहिये, यही आपका कर्त्तव्य होता है। वह टाला नहीं जा सकता, कर्त्तव्य करना ही चाहिये।"

कुरान का जिक्र जिस सफाई से वे बीच बीच में करते थे उसी श्रद्धा से गीता का भी जिक्र किया करते थे।

पूरब के सूर्य की किरणें उनकी पीठ पर पड़ रही थीं। साफ उजाले के कारण उनके चेहरे की सारी झुर्रियाँ गिनी जा सकें इतनी स्पष्ट दिखाई देती थीं। धुंधले (भस्मी) रंग के कपड़े का पठानी पैजामा और उसी रंग का आस्तीन में दो गुढ़ियों वाला शर्ट, इतना ही उनका पहरावा है। कभी कभी बदन पर अंगोछा रहता है और उसे भी बिल्कुल वैदिक की तरह गले में लपेट लेते हैं। कभी कभी सफेद छोटी टोपी जैसी पारसी लोग पहनते हैं, वह सिर्फ आधा सिर ढांकती है। उनके शर्ट की बायीं भुजा पर काला सा चिचें जितना धब्बा दो दिन पहले देखा था। आज फिर वही शर्ट थी। कपड़े को लोहा करते नहीं है, या करवाते नहीं हैं। स्वतंत्र धोबी की वहाँ व्यवस्था थी, लेकिन अपने धोबी का काम ये खुद ही प्रातः स्नान के समय थोड़ा बहुत कर लेते होंगे, ऐसा मालूम पड़ता था।

"सीमाप्रांत के लोग फिर से सचेत होंगे ? यहाँ से वहाँ के काम पर कैसे असर पड़ सकता है ?" मैंने पूछा।

"वहाँ के लोगों पर बहुत अत्याचार हुए हैं। पंद्रह साल उन पर जुल्म ढाया गया है। लेकिन वे कुचले नहीं जायेंगे। उन्हें कोई भी बरबाद नहीं कर सकता है। हाल में उत्तमंजई में कुछ सभायें हुईं ऐसी खबरें मिली हैं। लोग हजारों की तादात में उपस्थित थे इसका अर्थ है उन्हें कोई डरा धमका नहीं सका। हथियारों की ताकत के सामने वे हमेशा टिके हुए नहीं रह सकते हैं, यह सच है। लेकिन सरकार हथियारों के बल पर कितने दिन शासन कर सकेगी ? और पठानों के पीछे नीति और महजब की ताकत है। दुनिया को इस पर जरूर गौर करना होगा। यह भारत का काम है लेकिन भारत ने वह नहीं किया। भारत ने पठानों के विश्वास की रक्षा नहीं की लेकिन पठान आज भी भारत की ओर दोस्ती के नाते ही देखते हैं। पठानों पर हर तरह के पाशविक अत्याचार होने लगे तो उस समय उनके पीछे नैतिक ताकत खड़ी करना भारत के लिये संभव है। भारत सिर्फ निश्चय करता तो रूस और अन्य कुछ राष्ट्र जो हम से दूर गये वे न जाते। और भारत की नीति पक्की होती तो अमेरिका भी हमारे पक्ष में झुका हुआ दिखाई देता। आपकी खुद की दृढ़ता पर दुनिया की नजर रहती है।"

बिल्कुल आस्ते लेकिन भाव पूर्ण तरीके से वे बोल रहे थे। उनका नाश्ता पूरा होने में इस कारण देरी हुई।

"तुम आज बाहर जाने वाले हो न ? गाड़ी चाहिये तो ले जाना।"

थोड़े ही समय में भारतीय दूतावास की ओर से एक अधिकारी और गाड़ी आई। मुझे पोस्ट आफिस जाना था। आस पास के कुछ स्थान देखूँ, कम से कम थोड़ा बजार देखूँ, ऐसा इस मित्र ने आग्रह किया। भारतीय दूतावास के संबंध में सर्वत्र सुनाई देने वाली शिकायतों के विपरीत वहाँ का अनुभव हुआ। खुद जनरल थापर आस्था रखने वाले और कार्यदक्ष दीखे। मैं बीमार हूँ इतना मालूम होते ही, क्या भारतीय डाक्टर को भेजूँ इस तरह दो मर्तबा पूछ ताछ की। उनसे मैंने साभार इन्कार किया था। बादशाह खान के स्थान का ही यह महत्व हो सकता है। समय पर मुझे दूतावास के मित्रों की ओर पर्याप्त सहायता मिली थी, इसका उल्लेख करना जरूरी है।

पोस्ट आफिस पहुँचने पर टिकिट कार्ड नहीं है ऐसा मालूम हुआ। रास्ते में नंगधड़ंग लेकिन सुंदर चेहरे के सुदृढ़ बच्चे देखे। मोटर के पास खड़े रहकर गाड़ी संभालने के लिये "बक्शीस" मागने वाले कुछ लोग मिले, लेकिन भिखमंगा कहीं नहीं मिला। बाबर दर्गाह के पास भिखारी होंगे, ऐसा लगता है। लेकिन साधारणतया बंबई या दिल्ली में दिखाई देने वाले भिखारी या मरीजों का दयनीय प्रदर्शन यहाँ नहीं था।

जानकारी महकमे के दफ्तर के प्रकाशन देखने हेतु मैं उधर गया। वहाँ के एक अधिकारी से परिचय करा कर मेरे मित्र कुछ समय के लिये दूसरी जगह काम से गये। इस अधिकारी के शरीर पर भी खादी के ठीक से कपड़े देख कर मुझे विस्मय हुआ और धन्यता भी। बादशाह खान की सेवा की वह धुंधली सी निशानी थी।

'आप आये ऐसा था। कुछ दिन रहेंगे न ?' उन्होंने पूछा। 'इच्छा तो खूब थी लेकिन कोई चारा नहीं। कल वापस जा रहा हूँ।' मैंने कहा।

'आप रहेंगे तो बाछा खान भी यहाँ कुछ अधिक दिन रहेंगे। नहीं तो वे तुरंत जलालाबाद जायेंगे। आप मिले, यह उनको अच्छा लगा। उन्होंने भारत के लिये कितनी तकलीफ झेली है, लेकिन...' वह अधिकारी बिल्कुल भावावेश में बात कर रहा था। उसकी उमर पचास के आसपास होगी।

'लेकिन क्या ? भारत उनकी सेवाओं को महसूस कर उनको याद करता है। हम उन्हें गांधी जी की तरह मानते हैं।'

'हम पठानों को अब आपका कम यकीन आने लगा है। माफ कीजिये, कुछ विशेष परिचय न होते हुए मैं बात कर रहा हूँ। लेकिन हमें खुले दिल से बातें करनी चाहिये। अपना यह मातृदेश छोड़कर स्वतंत्र भारत के अभिमान से, गांधी—नेहरू जी की निष्ठा से पागल होकर मैं भारत में गुजर—बसर करने के लिये गया था। वहाँ आठ साल नौकरी की और अंत में निराश होकर वापस आया। हम आज भी भारत की ओर आशा से, आत्मीयता से देखते हैं। लेकिन भारत हमें भूल गया है।'

'इस अपरिचित मित्र का हर लफ्ज मेरे अंतःकरण को हिला रहा था। उसकी आलोचना, आलोचना नहीं थी, वह आत्मसंशोधन के लिये प्रेरणा थी। वह अपरिचित हो फिर भी उसके पहरावे ने हमारे भाई बंदी की निशानी पेश की थी। इसलिये उसकी आलोचना से क्रोध आना संभव नहीं था।

'आपका दर्द मैं समझ सकता हूँ, लेकिन भारत पठानों के लिये क्या कर सकता है ? उसे युद्ध ही करना चाहिये।'

'और आपकी जान पर आने पर आप वह करते भी हैं। मेरे जैसे का भी भारत की नीति के बारे में कुछ कम यकीन होने लगा है।'

उसका इशारा पाकयुद्ध और गोवा-आक्रमण पर था ऐसा लगा। लेकिन उसकी वेदना जितनी तीव्र थी उतनी ही उसमें भारत के प्रति गहरी मुहब्बत भी थी। वह भारत प्रेम स्वातंत्र्यनिष्ठा और आध्यात्मिक एकता की ही थी। नेहरू के नेतृत्व पर उनकी बहुत श्रद्धा थी और अपेक्षा भी। हम चाय लेते थे इतने में वहाँ दूसरे एक परराष्ट्र महकमे का अधिकारी आया। उससे उसने मेरा परिचय करा दिया।

'कल की तकरीर आपने सुनी ?' नवागत ने पूछा।

'जरूर' थोड़ा रुककर मैंने जवाब दिया। 'न समझते हुए भी बहुत जाना जा सकता है।'

'हम भी पुश्तू थोड़े ही ठीक समझ पाते हैं ? कुछ समझते हैं। खान स्पष्ट बोले, लेकिन वे कुछ नाराज दीखते हैं ?' उसने फिर सवाल किया। अंतर-राष्ट्रीय वकीलात के छोटे-बड़े लोगों से बात करना मुश्किल होता है। हमेशा कृत्रिम वातावरण में रहना पड़ता है और बोलना पड़ता है यह मैं कुछ कुछ समझने लगा था।

'मुझसे उनकी नाराजी का क्या सरोकार ? मै उनका मेहमान हूँ।' मैंने जवाब दिया।

'आपसे नहीं, यहाँ की परिस्थिति के बारे में वे नाराज हैं ?' 'ऐसा, क्या उनकी तकरीर से नहीं लगा ?'

'उनका भाषण समझने पर वह दूसरा हिस्सा मुझे समझाई देगा।' मेरे जवाब से ये गृहस्थ कुछ नाराज जरूर हुए।

'मान लीजिये वे नाराज हुए तो भी क्या कर सकते हैं ! वे अब बुझे हुए अंगार की तरह हैं। उनकी नाराजगी की परवाह किसे और क्यों हो ?' —मैंने सवाल किया।

'नो, नो, ही इज नाइदर ए स्पेंट अप फोर्स नार ए स्लीपिंग वालकैनो, नेशन कंसर्ड नो दैट एनीमोमेंट ही कैन क्रियेट प्राब्लम्स फार देम, इफ ही विल्ड।'

(नहीं, नहीं, न तो वे शक्तिशेष हैं और न सुप्त ज्वालामुखी। संबद्ध राष्ट्र यह जानते हैं कि किसी भी क्षण यदि वे चाहें तो उनके लिए समस्या खड़ी कर सकते हैं।)

कुछ जल्दी से उसने हमसे रुखसत ली। मेरे मित्र भी आये और मैं उस खादीधारी पठान से बिल्कुल स्नेहभाव से मैंने शुक्रिया अदा की। कई मुलाकातों में जो मुझे नहीं मिल पाता था वह उसने उस दस मिनट की चर्चा में दिया। अन्य परराष्ट्र महकमे के लोग भी बादशाह खान का कहना कितने गौर से सुनते हैं, यह भी अनुभव हुआ। अर्थात् उसमें से सच कौन सा और झूठ कौन सा यह आजमाना आसान नहीं है। वह एक मायानगरी रहती है। तीन–चार दिन पहले बादशाह खान से कैसे बोलूँ, उनसे जानकारी कैसे हासिल करूँ आदि चिंता से मैं घबड़ाया हुआ था। लेकिन पाँच छः दिन के संपर्क के बाद परायापन और औपचारिकता की दीवालें टूट गयी थीं। बहुत आदर होते हुए भी कुछ बहुत बड़े नेताओं से खुलकर बातें करना, मिलना-जुलना हो सकता है। बादशाह खान उन्हीं में से एक हैं। अनन्नास जैसे बाहर से ऊबड़-खाबड़ शुरू में मालूम पड़ते हैं लेकिन थोड़े सहवास के बाद ऊपर के छिलके गिर पड़ते हैं तो सच्चे प्रेम भरे खुदाई खिदमतगार का हृदय प्रतीत होता है। राजकारण में रहनेवाले लोगों से वे इतने जल्द घुलमिल कर बर्ताव नहीं करते होंगे। भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों से संपर्क रखना पड़ता है। आवश्यक सावधानी बरतना अनिवार्य होता है। लेकिन सर्व सामान्य जनता या कार्यकर्ताओं के साथ वे बिल्कुल खुले मन से बात करते हैं। दुखी कार्यकर्ताओं को देख उनका प्रेम फूट निकलता है।

जिस बाजोर के खान का अवसान पाकिस्तान की गोलाबारी से हुआ था, ऐसा सुना है, उनके दो बच्चे अंगूर की टोकरियाँ लेकर उनसे मिलने के लिये आये थे। उन दोनों को अपनी गोद में उठाते समय उनके दिल को जो क्लेश हुये उसके कारण उनके चेहरे पर तूफान दिखाई देता था। उनको उन्होंने माँ की ममता से सहलाया, अपने पास बैठाकर उनसे काफी समय तक बातचीत करते रहे। पुराने कार्यकर्ताओं की माँ-बहनें उनके पास आया करती थीं। उनके संतोष के लिये काफी समय वे उनके सुखदुख में एकरूप हो जाते थे, बोलते रहते थे और केवल मिलने के लिये आये हुए लोगों से भी वे घंटों तक बात करते रहते हैं। कई मर्तबा निरुपयोगी बातें करनेवाले लोग भी आते हैं तब वे कुछ भी बातचीत न करते हुए उनके सामने शांत बैठे रहते हैं। लेकिन जल्दी-जल्दी में उनसे विदा नहीं लेते।

'वैसा किया तो पठान अपना अपमान समझते हैं। उनके संतोष के लिये ऐसा समय बिताता हूँ।' ऐसा स्पष्टीकरण उन्होंने मेरे एक सवाल के उत्तर में दिया था। दो दिन के परिचय में ही मैं उनसे बहुत घुलमिल कर रहने लगा था। वे किसी से भी कोई उपहार स्वीकार नहीं करते हैं। मैं आते समय कुछ उपयुक्त चीजें साथ ले आया था। उनमें एक स्वेटर भी तैयार करवाया था। उनकी बीमारी को मद्देनजर रखते हुए वैद्यों की सलाह से अच्छा मोरब्बा, च्यवनप्राश आदि कुछ चीजें ले गया था। उनके भोजन के समय उनकी पीठ के पीछे स्वेटर रखा था। 'यह लेकर मैं क्या करूँ?' कुछ मजाक में ही उन्होंने पूछा।

'क्या ठंढ में कुछ गरम पहनने की जरूरत नहीं रहती है? अब आपका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं रहा।'

'मुझे जरूरत लगती ही नहीं है और जितनी आवश्यकता है उतना मेरे पास है। अधिक रखकर क्या करूँ?' ऐसा वे कहेंगे और कुछ नहीं लेंगे यह मैं जानता था। प्यारेलाल जी से हुई बातचीत में खलीफा उमर के त्याग का किस्सा उन्होंने कहा था, वह मैंने पढ़ा था।

'आप अतिरिक्त कपड़ा रखेंगे ही नहीं लेकिन प्रेम से भेजी हुई वस्तुओं से आप इंकार कैसे कर पायेंगे? मेरी पत्नी ने अपनी कई सहेलियों से चार दिन में ही इसे तैयार करवा लिया। भारत की बहनों द्वारा भेजा हुआ यह प्रेम का तोहफा है, केवल कपड़ा है इस नाते नहीं।'

'अच्छा, बहनों ने यह चीज मेरे लिये बनायी है? बड़ी मोहब्बत है,'

मेरा शुक्रिया उन्हें पहुँचाना।' अपने प्रति अन्यों को लगनेवाले आदर की याद से वे तुरंत व्यथित होते हैं। उनकी नजर में कृतज्ञता का भाव दिखायी देता है।

'और ये दवाइयाँ हैं, दवाई और शक्तिवर्धक दोनों दृष्टि से इसका उपयोग होगा। यह कुछ दिन लेकर देखिये, हुआ तो अच्छा ही उपयोग होगा।'

'हाँ, ठीक है। देखेंगे।' बहुत अनिच्छा से उन्होंने वे चीजें लीं। उनका इस्तेमाल उन्होंने किया या नहीं, अल्लाह जाने।

'अब शांति से बातचीत करने के लिये समय नहीं मिलेगा। यही आखिरी मुलाकात है।' थोड़ी व्यथित भावना से मैंने कहा।

'क्यों? तुमने तो फिर आने का वादा भी किया है। भूल गये?'

उन्होंने कुछ मजाक में कहा। तीन दिन पहले अनायास ही कही बात को उन्होंने आश्वासन बना लिया था। उसमें उनका प्रेम और कार्यकर्ताओं के बारे में अगत्य था। गांधी जी के अलावा बहुत थोड़े नेताओं में कार्यकर्ताओं के प्रति इतनी आत्मीयता होगी। बादशाह खान कार्यकर्ताओं के पीछे पागल थे, इसीलिये अपने चारों ओर के कार्यकर्ताओं का वलय खड़ा कर सके थे।

'मैं आया तो भी किस काम का?'

'आओ, तबियत ठीक करो, जलालाबाद जरूर आवो। आने के पहले मुझे मेसेज दे दो। तुम्हें वहाँ ले जाने की तजवीज करेंगे। खादी कमीशन भी कुछ लोग भेजना चाहता है ऐसा कमलनयन ने कहा था। सबकी मदद से जरूर कामयाबी होगी। पठान काम के लिये तैयार हैं। उनको भरोसा देना चाहिये, उन्होंने बहुत कष्ट उठाये हैं।'

'आप भारत आकर जनता को यह संदेश दीजिये।'

'वह आपका काम है। आपकी सरकार की मर्जी पर वह निर्भर है। मैं भारत आकर क्या जुलूस और दावतें लूँ?'' यहाँ पठानों को छोड़, मैं वहाँ क्यों आऊँ? हाँ, आप मुझे लिखिये, पठानों के काम में भारत सहायक होता है तो उसके लिये मैं भारत जरूर आऊँगा। चिट्ठी लिखिये मैं आऊँगा। लेकिन केवल इसी काम से यह न भूलियेगा? क्या मैं भारत के लोगों से मिलना नहीं चाहता? लेकिन यहाँ के काम की प्राथमिकता है, यह ख्याल रखें।'

उनके ये दर्दभरे वाक्य सुन रहा था इतने में अफगान सरकार के युनो के शिक्षा शास्त्री श्री जी० के० आठल्ये पति पत्नी दोनों वहाँ आये। उसी दिन दोपहर में वे भारत से काबुल वापस आये थे। उनके साथ उनके मकान पर मुझे मिलने के लिये जाना था। अत्यन्त दुखी अंतःकरण से मैंने बादशाह खान से विदा ली। उस प्रश्नचिह्नांकित कलाकारी के लोहे के दरवाजे में उन्हें छोड़ कर मैं वापस जा रहा था। वहाँ की पहली मुलाकत के समय जो असीम आनंद हुआ था उससे कई गुना अधिक दर्दभरा तूफान दिमाग में लिये मैं बाहर निकल रहा था। हमारी गाड़ी तेजी से रास्ता काट रही थी। सारे काबुल शहर पर फीकी पीली किरणें फैली थीं। वह शोभा, वे पोपलर पेड़, वे बगीचे सारे ही आज म्लान और मुरझाये हुए लगते थे। बजार में बेचने के लिये लगाये गये अंगूर और खरबूजों के बड़े बड़े ढेर भी मानों मेरी अचेतन आँखों के सामने से गुजर रहे हैं। मेरी रुग्णावस्था के कारण मेरी बोलती बंद हो ऐसा आठल्ये दंपति को भी लगा, इसलिये वे भी कुछ सचित हुये थे। लेकिन बीमारी की याद भी मुझे नहीं थी। दार उल अमान के अतिथिगृह के लोहे के फाटक पर लगा हुआ वह प्रश्नचिह्न मुझे डरा रहा था। वापस निकलने के पहले उन्होंने सूत की दोनों गुंडियाँ स्मरणपूर्वक मुझे लौटाई थीं। वैसे ही जिन चीजों को उन्होंने स्वीकार किया था उनके भेजने वालों के लिये उनसे लाख गुना कीमती उनके हस्ताक्षर मैंने माँगे थे, वे भी उन्होंने मेरे हाथ में पकड़ाये। ये हस्ताक्षर पानेवाले भाग्यवानों में इस चरित्र के प्रकाशक श्री दामुअण्णा रानडे भी एक हैं। हम विदा हुये तब कंधे पर हाथ रख कर उन्होंने कहा, 'खुश रहो, फिर आवो, यहाँ मिलकर काम जरूर कर सकते हैं।' उनकी हँसी में भी खेद और विषाद भरा हुआ था। उनके वे वाक्य कहीं तो भी बहुत निचली दरी से मेरे कान पर बराबर टकराते हैं ऐसा लगा।

'भारत पर पठानों की मोहब्बत है। भारत हमारे लिये, पठानों के लिये, बहुत कुछ कर सकेगा, उसका वह कर्तव्य है। खुद की भलाई के लिये भारत को पठानों का साथ देना होगा। आप जरूर आयें। पठानों की तरह सारे दलित मानव की सेवा का काम ही अपना काम है।'

आठ दिन के वहाँ के वास्तव्य में उनके मुँह से निकले हुए ये वाक्य मेरे कान में गूँज रहे थे। 'एकमेका साह्य करू' (एक दूसरे की मदद करें) यह संदेश तो उन्हें भारत को देना नहीं था न? 'सहनाभवतु' वह हम दोनों की

रक्षा करें।' यह वैदिक प्रार्थना उनकी लाडली नुवास्तु नदी के किनारे पर ही रची गई होगी। वही आर्ष भावना उनकी आरज़ू की भाषा में थी। दि० ५ सितंबर को दोपहर में पालम हवाई अड्डे पर उतरा तब भी मेरे कान में ये ही वाक्य गूँजते हैं ऐसा आभास हुआ : 'तुम्हें पठानों का साथ देना चाहिये. पठानों ने तुम्हारी मदद की है।'



संबंधित उद्धरण

(१) पख्तूनिस्तान वेदों की जन्मस्थली है

अहिंसा की ओर बादशाह खान की स्वतःप्रवृत्ति पर महादेव भाई देसाई ने आश्चर्य व्यक्त किया है। गाँधी जी वैष्णव धर्मनिष्ठा के वातावरण में पले थे अतएव उनके संबंध में अहिंसाविचार की प्रवृत्ति अधिक स्वाभाविक लगती है। परंतु जन्म, परंपरा आदि के आधार पर इस प्रकार के किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना व्यावहारिक नहीं। वैदिक आर्य भी अहिंसावादी नहीं थे। बादशाह खान स्वयं कभी कभी 'हम लोग पहले बौद्ध थे' ऐसा कहते हैं। हो सकता है, उनके इस कथन का मंतव्य यह हो कि उनमें अहिंसा-विचार की प्रवृत्ति इसी परंपरा की देन है। 'इस्लाम के लिए अहिंसा नवीन अथवा अपरिचित नहीं है। एक हजार वर्ष पूर्व स्वयं मुहम्मद साहब ने अहिंसा का आचरण किया था और उसकी शिक्षा दी थी' ऐसा भी बादशाह खान कहते हैं। परंपरा तथा आनुवंशिकता का एक मर्यादित अर्थ में महत्त्व है। यह शास्त्रज्ञ भी मानते हैं। इसी दृष्टि से वेदों की जन्मस्थली तथा पठान प्रदेशों के पारंपरिक संबंध पर प्रकाश डालने वाली जानकारी यहाँ दी जा रही है।

बादशाह खान कट्टर 'पख्तून' वादी हैं। उनका कबीला 'मोहमंद' (मामुंद) कहलाता है। उनके जन्मस्थान की नदी का नाम 'स्वात' (स्वाति) है। इन तीनों शब्दों का उल्लेख ऋग्वेद में है।

आपक्थ्सो भलानसो भनन्तालीनासो विषाणिनः शिवासः।

(ऋ० ७-१८-७)

(दस राजाओं के युद्ध के लिए एकत्र आये हुए कबीलों के नाम इस ऋचा में मिलते हैं। उनमें एक कबीला पख्त भी है। वर्तमान कबीलों के नामों में से अनेक नाम वैदिक नामों से निकले हैं।)

बादशाह खान मोहमंद (मामुंद) कबीले के हैं। यह 'मोहमंद' शब्द वैदिक 'मधुमंत' शब्द का अपभ्रंश है। केवल 'मधु' अर्थात् शहद के व्यापार से जीविकोपार्जन करने वाले कुछ पख्त पठान आज भी हैं। इस मधुमंत शब्द के संबंध में प्राध्यापक श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—

'पाणिनि ने गांधार प्रदेश के एक देश का मधुमंत नाम से उल्लेख किया है (४-१३३)। महाभारत में मधुमंत नाम की एक जनजाति का उल्लेख है (भीष्मपर्व, ६-५३)। यह स्पष्ट है कि काबुल नदी के उत्तर की ओर के क्षेत्र में निवास करने वाले महामुद ही ये मधुमंत हैं। उनकी आवास भूमि दिर बाजौर है जिसका क्षेत्रफल १२०० वर्गमील है। (इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि, पृष्ठ ४५५)'

पाणिनि के काल में (ईसा पूर्व चतुर्थ शतक) मोहमंद शब्द देशवाचक था तो महाभारत में उसका उल्लेख लोकवाचक रूप में है। आज भी यह शब्द मोहमंद (मामुंद) कबीला तथा मोहमंद (मामुंद) प्रदेश इन दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है।

बादशाह खान का जन्म ग्राम उतमानजई स्वात नदी के किनारे बसा हुआ है। 'स्वात'-स्वाति-इस नदी का नाम ऋग्वेदकाल में तथा पाणिनि के समय में भी 'सुवास्तु' था।

उतमे प्रमियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधितुग्वनि।

—मंडल ८, सूक्त १९, ऋचा ३७

(इस ऋचा में सुवास्तु नदी कैसे पार की आदि वर्णन है।)

नदीसूक्त (ऋ० १०-७५) में वर्णित कुल ३१ नदियों में से अनेक वायव्य सीमा प्रांत में हैं। पश्चिम तथा पूर्व की ओर से सिंधु नदी में मिलने वाली नदियों का इसमें वर्णन है। इनमें एक नदी है कुभा (काबुल) जिससे सुवास्तु (स्वात) तथा गौरी (पंचकोर या पंजकोया) मिलती हैं। इस सूक्त में काबुल नदी के दक्षिण की ओर की क्रुमु (कुर्रम) तथा गोमति (गोमल) नदियों का भी उल्लेख है। ऋग्वेद के रचनाकाल का काफी हिस्सा अफगानिस्तान तथा सीमाप्रांत में गुजरा यह बहुधा सभी पंडित मानते हैं।

पक्थ, मलानस, विशानिन् अलिन्, शिव ये कबीले सीमाप्रांत के ही हैं। पक्थ (पक्त-पख्त) क्रमु नदी के उद्गम स्थान के आसपास के प्रदेश के रहने वाले थे, ऐसा श्री पुसालकर का मत है। (दि वेदिक एज, खंड १-अ, डी० पुसालकर, पृ० २४५-४७)

इस दृष्टि से अष्टाध्यायी में पाणिनि द्वारा उल्लिखित नामावली ध्यान देने योग्य है—

नदियाँ

पाणिनिकालीन नाम	अर्वाचीन नाम
अफगानिस्तान—	
वान्नु	ऑक्सस
सेतुमती	हेलमंद
कुभा	काबुल
सीमाप्रांत—	
पंचशिर	कापिसी
त्रिरावतिका	कुनार
गौरी	पंजकोरा
सुवास्तु	स्वात
क्रमु	कुर्रम
गोमति	गोमल
तोची	टोची

नगर

अफगानिस्तान—	
द्वारका	दरवाज
वाह्लिका	बल्ख
द्वयस्यायन	बदकशान
कापिसायन	काफिरिस्तान
मुंजायन	मुंजान
वामियान	वामियान

नगर, प्रदेश तथा कबीले

अश्वायन	तुरंगभाई (तरंगजई)
मधुमंत	मोहमंद (मामुंद)
त्र्यस्यायन	तारखान, दिर
पुष्कलावति	चारसद्दा
मशकावति	मस्सागा
उरषा (शा)	हजारा
हस्तिनायन	पुरुषपुर, पेशावर
सलातुर (पाणिनि का जन्मस्थान)	सलातुर

त्रिरावर्तिका	तिन्हा
वानव्य	वाना
वर्णू	बन्नू
अपरिता	अफ्रीदी
पर्विदास	पोविंदास
सैंधव	साल्ट रेंज
तक्षशिला	टैक्सिला
चक्रवाल	चक्रवाल
अटक	अटक
शकदरा	चकदरा

पर्वतशृंखला

त्रिकाकूट (अथर्ववेद—अंजनगिरि पाणिनि)	सुलेमान
लोहितगिरि (इस भाग में सैनिक प्रकृति के लोगों के राज्य थे)	हिंदुकुश
अंजनगिरि	कोह-ई-बाबा
कंभोज	पामीर

पाणिनि का जन्म इसी प्रदेश में (जिसे हम पठानों के प्रदेश के रूप में जानते हैं हुआ। उसका जन्मस्थान सलातुर कुभा (काबुल) तथा सिंधु नदियों के संगमस्थल ओहिंद (अबासिंद) से केवल चार मील पर है। ओहिंद का पूर्वनाम उद्‌भांड था। यह जहाजी व्यापार का एक प्रमुख तथा बड़ा केंद्र था। यहाँ से गांधारकुल की राजधानी तक्षशिला ६० मील दूर है।

स्तूप एवं विहारों का निकट सान्निध्य

चार हजार वर्ष पूर्व के उपर्युक्त शब्द संस्कृत भाषा के कारण अभी भी अवशिष्ट हैं। इसी प्रकार बुद्धकालीन संस्कृति के अवशेष सीमाप्रांत में स्थान स्थान पर अखंड तथा खंडित बुद्धमूर्तियों, स्तूपों एवं विहारों के रूप में आज भी हमें देखने को मिलते हैं। खास पेशावर शहर के आस पास अनेक विहारों के अवशेष हैं। अशोक का राज्य कंदहार तक फैला हुआ था यह अफगान संशोधक भी इस प्रदेश में हाल में मिले हुए शिलालेखों के आधार पर स्वीकार करते हैं। पेशावर-हजारा के आसपास के अवशेष मौर्य-कुशाण-कालीन

अर्थात् ईसा पूर्व पहली शताब्दी से लेकर पाँचवीं-छठी ई० शताब्दी तक के हैं। इस्लाम के संस्कार इस प्रदेश पर सातवीं-आठवीं शताब्दी में हुए। 'हम लोग पहले बौद्ध थे' यह बादशाह खान का कथन इसी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परंपरा की ओर निर्देश करता है। मानव मन पर हुए विचारों के संस्कार पत्थर पर हुए छैनी के संस्कारों की अपेक्षा अधिक मजबूत और दीर्घजीवी होते हैं। अशोक-चंद्रगुप्त के समय सीमाप्रांत पर हुए विचार-संस्कार पठानों द्वारा स्वीकृत अहिंसात्मक वैचारिक क्रांति के मूल में नहीं हैं ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से ये विचार महत्वपूर्ण हैं। स्वयं बादशाह खान ने अनेक अवसरों पर कहा है कि 'शस्त्रबल के मिथ्या-विश्वास ने पठानों को केवल आत्मनाश ही दिया। शस्त्रों का उपयोग सिर्फ आपसी झगड़ों को कायम रखने और बढ़ाने में ही सहायक सिद्ध हुआ।' दूसरी ओर हम यह देखते हैं कि पठानों ने जब शस्त्र रख दिये और अहिंसा स्वीकार की तो शस्त्रों से सुसज्जित ब्रिटिश शासन के लिए वे एक समस्या बन बैठे। वस्तुतः ताकत शस्त्रों में नहीं जाग्रत मन में थी। यह जाग्रति, स्मृति तथा स्फूर्ति अन्य अनेक माध्यमों के समान ऐतिहासिक स्मारकों से भी प्राप्त होती है। सीमाप्रांत के निवासियों की अहिंसा की श्रद्धा के विपुल स्मारक उस भूमि पर आज हजारों वर्षों से खड़े हैं। खान अब्दुल गफ्फार के मन पर उनका कुछ संस्कार हुआ हो तो क्या आश्चर्य !

(२) विनोबा जी-बादशाह खान-पत्रव्यवहार

[पूज्य विनोबा जी का बादशाह खान को पत्र तथा बादशाह खान का उन्हें उत्तर हम नीचे प्रकाशित कर रहे हैं। दोनों पत्र मूलतः अंग्रेजी में हैं।]

ब्रह्मविद्या मंदिर
पवनार (वर्धा)
महाराष्ट्र, भारत।
५ अप्रैल, १९६५।

प्रिय बादशाह खान,

यह स्वीकार करते हुए कि हमारे स्वातंत्र्य-संघर्ष में आपके साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ है तथा हमारे मित्रों ने सच्चे अर्थ में आपके साथ धोखा किया है, मुझे जो कष्ट हो रहा है उसे मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। लेकिन आपने उसे बड़े संयम एवं धैर्य के साथ सहन किया है। आपका यह उदाहरण हम सब लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

समस्त भारतवर्ष तथा पूर्वी पाकिस्तान के कुछ हिस्से की अपनी पदयात्रा के दौरान आप सदैव मेरी स्मृति में रहे हैं तथा मैं आशा करता रहा हूँ कि परिस्थितियाँ आपको पाकिस्तान में इसी प्रकार का आंदोलन प्रारंभ करने का अवसर देंगी। परंतु वह न होना था। लगता है परमेश्वर की मर्जी ऐसी नहीं थी।

आजकल मेरे अंतर में एक विश्वास जड़ पकड़ता जा रहा है कि अस्त्रास्त्रों के इस युग में तथाकथित राजनीतिक उपाय पुराने पड़ गये हैं तथा समस्याएँ, चाहे वे राष्ट्रीय हों अथवा अंतरराष्ट्रीय, सिर्फ आध्यात्मिकता का—जिसे हम उर्दू में 'रूहानियत' कहते हैं—अवलंब ग्रहण करके ही सुलझायी जा सकती हैं। मैं जानता हूँ, आप मूलतः गंभीर आध्यात्मिक विश्वासों से पूर्ण धार्मिक व्यक्ति हैं, राजनीतिक नहीं। आप सर्वदा अहिंसा एवं आत्मकष्ट में अडिग श्रद्धा रखनेवाले रहे हैं। हो सकता है, आपकी इतनी परीक्षा लेने के बाद ईश्वर आपको विश्व की समस्याएँ सुलझाने के लिए अपना साधन बनाना चाहता हो।

'वाशिशरीस साबिरीन!'

स्नेहपूर्ण आदर के साथ,

आपका छोटा भाई
ह० विनोबा

काबुल
५-५-'६५

प्रिय विनोबा जी,

आपका ५ अप्रैल १९६५ का स्नेहपूर्ण पत्र पाकर हृदय भर आया। एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो हारी हुई लड़ाई लड़ रहा हो और वह भी केवल अपने दुश्मनों के साथ ही नहीं बल्कि अपने सहकारियों के साथ भी, जो पाकिस्तान सरकार के अत्याचारों के कारण मरता क्या न करता वाली स्थिति में पहुँच गये हों, आपका उत्साहदायक पत्र सचमुच ही धैर्य बँधाने वाला है। मेरे साथियों का अहिंसा से विश्वास उठता जा रहा है, उस अहिंसा से जिसे उनके हृदयों में जमाने के लिए मैंने न जाने कितना परिश्रम किया। उनकी दलील यह है कि ब्रिटिश लोग एक सुसंस्कृत राष्ट्र के घटक थे तथा उनका पालनपोषण अपनी भूमि के लोकतांत्रिक रीतिरिवाजों में हुआ

था अतएव उन पर अहिंसा का उपाय कारगर हो सका परंतु पाकिस्तानी वैसे नहीं हैं। उनके निकट नैतिक मूल्यों का कोई विशेष अर्थ नहीं है अतः उन पर अहिंसा का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

पिछले १८ वर्षों में, जब से पाकिस्तान बना है, आप जानते हैं, मैं १५ वर्ष जेल में रहा हूँ और उसका भी अधिक हिस्सा मैंने एकांतवास में वार्डनों के ताने सुनते और उनके द्वारा अपमानित होते हुए बिताया है। यह दुर्भाग्य केवल मेरा अकेले का नहीं रहा है। सभी खुदाई खिदमतगारों को—आप जानते हैं हमारे प्रदेश में उनका स्पष्ट बहुमत रहा है—मेरे समान ही बल्कि मुझसे ज्यादा यातनाएँ सहनी पड़ी हैं। उनकी संपत्ति सरकार ने जब्त कर ली है तथा घर का कमानेवाला जेल में होने के कारण उनके बच्चे तथा परिवार आज दर दर के भिखारी हो गये हैं। दुर्दशाओं की इस तालिका में यदि आप बलूचिस्तान तथा कबीलों के प्रदेश पर होने वाली बर्बर बमबारी को और जोड़ दें तो चित्र और भी बीभत्स हो उठता है। बलूचिस्तान तथा बाजौर आज भी पाकिस्तानी सेना का कार्यक्षेत्र बना हुआ है। उन्होंने वहाँ के काफी बड़े बड़े क्षेत्रों को घेरे में रखा है तथा वहाँ आज भी हमले करते रहते हैं। मैं यहाँ अपने देश के शांतिप्रिय नागरिकों पर यदा कदा आकस्मिक रूप से होने वाली गोलाबारी का जिक्र नहीं कर रहा हूँ। बाहरी दुनिया को इस बर्बरता का ज्ञान कराने वाला आज कोई नहीं है। हमारे अखबार अवैध घोषित कर बंद कर दिये गये हैं। हमारा संगठन गैरकानूनी करार कर दिया गया है। हमारा केंद्र नष्ट कर दिया गया है तथा हमारे सभी मानवीय अधिकार छीन लिये गये हैं, वे अधिकार भी जो परकीय ब्रिटिश सत्ता ने भी हमसे नहीं छीने थे। हम जब भी जबान खोलते हैं या जनता में जाते हैं तब पाकिस्तान का शासन और पाकिस्तान की जनता हमें हिंदू कहकर पुकारती है। मैंने पाकिस्तान की जनता की सेवा करने की कोशिश की लेकिन वे मुझे इजाजत नहीं देते। कांग्रेस के साथ के मेरे पिछले संबंधों के कारण वे मुझ पर जरा भी विश्वास नहीं करते। हम लोग भयंकर अंत की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

विनोबा जी! मैंने पाकिस्तान के खिलाफ उँगली भी नहीं उठायी है, कोई आंदोलन प्रारंभ करने की कोशिश नहीं की है, न उस देश की किसी भी सरकार के विरुद्ध कोई कार्यवाही की है या कदम उठाया है; फिर भी मैं हूँ इसी के पात्र, फिर भी मेरे साथ यह सलूक किया जा रहा है। मेरी

समझ में नहीं आता कि मुझे क्या करना चाहिए। कृपया इस पर विचार कीजिए तथा मुझे अपनी सलाह दीजिए। दुनिया में सबसे अधिक मैं आपकी सलाह की कद्र करता हूँ। क्या मैं अपने लोगों को इसी अवस्था में रहने दूँ? मेरे लिए यह संभव नहीं है। लेकिन कुछ कर पाना भी असंभव हो गया है।

मेरे भारतीय साथी, जो इस समय सरकार में हैं, मेरी कठिनाइयों को नहीं समझ सकते, क्योंकि अब हम भिन्न वर्गों के हैं। उन्हें इसमें कोई खराबी नजर नहीं आती। उनके लिए मैं अब एक दूसरी दुनिया का आदमी हूँ, यद्यपि इन्हीं मित्रों का ईमानदारी और प्रामाणिकता से साथ देने के कारण ही मैं तथा मेरा राष्ट्र आज की दुर्दशा को प्राप्त हुए हैं। उनकी आत्मा की आवाज मैं नहीं जानता लेकिन यदि मैं उनके स्थान पर होता तो और नहीं तो कम से कम मनुष्यता की खातिर तो उनके लिए न्याय प्राप्त करने की कोशिश करता ही। अपनी दुर्दशा की कहानी सुना कर मैंने आपको जो कष्ट दिया है उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

शुभेच्छाओं तथा स्नेह के साथ,

आपका भाई

ह० अब्दुल गफ्फार

(३) डॉ० कंबोज—पत्र

'वह गोराशाही नहीं थी—वह प्रत्यक्ष युद्ध था'

[वायव्य सीमांत प्रदेश में सत्याग्रह संग्राम के दौरान विलक्षण संयम तथा शांतिपूर्ण प्रतिकार की अनेक घटनाएँ हुईं। उनमें डॉ० गंगा सिंह कंबोज नामक एक सरकारी अफसर के परिवार पर हुई गोलाबारी के बाद की घटना उल्लेखनीय है। गढ़वाल रेजिमेंट के सैनिकों द्वारा शस्त्रत्याग की घटना के समान ही इस बर्बर अत्याचार की घटना को कुछ ब्रिटिश तथा अमेरिकन पत्रकारों ने और ग्रंथलेखकों ने प्रसिद्धि दी थी। डॉ० पट्टाभि सीतारामैय्या ने भी कांग्रेस के इतिहास में इसका उल्लेख किया है। दि० ३१ मई १९३० ई० के दिन सवेरे डॉ० गंगासिंह, उनकी पत्नी श्रीमती तेजकौर, पुत्र काका बछत्तर सिंह (उम्र डेढ़ साल), लड़की बेबी हरपाल (उम्र ६ साल) तथा उनकी साली तांगे में बैठे गुरुद्वारा जा रहे थे। उस समय एक घर की छत से एक अंग्रेज कारपोरल (के० डी० वाई० एल० आई०) ने ताँगे पर गोली चलाई। फलस्वरूप मा से चिपक कर बैठे हुए दोनों बच्चे जैसे पेड़ पर बैठे पक्षी गोली

लगते ही गिर पड़ते हैं उसी प्रकार स्थान के स्थान पर ही मर कर गिर पड़े। श्रीमती तेजकौर का एक स्तन उड़ गया। इस संबंध में डॉ० गंगासिंह का पत्र पेशावर (पटेल) जाँच समिति की कार्यवाही में दर्ज है। इस भयंकर घटना के बाद कमिश्नर की अनुज्ञा से स्मशान यात्रा निकली तो उसपर भी बिना पूर्व सूचना के दो स्थानों पर गोरे सैनिकों द्वारा गोली चलाई गई। इन भीषण एवं प्रक्षोभक घटनाओं का वर्णन उस समय के अखबारों में प्रकाशित हुआ था। घटनाओं के चित्र भी उपलब्ध हैं। उनका स्मरण अत्यधिक क्लेश-दायक है। डॉ० गंगासिंह के ताँगे पर हुई गोलीबारी गलती से हुई थी तथा वह एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी, इस प्रकार का स्पष्टीकरण अधिकारियों की ओर से प्रकाशित हुआ था। परंतु इस प्रकार की घटनाएँ क्वचित् होती थीं ऐसी बात नहीं है। ताँगे में बैठ कर कुछ महिलाएँ तथा बच्चे जेल दावर गेट के पास से जा रहे थे ऐसे समय गोरे सैनिकों ने उनपर पत्थर फेंके ऐसी एक शिकायत दिसंबर ३० अप्रैल सन् १९३० के पेशावर बुलेटिन क्र० ११ से पटेल कमिटी ने दर्ज की है।

सीमाप्रांत की ये घटनाएँ गोराशाही का प्रकार नहीं थीं बल्कि वह एक तरह से ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रारंभ किया गया प्रत्यक्ष युद्ध था। इसकी जान-कारी डॉ० गंगासिंह के आगे उद्धृत पत्र में है। इस समय उनकी उम्र लगभग ८० वर्ष की है। अपने पत्र में उन्होंने लिखा है कि अन्य साधन उपलब्ध न होने के कारण काँपते हुए हाथ से उन्होंने यह पत्र लिखा है। उन गोलीकांड के बाद उनकी पत्नी अस्पताल में थीं उस समय उनकी बदली अदन में की गई। क्षतिपूर्ति के रूप में सरकार ने उन्हें काफी रकम देनी चाही परंतु वह रक्तलांछित धन लेने से उन्होंने इनकार कर दिया अतएव उन्हें अदन भेज दिया गया। यह सारा इतिहास अभी तक अप्रकाशित रह गया है ऐसा दिखाई देता है। विशेषतः सन् १९३० के अप्रैल मई में कबीली कबीलों ने पेशावर पर जो चढ़ाई की थी वह सरकार ने जनता पर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया है ऐसा मालूम होने पर उसके प्रतिकार स्वरूप की गई थी। ये हमले खुदाई खिदमतगारी आंदोलन का एक भाग हैं इस प्रकार का झूठा प्रचार कर सरकार ने इस आंदोलन को कुचलने के लिये दमकारी करना प्रारंभ कर दिया था, इत्यादि जानकारी डॉ० गंगासिंह के पत्र में है।

डॉ० गंगासिंह से साक्षात्कार करने का प्रयत्न समय पर सफल नहीं हो सका। इस समय वे उत्तर प्रदेश के फीरोजपुर नामक नगर में निवासित

अवस्था में जीवन बिता रहे हैं। पाकिस्तान के आक्रमण के समय वे खेमकरण में थे। तत्वनिष्ठा से इतना त्याग करनेवाले लोगों का अपेक्षाभंग होने पर उनमें कुछ कटुभावना उत्पन्न होना स्वाभाविक है। विशेषतः डॉ० गंगासिंह ने जिस स्मारक योजना का अपने पत्र में उल्लेख किया है उसकी ओर सरकार ने ध्यान नहीं दिया अतएव उनके मन में विषाद निर्माण होना स्वाभाविक है। 'गांधी जी और अहिंसा पर मेरी श्रद्धा होने के कारण ही मैं यह सब सहन कर सका'—उनके इस कथन की ओर ध्यान देना चाहिये। बाद के काल में डॉ० गंगासिंह ने म्युनिसिपल कमिश्नर के पद पर कार्य किया है यह उनके पत्रशीर्ष से दिखाई देता है। इससे उनके वक्तव्यों का महत्व बढ़ जाता है। विभाजन के कारण उद्ध्वस्त हुए प्रदेशों के लोगों के क्लेशों तथा त्यागों की ओर ध्यान देना तथा उनके इतिहास का ठीक से लिखा जाना आवश्यक है, यह डॉ० गंगासिंह के पत्र से स्पष्ट होता है।]

—लेखक

डॉ० गंगासिंह कंबोज
भू० पू० म्युनिसिपल कमिश्नर

रोचर स्ट्रीट
फीरोजपुर सिटी
दि० ३१-१०-१९६७

आदरणीय जोशी जी,

आपके सांत्वनादायक पत्र के लिए धन्यवाद।

आजादी के लिए मुझे जो कुछ सहना पड़ा है उसका कुछ विवरण मैं श्री के० बी० नारंग साहब के इच्छानुसार आपके पास भेज रहा हूँ। कृपया इसे पढ़कर इसका उपयोग कीजिये। ईश्वर आपका भला करे।

मेरे जीवन में घटी हुई इन घटनाओं का उल्लेख कई किताबों में है—अमेरिका में प्रकाशित 'वैनिशिंग एम्पायर', एफ्० ब्रॉकवे, एम० पी०, लंदन, द्वारा लिखित 'इंडियन क्राइसिस', मास्को विश्वविद्यालय के डिपार्टमेंट ऑव् फॉरिन लॅङ्ग्वेजेज के जी० सी० कोटूर्नोवस्की की पुस्तक इ०।

मुझे खेद है कि मैं बिस्तर पर बीमार पड़ा हूँ तथा मेरे पास टाईपराइटर नहीं है। ठंढ के कारण काँपते हुए हाथों की टेढ़ी मेढ़ी लिखावट के लिए मुझे क्षमा कीजिएगा तथा मेरी कृतज्ञतापूर्ण नम्रता को स्वीकार कीजिएगा।

आपके पत्र की आशा में सादर,

आपका
ह० गंगासिंह कंबोज

डॉ० गंगासिंह कंबोज द्वारा प्रस्तुत आजादी के लिए सहन किये हुए कष्टों का विवरण

'पेशावर क्षेत्र में स्थिति इतनी भयंकर हो चुकी थी कि मोहमंद तथा अफ्रीदी कबीले के लोग हजारों की संख्या में अपनी बंदूकें लिये पर्वतों से निकल आये और उन्होंने के० सप्लाई डिपो पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने तारों की लाइनें काट दीं और बहुत से ब्रिटिश सैनिकों को गोलियों से उड़ा दिया। पेशावर के भीतर और बाहर का आवागमन अवरुद्ध हो गया। ब्रिटिश सरकार ने हजारों की संख्या में अपना सारा सैन्य एकत्र किया और नियमित युद्ध शुरू हो गया। ब्रिटिश बंदूकों ने, तोपों ने तथा अन्य शस्त्रों ने सीमांत प्रदेश के लोगों पर अंधाधुंध आग उगलना प्रारंभ कर दिया। यह एक भयंकर बात है कि तत्कालीन केंद्रीय विधान सभा में सरकारी सदस्य ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश के लोगों पर पैंतालिस लाख रुपये से भी अधिक मूल्य के बम बरसाये गये। दि० ६ और ७ जून सन् १९३० ई० को जो कुछ हुआ उसका मैं स्वयं प्रत्यक्षदर्शी गवाह हूँ। अपने ४ मित्रों तथा रिश्तेदारों के साथ मुझे अपने मूल्यवान कागजात तथा धन को ढूँढ़ने जाना पड़ा था जिसे झाड़ूवाला ने गलती से कूड़े के ढेर में फेंक दिया था। हमलोग जब उस ढेर को खोद रहे थे उस समय एक हवाई जहाज, जो स्पष्ट ही हमले के पूर्व क्षेत्रनिरीक्षण कर रहा था हम लोगों पर झपटा और यह दैवी चमत्कार ही था कि हम लोग सेना द्वारा काटे गये पेड़ों के नीचे आश्रय लेकर बच गये।

उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रदेश की जनता के विरुद्ध चलाया हुआ यह एक नियमित युद्ध था तथा ब्रिटिश सरकार ने इसे विजय की संज्ञा दी। ब्रिटिश सरकार ने १९३०-३१ के सीमांत विजय पर तमाम सैनिकों को, जिनमें मेरा विभाग भी शामिल था, तमगे दिये।

सरकारी सदस्य ने अपने उत्तर में सेना के कार्य पर हुए तमाम खर्चों का विस्तृत विवरण भी दिया। सारा खर्च एक करोड़ साठ लाख रुपये के करीब हुआ था।

मेरे पास विधान सभा की कार्यवाही का पूरा विवरण था परंतु वह १९६५ के भारत-पाक-युद्ध के समय मेरे गाँव खेमकरण में, जहाँ मैं उन दिनों था, नष्ट हो गया।

जोशी जी, मेरे जीवन की यह कहानी बड़ी भयानक है। परंतु गांधीजी की शिक्षा में श्रद्धा होने के कारण मैंने इन दुःखभोगों को हँसते हुए सहा।

लेकिन मेरे मन में अपनी कांग्रेस सरकार के प्रति थोड़ा विषाद भी है। वह सीमांत प्रदेश के शहीदों को भूल गयी है। उसने उनकी स्मृति में कोई स्मारक भी नहीं बनाया है। मैंने सरकार से प्रार्थना की थी और मेरे पास जो थोड़ी-सी भूमि है उसे उन शहीदों की स्मृति में एक प्रसूति औषधालय बनाने के लिए देने की इच्छा प्रकट की थी परंतु इस नक्कारखाने में तूती की आवाज सुनने की किसी ने दया नहीं दिखायी।

एक बात और। सन् १९३२ ई० में गोलमेज परिषद् के सिलसिले में जब गांधीजी लंदन में थे उस समय मैंने उन्हें उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में हुए गोलीकांडों के तथा मुझ पर हुई गोलाबारी की घटनाओं के छाया चित्र भेजे थे तथा प्रार्थना की थी कि वे पश्चिमी दुनिया को बताएँ कि हम लोगों ने उनके अहिंसा धर्म को कितना आत्मसात् किया है। उनकी वापसी पर श्रीमती सरोजिनी नायडू ने हैदराबाद में (मैं उस समय सिकंदराबाद में था) मेरे विचार (स्टैंड) की सराहना की थी और डॉ० आर० जे० भोले की उपस्थिति में कहा था, 'सरदार साहब, आप बड़े वीरात्मा पुरुष हैं' और बाद में उन्होंने मेरी बीमार पत्नी को देखने अपने पति डॉ० मेजर नायडू को भेजा था।'

पुनश्च—

'ब्रिटिश सरकार ने डॉ० गंगासिंह को हर्जाने के रूप में एक बड़ी रकम देना चाहा था। परंतु उन्होंने वह रक्तरंजित धन लेने से इनकार कर दिया। फलस्वरूप उन्हें तुरत अदन जाने का आदेश दिया गया। उस समय उनकी पत्नी गोली के घाव तथा मानसिक आघात के कारण बीमार थीं लेकिन इसकी कोई परवाह नहीं की गयी। जब डॉ० गंगासिंह ने सरकार से प्रार्थना की कि उनकी पत्नी के अच्छे होने तक उनका जाना मुल्तवी किया जाए तो उत्तर मिला कि उन्हें अविलंब जाना चाहिए। अलबत्ता आगे यह भी कहा गया था कि समुद्रयात्रा के नियमों के अनुसार उन्हें २० दिन का समय दिया जाता है परंतु पर्यटन अधिकारी चाहें तो श्री गंगासिंह को यह समय नहीं दिया जाएगा।'

'शान्ति' सितंबर १९६७ (जी० एस० के०)

(४) बादशाह खान–मदालसा बहन–पत्र

"गांधी जी ने आश्वासन दिया था"

["यदि पाकिस्तान आप पर अन्याय करेगा तो भारत आपके लिए लड़ेगा ऐसा गांधी जी ने आश्वासन दिया था।" ऐसा श्री प्यारेलाल जी ने अपने लेख में लिखा है। गांधी जी के प्रार्थनोत्तर प्रवचनों से तथा बादशाह खान से हुई उनकी बातचीत से भी यह अर्थ निकल सकता है; बादशाह खान का शब्द ही इसके लिए पर्याप्त सबूत है। श्री कमलनयन बजाज की कनिष्ठ भगिनी श्रीमती मदालसा बहन अग्रवाल को लिखे हुए एक पत्र में बादशाह खान ने इस आश्वासन का उल्लेख किया है। अतएव उक्त पत्र हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।]

काबुल (अफगानिस्तान)
दिनांक ५–८–६६

प्यारी मदालसा, खुश और सलामत रहो।

बाद अज प्यार व मोहब्बत के मैं खैरियत से हूँ और उम्मीद है आप भी खैरियत से होंगी। काफी मुद्दत गुजर गयी है कि मैंने आपको खत नहीं लिखा। लेकिन मालूम होता है कि आप भी बाबा को भूल गयी हैं। बाबा तो बूढ़ा है, मुसीबत में है, परीशां है, सियाहबख्त है और एक शायर ने कहा भी है कि :

सियाहबख्ती में कब कोई किसी का साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा इनसाँ से रहता है।

अफगानिस्तान के इनकलाब में हम लोगों ने उनकी बड़ी मदद की और मौजूदा खानदान को हमारी माली और जानी कुर्बानियों से तख्त नसीब हुआ। और हिंदोस्तान की आजादी की जंग में आपको मालूम है कि हम लोगों ने कितनी माली और जानी कुर्बानियाँ कीं। वो आजाद हो गये और हम गुलाम के गुलाम हो गये और ये दोनों भाई हमारी मुसीबतों को देखते हुए हमारी मदद नहीं करते। अफसोस है कि महात्मा जी नहीं रहे, उन्होंने तो हमारे साथ वादा किया था कि अगर पाकिस्तान हम लोगों पर जुल्म करेगा तो हम लड़ेंगे। लेकिन आज तक कांग्रेस ने इस वादे को पूरा नहीं किया। और अगर हम हिंदोस्तान की आजादी के लिये लड़े हैं तो क्या यह हमारा हक नहीं कि वे हमारे लिए लड़ें ? चीन कोरिया के लिए तमाम

दुनिया से लड़ा। और इसमें अकेले हमारा नहीं हिंदोस्तान का भी फायदा है और खुदा की मख्लूक का भी फायदा है। पाकिस्तान जब तक रहेगा ये झगड़े, ये फसाद और यह नफरत रहेगी। यह मुसीबत तो कांग्रेस ने बटवारा करके पैदा की और अब यह उनका धरम है कि लोगों को इस मुसीबत से नजात दिलाये।

कमलनैन का चंद दिन हुए एक खत आया था। उन्होंने लिखा था कि एक आदमी आपके यहाँ भेज रहा हूँ। मैंने आज तक इंतजार किया लेकिन वह आदमी नहीं आया। वे कैसे हैं, वाल्दा की और बहन भाईयों की और घर वालों की क्या हाल है। मेरी तरफ से सबको बहोत प्यार और सलाम। फकत।

(नोट—आप जब मुझे खत लिखें तो अंग्रेजी या उर्दू में लिखें।)

आपका

अब्दुल गफार

संदर्भ ग्रंथ

चरित्र एवं चरित्रात्मक

देसाई, महादेव (१९३५)—टू सर्वेंट्स आफ गाड
युनुस मुहम्मद (१९४२)—फ्रांटियर स्पीक्स
अब्दुल कयूम (१९४५)—गोल्ड ऐण्ड गंस आन दी पठान फ्रांटियर
प्यारे लाल (१९५०)—ए पिलग्रिमेज फार पीस
प्यारे लाल (१९६०)—थ्रोन टू दि वोल्मस
मूल उर्दू लेखक फानरी बुखारी, लाहौर (१९५६)
हिंदी रूपांतर (१९५७)—बाद्शा खान

अन्य चरित्र एवं आत्मचरित्र

हेक्टर बोलियो (१९५४)—जिन्ना, क्रियेटर आफ पाकिस्तान
प्यारेलाल —म० गांधी दि लास्ट फेज
तेंदुलकर, डी० जी० —महात्मा गाँधी
ब्रेचेयर —जवाहरलाल नेहरू
हुसेन आजिम (१९४५) —फजले हुसेन
आजाद, एम० अबुलकलाम (१९५९)—इंडिया विंस फ्रीडम
इकबाल, अफजल (एडिटेड)-- माइ लाइफ, ए फ्रैगमेंट
खलीकुज्जमाँ (१९६१) —पाथ वे टु पाकिस्तान
बजाज, जानकीदेवी (१९६०)—जीवनयात्रा
महेंद्रप्रताप (१९४७)
रथ, राधानाथ (१९६३) – रासबिहारी बसु
कीर, धनंजय—डॉ० अंबेडकर्स लाइफ एण्ड मिशन
मारक्विस आफ रीडिंग (१९४५)—रुफुस इस्साक, लार्ड रिडिंग

इतिहास एवं ऐतिहासिक

पाकिस्तान हिस्टारिकल सोसाइटी वाल्यूम २, पार्ट २ (१९६०)—
हिस्ट्री आफ दि फ्रीडम मूवमेंट
प्रो० गनकोवस्की ऐण्ड गोर्डन, एल० आर० पोलोन्स्किया यू० एस० एस० आर० (१९६४)— हिस्ट्री आफ पाकिस्तान

डा० अग्रवाल, वी० एस०—इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि
पुलस्कर, ए० डी०, भारती विद्या भवन, बंबई बाक्स १—वैदिक एज
ओबराय, दीवानचंद—एवोल्यूशन आफ फ्रंटियर पालिसी
कीन, (सर) एंड यू —पासिंग इट आन
करोइ ओल्फ (१६५८)—दि पठान्स

अन्य

फारुकी, जियाल हसन (१६६३)—दि देवबंद स्कूल एंड डिमांड फार पाकिस्तान
खोसला जी० डी०—स्टर्न रेकनिंग
शर्मा, एस० डी० (१६५१) पीप्स इनटु पाकिस्तान
स्टीफेंसन, इआन (१६६४) - पाकिस्तान
शर्मा. एस० डी० (१६५१)—पीप्स इनटु पाकिस्तान
जानसन, आलन कैंपवेल (१६५१)—मिशन विद माउंटवैटन
लालबहादुर—दि मुसलिम लीग, इट्स हिस्ट्री, एक्टीविटीज, एंड एचीवमेंट्स
स्पैन जे० डब्लू—दी पठानस वार्डर
घोष, सुधीर (१६६७)—गांधीज इमजिरी
टिकेकर श्री० रा० (१६२७)—सिहाला शह
मुहम्मद अहमद (१६६०)—(प्रेसिडेंट अयूब खान) माई चीफ

रिपोर्ट, विवरण आदि

दि पेशावर इन्कायरी कमेटी (१६३०)
दि रौलेट कमेटी
पोलिटिकल ट्रबुल इन इंडिया (कान्फिडेंशल गवर्नमेंट पब्लिकेशन) : जेम्स कैंपवेल केर (१६१७)

पत्रपत्रिकाएँ

दि फ्रंटियर मेल, देहरादून
दि बांबे क्रानिकल, बम्बई
दि फ्री प्रेस जरनल, बम्बई

सूची